श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

उत्तरकाण्ड

[हिन्दी अनुवाद सहित]

भाषान्तरकार
साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री
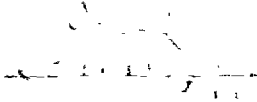
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—तेरहवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

उत्तरकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार
अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता
शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक
साहित्याचार्य स्वर्गीय पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय,
बनारस सिटी.

प्रथमावृत्ति]   आश्विन, सं० १९९२ वि०   [मूल्य १=)

प्रकाशक
पन्नालाल गुप्त
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय,
बनारस सिटी.

सस्ती साहित्य-पुस्तकमालाके स्थायी ग्राहक बननेका नियम

१—एक रुपया प्रवेश-शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमे मिलती है।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको है। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—किसी पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य, विषय आदिकी सूचना ग्राहकोंको भेज दी जाती है। उसका उत्तर आनेपर पुस्तक वी. पी. से भेज दी जाती है।

५—जिन सज्जनोंको कोई पुस्तक न लेनी हो उन्हें सूचना पाते ही उत्तर देना चाहिए, जिसमें वी. पी. न भेजी जाय। वी. पी. लौटानेसे उनका नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक् कर दिया जाता है। दुबारा नाम लिखानेके लिए वी. पी. खर्च, हानि आदि देना पड़ता है।

विशेष—ग्राहकोंको सूचनापत्रका उत्तर, चाहे उन्हें पुस्तकें मँगानी हो अथवा न मँगानी हो, अवश्य देना चाहिए। प्रत्येक पत्रमें अपनी ग्राहक-संख्या भी अवश्य लिखनी चाहिए।

आप अपनी ग्राहक-संख्या इस स्थानपर लिखलें, जिसमें आवश्यकता पड़नेपर काम दे।

ग्राहक संख्या............

मुद्रक—
बजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी।

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी प्रेमियों,

मैं आज लगभग साढ़े तीन वर्ष बाद मालाका तेरहवाँ पुष्प श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका उत्तर-कांड प्रकाशित कर रहा हूँ। युद्धकांडमें मैंने यह लिखा था कि—आशा है कि तीन महीनेमें उत्तरकांड भी छप जायगा। उस समय मैंने यह समझा था कि भगवानने क्षमा द्वारा मेरे सब पापोंको नष्ट कर दिया है और मेरा विपत्तिका बादल छिन्न-भिन्न हो गया है; किन्तु मेरा वह भ्रम था। युद्धकांडके प्रकाशित होते ही विपत्तिने मुझे पहलेसे भी अधिक घेर लिया। मित्रोंने हाथ-पैर मोटे रस्सोंसे बाँधकर गंगामें डुबानेकी चेष्टा की। किन्तु 'हरि इच्छा भावी बलवाना' के अनुसार उन लोगोंकी एक भी न चली। भगवानको आप लोगोंके सम्मुख मुझे पुन: उपस्थित करना था, आप लोगोंके ऋणसे मुक्त कराना था इससे उन्होंने बचा लिया। उन्हींकी असीम दयासे मैं आप लोगोंके सम्मुख आज पुन: उपस्थित हुआ हूँ।

बालकांडका द्वितीयावृत्तिसे आजतक मुझे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा है। उसका पूरा वृत्तान्त फिर कभी पाठकोंको सुनाऊँगा। इस समय पाठकगण इतनेसे ही संतोष करें कि भगवानकी इच्छाके सामने सभीका मस्तक नत हो जाता है, अस्तु।

रामायणके प्रकाशनके समय मैंने लिखा था कि रामायण आठखंडमें प्रकाशित होगा; किन्तु वह न हो सका। आठवें खंडमें रामायण एवं वाल्मीकिके सम्बन्धमें रामायणके टीकाकार स्वर्गीय शास्त्रीजीका विस्तृत विचारपूर्ण आलोचना होती। स्वर्गीय शास्त्रीजीने इसपर पर्याप्त मनन किया था, वे इसपर बृहद् भूमिका लिखना चाहते थे। किन्तु लिख न सके। असमयमें ही अकालकालने अपने सावधान दूतों-द्वारा उन्हें दूसरेलोकमें लिखनेके लिये बलपूर्वक बुलवा लिया।

अन्तमें मैं उन महानुभावोंको धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने समय-समयपर उत्तरकांड प्रकाशित करनेके लिये मुझे उत्साहित किया है। उनमें का० हि० वि० वि० के प्रो० और हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पं० जीवनशंकरजी याज्ञिक और दैवज्ञवाचस्पति आदि अनेक उपाधिधारी, ज्योतिषके धुरंधर विद्वान स्वर्गीय पं० सुन्दरदेवजीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। याज्ञिकजी इसके प्रकाशनके लिये बड़े उत्सुक थे किन्तु भगवानकी इच्छाके सम्मुख वे असफल रहे। यही बात पं० सुन्दरदेवजीकी भी थी। वे मेरी 'चिन्ता' को बाँट लेना चाहते थे परन्तु वही विवशता उनके भी हाथ लगी। यदि आज वे सशरीर मेरे सामने उपस्थित होते तो इसे देखकर कितने प्रसन्न होते, वह लिखा नहीं जा सकता। अतएव उनकी आत्मा जहाँ भी होगी इसे देखकर अवश्य प्रसन्न होगी। साथ ही भगवानको उनकी आत्मा, परमात्मा रूपको, धन्यवाद देगी।

पं० केदारनाथजी शर्म्मा एम० ए० ने मेरे आग्रहसे रामायण महात्म्यकी टीका करनेकी कृपा की है। क्योंकि स्वर्गीय शास्त्रीजीने 'छपनेके समय कर दूँगा' कहकर उसे छोड़ दिया था और वे परलोक चले गये। शास्त्रीजीके सुपुत्र पं० प्रफुल्लचन्द्र ओझा उसकी टीका कर सकते थे किन्तु जब मैंने छपवाना आरम्भ किया तब वे अन्य कार्योंमें व्यस्त थे इससे विवश होकर शर्म्माजीको कष्ट देना पड़ा। अत: शर्म्माजी, और पं० अम्बिकादत्तजी उपाध्याय एम० ए० को, क्योंकि अनेकबार आवश्यकता पड़नेपर उन्होंने भी इसके सम्बन्धमें, सहायता देनेसे मुँह नहीं मोड़ा है। धन्यवाद है।

मुझे एक बात और कहना है और वह यह है कि इसके टीकाकार स्वर्गीय पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री-के संबंधमें। शास्त्रीजी अब नश्वर शरीरसे मेरे सामने नहीं हैं, किन्तु सत्वर शरीरसे मेरे हृदयमें चित्रित हैं। उन्होंने अपनी अमरकीर्ति अपने अमरकार्यसे प्राप्त की है और उनका वह अमरकार्य है महाभारत, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवतकी टीका। ऐसी सरल, सुबोध और श्लोकवत् टीका दूसरा कोई कर सकता है, इसमें मुझे संदेह है। अतएव यद्यपि वे टीका लिखनेवाले हाथों सहित मेरे सामने नहीं हैं तथापि उनकी आत्मा जहाँ भी होगी मेरे इस कार्यसे अवश्य प्रसन्न होगी। अस्तु, वे जहाँ भी हों वहाँसे मैं चाहता हूँ कि अपनी आशीर्वाद रूपी अमृतकी वर्षा करें। जिसमें यह माता अपने प्रयत्नमें सफल हो।

अन्तमें एक निवेदन और करके मैं अपना वक्तव्य समाप्त करूँगा। मैं स्वर्गीय शास्त्रीजीकी श्रीमद्भागवतकी टीका प्रकाशित करने जा रहा हूँ। उसका विवरण शीघ्र ही आप लोगोंकी सेवामें भेजूँगा। अतएव मैं अपने उदार ग्राहकोंसे आशा करता हूँ कि वे रामायणकी भाँति उदासीनता न दिखाकर प्रत्युत उत्साहित होकर मुझे उसके विक्रीमें सहायता देंगे।

भारतवर्षमें १४००००००० से अधिक हिन्दी भाषा-भाषी जनताके होते हुये भी मेरे दो हजार स्थायी ग्राहक नहीं हैं, यह कितने लज्जाकी बात है! फिर भी मैं अपने उत्साहको नहीं त्याग रहा हूँ और इतना बड़ा ग्रन्थ प्रकाशनका दुस्साहस कर रहा हूँ। अतः क्या मैं अपने प्रेमी पाठकोंसे यह आशा करूँ कि वे कम-से-कम एक स्थायी ग्राहक बनानेकी कृपा करेंगे?

काशी
नवरात्र १९९१

निवेदक
पन्नालाल गुप्त

वाल्मीकीय रामायणकी विषयसूची

युद्धकांड

उत्तरकांड

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीरामचन्द्राय नमः ॥ श्रीहनुमते नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण माहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः १

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः ॥
रामान्त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्ववशे रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ॥१॥
चित्रकूटालयं राममिन्दिरानन्दमन्दिरम् । वन्दे च परमानन्दं भक्तानामभयप्रदम् ॥ २ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः । तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परं भजे ॥ ३ ॥
ऋषय ऊचुः—
भगवन्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं विदुषा त्वया । संसारपाशबद्धानां दुःखानि सुबहूनि च ॥ ४ ॥
एतत्संसारपाशस्य छेदकः कतमः स्मृतः । कलौ वेदोक्तमार्गाश्च नश्यन्तीति त्वयोदितम् ॥ ५ ॥
अधर्मनिरतानां च यातनाश्च प्रकीर्तिताः । घोरे कलियुगे प्राप्ते वेदमार्गबहिष्कृते ॥ ६ ॥
पाषण्डत्वं प्रसिद्धं वै तत्सर्वं परिकीर्तितम् । कामार्ता ह्रस्वदेहाश्च लुब्धा अन्योन्यतत्पराः ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्र समस्त संसारके शरण हैं। रामके विना कुछ होही नहीं सकता। रामके विना कोई गति ही नहीं है, राम कलियुगके पापोंको नष्ट करते हैं, अतएव रामको नमस्कार करना चाहिये। कालरूपी भारी सर्प रामसे डरता है, सभी कुछ रामके वशमें है, श्रीराममें मेरी अखण्ड भक्ति हो, हे राम, आप ही मेरे आश्रय हैं ॥ १ ॥

चित्रकूटमें निवास करनेवाले, लक्ष्मीके आनन्दके आश्रय, भक्तोंको अभयदेने वाले, परमानन्द श्रीरामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ संसारकी सत्ता स्थिर रखनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि देवता जिनके केवल अंश मात्र हैं उन आदिदेव, विशुद्ध परमात्मा श्रीरामका मैं स्मरण करता हूँ ॥ ३ ॥

ऋषियोंने कहा—भगवन्, आप विद्वान् है, हम लोगोंने जो कुछ पूछा था वह आपने सब कहा। संसार-पाशमें बँधेहुए जीवोंके अनेक दुःख हैं ॥ ४ ॥ इस संसार-जालका तोड़नेवाला कौन है। आपने स्वयं कहा कि कलियुगमें वेदोक्त मार्ग नष्ट हो जावेंगे ॥ ५ ॥ पापमें लगे रहनेवाले प्राणियोंके दुःखोंका भी आपने वर्णन किया। जब घोर कलियुग आवेगा और वेद-मार्ग लुप्त हो जावेंगे ॥ ६ ॥ उस समय केवल पाषण्ड-ही-पाषण्ड रहेगा—यह सब आपने कहा। कलियुगमें लोग कामी होंगे, छोटे शरीरवाले होंगे, लोभी होंगे और परस्पर रतिवासना करने वाले होंगे ॥ ७ ॥ उनकी आयु थोड़ी होगी और उनकी सन्तान

कलौ सर्वे भविष्यन्ति स्वल्परागो बहुप्रजाः । स्त्रियः स्वपोषणपरा वेश्यालावण्यशोभिताः ॥ ८ ॥
पतिवाक्यमनादृत्य सदान्यगृहतत्पराः । दुःशीला दुष्टशीलेषु करिष्यन्ति सदा स्पृहाम् ॥ ९ ॥
असंवृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः । परुषानृतभाषिण्यो देहसंस्कारवर्जिताः ॥१०॥
वाचालाश्च भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते च योषितः । भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसंबन्धयन्त्रिताः ॥११॥
अन्योपाधिनिमित्तेन शिष्यानुग्रहलोलुपाः । पाखण्डालापनिरताः पाषण्डजनसङ्गिनः ।
यदा द्विजा भविष्यन्ति तदा वृद्धिं गतः कलिः ॥१२॥
विप्रवंशोद्भवश्रेष्ठ उपवीतं शिखां त्यजेत् । कथं तन्निष्कृतिं याति वद सूत महामते ॥१३॥
राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु । परस्परं विरुध्यन्ति भगवद्धर्मबन्धकाः ॥१४॥
द्विजा नष्टाः सहिता भगवद्धर्मवर्जिताः । कलौ विप्रा भविष्यन्ति कञ्चुकोष्णीषधारिणः ॥१५॥
घोरे कलियुगे ब्रह्मञ्जनानां पापकर्मणाम् । मनःशुद्धिविहीनानां निष्कृतिश्च कथं भवेत् ॥१६॥
शूद्रहस्तोदकं पक्वं शूद्रैश्च सह भोजनम् । शौद्रमन्नं तथाश्नीयात्कथं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१७॥
यथा तुष्यति देवेशो देवदेवो जगद्गुरुः । तन्नो वदस्व सर्वज्ञ सूत कारुण्यवारिधे ॥१८॥
वद सूत मुनिश्रेष्ठ सर्वमेतदशेषतः । कथं न जायते तुष्टिः सूत त्वद्वचनामृतात् ॥१९॥
सूत उवाच—
शृणुध्वमृषयः सर्वे यदिष्टं वो वदाम्यहम् । गीतं सनत्कुमाराय नारदेन महात्मना ॥२०॥

अधिक होंगे । स्त्रियाँ केवल अपना ही सुख देखेंगी और वेश्याके समान शृंगार करेंगी ॥ ८ ॥ वे पतियोंकी आज्ञाका अनादर करती हुई दूसरोंके घर सदा जाया करेंगी । वे स्वयं दुष्ट होंगी और दुष्टोंके संसर्गकी इच्छा करेंगी ॥ ९ ॥ कुल कामिनियाँ पुरुषोंके सम्मुख आत्मसंयम न कर सकेंगी । वे कठोर और झूठे वचन बोलनेवाली होंगी और शरीरसे अपवित्र होंगी ॥ १० ॥ कलियुगके आनेपर स्त्रियाँ अत्यन्त बकवादी होंगी, सन्यासी लोग मित्रादिके प्रेम-सूत्रमें बँधे रहेंगे ॥ ११ ॥ ब्राह्मण लोग दूसरेको तंग करनेके लिए अपने शिष्योंकी कृपाके लिये लालायित रहेंगे । वे पाखण्डपूर्ण वार्तालाप करेंगे और पाखण्डियोंका संग करेंगे, जब ऐसा होगा, उस समय घोर कलियुग आया रहेगा ॥ १२ ॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न ब्राह्मण यज्ञोपवीत और शिखाका त्याग करेगा, हे ज्ञानी सूत, उसकी मुक्ति कैसे होगी ? ॥ १३ ॥

कलियुगके आनेसे राक्षस लोग ब्रह्मयोनियोंमें जन्म लेंगे । वे परस्पर विरोध रखनेवाले और ईश्वरीय धर्ममें विघ्न करनेवाले होंगे ॥ १४ ॥ ब्राह्मण ब्रह्मोचित कर्मका परित्याग करेंगे और धर्मसे रहित होंगे, कलियुगमें ब्राह्मण लोग चोगा और पगड़ी धारण करेंगे ॥ १५ ॥ हे प्रभो, घोर कलियुगके आनेपर पाप करनेवाले और अपवित्र मनवाले मनुष्योंकी मुक्ति कैसे होगी ? ॥ १६ ॥ शूद्रके द्वारा लाये हुए जलसे पकाया हुआ अन्न खानेवालेकी शूद्रोंके साथ भोजन करनेवालेकी और शूद्रके अन्नको खानेवालेकी शुद्धि कैसे होगी ? ॥ १७ ॥ देवेश, देवदेव जगन्नाथ किस प्रकार प्रसन्न होंगे, वह, हे करुणा-सागर सर्वज्ञ सूत, आप हम लोगोंसे कहें ॥ १८ ॥ हे मुनियोंमें श्रेष्ठ सूत, यह सब आप पूरा-पूरा हम लोगोंसे कहें । हे सूत आपके वचनामृतसे हम लोगोंकी पुष्टि क्यों नहीं होती ? ॥ १९ ॥ सूतजी बोले—ऋषियों, सुनें, आप

रामायणमहाकाव्यं सर्ववेदार्थसंमतम् । सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥२१॥
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । रामचन्द्रगुणोपेतं सर्वकल्याणसिद्धिदम् ॥२२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुभूतं महाफलम् । अपूर्वपुण्यफलदं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥२३॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । श्रुत्वैतदार्षं दिव्यं हि काव्यं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥२४॥
रामायणे प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः । त एव कृतकृत्याश्च सर्वशास्त्रार्थकोविदाः ॥२५॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं च द्विजोत्तमाः । श्रोतव्यं च सदा भक्त्या रामाख्यानं तदा नृभिः ॥२६॥
पुरार्जितानि पापानि नाशमायान्ति यस्य वै । रामायणे महाप्रीतिस्तस्य वै भवति ध्रुवम् ॥२७॥
रामायणे वर्तमाने पापपाशेन यन्त्रितः । अनादृत्यान्यथागाथासक्तबुद्धिः प्रवर्तते ॥२८॥

तस्मात्तु रामायणनामधेयं परं तु काव्यं शृणुत द्विजेन्द्राः ।
यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिनाशो भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात् ॥२९॥
वरं वरेण्यं वरदं च श्राव्यं निजप्रभाभासितसर्वलोकम् ।
संकल्पितार्थप्रदमादिकाव्यं श्रुत्वा व्रजेन्मोक्षपदं मनुष्यः ॥३०॥
ब्रह्मेशविष्ण्वाख्यशरीरभेदैर्विश्वं सृजत्यत्ति च पाति यश्च ।
तमादिदेवं परमं परेशमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥३१॥

लोग जो चाहते हैं वह मैं कहता हूँ । महात्मा नारदने सनत्कुमारको रामायण महाकाव्य सुनाया था । वह वेदके समस्त तत्त्वोंसे युक्त था । सब पापोंका नाश करनेवाला और खोटे ग्रहोंको दूर करनेवाला है ॥ २० ॥ वह दुःस्वप्नका नाश करनेवाला, प्रशंसनीय, सांसारिक सुख और मुक्तिका देनेवाला है । इसमें रामचन्द्रका गुण वर्णित है और वह सर्वकल्याण तथा सिद्धियोंका देनेवाला है ॥२२॥ वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-का कारण रूप है । और महाफलका देनेवाला है । वह अपूर्व पुण्यफलका देनेवाला है, आपलोग सावधान होकर सुनें ॥ २३ ॥ महापापी हो अथवा सभी प्रकारका पापकर्म करनेवाला हो । इस महर्षिप्रणीत दिव्य-काव्यका श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ २४ ॥ संसारका कल्याण करनेवाले सज्जन रामायणमें मन लगाते हैं । वे ही धर्मका अनुष्ठान करते हुए सर्वशास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले होते हैं ॥ २५ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो, यह रामायण (रामकथा) धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन है । मनुष्योंको भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये ॥ २६ ॥ जिसके पूर्व संचित सब पाप नष्ट हो जाते हैं, उसकी ही महाप्रीति रामायणमें होती है, ऐसा निश्चित है ॥ २७ ॥ रामायणकी कथा होते समय वही प्राणी इस कथाका अनादर करके अन्य बातोंमें मन लगाता है । जो पापजालमें जकड़ा हुआ है ॥ २८ ॥ इसलिये हे द्विजश्रेष्ठो, आपलोग रामायण नामके काव्यको सुनिये, जिसके सुननेसे जन्म तथा मरणका भय छूट जाता है और सुननेवाला पाप-रहित होकर विष्णुके समान हो जाता है ॥ २९ ॥

यह काव्य उत्तम है, अति उत्तम है, वांछित फलका देनेवाला है, सुनाने योग्य है, इसके तेजसे समस्त संसार प्रदीप्त होता है । इसके सुननेसे मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि रूपभेदसे जो संसारकी सृष्टि, पालन व संहार करता है, उस आदिदेव, परम, परमेश्वरको मनमें

यो नामजात्यादिविकल्पहीनः परः पराणां परमः परः स्यात् ।
वेदान्तवेद्यः स्वरुचा प्रकाशः स वीक्ष्यते सर्वपुराणवेदैः ॥३२॥
ऊर्जे माघे सिते पक्षे चैत्रे च द्विजसत्तमाः । नवम्यहनि श्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥३३॥
इत्येवं शृणुयाद्यस्तु श्रीरामचरितं शुभम् । सर्वान्कामानवाप्नोति परत्रामुत्र चोत्तमान् ॥३४॥
त्रिसप्तकुलसंयुक्तः सर्वपापविवर्जितः । प्रयाति रामभवनं यत्र गत्वा न शोच्यते ॥३५॥
चैत्रे माघे कार्तिके च सिते पक्षे च वाचयेत् । नवम्यहनि तस्मात्तु श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥३६॥
रामायणं चादिकाव्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् । ॥३७॥
तस्मात्कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते । नवम्यहनि श्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥३८॥
रामायणपरा ये तु घोरे कलियुगे द्विजाः । ते नराः कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ॥३९॥
कथा रामायणस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे । तद्गृहं तीर्थरूपं हि दुष्टानां पापनाशनम् ॥४०॥
तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः । यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्रामायणं नरैः ॥४१॥
दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्रामायणोद्भवा । कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥४२॥
ऊर्जे माघे सिते पक्षे चैत्रे च द्विजसत्तमाः । यस्य श्रवणमात्रेण सौदासोऽपि विमोचितः ॥४३॥
गौतमशापतः प्राप्तः सौदासो राक्षसीं तनुम् । रामायणप्रभावेण विमुक्तिं प्राप्तवान्पुनः ॥४४॥

धारण करके मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ जो नाम तथा जाति आदि विकल्पोंसे रहित है, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, जो परमसूक्ष्म है, वेदान्तसे जिसका ज्ञान होता है जो अपनी इच्छासे प्रकाशित है वह सब पुराणों व वेदों द्वारा दिखलाई देता है ॥ ३२ ॥ हे विप्रवरो, कार्तिक और चैत्र सुदी नवमीको इस रामकथामृतको सुनना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जो रामचन्द्रकी शुभकथाका श्रवण करता है वह इस लोक और परलोकमें समस्त उत्तम अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ३४ ॥ वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों सहित पापसे छूट जाता है और अन्तमें उसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है जहाँ जाकर वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

चैत्रमें, माघमें, कार्तिकमें, शुक्लपक्षमें इसका पाठ करना चाहिये, इसलिये नवमीको प्रयत्न पूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रामायण आदिकाव्य है, स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है ॥ ३७ ॥ इसलिये कलियुगमें जब कि सब धर्मका परित्याग हो जायगा, इसका श्रवण नवमीको अवश्य करना चाहिये ॥ ३८ ॥ हे द्विजो, जो मनुष्य घोर कलियुगमें रामायणमें प्रीत रक्खेंगे वे कृतकृत्य होंगे और उनपर कलिका प्रभाव न होगा ॥ ३९ ॥ जिस घरमें नित्य रामायणकी कथा होगी वह घर तीर्थके समान होगा और दुष्टोंका पापनष्ट करनेवाला होगा ॥ ४० ॥ तपस्वियो, इस शरीरमें पापका निवास तभीतक रहेगा, जबतक लोग भली प्रकार श्रीमद्रामायणका श्रवण नहीं करते ॥ ४१ ॥ यह रामायणकी कथा संसारमें दुर्लभ है, करोड़ों जन्मोंके पुण्यके उदय होनेपर ही इसकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ कार्तिक और चैत्रके शुक्ल पक्षमें, जिसके सुननेसे, हे द्विजोत्तम, सौदासकी भी मुक्ति हो गयी ॥ ४३ ॥ गौतमके शापसे सौदास राक्षस हो गया था, रामायणके प्रभावसे वह पुनः राक्षस-शरीरसे छूट गया ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रकी

यस्त्वेतच्छृणुयाद्भक्त्या रामभक्तिपरायणः । स मुच्यते महापापैरुपपातकराशिभिः ॥४५॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २

ऋषय ऊचुः—

कथं सनत्कुमाराय देवर्षिर्नारदो मुनिः । प्रोक्तवान्सकलान्धर्मान्कथं च मिलितावुभौ ॥ १ ॥
कस्मिन्क्षेत्रे स्थितौ तात तावुभौ ब्रह्मवादिनौ । यदुक्तं नारदेनास्मै तन्नो ब्रूहि महामुने ॥ २ ॥

सूत उवाच—

सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणस्तनयाः स्मृताः । निर्ममा निरहंकाराः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ३ ॥
तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दनः । सनत्कुमारश्च तथा सनातन इति स्मृतः ॥ ४ ॥
विष्णुभक्ता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणाः । सहस्रसूर्यसंकाशाः सत्यवन्तो मुमुक्षवः ॥ ५ ॥
एकदा ब्रह्मणः पुत्रा सनकाद्या महौजसः । मेरुशृङ्गं समाजग्मुर्वीक्षितुं ब्रह्मणः सभाम् ॥ ६ ॥
तत्र गङ्गां महापुण्यां विष्णुपादोद्भवां नदीम् । निरीक्ष्य स्नातुमुद्युक्ताः सीताख्यां प्रस्थितौजसः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा देवर्षिर्नारदो मुनिः । आजगामोच्चरन्नाम हरेर्नारायणादिकम् ॥ ८ ॥
नारायणाच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन । यज्ञेश यज्ञपुरुष राम विष्णो नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
इत्युच्चरन्हरेर्नाम पावयन्निखिलं जगत् । आजगाम स्तुवन्गङ्गां मुनिर्लोकैकपावनीम् ॥१०॥

भक्ति करनेवाला जो कोई इस कथाको भक्तिपूर्वक श्रवण करता है उसके छोटे बड़े सभी पाप दूर हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

स्कन्दपुराणके उत्तरखण्डान्तर्गत नारद-सनत्कुमारसंवाद विषयक रामायण माहात्म्यका प्रथम अध्याय समाप्त

ऋषि लोग बोले—सनत्कुमारसे देवर्षिनारद मुनिने सब धर्मोंको कैसे कहा और उन दोनोंकी भेंट कैसे हुई ? ॥ १ ॥ वे दोनों ब्रह्मवादी किस स्थानपर थे ? । हे महामुनि, नारदने जो कुछ सनत्कुमारसे कहा वह आप हम लोगोंसे कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले—सनकादि महात्मा ब्रह्माके पुत्र थे, वे ममता और अहंकारसे रहित थे और सब ऊर्ध्वरेता थे ॥ ३ ॥ मैं उनके नाम कहता हूँ, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन उनके नाम हैं ॥ ४ ॥ वे विष्णु-भक्त थे, महात्मा थे और ब्रह्मके ध्यानमें लीन रहते थे । सहस्रों सूर्यके समान उनका तेज था, वे सत्यवादी थे और मोक्षकी कामनावाले थे ॥ ५ ॥ एक समय सनकादि महातेजस्वी वे ब्रह्माके पुत्र मेरु पर्वतके शिखरपर ब्रह्माकी सभा देखने गए ॥६॥ वहाँ उन लोगोंने विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न हुई गंगा नदीको देखा, वे तेजस्वी इस सीता नामकी नदीमें स्नान करनेको उद्यत हुए ॥७॥ विप्रो, इसी बीचमें वहाँ देवर्षि नारद मुनि आये, वे विष्णुके नारायणादि नामोंका उच्चारण कर रहे ॥ ८ ॥ हे नारायण, हे अच्युतानन्द, हे वासुदेव, हे जनार्दन, हे यज्ञेश, हे यज्ञपुरुष, हे राम, हे विष्णो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ इस प्रकार वे हरिनामका उच्चारण कर रहे थे और समस्त संसारको

अथायान्तं समुद्वीक्ष्य सनकाद्या महौजसः । यथार्हामर्हणां चक्रुर्ववन्दे सोऽपि तान्मुनीन् ॥११॥
अथ तत्र सभामध्ये नारायणपरायणम् । सनत्कुमारः प्रोवाच नारदं मुनिपुंगवम् ॥१२॥
सनत्कुमार उवाच—
सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ मुनिमानद नारद । हरिभक्तिपरो यस्मात्त्वत्तो नास्त्यपरोऽधिकः ॥१३॥
येनेदमखिलं जातं जगत्स्थावरजंगमम् । गङ्गा पादोद्भवा यस्य कथं स ज्ञायते हरिः ।
अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ॥१४॥
नारद उवाच—
नमः पराय देवाय परात्परतराय च । परात्परनिवासाय सगुणायागुणाय च ॥१५॥
ज्ञानाज्ञानस्वरूपाय धर्माधर्मस्वरूपिणे । विद्याविद्यास्वरूपाय स्वस्वरूपाय ते नमः ॥१६॥
यो दैत्यहन्ता नरकान्तकश्च भुजाग्रमात्रेण दधार गोत्रम् ।
भूभारविच्छेदविनोदकामं नमामि देवं रघुवंशदीपम् ॥ ॥१७॥
आविर्भूतश्चतुर्धा यः कपिभिः परिवारितः । हतवान्राक्षसानीकं रामं दाशरथिं भजे ॥१८॥
एवमादीन्यनेकानि चरितानि महात्मनः । तेषां नामानि संख्यातुं शक्यन्ते नाब्दकोटिभिः ॥१९॥
महिमानं तु यन्नाम्नः पारं गन्तुं न शक्यते । मनवोऽपि मुनीन्द्राश्च कथं तं क्षुल्लको भजे ॥२०॥
यन्नामश्रवणेनापि महापातकिनोऽपि ये । पावनत्वं प्रपद्यन्ते कथं तोष्यामि तुच्छधीः ॥२१॥

पवित्र कर रहे थे । लोक-पावनी गंगाकी स्तुति करते हुए वे वहाँ आये ॥ १० ॥ महातेजस्वी सनकादिने उनको आते हुए देखकर उनकी यथोचित पूजा की । नारदजीने भी उन मुनियोंको नमस्कार किया ॥ ११ ॥ अब वहाँ सभाके बीचमें सनत्कुमारने मुनिश्रेष्ठ तथा भगवानके परम भक्त नारदसे कहा ॥ १२ ॥ सनत्कुमार बोले—हे मुनियोंको आदर देनेवाले, महाज्ञानी नारद आप सब कुछ जाननेवाले है, आप हरिभक्तिमें लीन रहनेवाले हैं, इसलिये आपसे बढ़कर और कोई नहीं है ॥ १३ ॥ जिससे स्थावर और जंगम समस्त संसार उत्पन्न हुआ, जिसके चरणसे गंगा निकली, उस हरिका ज्ञान कैसे होता है ? ॥ यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो आप मुझसे सारपूर्वक कहिये ॥ १४ ॥

नारदजी बोले—परम परमेश्वरको नमस्कार है । जो उत्तमसे-भी-उत्तम हैं, ऊँचेसे-भी-ऊँचा जिनका निवास है जो सगुण और निर्गुण हैं, ज्ञान और अज्ञान दोनों जिनके स्वरूप हैं, धर्म और अधर्म दोनों जिनके स्वरूप है, विद्या और अविद्या दोनों जिनके स्वरूप हैं, उन स्वतंत्र रूप भगवानको मै नमस्कार करता हूँ ॥ १५, १६ ॥ जो दैत्योंको मारनेवाले, नरकका अन्त करनेवाले हैं, जिन्होंने अंगुलीके आधार-पर पृथिवी उठाई थी, पृथिवीका भार उतारना जिनको प्रिय है, ऐसे रघुवंश-दीपक भगवानको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ जिन्होंने चार स्वरूपोंमें अवतार लिया और वानरोंको संग लेकर राक्षस सेनाका संहार किया, ऐसे दशरथके पुत्र रामको मैं भजता हूँ ॥ १८ ॥ इस प्रकार भगवानके अनेक आदि चरित हैं, करोड़ों वर्षमें भी उनकी गणना नहीं की जा सकती । जिनके नामकी महिमाका पार मनु और मुनीन्द्र भी नहीं पा सकते, उनको मैं क्षुद्र कैसे भजूँ ॥ २० ॥ जिसके नामके श्रवणमात्रसे महापापी भी पवित्र हो जाते

रामायणपरा ये तु घोरे कलियुगे द्विजाः । त एव कृतकृत्याश्च तेषां नित्यं नमो नमः ॥२२॥
ऊर्जे मासे सिते पक्षे चैत्रे माघे तथैव च । नवम्यहनि श्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥२३॥
गौतमशापतः प्राप्तः सौदामा राक्षसीं तनुम् । रामायणप्रभावेण विमुक्तिं प्राप्तवान्पुनः ॥२४॥

सनत्कुमार उवाच—

रामायणं केन प्रोक्तं सर्वधर्मफलप्रदम् । शप्तः कथं गौतमेन सौदामो मुनिसत्तमः ।
रामायणप्रभावेन कथं भूयो विमोचितः ॥२५॥
अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते चेदस्ति करुणा मयि । सर्वमेतदशेषेण मुने नो वक्तुमर्हसि ।
शृण्वतां वदतां चैव कथा पापप्रणाशिनी ॥२६॥

नारद उवाच—

शृणु रामायणं विप्र यद्वाल्मीकिमुखोद्गतम् । नवम्यहनि श्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥२७॥
आसीत् कृतयुगे विप्रो धर्मकर्मविशारदः । सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना धर्मपरायणः ॥२८॥
विप्रस्तु गौतमाख्येन मुनिना ब्रह्मवादिना । श्रुतवान्सर्वधर्मांश्च गङ्गातीरे मनोरमे ॥२९॥
पुराणशास्त्रकथनैस्तेनासौ बोधितोऽपि च । श्रुतवान्सर्वधर्मांश्च तेनोक्तानखिलानपि ॥३०॥
कदाचित्परमेशस्य परिचर्यारतोऽभवत् । उपस्थितायापि तस्मै प्रणामं नाकरोच्च सः ॥३१॥
स तु शान्तो महाबुद्धिर्गौतमस्तेजसां निधिः । मयोदितानि कर्माणि करोतीति मुदं ययौ ॥३२॥
यस्त्वर्चितो महादेवः शिवः सर्वजगद्गुरुः । गौतमश्चागतस्तत्र न चोत्तस्थौ ततो द्विजः ।
गुर्ववज्ञाकृतं पापं राक्षसत्वेन चोक्तवान् ॥३३॥

हैं उनको मैं तुच्छ बुद्धि कैसे तुष्ट करूँ ॥ २१ ॥ कलियुगमें जो ब्राह्मण रामायणमें मन लगावेंगे, वे ही कृतकृत्य होंगे। उनको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥ कार्तिक, माघ और चैत्रके शुक्ल पक्षमें नवमी-के दिन रामायण कथाको सुनना चाहिये ॥ २३ ॥ गौतमके शापसे सौदामा राक्षस हो गया। रामायणके प्रभावसे फिर उसकी मुक्ति हो गयी ॥ २४ ॥

सनत्कुमार बोले—समस्त धर्मफलको देनेवाला रामायण किसने कहा, गौतमने मुनिवर सौदामाको क्यों शाप दिया, रामायणके प्रभावसे पुनः उसकी मुक्ति कैसे हुई ? ॥ २५ ॥ यदि आपकी मुझपर कृपा है यदि आपकी मुझमें करुणा है तो हे मुने, आप सुनने और कहने वालोंके पापको नाश करनेवाली इस कथा-को पूर्णतया हमसे कहिये ॥ २६ ॥ नारद बोले—हे विप्र, आप रामायण सुनिये जो वाल्मीकिके मुखसे निकला है। रामायण कथामृतको नवमीके दिन सुनना चाहिये ॥ २७ ॥ कृतयुगमें सोमदत्त नामका ब्राह्मण था, वह धर्मात्मा और कर्मशील था ॥ २८ ॥ सुन्दर गंगातटपर उसने गौतम मुनिसे समस्त धर्मोंको सुना था ॥ २९ ॥ मुनिने पुराणों और शास्त्रोंको कहकर उसे ज्ञान दिया था। मुनि द्वारा कहे गये उसने सब धर्मोंको सुना था ॥ ३० ॥ किसी समय वह महादेवकी पूजामें लगा हुआ था। गौतमके आनेपर उसने उनको प्रणाम नहीं किया ॥ ३१ ॥ तेजस्वी गौतम शान्त और परम बुद्धिमान थे। मेरे बतलाये हुए कर्म यह कर रहा है—ऐसा समझकर प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ कि समस्त संसारके गुरु शिव

भगवान्सर्वधर्मज्ञः सर्वदर्शी सुरेश्वरः। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयानयकोविदम्।
क्षमस्व भगवन्सर्वमपराधं कृतं मया ॥३४॥

गौतम उवाच—

ऊर्जे मासे सिते पक्षे रामायणकथामृतम्। नवम्यहनि श्रोतव्यं भक्तिभावेन सादरम्।
नात्यन्तिकं भवेदेतद्द्वादशाब्दं भविष्यति ॥३५॥

विप्र उवाच—

केन रामायणं प्रोक्तं चरितानि तु कस्य वै। एतत्सर्वं महाप्राज्ञ संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि।
मनसा प्रीतिमापन्नो ववन्दे चरणौ गुरोः ॥३६॥

गौतम उवाच—

शृणु रामायणं विप्र वाल्मीकिमुनिना कृतम्। तच्छ्रुत्वा मुच्यते पापात्स्वं रूपं पुनरेति सः ॥३७॥
येन रामावतारेण राक्षसा रावणादयः। हतास्तु देवकार्यार्थं चरितं तस्य त्वं शृणु ॥३८॥
कार्तिके च सिते पक्षे कथा रामायणस्य तु। नवम्यहनि श्रोतव्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥३९॥
इत्युक्त्वा सर्वसंपन्नो गौतमः स्वाश्रमं ययौ। विप्रोऽपि दुःखमापन्नो राक्षसीं तनुमाश्रितः ॥४०॥
क्षुत्पिपासावशादार्तो नित्यं क्रोधपरायणः। कृष्णसर्पद्युतिर्भीमो बभ्राम विजने वने ॥४१॥
मृगांश्च विविधांस्तत्र मनुष्यांश्च सरीसृपान्। विहगान्प्लवगांश्चैव प्रसह्यैतानभक्षयत् ॥४२॥
अस्थिभिर्बहुभिर्विप्राः पीतरक्तकलेवरैः। रक्तार्द्रप्रेतकेशैश्चैव तेनासीद्भूर्भयंकरी ॥४३॥

महादेवकी यह पूजा कर रहा है। गौतम वहाँ आये पर वह ब्राह्मण न उठा, सब धर्मोंको जाननेवाले, सब कुछ देखनेवाले देवेश्वर भगवान शंकरने शाप दिया कि तूने गुरुका अपमान किया है अतएव राक्षस होजा। ब्राह्मणने हाथ जोड़कर विनय और नीतिका जानने वाले गौतमसे कहा कि हे भगवान्, आप मेरे सब अपराधको क्षमा कीजिये ॥ गौतम बोले—कार्तिकमें शुक्लपक्षमें रामायण ॥ ३३,३४ ॥ कथामृतको नवमीके दिन भक्तिपूर्वक सादर सुनना। यह शाप अधिक दिन तक न रहेगा, बारह वर्ष तक रहेगा ॥३५॥ ब्राह्मण बोला—रामायण किसने कहा और उसमें किसके चरित्रोंका वर्णन है? । हे महाज्ञानी, यह सब आप हमसे संक्षेपमें कहिये। मनमें उसके प्रीति उत्पन्न हुई और उसने गुरु-चरणोंमें प्रणाम किया ॥३६॥ गौतम बोले—हे विप्र, रामायण सुनो उसे वाल्मीकि मुनिने बनाया है। उसे सुनकर पापसे छूट जाओगे और पुनः अपने रूपको प्राप्त करोगे ॥ ३६ ॥ जिस रामावतारसे देवताओंके हितके लिये रावणादि राक्षस मारे गये, तुम उसके चरितको सुनो ॥ ३८ ॥ कार्तिकके शुक्ल पक्षमें नवमीके दिन इस रामायण-कथाको सुनना चाहिये, यह सब पापोंको नष्ट करने वाली है ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर सर्व-सम्पन्न गौतम अपने आश्रमको गये। ब्राह्मण दुःखी हुआ और राक्षस हो गया ॥ ४० ॥ वह नित्य क्षुधा और प्याससे पीड़ित रहने लगा, बड़ा क्रोधी हो गया, वह काले सर्पके समान काला हो गया, वह भीमकाय होकर निर्जन वनमें घूमने लगा ॥ ४१ ॥ नाना प्रकारके जानवरोंको, मनुष्योंको, सर्पोंको, पक्षियों और बन्दरोंको वह खाने लगा ॥ ४२ ॥ हे विप्रो, पीली और लाल वर्णवाली हड्डियोंसे और रक्त पीनेवाले प्रेतोंसे वह भूमि भयंकर हो

ऋतुत्रये स पृथिवीं शतयोजनविस्तराम् । कृत्वातिदूषितां पश्चाद्वनान्तरमगात्पुनः ॥४४॥
तत्रापि कृतवान्नित्यं नरमांसाशनं तदा । जगाम नर्मदातीरे सर्वलोकभयंकरः ॥४५॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः । कलिङ्गदेशसंभूतो नाम्ना गर्ग इति श्रुतः ॥४६॥
वहन्गङ्गाजलं स्कन्धे स्तुवन्विश्वेश्वरं प्रभुम् । गायन्नामानि रामस्य समायातोऽतिहर्षितः ॥४७॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा सुदामा नाम राक्षसः । प्राप्ता नः पारणेत्युक्त्वा भुजावुद्यम्य तं ययौ ॥४८॥
तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थितः । असक्तस्तं द्विजं हन्तुमिदमूचे स राक्षसः ॥४९॥
राक्षस उवाच—
अहोभद्र महाभाग नमस्तुभ्यं महात्मने । नामस्मरणमाहात्म्याद्राक्षसा अपि दूरगाः ॥५०॥
मया प्रभक्षिताः पूर्वं विप्राः कोटिसहस्रशः । नामप्रग्रहणं विप्र रक्षति त्वां महाभयात् ॥५१॥
नामस्मरणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् । परां शान्तिं समापन्ना महिमा चाच्युतस्य कः ॥५२॥
सर्वथा त्वं महाभाग रागादिरहितो द्विजः । रामकथाप्रभावेन पाह्यस्मात्पातकाधमात् ॥५३॥
गुर्ववज्ञा मया पूर्वं कृता च मुनिसत्तम । कृतश्चानुग्रहः पश्चाद्गुरुणा प्रोक्तवानिदम् ॥५४॥
वाल्मीकिमुनिना पूर्वं कथा रामायणस्य च । ऊर्जे मासे सिते पक्षे श्रोतव्या च प्रयत्नतः ॥५५॥
गुरुणापि पुनः प्रोक्तं रम्यं तु शुभदं वचः । नवम्यहनि श्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥५६॥
तस्माद्ब्रह्मन्महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद । कथाश्रवणमात्रेण पाह्यस्मात्पापकर्मणः ॥५७॥

गयी ॥ ४३ ॥ छः महीनेमें सौ योजन लम्बी चौड़ी पृथिवीको अत्यन्त दूषित बनाकर वह दूसरे वनमें चला गया ॥ ४४ ॥ वहाँ भी वह नित्य मनुष्यमांसको खाने लगा । सबको भय देनेवाला वह राक्षस नर्मदा तट-पर गया ॥ ४५ ॥ इसी बीचमें वहाँ एक परम धार्मिक ब्राह्मण आया । उसका नाम गर्ग था और वह कलिंग देशमें उत्पन्न हुआ था ॥ ४६ ॥ वह अपने कंधेपर गंगाजल लिये हुए था और भगवान् विश्वेश्वर-की स्तुति कर रहा था । वह प्रसन्न होकर राम-नामका गान करता हुआ आया था ॥ ४७ ॥ उस मुनिको आया देखकर सुदामा राक्षस "भोजन आया"—ऐसा कहता हुआ अपने दोनों हाथोंको उठाकर उसकी ओर दौड़ा ॥ ४८ ॥ वह मुनि नामोंका कीर्तन कर रहा था—उसे सुनकर राक्षस दूर ही ठहर गया । वह मुनिको मारनेमें असक्त हो गया और तब बोला ॥ ४९ ॥ राक्षस बोला—आप धन्य हैं और सज्जन हैं आप महात्माको नमस्कार है नाम स्मरणके प्रभावसे राक्षस भी आपसे दूर ही रहते हैं ॥५०॥ मैंने पहले सहस्रों, करोड़ों ब्राह्मणोंको खा डाला है । राम-नामका स्मरण ही आपको महाभयसे बचा रहा है ॥५१॥ नामके स्मरणमात्रसे हम राक्षसोंको भी परम शान्ति प्राप्त हुई । भगवान्‌की कैसी महिमा है ॥ ५२ ॥ हे महाभाग, आप सब प्रकार रागादिसे रहित हैं, ब्राह्मण हैं । रामकथाके प्रभावसे आप हम लोगोंको घोर पाप-से बचा लीजिये ॥ ५३ ॥ हे मुनिवर मैंने पूर्वकालमें गुरुका अपमान किया था । पीछे गुरुने कृपाकरके यह बात कही ॥ ५४ ॥ पूर्वकालमें वाल्मीकि मुनिने राम-कथाकी, रचना की कार्तिकमें, शुक्लपक्षमें उसका श्रवण करना ॥ ५५ ॥ गुरुने पुनः सुन्दर तथा कल्याणकारी वचन कहा कि नवमीको रामायण कथामृतका श्रवण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन्, हे महाभाग, हे सर्व शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले, आप

श्रीनारद उवाच—

इत्याख्यातं राक्षसेन राममाहात्म्यमुत्तमम् । निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तमः ॥५८॥
ततो विप्रः कृपाविष्टो रामनामपरायणः । सुदामराक्षसं नाम्ना इदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥५९॥

विप्र उवाच—

राक्षसेन्द्र महाभाग मतिस्ते विमलागता । अस्मिन्नूर्जे सिते पक्षे रामायणकथां शृणु ॥६०॥
शृणु त्वं राममाहात्म्यं रामभक्तिपरात्मना । रामध्यानपराणां च कः समर्थः प्रबाधितुम् ॥६१॥
रामभक्तिपरा यत्र ब्रह्मा विष्णुः सदाशिवः । अत्र देवाश्च सिद्धाश्च रामायणपरा नराः ॥६२॥
तस्मादूर्जे सिते पक्षे रामायणकथां शृणु । नवम्यहनि श्रोतव्यं सावधानः सदा भव ॥६३॥
कथाश्रवणमात्रेण राक्षसत्वमपाकृतम् । विसृज्य राक्षसं भावमभवद्देवतोपमः ॥६४॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशमापन्नो विबुधर्षभः । शङ्खचक्रगदापाणी रामभद्रः समागतः ।
स्तुवंस्तु ब्राह्मणं सम्यग्जगाम हरिमन्दिरम् ॥६५॥

नारद उवाच—

तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्रा रामायणकथामृतम् । नवम्यहनि श्रोतव्यमूर्जे मासि च कीर्त्यते ॥६६॥
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरो याति परां गतिम् ॥६७॥
रामायणेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा । तदैव पापनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥६८॥
ये पठन्तीदमाख्यानं भक्त्या शृण्वन्ति वा नराः । गङ्गास्नानफलं पुण्यं तेषां संजायते ध्रुवम् ॥६९॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये राक्षसविमोचनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

केवल रामायणकथाको सुनाकर हम लोगोंको पापकर्मसे बचाइये ॥ ५७ ॥ नारद बोले—इस प्रकार राक्षसने उत्तम राममाहात्म्यका कहा, उसे सुनकर विप्रवर गर्ग विस्मित हुए ॥ ५८ ॥ राम-नाममें निरत रहनेवाले गर्गको दया आई, उन्होंने सुदामा राक्षससे कहा—॥ ५९ ॥ हे राक्षसेन्द्र, तुम धन्य हो, तुम्हारी मति निर्मल हो गयी है ॥ इस कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें रामायणकी कथा सुनो ॥ ६० ॥ तुम भक्ति-पूर्ण मनसे राममाहात्म्य सुनो । रामके ध्यानमें लगे रहनेवालोंको कौन सता सकता है । ६१ ॥ जहाँ राम भक्त रहते हैं वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव सब रहते हैं, वहीं देव, सिद्ध और रामायणप्रिय प्राणी रहते हैं ॥ ६२ ॥ इसलिये कार्तिक मासमें, शुक्लपक्षमें रामायणकथा सुनो । नवमीको सुनना चाहिये, सावधान हो जाओ ॥ ६३ ॥ कथा-श्रवण मात्रसे सुदामाका राक्षसत्व दूर हो गया, राक्षसरूप छोड़कर वह देवताके समान हो गया ॥ ६४ ॥ करोड़ों सूर्य्यके समान तेज पाकर वह देवताके समान हो गया । शंख, चक्र, गदा हाथमें लिए हुए स्वयं श्रीराम वहाँ उपस्थित हुए । गर्गकी स्तुति करता हुआ वह वैकुण्ठको गया ॥६५॥ नारद बोले—इसलिये हे द्विजवरो, रामायण कथामृतका श्रवण कीजिये । कार्तिक मासमें नवमीको सुनना चाहिये ॥६६॥ जिस नामके स्मरणमात्रसे करोड़ों महापापोंसे छूटकर मनुष्य परमगतिको पाता है ॥६७॥ "रामायण"—ऐसा एक बार भी जब स्मरण किया, तभी सब पापोंसे छूटकर प्राणी विष्णुलोकको जाता है ॥६८॥ जो इस कथाको भक्तिपूर्वक पढ़ते या सुनते हैं, उनको अवश्य ही गंगास्नानका फल होता है ॥६९॥

स्कन्द पुराणके उत्तरखण्डान्तर्गत नारद सनत्कुमार विषयक रामायण महात्म्यका दूसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीयोऽध्यायः ३

सनत्कुमार उवाच—

अहो चित्रमिदं प्रोक्तं मुनिमानद नारद । रामायणस्य माहात्म्यं पुनस्त्वं वद विस्तरात् ॥ १ ॥
अन्यमासस्य माहात्म्यं कथयस्व प्रसादतः । कथं नो जायते तुष्टिर्मुने त्वद्वचनामृतात् ॥ २ ॥

नारद उवाच—

सर्वे यूयं महाभागाः कृतार्था नात्र संशयः । यतः प्रभावं रामस्य भक्तितः श्रोतुमुद्यताः ॥ ३ ॥
माहात्म्यश्रवणं यस्य राघवस्य कृतात्मनाम् । दुर्लभं प्राहुरित्येतन्मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥
शृणुध्वमृषयश्चित्रमितिहासं पुरातनम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वरोगविनाशनम् ॥ ५ ॥
आसीत्पुरा द्वापरे च सुमतिर्नाम भूपतिः । सोमवंशोद्भवः श्रीमान्सप्तद्वीपैकनायकः ॥ ६ ॥
धर्मात्मा सत्यसंपन्नः सर्वसंपद्विभूषितः । सदा रामकथासेवी रामपूजापरायणः ॥ ७ ॥
रामपूजापराणां च शुश्रूषुर्निरहंकृतिः । पूज्येषु पूजानिरतः समदर्शी गुणान्वितः ॥ ८ ॥
सर्वभूतहितः शान्तः कृतज्ञः कीर्तिमान्नृपः । तस्य भार्या महाभागा सर्वलक्षणसंयुक्ता ॥ ९ ॥
पतिव्रता पतिप्राणा नाम्ना सत्यवती शुभा । तावुभौ दंपती नित्यं रामायणपरायणौ ॥१०॥
अन्नदानरतौ नित्यं जलदानपरायणौ । तडागारामवाप्यादीनसंख्यातान्वितेनतुः ॥११॥
सोऽपि राजा महाभागो रामायणपरायणः । वाचयेच्छृणुयाद्वापि भक्तिभावेन भावितः ॥१२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनियोंका सम्मान करनेवाले नारद, आपने यह विचित्र कथा कही। अब आप रामायणका माहात्म्य विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥ दूसरे मासके माहात्म्यको भी आप कृपापूर्वक कहिये। हे मुने, आपके वचनामृतसे हम लोगोंकी तृप्ति क्यों नहीं होती ॥ २ ॥ नारद बोले—आप सब धन्य हैं और कृतार्थ हैं इसमें सन्देह नहीं क्योंकि आपलोग भक्तिपूर्वक रामका प्रभाव सुननेके लिये उद्यत हुए हैं ॥३॥ जिस रामके माहात्म्य श्रवणको ब्रह्मज्ञानी मुनियोंने पुण्यात्माओंके लिये भी दुर्लभ कहा है ॥२४॥ ऋषियों, आपलोग इस प्राचीन इतिहासको सुनिये, यह सब पापोंको नाश करनेवाला है और सब रोगोंका नाश करने वाला है ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें द्वापरमें सुमति नामका राजा था। वह चन्द्रवंशी सम्पन्न और समस्त पृथिवीका स्वामी था ॥ ६ ॥ वह धर्मात्मा, शक्तिशाली, सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त, सदा रामकथा सुननेवाला और रामपूजा करनेवाला था ॥ ७ ॥ रामपूजामें लगे हुए लोगोंका सेवा करनेवाला और अहंकारसे रहित था। पूज्योंकी पूजा करनेवाला, सबको समान देखनेवाला और गुणवान् था ॥ ८ ॥ वह राजा सब प्राणियोंका हितकारी, शान्त, कृतज्ञ और कीर्तिमान् था। उसकी भाग्यशालिनी भार्या सर्व लक्षणोंसे युक्त थी ॥ ९ ॥ वह पतिव्रता थी, पतिको ही अपना प्राण समझती थी और कल्याणवती थी। नाम उसका सत्यवती था वे दोनों पति-पत्नी नित्य रामकथामें लगे रहते (का श्रवण करते) थे ॥ १० ॥ अन्नदान करते थे और जलदान करते थे। उन दोनोंने असंख्य तालाव, बगीचे और बावलियाँ बनवायी थीं ॥ ११ ॥ वह राजा रामायणमें लवलीन रहता था। भक्तिपूर्वक रामायण कहता और सुनता था ॥१२॥

एवं रामपरं नित्यं राजानं धर्मकोविदम् । तस्य प्रियां सत्यवतीं देवा अपि सदास्तुवन् ॥१३॥
त्रिलोके विश्रुतौ तौ च दम्पत्यन्तधार्मिकौ । आययौ बहुभिः शिष्यैर्द्रष्टुकामो विभाण्डकः ॥१४॥
विभाण्डकं मुनिं दृष्ट्वा समाम्नातो जनेश्वरः । प्रत्युद्ययौ सपत्नीकः पूजाभिर्बहुविस्तरम् ॥१५॥
कृतातिथ्यक्रियं शान्तं कृतासनपरिग्रहम् । नीचासनगतो भूपः प्राञ्जलिर्मुनिमब्रवीत् ॥१६॥
राजोवाच—
भगवन्कृतकृत्योस्मि तवात्रागमनेन भोः । सतामागमनं सन्तः प्रशंसन्ति सुखावहम् ॥१७॥
यत्र स्यान्महतां प्रेम तत्र स्युः सर्वसंपदः । तेजः कीर्तिर्धनं पुत्रा इति प्राहुर्विपश्चितः ॥१८॥
तत्र वृद्धिं गमिष्यन्ति श्रेयांस्यनुदिनं मुने । तथा सन्तः प्रकुर्वन्ति महतीं करुणां प्रभो ॥१९॥
यो मूर्ध्नि धारयेद्ब्रह्मन्विप्रपादतलोदकम् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु पुण्यवान्नात्र संशयः ॥२०॥
मम पुत्राश्च दाराश्च संपत्त्वयि समर्पिता । समाज्ञापय शान्तात्मन्ब्रह्मन्किं करवाणि ते ॥२१॥
विनयावनतं भूपं तं निरीक्ष्य मुनीश्वरः । स्पृशन्करेण राजानं प्रत्युवाचातिहर्षितः ॥२२॥
ऋषिरुवाच—
राजन्यदुक्तं भवता तत्सर्वं त्वत्कुलोचितम् । विनयावनताः सर्वे परं श्रेयो भजन्ति हि ॥२३॥
प्रीतोस्मि तव भूपाल सन्मार्गे परिवर्तिनः । स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग यत्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥२४॥
पुराणा बहवः सन्ति हरिसंतुष्टिकारकाः । माघे मास्यप्युद्यतोसि रामायणपरायणः ॥२५॥

ऐसे रामभक्त राजाकी और उसकी प्रिया सत्यवतीकी देवता लोग भी सदा प्रशंसा किया करते थे ॥ १३ ॥ धर्मात्मा राजा-रानी त्रैलोक्यमें विख्यात थे । बहुत शिष्योंको साथ लेकर विभाण्डक उनको देखने आये ॥ १४ ॥ राजा रानीके साथ उनका स्वागत करने गये और उनकी खूब पूजा की ॥१५॥ आतिथ्य करनेके बाद शान्त होकर मुनि आसनपर बैठे । राजा उनसे नीचे बैठे और हाथ जोड़कर बोले ॥ १६ ॥ राजा बोले—भगवन्, आप हमारे यहाँ पधारे इससे हम आज कृतकृत्य हुए । महात्माओंके आगमनको सज्जन लोग सुखद बतलाते हैं ॥ १७ ॥ जहाँ महात्माओंका प्रेम होता है वहाँ सर्व सम्पत्तियाँ होती हैं ॥ तेज, पुत्र, धन कीर्ति वहाँ होते हैं—ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ १८ ॥ हे मुने वहाँ कल्याणकी दिनादिन वृद्धि होती है और सज्जन लोग अत्यन्त प्रेम करते हैं ॥ १९ ॥ हे प्रभो, जो ब्राह्मणके चरणोदक अपने सिर-पर धारण करता है वह सब तीर्थोंमें स्नान कर चुका और पुण्यवान है इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ मेरे पुत्र, स्त्री और सम्पत्ति सब आपके हैं, हे शान्तात्मा मुनि, आज्ञा दीजिये मैं किस प्रकार आपकी सेवा करूँ ॥ २१ ॥ राजाको अत्यन्त विनम्र देखकर मुनिवर राजाको हाथसे छूते हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले ॥ २२ ॥

ऋषि बोले—राजन, जो कुछ तुमने कहा वह सब तुम्हारे कुलके योग्य है । तुम्हारे कुलमें सभी विनयी होते हैं और सुख पाते हैं ॥ २३ ॥ तुम अच्छे मार्गका अनुसरण करते हो इसलिये मैं तुमसे प्रसन्न हूँ राजन, तुम्हारा कल्याण हो, जो मैं पूछता हूँ वह कहो ॥ २४ । भगवानको प्रसन्न करनेवाले पुराण बहुतसे हैं; किन्तु तुम माघ मासमें रामायणमें लगे हो । २५ ॥ आपकी यह सती भार्या भी नित्य

तव भार्यापि साध्वीयं नित्यं रामपरायणा । किमर्थमेनद्वृत्तान्तं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२६॥
राजोवाच—
शृणुष्व भगवन्सर्वं यत्पृच्छसि वदामि तत् । आश्चर्यभूतं लोकानामावयोश्चरितं मुने ॥२७॥
अहमासं पुरा शूद्रो मालिनिर्नाम सत्तम । कुमार्गनिरतो नित्यं सर्वलोकाहिते रतः ॥२८॥
पिशुनो धर्मविद्वेषी देवद्रव्यापहारकः । महापातकिसंसर्गी देवद्रव्योपजीविकः ॥२९॥
गोघ्नश्च ब्रह्महा चौरो नित्यं प्राणिवधे रतः । नित्यं निष्ठुरवक्ता च पापी वेश्यापरायणः ॥३०॥
किंचित्काले स्थितो ह्येवमनादृत्य महद्वचः । सर्वबन्धुपरित्यक्तो दुःखी वनमुपागमम् ॥३१॥
मृगमांसाशनो नित्यं तथा मार्गनिरोधकृत् । एकाकी दुःखबहुलो ह्यवसं निर्जने वने ॥३२॥
एकदा क्षुत्पपिश्रान्तो निद्राघूर्णः पिपासितः । वसिष्ठस्याश्रमं दैवादपश्यं विजने वने ॥३३॥
हंसकारण्डवाकीर्णं तत्समीपे महत्सरः । पर्यन्ते वनपुष्पौघैश्छादितं तन्मुनीश्वरैः ॥३४॥
अपिवं तत्र पानीयं तत्तटे विगतश्रमः । उन्मूल्य वृक्षमूलानि मया क्षुच्च निवारिता ॥३५॥
वसिष्ठस्याश्रमे तत्र निवासं कृतवाहनम् । शीर्णस्फटिकसंधानं तत्र चाहमकारिषम् ।
पर्णैस्तृणैश्च काष्ठैश्च गृहं सम्यक्मकल्पितम् ॥३६॥
तत्राहं व्याधसत्वस्थो हत्वा बहुविधान्मृगान् । आजीवं वर्तनं कृत्वावत्सराणां च विंशतिम् ॥३७॥
अथेयमागता साध्वी विन्ध्यदेशसमुद्भवा । निषादकुलसंभूता नाम्ना कालीति विश्रुता ॥३८॥

राममें भक्ति करती है; ऐसा क्यों है यह वृत्तान्त आप हमसे ठीक-ठीक कहिये ॥ २६ ॥ राजा बोले—भगवन्, सुनिये । आप जो पूछते हैं वह सब मैं कहता हूँ । हम लोगोंका वृत्तान्त संसारके लिये आश्चर्य करनेवाला है ॥ २७ ॥ मैं पहले शूद्र था, मेरा नाम मालिनि था मैं नित्य कुमार्गमें लगा रहता था और सबको दुःख देता था ॥ २८ ॥ दुष्ट था, धर्म विरोधी था और देव-धनका हरण करनेवाला था । महा-पापियोंका संग करता था और देव-धनसे जीता था ॥ २९ ॥ गौओं और ब्राह्मणोंकी हत्या करता था; चोर था और नित्य प्राणियोंके वधमें लगा रहता था । सदा कठोरवचन बोलता था । पापी और वेश्या-गामी था ॥ ३० ॥ इस प्रकार कुछ समयतक मैं बड़ोंके वचनका अनादर करते हुये रहा । बन्धुओंने हमारा त्याग कर दिया । इसलिये दुःखी होकर मैं वनको चला आया ॥ ३१ ॥ मैं नित्य जानवरोंका मांस खाता और लोगोंका मार्ग रोकनेवाला था । अकेला बहुत दुःख भोगता हुआ निर्जन वनमें रहने लगा ॥ ३२ ॥ एक समय भूखा निद्रालु और प्यासा होकर मैंने निर्जन वनमें संयोगवश वसिष्ठके आश्रमको देखा ॥ ३३ ॥ उसके समीप ही बड़ा सरोवर था । वहाँ हँस, और कारण्डव आदि पक्षि बहुत थे । मुनियों-ने उसे वनपुष्पोंसे सजाया था ॥ ३४ ॥ मैंने उसके तटपर पानी पीया और मेरा श्रम दूर हुआ वृक्षोंकी जड़ उखाड़कर मैंने अपनी क्षुधा दूर की ॥ ३५ ॥ वसिष्ठके आश्रममें वहीं मैंने निवास किया । टूटी हुई स्फटिक शिलाओंका एक स्थान मैंने बैठनेके लिये बनाया । पत्तों, तृणों और काष्ठ खंडोंसे मैंने वहाँ झोपड़ी बनायी ॥ ३६ ॥ वहाँ मैं व्याधाका जीवन व्यतीत करने लगा । मैं नाना प्रकारके जानवरोंको मारता था । इस प्रकार जीवन निर्वाह करते हुये मुझे बीस वर्ष बीत गये ॥ ३७ ॥ तब विन्ध्यदेशमें उत्पन्न होनेवाली

बन्धुवर्गैः परित्यक्ता दुःखिता जीर्णविग्रहा । ब्रह्मन्क्षुत्तृट्परिश्रान्ता शोचन्ती सुक्रियां क्रियाम् ॥३९॥
दैवयोगात्समायाता भ्रमन्ती विजने वने । मासि ग्रीष्मे च तापार्ता ह्यन्तस्तापप्रपीडिता ॥४०॥
इमां दुःखवतीं दृष्ट्वा जाता मे विपुला घृणा । मया दत्तं जलं चास्यै मांसं वन्यफलं तथा ॥४१॥
गतश्रमा च तुष्टा सा मया ब्रह्मन्यथातथम् । न्यवेदयत्स्वकर्माणि शृणु तानि महामुने ॥४२॥
इयं काली तु नाम्नैव निषादकुलसंभवा । दाविकस्य सुता विद्धन्न्यवसद्विन्ध्यपर्वते ॥४३॥
परस्वहारिणी नित्यं सदा पैशून्यवादिनी । बन्धुवर्गैः परित्यक्ता येतो हतवती पतिम् ॥४४॥
कान्तारे विजने ब्रह्मन्मत्समीपमुपागता । इत्येवं स्वकृतं कर्म सा च मह्यं न्यवेदयत् ॥४५॥
वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये अहं चेयं च वै मुने । दम्पतीभावमाश्रित्य स्थितौ मांसाशनौ सदा ॥४६॥
उच्छिष्टार्थं गतौ चैव वसिष्ठस्याश्रमे तदा । दृष्ट्वा तत्र समाजं वै देवर्षीणां च सत्रकम् ।
रामायणपरा विप्रा माघे दृष्टा दिनेदिने ॥४७॥
निराहारौ च विश्रान्तौ क्षुत्पिपासाप्रपीडितौ । यदृच्छया गतौ तत्र वसिष्ठस्याश्रमं प्रति ॥४८॥
रामायणकथां श्रोतुं नवाह्ना चैव भक्तितः । तत्काल एव पञ्चत्वमावयोरभवन्मुने ॥४९॥
कर्मणा तेन हृष्टात्मा भगवान्मधुसूदनः । स्वदूतान्प्रेषयामास मदाहरणकारणात् ॥५०॥
आरोप्यावां विमाने तु अयुश्च परमं पदम् । आवां समीपमापन्नौ देवदेवस्य चक्रिणः ॥५१॥

यह सती वहाँ आई । निपाद कुलमें इसका जन्म हुआ था और 'काली' इसका नाम था ॥ ३८ ॥ बन्धुओंने इसका त्याग कर दिया था । वह दुःखी थी और दुर्बल थी । भूख और प्याससे पीड़ित थी और भले-बुरेका विचार कर रही थी ॥ ३९ ॥ दैवयोगसे निर्जनवनमें घूमती हुई वह वहाँ आई । ग्रीष्मकालमें वह घामसे दुःखी थी और मानसिक दुःखसे पीड़ित थी ॥ ४० ॥ इसको दुःखित देखकर मुझे बहुत दया आई । मैंने उसे जल, मांस और जंगली फल दिये ॥ ४१ ॥ इसका श्रम दूर हुआ । और संतुष्ट हुई । इसने हे मुने, हमसे अपने सब कर्मोंको ठीक-ठीक कह डाला । उन्हें आप सुनिये ॥ ४२ ॥ केवट कुलमें इसका जन्म हुआ था और नामसे ही 'काली' थी । दाविककी लड़की थी और विन्ध्यपर्वतपर रहती थी ॥ ४३ ॥ दूसरेका धन चुरानेवाली थी और सदा कठोरवचन बोलती थी । बन्धुओंने इसका त्यागकर दिया । क्योंकि इसने अपने पतिकी हत्या की थी ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! निर्जन वनमें यह मेरे समीप आई और अपने किये कर्मोंको इसने हमसे कहा ॥ ४५ ॥ हे मुने ! वसिष्ठके पवित्र आश्रममें यह और मैं दोनों पति-पत्निकी तरह रहने लगे । हमलोग सदा मांस भोजन करते थे ॥ ४६ ॥ हम दोनों इसके अनन्तर वसिष्ठके आश्रममें जूठा लेनेके लिये गये । वहाँ हम लोगोंने देवर्षियोंका समूह देखा । वे लोग माघ मासमें प्रतिदिन रामकथामें लगे हुये दिखाई पड़े ॥ ४७ ॥ भूखे, थके क्षुधा और प्याससे पीड़ित हम दोनों, वसिष्ठके आश्रममें नवदिन भक्तिपूर्वक रामायणकी कथा सुननेके लिये जाने लगे । उसी समय हम लोगोंकी मृत्यु हो गयी ॥४८, ४९॥ उस कर्मसे भगवान मधुसूदन प्रसन्न हो गये । हम लोगोंको लेनेके लिये उन्होंने अपने दूतोंको भेजा ॥ ५० ॥ हम दोनोंको विमानमें बैठाकर वे वैकुन्ठको ले गये । हम लोगोंको देव-देव चक्रधारी विष्णुका सामीप्य प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ जितने समयतक हम दोनोंने उत्तम भोगोंको भोगा वह

भुक्तवन्तौ महाभोगान्यावत्कालं शृणुष्व मे। युगकोटिसहस्राणि युगकोटिशतानि च ॥५२॥
उषित्वा रामभवने ब्रह्मलोकमुपागतौ। तावत्कालं च तत्रापि स्थित्वेशपदमागतौ ॥५३॥
तत्रापि तावत्कालं च भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्। ततः पृथ्वीशतां प्राप्तौ क्रमेण मुनिसत्तम ॥५४॥
अत्रापि संपदतुला रामायणप्रसादतः। अनिच्छया कृतेनापि प्राप्तमेवंविधं मुने ॥५५॥
नवाह्ना किल श्रोतव्यं रामायणकथामृतम्। भक्तिभावेन धर्मात्मञ्जन्ममृत्युजरापहम् ॥५६॥
अवशेनापि यत्कर्म कृतं तु सुमहाफलम्। ददाति नृणां विप्रेन्द्र रामायणप्रसादतः ॥५७॥
नारद उवाच—
एतत्सर्वं निशम्यासौ विभाण्डकमुनीश्वरः। अभिवन्द्य महीपालं प्रययौ स्वं तपोवनम् ॥५८॥
तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्रा देवदेवस्य चक्रिणः। रामायणकथा चैषा कामधेनूपमा स्मृता ॥५९॥
माघे मासे सिते पक्षे रामाख्यानं प्रयत्नतः। नवाह्ना किल श्रोतव्यं सर्वधर्मफलप्रदम् ॥६०॥
य इदं पुण्यमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम्। वाचयेच्छृणुयाद्वापि रामे भक्तः स जायते ॥६१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४

नारद उवाच—
अन्यमासे प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिताः। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चैव योषिताम्। समस्तकामफलदं सर्वव्रतफलप्रदम् ॥ २ ॥

सुनिये। करोड़ों युगतक रामलोकमें निवास करके ब्रह्मलोकमें गये। उतने ही समयतक वहाँ भी निवास करके शिवलोकको गये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ वहाँ भी उतने ही समयतक निवास कर एवं उत्तम भोगोंको भोग करके क्रमसे पृथवीमें राजा हुये ॥ ५४ ॥ यहाँ भी रामायणके प्रसादसे अनिच्छासे भी किये कर्मके प्रभावसे अतुल संपत्ति प्राप्त हुई ॥ ५५ ॥ रामायण कथा-मृतको भक्ति पूर्वक नवदिन अवश्य सुनना चाहिये। हे धर्मात्मन्! यह कथा जन्म, मरण और जराका नाश करनेवाली है ॥ ५६ ॥ विवश होकर भी रामकथा सुननेसे, रामायणके प्रसादसे महाफलकी प्राप्ति होती है ॥ ५७ ॥

नारद बोले—यह सब सुनकर विभांडक मुनिने राजाको प्रणाम किया और अपने तपोवनको चले गये ॥ ५८ ॥ इसलिये, हे विप्रवरो! देव-देव चक्रधारी भगवानकी कथाको सुनो! यह रामायण कथा कामधेनुके समान कही गई है। माघ मासमें शुक्ल पक्षमें रामकथा प्रयत्न पूर्वक नवदिन सुननी चाहिये। यह समस्त धर्मोंके फलको देनेवाली है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ जो सब पापोंका नाश करनेवाले इस पवित्र कथाको सुनते हैं या कहते हैं, उनकी राममें भक्ति होती है ॥ ६१ ॥

नारद बोले—दूसरे महीनेका महात्म्य कहता हूँ, सावधान होकर सुनें। यह सब पापोंको हरनेवाला पवित्र और दुःखोंको दूर करनेवाला है ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य शूद्र और स्त्रियोंकी समस्त

दुःस्वप्ननाशनं धन्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । रामायणस्य माहात्म्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥ ३ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥
विन्ध्याटव्यामभूदेकः कलिको नाम लुब्धकः । परदारपरद्रव्यहरणे संगतं रतः ॥ ५ ॥
परनिन्दापरो नित्यं जन्तुपीडाकरस्तथा । हतवान्ब्राह्मणान्गाश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
देवस्वहरणे नित्यं परस्वहरणे तथा ॥ ६ ॥
तेन पापान्यनेकानि कृतानि सुमहान्ति च । न तेषां शक्यते वक्तुं संख्या वत्सरकोटिभिः ॥ ७ ॥
स कदाचिन्महापापो जन्तूनामन्तकोपमः । सौवीरनगरं प्राप्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ ८ ॥
योषिद्भिर्भूषिताभिश्च सरोभिर्विमलोदकैः । अलंकृतं विपणिभिर्ययौ देवपुरोपमम् ॥ ९ ॥
तस्योपवनमध्यस्थं रम्यं केशवमन्दिरम् । छादितं हेमकलशैर्दृष्ट्वा व्याधो मुदं ययौ ॥१०॥
हीरमुक्तासुवर्णानि बहूनीति विनिश्चितः । जगाम रामभवनं वित्ताशश्चौर्यलोलुपः ॥११॥
तत्रापश्यद्द्विजवरं शान्तं तत्त्वार्थकोविदम् । परिचर्यापरं विष्णोरुत्तङ्कं तपसां निधिम् ॥१२॥
एकाकिनं दयालुं च निस्पृहं ध्यानलोलुपम् । दृष्ट्वामौ लुब्धको मेने तं चौर्यस्यान्तरायिणम् ॥१३॥
देवस्य द्रव्यजातं तु समादातुमना निशि । उत्तङ्कं हन्तुमारेभे विधृतासिर्मदोद्धतः ॥१४॥
पादेनाक्रम्य तद्वक्षो जटाः संगृह्य पाणिना । हन्तुं कृतमतिं व्याधमुत्तङ्कः प्रेक्ष्य चाब्रवीत् ॥१५॥

कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और सब व्रतोंके फलको देनेवाला है ॥ २ ॥ दुःस्वप्नका नाश करनेवाला, उत्तम भोग और मोक्षका देनेवाला है । इस रामायण महात्म्यको यत्नपूर्वक सुनना चाहिये ॥ ३ ॥ यहाँ उदाहरणमें पुराना इतिहास कहते हैं । जो पढ़ने और सुननेवालोंका सब पाप दूर करनेवाला है ॥ ४ ॥ विन्ध्य वनमें कलिक नामका एक व्याध रहता था । वह सदा दूसरोंकी स्त्री और द्रव्यका अपहरण करता था ॥ ५ ॥ सदा दूसरोंकी निन्दा करता था और जीवोंको दुःख देता था । सैकड़ों, हजारों ब्राह्मणों और गौओंकी उसने हत्या की थी । प्रतिदिन देवधन और पराये धनका अपहरण करता था ॥ ६ ॥ उसने अनेक बड़े-बड़े पाप किये थे । उनकी संख्या करोड़ों वर्षमें भी नहीं कही जा सकती ॥ ७ ॥ किसी समय प्राणियों का यमराजरूप वह महापापी सौवीर नगरमें पहुँचा जो सब ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण था ॥ ८ ॥ वहाँ भूषणयुक्त स्त्रियाँ थीं । निर्मल जलवाले सरोवर थे । बाजारोंसे वह नगर सुशोभित था । और देवलोकके समान वह सुन्दर था । वहाँ वह गया ॥ ९ ॥ वहाँ उसने उपवनके बीच सुन्दर विष्णु-मंदिरको देखा । स्वर्ण कलसोंसे ढँके हुये उसको देखकर वह व्याध प्रसन्न हुआ ॥ १० ॥ हीरा, मोती और सोना यहाँ बहुत है ऐसा उसने निश्चित किया । धनकी लालसासे चोरी करनेकी इच्छासे वह विष्णु-मंदिरमें गया ॥ ११ ॥ वहाँ उसने शांत, ज्ञानी, विष्णुकी सेवामें लगे हुये तपस्वी उत्तंक नाम ब्राह्मणको देखा ॥ १२ ॥ अकेले रहनेवाले दयालु निरीह और ध्यान परायण ब्राह्मणको देखकर व्याधने उसे चोरी करनेमें बाधा समझी ॥ १३ ॥ रातके समय देवधनका अपहरण करनेके लिये वह मदान्ध व्याधने खड्ग लेकर ब्राह्मणको मारने चला ॥ १४ ॥ उसके छातीपर पैर रखकर और हाथसे उसकी जटा पकड़कर उसने ब्राह्मणको मारनेका निश्चय किया उसको देखकर उत्तंक बोला ॥ १५ ॥ अरे, अरे, भले मानस ! तुम वृथा मुझ निरपराधको मारने

उत्तङ्क उवाच—

भो भोः साधो वृथा मां त्वं हनिष्यसि निरागसम्। मया किमपराद्धं ते तद्वद त्वं च लुब्धक ॥१६॥
कृतापराधिनो लोके हिंसां कुर्वन्ति यत्नतः। न हिंसन्ति वृथा सौम्य सज्जना अप्यपापिनम् ॥१७॥
विरोधिष्वपि मूर्खेषु निरीक्ष्यावस्थितान्गुणान्। विरोधं नाधिगच्छन्ति सज्जनाः शान्तचेतसः ॥१८॥
बहुधा बाध्यमानोऽपि यो नरः क्षमयान्वितः। तमुत्तमं नरं प्राहुर्विष्णोः प्रियतरं तथा ॥१९॥
अहो विधिर्वै बलवान्बाधते बहुधा जनान्। तत्रापि साधून्बाधन्ते लोके वै दुर्जना जनाः ॥२०॥
अहो बलवती माया मोहयत्यखिलं जगत्। पुत्रमित्रकलत्राद्यैः सर्वदुःखेन योज्यते ॥२१॥
परद्रव्यापहारेण कलत्रं पोषितं च तत्। अन्ते तत्सर्वमुत्सृज्य एक एव प्रयाति वै ॥२२॥
मम माता मम पिता मम भार्या ममात्मजाः। ममेदमिति जन्तूनां ममता बाधते वृथा ॥२३॥
यावदर्जयति द्रव्यं तावदेव हि बान्धवाः। धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र च नापरः ॥२४॥
अर्जितं तु धनं सर्वं भुञ्जते बान्धवाः सदा। सर्वेष्वेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते ॥२५॥
इति ब्रुवाणं तमृषिं विमृश्य भयविह्वलः। कलिकः प्राञ्जलिः प्राह क्षमस्वेति पुनःपुनः ॥२६॥
तत्सङ्गस्य प्रभावेन हरिसंनिधिमात्रतः। गतपापो लुब्धकश्च सानुतापोऽभवद्ध्रुवम् ॥२७॥
मया कृतानि कर्माणि महान्ति सुबहूनि च। तानि सर्वाणि नष्टानि विप्रेन्द्र तव दर्शनात् ॥२८॥
अहं वै पापकृन्नित्यं महापापं समाचरम्। कथं मे निष्कृतिर्भूयात्कं यामि शरणं विभो ॥२९॥

चले हो। हे व्याध! कहो मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है। संसारमें लोग अपराधीकी ही हिंसा करते हैं। सज्जन लोग निरअपराधकी वृथा हिंसा नहीं करते ॥ १६,१७ शांतचित्त सज्जन, विरोधी मूर्खमें भी गुणोंको देखकर विरोध नहीं करते ॥ १८ ॥ जो मनुष्य प्रायः दूसरोंके वचनको सहता हुआ क्षमाशील रहता है, वह उत्तम कहलाता है और भगवानका प्रिय होता है ॥ १९ ॥ अहो! दैव बड़ा बलवान है वह मनुष्योंको बहुत पीड़ा देता है। तिसपर भी दुष्टलोग सज्जनोंको और भी सताते हैं ॥ २० ॥ अहो! माया बड़ी बलवती है, जो समस्त संसारका मोहन करती है। पुत्र, मित्र, स्त्री आदि सब दुःखोंसे भेट कराती है ॥ २१ ॥ प्राणीपर धनका अपहरण करके स्त्रीका पोषण करता है, अन्तमें सब छोड़कर अकेला ही चला जाता है ॥२२॥ यह मेरी माता है, यह पिता है, यह स्त्री है और यह मेरा पुत्र है यह मेरा है—ऐसी ममता प्राणियोंको वृथा सताती है ॥ २३ ॥ जबतक प्राणी, धन कमाता है, तभीतक उसके बाँधव रहते हैं। धर्म और अधर्म तो इहलोक और परलोकमें भी संग रहते हैं ॥ २४ ॥ कमाये हुये धनका भोग तो सभी बाँधव सदा करते हैं। किन्तु पापका फल तो मूर्ख अकेला ही भोगता है ॥२५॥ ऐसा कहते हुये उस ऋषिको डरकर कलिकने छोड़ दिया और हाथ जोड़कर "क्षमा करिये" यह बार-बार कहा ॥ २६ ॥ ब्राह्मणके सत्संगसे और हरिके समीप आनेसे ही उस व्याधके पाप दूर हो गये। और वह पश्चात्ताप करने लगा ॥ २७ ॥ व्याध बोला—मैंने बहुत बड़े-बड़े और बहुतसे पाप किये हैं। हे विप्रेन्द्र! आपके दर्शनसे वे सब नष्ट हो गये ॥ २८ ॥ मैं नित्य पाप करनेवाला था। घोर पाप करता था। मेरी मुक्ति कैसे होगी। मैं किसकी शरणमें जाऊँ ॥ २९ ॥ पूर्वजन्ममें किये हुये पापोंके कारण मैं व्याध हुआ।

पूर्वजन्मार्जितैः पापैर्लुब्धकत्वमवाप्तवम् । अत्रापि पापजालानि कृत्वा कां गतिमाप्नुयाम् ॥३०॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य कलिकस्य महात्मनः । उत्तङ्को नाम विप्रर्षिर्वाक्यं चेदमथाब्रवीत् ॥३१॥
उत्तङ्क उवाच—
साधु साधु महाप्राज्ञ मतिस्ते विमलोज्ज्वला । यस्मात्संसारदुःखानां नाशोपायमभीप्ससि ॥३२॥
चैत्रे मासे सिते पक्षे कथा रामायणस्य च । नवाह्ना किल श्रोतव्या भक्तिभावेन सादरम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३॥
तस्मिन्क्षणे कलिकोऽसौ लुब्धको वीतकल्मषः । रामायणकथां श्रुत्वा सद्यः पञ्चत्वमागतः ॥३४॥
उत्तङ्कः पतितं वीक्ष्य लुब्धकं तं दयापरः । एतद्दृष्ट्वा विस्मितश्च अस्तौषीत्कमलापतिम् ॥३५॥
कथां रामायणस्यापि श्रुत्वासौ वीतकल्मषः । दिव्यं विमानमारुह्य मुनिमेतदथाब्रवीत् ॥३६॥
कलिक उवाच—
उत्तङ्क मुनिशार्दूल गुरुस्त्वं मम सुव्रत । विमुक्तस्त्वत्प्रसादेन महापातकसंकटात् ॥३७॥
ज्ञानं त्वदुपदेशान्मे संजातं मुनिसत्तम । तेन मे पापजालानि विनष्टान्यतिवेगतः ॥३८॥
रामायणकथां श्रुत्वा मम त्वं मुक्तवान्मुने । प्रापितोऽस्मि त्वया यस्मात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥३९॥
त्वयाहं कृतकृत्योऽस्मि गुरुणा करुणात्मना । तस्मान्नतोऽस्मि ते विद्वन्यत्कृतं तत्क्षमस्व मे ॥४०॥
इत्युक्त्वा देवकुसुमैर्मुनिश्रेष्ठमवाकिरत् । प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा नमस्कारं चकार सः ॥४१॥
ततो विमानमारुह्य सर्वकामसमन्वितम् । अप्सरोगणसंकीर्णो प्रपेदे हरिमन्दिरम् ॥४२॥

यहाँ भी अनेक पाप किये । मेरी क्या गति होगी ॥ ३० ॥ शुद्धमति कलिकके ऐसे वचन सुनकर ब्रह्मर्षि उत्तंक यह बोले—हे महात्मन् धन्य हो ! धन्य हो । तुम्हारी मति निर्मल और उज्ज्वल है । क्योंकि तुम संसारमें दुःखोंके नाशका उपाय चाहते हो ॥ ३२ ॥ चैतमासके शुक्लपक्षमें भक्तिसे आदरपूर्वक नवदिन रामायणकथा सुननी चाहिये । जिसके श्रवणमात्रसे ही प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३३ ॥ उसी क्षण वह कलिक व्याध रामायणकी कथा सुनकर पापरहित हो गया । और उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी ॥ ३४ ॥ व्याधको गिरा-हुआ देखकर उत्तंकको दया आई । यह दृश्य देखकर वह विस्मित हुआ और भगवानकी स्तुति करने लगा ॥ ३५ ॥ रामायणकी कथा सुनकर व्याध पाप रहित हुआ । दिव्य-विमान-पर चढ़कर वह मुनिसे बोला—हे मुनिवर उत्तंक ! हे सुव्रत ! आप मेरे गुरु हैं । आपके प्रसादसे मैं महापापके संकटसे छूट गया ॥ ३६, ३७ ॥ आपके उपदेशसे हे मुनिवर ! मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ । उससे मेरे पापजाल शीघ्र ही नष्ट हो गये ॥ ३८ ॥ हे मुनि ! रामायणकथा सुनाकर आपने मुझे मुक्त किया । क्योंकि आपने मुझे विष्णुलोककी प्राप्ति कराई ॥ ३९ ॥ आपके ऐसे दयालु गुरुके प्रसादसे मैं कृत-कृत्य हुआ । हे विद्व ! मैं इसलिये आपको नमस्कार करता हूँ । जो कुछ मैंने किया वह क्षमा करें ॥ ४० ॥ ऐसा कहकर उसने मुनिके ऊपर देवपुष्पोंकी वर्षा की । तीन बार प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर विमानपर चढ़कर समस्त भोगोंसे युक्त होकर, अप्सराओंसे घिरा हुआ विष्णुलोकको चला गया ॥ ४२ ॥ हे द्विजवरो ! इसलिये रामायणकी कथाको सुनो । चैतमासके शुक्ल पक्षमें प्रयत्नपूर्वक नवदिन

तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्राः कथां रामायणस्य च । चैत्रे मासे सिते पक्षे श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥४३॥
नवाह्ना किल रामस्य रामायणकथामृतम् ॥४४॥
तस्मादृतुषु सर्वेषु हितकृद्धरिपूजकः । ईप्सितं मनसा यद्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥४५॥
सनत्कुमार यत्पृष्टं तत्सर्वं गदितं मया । रामायणस्य माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४६॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५

सूत उवाच—
रामायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतो मुनीश्वरः । सनत्कुमारः पप्रच्छ नारदं मुनिसत्तमम् ॥ १ ॥
सनत्कुमार उवाच—
रामायणस्य माहात्म्यं कथितं वो मुनीश्वराः । इदानीं श्रोतुमिच्छामि विधिं रामायणस्य च ॥ २ ॥
एतदपि महाभाग मुने तत्त्वार्थकोविद । कृपया परयाविष्टो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥
नारद उवाच—
रामायणविधिं चैव शृणुध्वं सुसमाहिताः । सर्वलोकेषु विख्यातं स्वर्गमोक्षविवर्धनम् ॥ ४ ॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुध्वं गदितं मया । रामायणकथां कुर्वं भक्तिभावेन भावितः ॥ ५ ॥
येन चीर्णेन पापानां कोटिकोटिः प्रणश्यति । चैत्रे माघे कार्तिके च पञ्चम्यामपि चारभेत् ॥ ६ ॥
संकल्पं तु ततः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । नवस्वहःसु श्रोतव्यं रामायणकथामृतम्॥ ७ ॥
अद्यप्रभृत्यहं राम शृणोमि त्वत्कथामृतम् । प्रत्यहं पूर्णतामेतु तव राम प्रसादतः ॥ ८ ॥

इस रामायण कथामृतको सुनना चाहिये ॥ ४३, ४४ ॥ इसलिये यह सभी ऋतुओंमें हितकारी है। हरिपूजन करनेवाला अवश्य ही जो-जो चाहता है सो-सो पाता है ॥ ४५ ॥ हे सनत्कुमार! जो आपने पूछा, वह सब रामायणका महात्म्य मैंने कहा और क्या सुनना चाहते हो ॥ ४६ ॥

स्कन्दपुराणके उत्तरखण्डान्तरगत नारद सनत्कुमार-संवाद विषयक रामायण महात्म्यका चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

सूतजी बोले—रामायणके महात्म्यको सुनकर सनत्कुमार मुनि प्रसन्न हुये। और नारदसे पूछा ॥ १ ॥ आपने हम मुनियोंसे रामायण महात्म्य कहा। अब रामायणकी विधि सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ तत्वार्थको जाननेवाले हे मुने आप, परम कृपा करके यह भी ठीक-ठीक कहें ॥ ३ ॥ नारद बोले—रामायणकी विधि सावधान होकर सुनें सब लोकों में प्रसिद्ध है। स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है ॥ ४ ॥ उसका विधान कहता हूँ, आपलोग सुनें। रामायणकथा भक्तिपूर्वक करनी चाहिये ॥ ५ ॥ इसके कीर्तनसे पापोंकी कोटियाँ नष्ट हो जाती हैं। चैतमें, माघमें और कार्तिकमें पंचमीको आरम्भ करे ॥ ६ ॥ प्रथम स्वस्तिवाचनपूर्वक संकल्प करे कि नवदिन रामायणकी कथा सुननी है ॥ ७ ॥ आजसे प्रतिदिन हे राम, मैं आपकी कथा सुनूँगा। वह आपके प्रसादसे पूर्ण हो

प्रत्यहं दन्तसंशुद्धिं ह्यपामार्गस्य शाखया । कृत्वा स्नायीत विधिवद्रामभक्तिपरायणः ।
स्वयं च बन्धुभिः सार्धं शृणुयात्प्रयतेन्द्रियः ॥ ९ ॥
स्नानं कृत्वा यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम् । शुक्लाम्बरधरः शुद्धो गृहमागत्य वाग्यतः ॥१०॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य स्मरन्नारायणं प्रभुम् । नित्यदेवार्चनं कृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम् ॥११॥
रामायणपुस्तकं च अर्चयेद्भक्तिभावतः । आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्व्रती ॥१२॥
नमो नारायणायेति पूजयेद्भक्तितत्परः । एकवारं द्विवारं च त्रिवारं वापि शक्तितः ।
होमं कुर्यात्प्रयत्नेन सर्वपापनिवृत्तये ॥१३॥
एवं यः प्रयतः कुर्याद्रामायणविधिं तथा । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१४॥
रामायणव्रतधरो धर्मकारी च सत्तमः । चाण्डालान्पतितांश्चैव वाङ्मात्रेणापि नालपेत् ॥१५॥
नास्तिकान्भिन्नमर्यादान्निन्दकान्पिशुनांस्तथा । रामायणव्रतधरो वाङ्मात्रेणापि नालपेत् ॥१६॥
कुण्डाशिनं तापकं च तथा देवलकाशिनम् । भिषजं काव्यकर्तारं देवद्विजविरोधिनम् ॥१७॥
परान्नलोलुपं चैव परस्त्रीनिरतं तथा । रामायणव्रतधरो वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥१८॥
इत्येवमादिभिः शुद्धो वसन्सर्वहिते रतः । रामायणपरो भूत्वा परां सिद्धिं गमिष्यति ॥१९॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः । नास्ति विष्णुसमो देवो नास्ति रामायणात्परम् ॥२०॥
नास्ति वेदसमं शास्त्रं नास्ति शान्तिसमं सुखम् । नास्ति सूर्यसमं ज्योतिर्नास्ति रामायणात्परम् ॥२१॥

॥ ८ ॥ प्रतिदिन अपामार्ग (चिचिड़ा) की शाखासे दतुअन करना चाहिये । तत्पश्चात् रामभक्तिपूर्वक विधिवत् स्नान करना चाहिये । बन्धुओंके सहित सावधान होकर कथा श्रवण करना चाहिये ॥ ९ ॥ दतुअन करके श्वेतवस्त्र धारणकर पवित्र होकर मौनपूर्वक घर आवे । पैरोंको धोकर आचमन करके नारायणका स्मरण करता हुआ प्रतिदिनका देवपूजा करे । तत्पश्चात् संकल्पपूर्वक भक्तिसे रामायणकी पुस्तककी पूजा करे । आवाहन और आसनादिसे तथा गंधपुष्पादिद्रव्योंसे 'नमोनारायणाय' ऐसा कहकर भक्तिपूर्वक पूजा करे । यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक सब पापोंके नाशके लिये एक, दो अथवा तीन बार हवन करे ॥ १०, ११, १२, १३ ॥ इस प्रकार जो यत्नपूर्वक रामायण विधि करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और फिर संसारमें नहीं आता ॥ १४ ॥ रामायण व्रतका करनेवाला धर्मात्मा और पवित्र प्राणी चंडालों और पतितोंसे तनिक भी भाषण न करे ॥ १५ ॥ नास्तिकोंसे, नाचोंसे निन्दकोंसे और दुष्टोंसे रामायणका व्रत करनेवाला तनिक भी न बोले । जारजका धन खानेवालेसे दूसरोंको पीड़ा देनेवाले से, मन्दिरमें की वस्तु खानेवालेसे, वैद्यसे, कविसे, देव-ब्राह्मण विरोधीसे, परान्न सेवन करनेवालेसे, पर स्त्री गमन करनेवालेसे, रामायण व्रतधारी तनिक भी भाषण न करे ॥१७,१८॥ इस प्रकार आरम्भसे ही पवित्र रहकर सबका हित करता हुआ रामायण व्रत करनेवाला परम सिद्धिको प्राप्त करता है ॥ ९ ॥ गंगाके समान तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, विष्णुके समान कोई देव नहीं है एवं रामायणसे बढ़कर और कुछ नहीं ॥ २० ॥ वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है, शान्तिके समान कोई सुख नहीं है, सूर्यके समान कोई ज्योति नहीं है और रामायणसे बढ़कर कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ क्षमाके समान कोई सार नहीं है कीर्तिके समान

नास्ति क्षमासमं सारं नास्ति कीर्तिसमं धनम् । नास्ति ज्ञानसमो लाभो नास्ति रामायणात्परम् ॥२२॥
तदन्ते वेदविदुषे दद्याच्च सह दक्षिणाम् । रामायणपुस्तकं च वस्त्राण्याभरणानि च ॥२३॥
रामायणपुस्तकं यो वाचकाय प्रदापयेत् । स याति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचते ॥२४॥
नवाहानि फलं कर्तुः शृणु धर्मविदां वर ॥२५॥
पञ्चम्यहनि चारभ्य रामायणकथामृतम् । कथाश्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२६॥
यदि द्वयं कृतं तस्य पुण्डरीकफलं लभेत् । व्रतधारी तु सततं यः कुर्यात्स जितेन्द्रियः ॥२७॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य द्विगुणं फलमश्नुते । चतुःकृत्वः कृतं येन परार्कं मुनिसत्तमाः ।
स लभेत्परमं पुण्यमग्निष्टोमाष्टसंभवम् ॥२८॥
पञ्चकृत्वो व्रतमिदं कृतं येन महात्मना । अत्यग्निष्टोमजं पुण्यं द्विगुणं प्राप्नुयान्नरः ॥२९॥
एवं व्रतं च षट्कृत्वः कुर्याद्यस्तु समाहितः । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत् ॥३०॥
व्रतधारी तु धर्मात्मा सप्तकृत्वस्तथा लभेत् । अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत् ॥३१॥
नारी वा पुरुषः कुर्यादष्टकृत्वो मुनीश्वराः । अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं पञ्चगुणं लभेत् ॥३२॥
नरो रामपरो वापि नवरात्रं समाचरेत् । गोमेधयज्ञजं पुण्यं स लभेत्त्रिगुणं नरः ॥३३॥
रामायणं तु यः कुर्याच्छान्तात्मा नियतेन्द्रियः । स याति परमानन्दं यत्र गत्वा न शोचति ॥३४॥
रामायणपरा नित्यं गङ्गास्नानपरायणाः । धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एव न संशयः ॥३५॥

कोई धर्म नहीं है, ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं है और रामायणसे बढ़कर कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ व्रतके अन्तमें व्यासको वस्त्र, भूषण, और दक्षिणासहित रामायण-पुस्तक देवे ॥ २३ ॥ जो रामायणकी पुस्तक व्यासको देता है वह विष्णुलोकको जाता है वहाँ जाकर सुखी हो जाता है ॥ २४ ॥ नवदिन व्रत करनेवालेको जो फल होता है उसे हे धर्मात्मन् सुनो ! ॥२५॥ पंचमीको रामायण कथा आरंभ करनेसे कथाश्रवण मात्रसे सब पापोंसे छूट जाता है । २६॥ यदि दो बार यह व्रत किया जाय तो दो अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है । व्रत करनेवाला जितेन्द्रिय होकर यदि इस व्रतको करता तो दो अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है हे मुनिश्रेष्ठ ! जो चार व्रत करता है उसे आठ अग्निष्टोम यज्ञोंका फल मिलता ॥ २७,२८ ॥ जो पुण्यात्मा पाँच बार यह व्रत करता है उसे सोलह अग्निष्टोम यज्ञोंका फल मिलता है ॥ २९ ॥ जो सावधान होकर छ बार यह व्रत करता उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल अठगुणा होकर मिलता है ॥३०॥ जो व्रतधारी पुण्यात्मा सात बार यह व्रत करता है उसे अश्वमेध यज्ञका और भी अठगुणाफल मिलता है ॥ ३१ ॥ हे मुने ! आठ बार जो स्त्री अथवा पुरुष इस व्रतको करता है उसे अश्वमेध यज्ञका फल और भी पचगुना होकर मिलता है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य रामकी परम भक्ति करता हुआ नवदिन तक इस व्रतको करता है उसे तीन गोमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ शांतचित् और जितेन्द्रिय होकर जो रामायणका पारायण करता है वह परमानन्दको प्राप्त होता है । जहाँ उसे दुःख नहीं होता ॥ ३४ ॥ रामायणका कीर्तन करनेवाले, सदैव गंगा-स्नान करनेवाले और धर्म मार्गका उपदेश करनेवाले मुक्त हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ ३५ ॥ सन्यासियोंका, ब्रह्मचारियोंका और

यतीनां ब्रह्मचारिणामवीरीणां च सत्तमाः । नवम्यहनि श्रोतव्या कथा रामायणस्य च ॥३६॥
श्रुत्वा नरो रामकथामतिदीप्तोऽतिभक्तितः । ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्रैव परिमुच्यते ॥३७॥
श्राव्याणां परमं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम् । दुःस्वप्ननाशनं धन्यं श्रोतव्यं यत्नतस्ततः ॥३८॥
नरोऽत्र श्रद्धया युक्तः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा । पठते मुच्यते सद्यो ह्युपपातककोटिभिः ॥३९॥
सतामेव प्रयोक्तव्यं गुह्याद्गुह्यतमं यतः । वाचयेद्रामभावेन पुण्यक्षेत्रे च संसदि ॥४०॥
ब्रह्मद्वेषरतानां च दम्भाचाररतात्मनाम् । लोकानां बकवृत्तीनां न ब्रूयादिदमुत्तमम् ॥४१॥
त्यक्तकामादिदोषाणां रामभक्तिरतात्मनाम् । गुरुभक्तिरतानां च वक्तव्यं मोक्षसाधनम् ॥४२॥
सर्वदेवमयो रामः स्मृतश्चार्तिप्रणाशनः । सद्भक्तवत्सलो देवो भक्त्या तुष्यति नान्यथा ॥४३॥
अवशेनापि यन्नाम्ना कीर्तितो वा स्मृतोऽपि वा । विमुक्तपातकः सोऽपि परमं पदमश्नुते ॥४४॥
संसारघोरकान्तारदावाग्निर्मधुसूदनः । स्मर्तॄणां सर्वपापानि नाशयत्याशु सत्तमः ॥४५॥
तदर्थकमिदं पुण्यं काव्यं तु श्राव्यमुत्तमम् । श्रवणात्पठनाद्वापि सर्वपापविनाशकृत् ॥४६॥
यस्यात्र सुरसे प्रीतिर्वर्तते भक्तिसंयुता । स एव कृतकृत्यश्च सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥४७॥
तदर्जितं तु तत्पुण्यं तत्सत्यं सफलं द्विजाः । यदर्थं श्रवणे प्रीतिरन्यथा नहि वर्तते ॥४८॥
रामायणपरा ये तु रामनामपरायणाः । त एव कृतकृत्याश्च घोरे कलियुगे द्विजाः ॥४९॥

परमहंसोंको नवमीके दिन रामायणकथा सुननी चाहिये ॥३६॥ परमभक्ति-पूर्वक रामायणकी कथा सुनकर तेजस्वी होकर मनुष्य ब्रह्मपदको पाता है और वहीं उसकी मुक्ति हो जाती है ॥ ३७ । सुनाने योग्य कथाओंमें यह सबसे उत्तम है । पवित्र वस्तुओंमें भी सर्वोत्तम है । दुःस्वप्नका नाश करनेवाली और पवित्र है । यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये । ३८ ॥ श्रद्धासे जो मनुष्य एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी पढ़ता है वह तुरन्त असंख्य क्षुद्र पापोंसे छूट जाता है ॥ ३९ ॥ यह सज्जनोंसे ही कहना चाहिये । क्योंकि यह परमगोपनीय है । पवित्र स्थानमें, सज्जनोंकी सभामें, भक्तिपूर्वक, रामकथा कहनी चाहिये ॥ ४० ॥ नारायणसे द्वेष रखनेवालों और पाखंडियोंसे तथा बगुलाभक्तोंसे यह उत्तम कथा न कहनी चाहिये ॥ ४१ ॥ कामादि दोषसे रहित रामके भक्तोंसे और गुरुभक्तोंसे इस मोक्षसाधनको कहना चाहिये ॥ ४२ ॥ राम सर्व देवमय हैं । स्मरण करनेसे दुःखका नाश करनेवाले हैं । भक्तोंपर प्रेम करनेवाले हैं । भगवान् भक्तिसे प्रसन्न होते हैं अन्य किसी प्रकारसे भी नहीं ॥ ४३ ॥ विवश होकरके भी जो भगवानके नामका कीर्तन अथवा स्मरण करता है वह पापरहित होकर परमपदको पाता है ॥ ४४ ॥ संसार घोर वन है, भगवान मधुसूदन दावाग्नि हैं । स्मरण करनेवालोंके सब पापोंको अतिशीघ्र नाश करते हैं । ४५॥ उनमें सम्बन्ध रखनेवाला यह पवित्र काव्य उत्तम और सुनाने योग्य है । सुननेसे अथवा पढ़नेसे भी सब पापोंका नाश कर देता है ॥ ४६ ॥ जिसकी सरल काव्यमें भक्तिपूर्वक प्रीति होती है वही कृत-कृत्य है और सर्व शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाला है ॥ ४७ ॥ जिस अर्थके श्रवण करनेमें प्रीति होती है वहां लाभ है, वहां पुण्य है, वहां सत्य है और वही फलप्रद है, अन्यथा नहीं ॥ ४८ ॥ जो रामायणके भक्त हैं और राम-नाममें लीन हैं, हे द्विजो, वेही घोर कलियुगमें कृत-कृत्य हैं ॥ ४९ ॥ जो रामायण

नवम्यहनि शृण्वन्ति रामायणकथामृतम् । ते कृतार्था महात्मानस्तेषां नित्यं नमो नमः ॥५०॥
रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम् । संसारविषयान्धानां नराणां पापकर्मणाम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥५१॥

सूत उवाच—

एवं सनत्कुमारस्तु नारदेन महात्मना । सम्यक्प्रबोधितः सद्यः परां निर्वृतिमापह ॥५२॥
तस्माच्छ्रुत्वा तु विप्रेन्द्रा रामायणकथामृतम् । प्रयाति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥५३॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते रामायणपरायणाः । समस्तपापनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमं पदम् ॥५४॥
तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्रा रामायणकथामृतम् । नवन्यहनि श्रोतव्यं सर्वपापप्रमोचकम् ॥५५॥
श्रुत्वा चैतन्महाकाव्यं वाचकं यस्तु पूजयेत् । तस्य विष्णुः प्रसन्नः स्याच्छ्रिया सह द्विजोत्तमाः ॥५६॥
वाचके प्रीतिमापन्ने ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । प्रीता भवन्ति विप्रेन्द्रा नात्र कार्या विचारणा ॥५७॥
रामायणवाचकस्य गावो वासांसि काञ्चनं । रामायणपुस्तकं च दद्याद्वित्तानुसारतः ॥५८॥
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ ॥५९॥
न बाधन्ते ग्रहास्तस्य भूतवेतालकादयः । तस्यैव सर्वश्रेयांसि वर्धन्ते चरिते श्रुते ॥६०॥
न चाग्निर्बाधते तस्य चौरादिर्न भयं तथा । कोटिजन्मार्जितैः पापैः सद्य एव विमुच्यते ।
सप्तवंशसमेतस्तु देहान्ते मोक्षमाप्नुयात ॥६१॥
इत्येतद्वः समाख्यातं नारदेन प्रभाषितम् । सनत्कुमारमुनये पृच्छते भक्तितः पुरा ॥६२॥

कथामृतको नवदिनतक सुनते हैं वे पुण्यात्मा कृतार्थ हैं। उनको नित्य नमस्कार है ॥५०॥ राम-नाम ही नाम है और नाम ही मेरा जीवन है। सांसारिक मोहमें अन्धे और पापी प्राणियोंके लिये कलियुगमें इसे छोड़कर और कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है! ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले—इस प्रकार नारदने सनत्कुमारको भली प्रकार उपदेश किया जिससे उन्हें परमशांति प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ हे द्विजवरो! इसलिये रामायण कथाको सुननेसे प्राणी परमपदको पाता है और जहाँसे पुनरागमन नहीं होता ॥ ५३ ॥ घोर कलियुगके आनेपर रामायणमें भक्ति करनेवाले समस्त पापोंसे मुक्त होकर परमपदको पावेंगे ॥ ५४ ॥ इसलिये हे द्विजवरो! समस्त पापोंको दूर करनेवाले रामायण कथामृतको नवदिन सुनना चाहिये ॥ ५५ ॥ इस महाकाव्यको सुनकर जो कथा वाचककी पूजा करता है। हे द्विजवरो! उसके ऊपर विष्णुभगवान लक्ष्मी सहित प्रसन्न होते हैं ॥ ५६ ॥ व्यासके प्रसन्न होनेसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी प्रसन्न होते हैं। हे द्विजवरो! इसमें किसी भी प्रकारका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५७ ॥ रामायणकथा कहनेवालेको अपने वित्तके अनुसार गौ, कपड़े और सुवर्ण सहित रामायण पुस्तक देनी चाहिये ॥ ५८ ॥ पुस्तकदान करनेवाले मनुष्यको जो पुण्य-फल होता है सो कहता हूँ सावधान होकर सुनो ॥ ५९ ॥ उसको ग्रह और भूत, वैतालादि नहीं सताते। कथा श्रवणसे उसके सर्व सुखोंकी वृद्धि होती है ॥ ६० ॥ उसे अग्नि नहीं सताती। चोर आदिका भय नहीं रहता। करोड़ों जन्मके पापोंसे वह अति शीघ्र छूट जाता है। मृत्यु होनेपर अपने सात कुलोंके सहित मोक्ष पाता है ॥६१॥ सनत्कुमार मुनिके भक्तिपूर्वक पूछनेपर नारदने

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसंमतम् । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम् ॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥६३॥
ये पठन्त्यत्र विबुधाः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा । न तेषां पापबन्धस्तु कदाचिदपि जायते ॥६४॥
रामार्पितमिदं पुण्यं काव्यं तु सर्वकामदम् । भक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति तेषां पुण्यफलं शृणु ॥६५॥
शतजन्मार्जितैः पापैः सद्य एव विमोचिताः । सहस्रकुलसंयुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम् ॥६६॥
किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा किं तपोभिः किमध्वरैः । अहन्यहनि रामस्य कीर्तनं परिशृण्वताम् ॥६७॥
चैत्रे माघे कार्तिके च रामायणकथामृतम् । नवम्यहनि श्रोतव्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६८॥
रामप्रसादजनकं रामभक्तिविवर्धनम् । सर्वपापक्षयकरं सर्वसंपद्विवर्धनम् ॥६९॥
यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वा सुसमाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्रामायणमाहात्म्ये नारदसनत्कुमारसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

॥ इदं स्कन्दोत्तरखण्डस्थश्रीमद्वाल्मीकिरामायणमाहात्म्यं समाप्तम् ॥
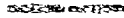
जो कथा कही वह मैंने आप लोगोंसे कहा ॥६२॥ रामायण आदिकाव्य है । सब वेदोंके अर्थके अनुकूल है । सब पापोंका हरनेवाला पवित्र, सब दुःखोंका नाश करनेवाला, समस्त पुण्यफलको देनेवाला और समस्त यज्ञोंके फलको देनेवाला है ॥ ६३ ॥ जो संसारमें एक श्लोक अथवा आधा श्लोकभी पढ़ते हैं वे पाप-बंधनमें कभी भी नहीं पड़ते ॥ ६४ ॥ रामको अर्पित करके जो लोग इस पवित्र और सब कामनाओंको देनेवाले काव्यको भक्तिपूर्वक सुनते अथवा गाते हैं उनके पुण्यफलको सुनो ॥ ६५ ॥ वे सैकड़ों जन्मोंके पापोंसे अतिशीघ्र छूट जाते हैं और सहस्रों कुलोंके सहित ब्रह्मपदको प्राप्त करते हैं ॥ ६६ ॥ तीर्थयात्रा, गोदान, तपस्या, और यज्ञ करनेकी क्या आवश्यकता है । दिन-दिन राम-कथाका कीर्तन या श्रवण करना चाहिये ॥ ६७ ॥ चैत, माघ और कार्तिकमें रामायण कथामृतको नवदिन सुनना चाहिये । जिसमें प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ६८ ॥ यह कथामृत रामको प्रसन्न करनेवाला राम भक्तिको बढ़ानेवाला, सब पापोंको नाश करनेवाला और सर्व सम्पत्तियोंकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ६९ ॥ जो इसे सावधान होकर सुनता अथवा पढ़ता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको जाता है ॥ ७० ॥

स्कन्दपुराणके उत्तरखण्डान्तर्गत नारद-सनत्कुमार विषयक रामायण महात्म्यका पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।
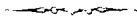
॥ श्री ॥

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे

उत्तरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते । आजग्मुर्मुनयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम् ॥१॥
कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्यो गालव एव च । कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः ॥२॥
स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान्नमुचिः प्रमुचिस्तथा । अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान्सुमुखो विमुखस्तथा ॥३॥
आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये श्रिता दक्षिणां दिशम् । नृषङ्गुः कवषी धौम्यः कौषेयश्च महानृषिः ॥४॥
तेऽप्याजग्मुः सशिष्या वै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम् । वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगौतमः ॥५॥
जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि सप्तर्षयस्तथा । उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः ॥६॥
संप्राप्यैते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् । विष्ठिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥७॥
वेदवेदाङ्गविदुषो नानाशास्त्रविशारदाः । द्वाःस्थं प्रोवाच धर्मात्मा अगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥८॥
निवेद्यतां दाशरथेर्ऋषयो वयमागताः । प्रतीहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनाद्द्रुतम् ।९॥

राक्षसोंका वध हो गया रामचन्द्रने राज्य पा लिया, तब सुयोग्य लक्ष्मणका अभिनन्दन करनेके लिए अयोध्यामें आये ॥१॥ पूर्वदिशामें रहनेवाले कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्व ये पूर्वदिशासे आये ॥२॥ कल्याणकारी आत्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख और विमुख ये भगवान् अगस्त्यके साथ दक्षिण दिशासे आये । नृषङ्गु, कवषी, धौम्य, कौषेय आदि भी अपने शिष्योंके साथ दक्षिण दिशासे आये । वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तर्षि भी आये । ये सातों उत्तर दिशामें नित्य निवास करते हैं ॥ ३, ६ ॥ अग्निके समान तेजस्वी ये महात्मा रामचन्द्रके स्थानपर आये और अपने आनेकी खबर रामचन्द्रके पास भेजवाकर ये फाटकपर ठहर गये ॥ ७ ॥ ये सभी वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता थे तथा भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें दक्ष थे । उनमेंके मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्यने द्वारपालसे कहा ॥८॥ दशरथपुत्र रामचन्द्रसे जाकर कहो कि हम ऋषिलोग आये हैं । महर्षि अगस्त्यके कहनेसे द्वारपाल शीघ्र ही महात्मा रामचन्द्रके पास गये । वह विनयी सच्चरित्र और धीर था

समीपं राघवस्याशु प्रविवेश महात्मनः। नयेङ्गितज्ञः सद्वृत्तो दक्षो धैर्यसमन्वितः ॥१०॥
स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्रसमद्युतिम्। अगस्त्यं कथयामास संप्राप्तमृषिसत्तमम् ॥११॥
श्रुत्वा प्राप्तान्मुनींस्तांस्तु बालसूर्यसमप्रभान्। प्रत्युवाच ततो द्वाःस्थं प्रवेशय यथासुखम् ॥१२॥
दृष्ट्वा प्राप्तान्मुनींस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च गां निवेद्य च सादरम् ॥१३॥
रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेश ह। तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च वरेषु च ॥१४॥
कुशान्तर्धानदत्तेषु मृगचर्मयुतेषु च। यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषिपुंगवाः ॥१५॥
रामेण कुशलं पृष्टाः सशिष्याः सपुरोगमाः। महर्षयो वेदविदो रामं वचनमब्रुवन्।
कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥१६॥
त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम्। दिष्ट्या त्वया हतो राजन्रावणो लोकरावणः ॥१७॥
नहि भारः स ते राम रावणः पुत्रपौत्रवान्। सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन्विजयेथा न संशयः ॥१८॥
दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणः पुत्रपौत्रवान्। दिष्ट्या विजयिनं त्वाद्य पश्यामः सह सीतया ॥१९॥
लक्ष्मणेन च धर्मात्मन्भ्रात्रा त्वद्धितकारिणा। मातृभिर्भ्रातृसहितं पश्यामोऽद्य वयं नृप ॥२०॥
दिष्ट्या प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः। अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते निशाचराः ॥२१॥
यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते। दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥२२॥

अपने काममें चतुर और इङ्गित समझनेवाला था। ९, १०। पूर्णचन्द्रके समान द्युतिमान रामचन्द्रको देखकर उसने ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यके आनेकी बात कही ॥११॥ बालसूर्यके समान तेजस्वी ऋषि आये हैं यह सुनकर रामचन्द्रने द्वारपालसे कहा कि सुख-पूर्वक उन लोगोंको ले आओ ॥ १२ ॥ सामने मुनि आ गये हैं यह देखकर रामचन्द्र उठे और उन्होंने हाथ जोड़ा। पाद्य अर्घ्य आदिके द्वारा उन्होंने ऋषियोंकी पूजा की और उनको गोदान दिया ॥ १३ ॥ विनयी रामचन्द्रने प्रणाम करके उन लोगोंके लिये आसन दिये, उन आसनोंपर सुवर्णका काम किया हुआ था, वे लम्बे-चौड़े थे और श्रेष्ठ थे। उनपर पहले कुशासन बिछाकर मृग-चर्म बिछाया हुआ था, वे ऋषिश्रेष्ठ अपने-अपने आसनपर बैठे ॥१४, १५॥ रामचन्द्रने शिष्यों तथा साथ आये हुओंका कुशल-संवाद पूछा। वेदज्ञ महर्षि रामचन्द्रसे बोले, महाबाहो रामचन्द्र, हम-लोगोंका सर्वत्र कुशल है ॥१६॥ आपको कुशली हमलोग देख रहे हैं, आपने अपने समस्त शत्रुओंका वध कर दिया यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। रामचन्द्र, समस्त संसारको दुःख देनेवाले रावणका आपने वध किया यह बड़े आनन्दकी बात हुई ॥१७॥ पुत्र-पौत्रोंके साथ रावणका मारना आपके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। क्योंकि धनुष लेकर आप तीनों लोकोंको जीत सकते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥१८॥ रामचन्द्र, पुत्र और पौत्रोंके साथ आपने रावणको मारा यह प्रसन्नताकी बात है। सीताके साथ विजयी आपको हमलोग देख रहे हैं यह और प्रसन्नताकी बात है ॥१९॥ धर्मात्मन रामचन्द्र, हितकारी भाई लक्ष्मण, मातृगण तथा अन्य भाइयोंके साथ आपको हमलोग देख रहे हैं यह प्रसन्नताकी बात है ॥२०॥ प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष महोदर, अकम्पन, दुर्धर्ष आदि राक्षसोंका आपने वध किया यह प्रसन्नताकी बात है ॥ २१ ॥ जिससे लम्बा-चौड़ा दूसरा नहीं है उस कुम्भकर्णको मार रामचन्द्र, आपने हमलोगोंकी

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ । दिष्ट्या ते निहता राम महावीर्या निशाचराः ॥२३॥
दिष्ट्या त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्वयुद्धमुपागतः । देवतानामवध्येन विजयं प्राप्तवानसि ॥२४॥
संख्ये तस्य न किंचित्तु रावणस्य पराभवः । द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्या ते रावणिर्हतः ॥२५॥
दिष्ट्या तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः । मुक्तः सुररिपोर्वीर प्राप्तश्च विजयस्त्वया ॥२६॥
अभिनन्दाम ते सर्वे संश्रुत्येन्द्रजितो वधम् । अवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ॥२७॥
विस्मयस्त्वेष चास्माकं तं श्रुत्वेन्द्रजितं हतम् । दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ॥
दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ॥२८॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् । विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥२९॥
भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् । अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ रावणिम् ॥३०॥
महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् । मत्तोन्मत्तौ च दुर्धर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥
अतिक्रम्य महावीरान्किं प्रशंसथ रावणिम् ॥३१॥
अतिकायं त्रिशिरसं धूम्राक्षं च निशाचरम् । अतिक्रम्य महावीर्यान्किं प्रशंसथ रावणिम् ॥३२॥
कीदृशो वै प्रभावोऽस्य किं बलं कः पराक्रमः । केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥३३॥
शक्यं यदि मया श्रोतुं न खल्वाज्ञापयामि वः । यदि गुह्यं न चेद्वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥३४॥

प्रसन्नताका काम किया ॥ २२ ॥ त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक इन राक्षसोंको आपने मारा यह भी प्रसन्नताकी बात है क्योंकि ये बड़े पराक्रमी थे ॥२३॥ यह प्रसन्नताकी बात है कि रावणसे तुम्हारा द्वंद्व युद्ध हुआ और उसमें तुम विजयी हुए, क्योंकि वह देवताओंके लिए भी अवध्य था ॥२४॥ आपके द्वारा रावणका युद्धमें पराजय हुआ है यह कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु रावणपुत्र मेघनाद द्वन्द्वयुद्ध करता हुआ मारा गया सचमुच प्रसन्नताकी बात है, और यही रावणकी पराजय है ॥ २५ ॥ महाबाहो, कालके समान शत्रुपर आक्रमण करनेवाले उस देवशत्रुसे आप-से-आप मुक्त हुए और आपने विजय पायी यह प्रसन्नताकी बात है । ॥२६॥ इन्द्रजित्‌का वध जानकर हमलोग आपका अभिनन्दन करते हैं, क्योंकि उसको कोई भी मार नहीं सकता । वह युद्धक्षेत्रमें बड़ा छल-प्रपञ्च रचनेवाला था ॥२७॥ उस इन्द्रजित्‌का आपने वध किया यह सुनकर हमलोगोंको आश्चर्य हुआ । वीर, आपने इस प्रकार ऋषियोंको अभय दक्षिणा दी और इससे आपकी प्रतिष्ठा बढ़ी यह प्रसन्नताकी बात है । हमलोग इससे सन्तुष्ट हैं ॥२८॥

विशुद्ध अन्तःकरण ऋषियोंके ये वचन सुनकर रामचन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ और वे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले ॥२९॥ भगवन, आपलोग महापराक्रमी कुम्भकर्ण और रावणको छोड़कर मेघनाद्की प्रशंसा क्यों करते हैं ॥ ३० ॥ महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, दुर्धर्ष, मत्त, उन्मत्त, देवान्तक, नरान्तक इन राक्षस महावीरोंको छोड़कर आपलोग रावणपुत्र इन्द्रजित्‌की प्रशंसा क्यों करते हैं ॥३१॥ अतिकाय, त्रिशिरा और धूम्राक्ष इन वीर राक्षसोंको छोड़कर आपलोग मेघनादकी प्रशंसा क्यों करते हैं ॥ ३२ ॥ इसका कैसा प्रभाव था, कैसा यह बली और पराक्रमी था । किस कारणसे इसे आपलोग रावणसे बड़ा समझते हैं ॥३३॥ क्या यह मेरे सुनने लायक है, मैं आपलोगोंको आज्ञा नहीं देता हूँ । यदि यह गुप्त न

शक्रोऽपि विजितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः । कथं च बलवान्पुत्रो न पिता तस्य रावणः ॥३५॥
कथं पितुश्चाप्यधिको महाहवे शक्रस्य जेता हि कथं स राक्षसः ।
वराश्च लब्धाः कथयस्व मेऽद्य पापच्छतश्चास्य मुनीन्द्र सर्वम् ॥३६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥
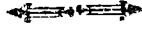
द्वितीयः सर्गः २

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । कुम्भयोनिर्महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥१॥
शृणु राम तथावृत्तं तस्य तेजोबलं महत् । जघान शत्रून्येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः ॥२॥
तावत्ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव । वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ॥३॥
पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः । पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ॥४॥
नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा । प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥५॥
प्रजापतिसुतत्वेन देवानां वल्लभो हि सः । इष्टः स स्य लोकस्य गुणैः शुभ्रैर्महामतिः ॥६॥
स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः । तृणबिन्द्वाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुंगवः ॥७॥
तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः । गत्वाश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः ॥८॥

हो और आपलोग कह सकते हों तो कहिए, मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ३४ ॥ उसने इन्द्रको भी जीता था उसको वर कैसे मिला, पुत्र ऐसा बलवान् हुआ और उसका पिता रावण नहीं इसका क्या कारण है ॥३५॥ वह युद्धमें अपने पितासे भी अधिक कैसे हुआ, वह राक्षस इन्द्रविजयी कैसे हुआ उसने वर कैसे पाये। मुनीन्द्र, मैं यह सब आपसे पूछता हूँ आप मुझसे कहें ॥३६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

महात्मा रामचन्द्रके ये वचन सुनकर कुम्भयोनि तेजस्वी अगस्त्य इस प्रकार बोले ॥१॥ रामचन्द्र, सुनो वह किस प्रकार तेजस्वी और बली हुआ था, किस प्रकार उसने शत्रुओंपर विजय पायी और शत्रुओंके द्वारा अवध्य हुआ ॥ २ ॥ रामचन्द्र, पहले मैं रावणका कुल उसका जन्म तथा उसको कैसे वर मिला यह कहता हूँ ॥ ३ ॥

रामचन्द्र, पहले सत्ययुगमें प्रजापतिके पुत्र पुलस्त्य नामके ब्रह्मर्षि थे, वे साक्षात् पितामह ब्रह्माके समान थे ॥४॥ धर्म और शीलसम्बन्धी उनके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि वे ब्रह्माके पुत्र थे ॥५॥ वे ब्रह्माके पुत्र होनेके कारण देवताओंके बड़े प्रिय थे और अपने उत्तम गुणोंके कारण सब लोगोंके भी प्रिय थे ॥ ६ ॥ वे मुनि तपस्या करनेके लिए मेरुपर्वतके पास तपबिन्दु मुनिके आश्रममें जाकर निवास करने लगे ॥ ७ ॥ वे मुनि वहाँ जाकर तपस्या करने लगे, इन्द्रियोंको अधीन करके वे स्वाध्याय करने लगे। पर वहाँ उनकी तपस्यामें कन्याएँ जाकर विघ्न करने

ऋषिपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः । क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ॥९॥
सर्वर्तुषूपभोग्यत्वाद्रम्यत्वात्काननस्य च । नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ॥१०॥
देशस्य रमणीयत्वात्पुलस्त्यो यत्र स द्विजः । गायन्त्यो वादयन्त्यश्च लासयन्त्यस्तथैव च ॥११॥
मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुरनिन्दिताः । अथ रुष्टो महातेजा व्याजहार महामुनिः ॥१२॥
या मे दर्शनमागच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति । तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः ॥१३॥
ब्रह्मशापभयाद्भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः । तृणबिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ॥१४॥
गत्वाश्रमपदं तत्र विचचार सुनिर्भया । न चापश्यच्च सा तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम् ॥१५॥
तस्मिन्काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः । स्वाध्यायमकरोत्तत्र तपसा भावितः स्वयम् ॥१६॥
सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम् । अभवत्पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा ॥१७॥
बभूव च समुद्विग्ना दृष्ट्वा तद्दोषमात्मनः । इदं मे किंत्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाश्रमे स्थिता ॥१८॥
तां तु दृष्ट्वा तथाभूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत् । किं त्वमेतत्त्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः ॥१९॥
सा तु कृत्वाञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम् । न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदृशम् ॥२०॥
किं तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः । पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ॥२१॥
न च पश्याम्यहं तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम् । रूपस्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा त्रासादिहागता ॥२२॥

लगी ॥ ८ ॥ ऋषि-कन्या, नाग-कन्या, राजर्षि-कन्या तथा अप्सराएँ क्रीडा करती-करती मुनिके आश्रमकी ओर चली जाया करती थीं ॥ ९ ॥ वह स्थान सब ऋतुओंमें रहनेके योग्य था तथा रमणीय था अतएव ये कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ जाकर क्रीडा करती थीं ॥ १० ॥ जिस स्थानपर ब्राह्मण पुलस्त्य रहते थे वह बड़ा रमणीय था, अतएव ये कन्याएँ वहाँ जाकर गाती थीं, बाजा बजाती थीं और नाचती थीं ॥ ११ ॥ अतएव ये शुद्ध चरित्रकी कन्याएँ उन तपस्वीके कार्योंमें विघ्न करती थीं । एक दिन तेजस्वी मुनिने इस प्रकार कहा—"जो कन्या मेरे सामने आवेगी वह गर्भवती हो जायँगी।" महात्मा मुनिके इस वचनको सुनकर वे कन्याएँ ब्रह्मशापसे भयभीत हो गयीं और उनलोगोंने उधरको ओरका जाना छोड़ दिया । पर राजर्षि तृणबिन्दुकी कन्याने उधर ध्यान नहीं दिया । उसने जाना नहीं छोड़ा ॥ १४ ॥ वह उस आश्रममें जाती और निर्भय होकर वहाँ विचरण करती, पर वह वहाँ अपनी दूसरी सखियोंको नहीं देखती ॥ १५ ॥ उस समय प्रजापतिपुत्र महर्षि जो तपस्यासे स्वयं प्रकाशित थे, वेदपाठ कर रहे थे ॥ १६ ॥ उस कन्याने वेदमन्त्रोंका श्रवण किया और तपस्वी मुनिको देखा, उसी समय उसका शरीर पीला हो गया, गर्भके लक्षण प्रकट हो गये ॥ १७ ॥ अपने ही दोषसे अपनी दुर्दशा देखकर वह बहुत व्याकुल हुई । मुझे यह क्या हुआ है यह जानकर तथा पिताके आश्रममें जाकर बैठ गयी ॥ १८ ॥ तृणबिन्दुने अपनी कन्याको उस अवस्थामें देखा । उन्होंने कहा यह तुम्हारी दशा कैसी हो गयी है, यह काम तो तुम्हारे कुलके योग्य नहीं है ॥ १९ ॥ उस विचारी कन्याने हाथ जोड़कर तपस्वी पितासे कहा—तात, मैं कोई कारण नहीं जानती हूँ जिससे मेरा शरीर ऐसा हो गया है ॥ २० ॥ किन्तु विशुद्धात्मा महर्षि पुलस्त्यके आश्रममें मैं अकेली अपनी सखियोंको ढूँढ़ने गयी थी ॥ २१ ॥ पर वहाँ मैंने

तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः । ध्यानं विवेश तच्चापि अपश्यदृषिकर्मजम् ॥२३॥
स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः । गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ॥२४॥
भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् । भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥२५॥
तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्य ते । शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥२६॥
तं ब्रुवाणं तु तद्वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा । जिघृक्षुरब्रवीत्कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥२७॥
दत्त्वा तु तनयां राजा स्वमाश्रमपदं गतः । सापि तत्रावसत्कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ॥२८॥
तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुंगवः । प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥२९॥
परितुष्टोऽस्मि सुश्रोणि गुणानां संपदा भृशम् । तस्माद्देवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव ॥
उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ॥३०॥
यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाध्ययतो मम । तस्मात्स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ॥३१॥
एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना । अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम् ॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यशोधर्मसमन्वितम् ॥३२॥
श्रुतिमान्समदर्शी च व्रताचाररतस्तथा । पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद्विश्रवा मुनिः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अपनी किसी सखीको नहीं देखा और मेरी दशा ऐसी हो गयी, अतएव डरकर मैं वहाँसे चली आयी ॥ २२ ॥ राजा तृणबिन्दु तपस्वी थे उनकी प्रभा चारों ओर फैली हुई थी, उन्होंने ध्यान लगाया तो मालूम हुआ कि महर्षि पुलस्त्यके कारण ऐसा हुआ है । २३ । भावितात्मा महर्षिके शापसे ऐसा हुआ है यह जानकर राजर्षि कन्याके साथ मुनिके आश्रममें गये और उनसे बोले ॥ २४ ॥ भगवन्, यह मेरी कन्या अपने गुणोंसे भूषित है, गुणवती है यह स्वयं भिक्षारूपसे आपके यहाँ उपस्थित हुई है इसे आप ग्रहण करें ॥ २५ ॥ आप तपस्यामें लगे रहते हैं, जब आप थक जायेंगे तब यह कन्या आपकी सेवा करेगी इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ धर्मात्मा राजर्षि तृणबिन्दुके ऐसा कहनेपर महर्षिने कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे "हाँ" कहा ॥ २७ ॥ मुनिको कन्या देकर राजा अपने आश्रममें चले आये । वह कन्या मुनिके आश्रममें रहने लगी और अपने गुणोंसे पतिको प्रसन्न करने लगी ॥ २८ ॥ उस कन्याके शील और चरित्रसे वे मुनिश्रेष्ठ प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर वे तेजस्वी इस प्रकार बोले ॥ २९ ॥ सुश्रोणि, तुम्हारे गुणोंसे मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । अतएव देवि, तुम्हें अपने समान पुत्र मैं देता हूँ । जो पिता और माता दोनोंके वंशकी प्रतिष्ठा बढ़ावेगा और पौलस्त्य नामसे प्रसिद्ध होगा ॥३०॥ मेरे पढ़नेके समय तुमने वेदमन्त्रोंका श्रवण किया है, इस कारण उस बालकका नाम विश्रवा होगा ॥३१ ॥ मुनिके ऐसा कहनेपर वह देवी बहुत प्रसन्न हुई और थोड़े दिनोंके बाद उसने विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया, वह पुत्र यशस्वी और धर्मात्मा रूपमें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ ॥३२॥ व्रताचारपरायण समदर्शी और पिताके समान तपस्वी हुआ ॥३३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुंगवः । अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥१॥
सत्यवाञ्शीलवान्दान्तः स्वाध्यायनिरतःशुचिः । सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥२॥
ज्ञात्वा तस्य तु तद्वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः । ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥३॥
प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा । प्रजान्वीक्षिकया बुद्ध्या श्रेयो ह्यस्य विचिन्तयन् ॥४॥
मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुंगवः । स तस्यां वीर्यसंपन्नमपत्यं परमाद्भुतम् ॥५॥
जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्वृतम् । तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः स बभूव पितामहः ॥६॥
दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति । नाम चास्याकरोत्प्रीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥७॥
यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव । तस्माद्वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥८॥
स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा । अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथानलः ॥९॥
तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः । चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥१०॥
स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने । यन्त्रितो नियमैरुग्रैश्चकार सुमहत्तपः ॥११॥
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तं तं विधिमकल्पयत् । जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ॥
एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येकवर्षवत् ॥१२॥

अनन्तर पुलस्त्यके पुत्र मुनिश्रेष्ठ विश्रवा शीघ्र ही अर्थात् थोड़ी ही समयमें तपस्या करने लगे ॥ १ ॥ सत्यवादी, शीलवान , जितेन्द्रिय, स्वाध्यायपरायण, पवित्र समस्त भोगोंमें विरक्त तथा सद्धर्म-परायण थे ॥ २ ॥ महामुनि भरद्वाजको जब विश्रवाकी बातें मालूम हुई तब उन्होंने देवकन्याके समान सुन्दरी अपनी कन्या उन मुनिको स्त्रीके रूपमें दी ॥ ३ ॥ भरद्वाज मुनिकी कन्याको विश्रवाने धर्मपूर्वक ग्रहण किया । मुनि प्रजाका शुभाशुभ विचारनेवाली बुद्धिके द्वारा सबका कल्याण सोच रहे थे, इसी विचारसे उन्होंने भरद्वाज मुनिकी कन्याका ग्रहण भी किया था ॥ ४ ॥ मुनिश्रेष्ठ विश्रवाने बड़े प्रसन्न होकर एक अद्भुत और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ वह पुत्र ब्राह्मणके समान गुणोंसे युक्त था । उसके उत्पन्न होनेपर पितामह अर्थात् पुलस्त्य बड़े प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ इस बालकमें कल्याण प्राप्त करनेकी बुद्धि है यह देखकर उन्होंने कहा कि यह धनाध्यक्ष होगा । देवताओं और ऋषियोंके साथ बड़ी खुशीसे उन्होंने उसका नामकरण किया ॥७॥ यह विश्रवाका पुत्र है तथा विश्रवाके समान है अतएव इसका प्रसिद्ध नाम वैश्रवण होगा ॥८॥ वे वैश्रवण तपोवनमें रहकर हवन की हुई अग्निके समान बढ़ने लगे ॥९॥ वहाँ आश्रममें रहते समय उस महात्माके हृदयमें धर्माचरण करनेकी बुद्धि उत्पन्न हुई, क्योंकि धर्माचरण ही प्रधान कर्तव्य है ॥१०॥ उस महावनमें एक हजार वर्षों तक तपस्या करनेका निश्चय करके और नियमों-से अपनेको जकड़कर उन्होंने बड़ी तपस्या की ॥ ११ ॥ हजार वर्षोंके पूरा होनेके समय उन्होंने तपस्या पूर्तिके समस्त विधानोंको किया, जल पीकर, हवा पीकर तथा निराहार रहकर उन्होने अपनी तपस्या पूरी की, इस प्रकार हजार वर्ष पूरे हुए, पर मुनिको वे एक वर्षके समान मालूम हुए ॥१२॥

अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह। गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥
परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत। वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते ॥१४॥
अथाब्रवीद्वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम्। भगवँल्लोकपालत्वमिच्छेयं लोकरक्षणम् ॥१५॥
अथाब्रवीद्वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा। ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत् ॥१६॥
अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः। यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत्तव चेप्सितम् ॥१७॥
तद्गच्छ बत धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि। शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ॥१८॥
एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम्। प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ॥१९॥
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम्। कृतकृत्या वयं तात दत्त्वा तव वरद्वयम् ॥२०॥
इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह। गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभस्तलम् ॥२१॥
धनेशः पितरं प्राह प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान्। भगवँल्लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात् ॥२२॥
निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः। तं पश्य भगवन्संचिन्निवासं साधु मे प्रभो ॥
न च पीडा भवेद्यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥२३॥
एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुंगवः। वचनं प्राह धर्मज्ञ श्रूयतामिति सत्तम ॥२४॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः। तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥२५॥

उनकी तपस्यामें तेजस्वी ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और वे इन्द्र आदि देवताओंके साथ उस आश्रममें जाकर इस प्रकार बोले ॥१३॥ वत्स, तुम्हारे इस कामसे मैं प्रसन्न हूँ, तुमने सुन्दर व्रत धारण किया है। तुम वर माँगो, क्योंकि तुम वर पानेके अधिकारी हो ॥१४॥ उपस्थित ब्रह्मासे वैश्रवण बोले, भगवन, मैं लोकपाल होना चाहता हूँ मेरी इच्छा लोकरक्षा करनेकी है ॥१५॥ ब्रह्मा इससे प्रसन्न हुए और देवताओंके साथ उन्होंने वैश्रवणकी प्रार्थना स्वीकार की अर्थात् उनको लोकपाल उन्होंने बना दिया ॥ १६ ॥ मैं लोकपालोंका चौथा पद बनाना चाहता हूँ इनमेंका जो पद तुम चाहते हो अर्थात् धनाध्यक्ष बनाना चाहते हैं उसे ग्रहण करो ॥१७॥ धर्मज्ञ, तुम जाकर धनाध्यक्षका पद ग्रहण करो, इन्द्र, वरुण और यममें तुम्हारा स्थान चौथा होगा। अर्थात् तुम चौथे लोकपाल होगे ॥१८॥ सूर्यके समान यह उज्वल विमान है, इसका पुष्पक नाम है, इसे वाहनके रूपमें तुम ग्रहण करो और इस प्रकार तुम भी देवताओंके तुल्य होओ ॥ १९ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, हम सबलोग अपने-अपने स्थानको जाते हैं तुमको दो वर देकर हम कृत-कृत्य हो गये ॥२०॥ ऐसा कहकर देवताओंके साथ ब्रह्मा अपने स्थानपर गये। ब्रह्मा आदि देवताओंके आकाश-मार्गसे चले जानेपर धनेशने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पितासे कहा, भगवन, पितामह ब्रह्मासे हमने अभीष्ट वर पाया है ॥ २१ ॥ २२ ॥ पर मेरे रहनेके स्थानकी व्यवस्था ब्रह्माने नहीं की है, अतएव मेरे लिए आप कोई अच्छासा निवासस्थान बतलावें। जहाँ मेरे रहनेसे किसी भी प्राणीको कोई दुःख न हो ॥ २३ ॥ पुत्रके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्रवा बोले, धर्मज्ञ, सुनो ॥ २४ ॥ दक्षिण समुद्रके तीरपर त्रिकूट नामका पर्वत है, उसके शिखरपर इन्द्रकी पुरीके समान एक विशाल पुरी है ॥ २५ ॥ उसका नाम लंका है, वह रमणीय-पुरी है विश्वकर्माकी बनायी हुई है। वह राक्षसोंके लिए बनायी गयी है, जिस प्रकार इन्द्रके लिए अमरा-

लङ्का नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा। राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ॥२६॥
तत्र त्वं वस भद्रं ते लङ्कायां नात्र संशयः। हेमप्राकारपरिखा यन्त्रशस्त्रसमावृता ॥२७॥
रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैदूर्यतोरणा। राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः ॥२८॥
शून्या रक्षोगणैः सर्वैं रसातलतलं गतैः। शून्या संप्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते ॥२९॥
स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम्। निर्दोषस्तत्र ते वासो न बाधस्तत्र कस्यचित् ॥३०॥
एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः। निवासयामास तदा लङ्कां पर्वतमूर्धनि ॥३१॥
नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सदा। अचिरेणैव कालेन संपूर्णा तस्य शासनात् ॥३२॥
स तु तत्रावसत्प्रीतो धर्मात्मा नैर्ऋतर्षभः। समुद्रपरिखायां स लङ्कायां विश्रवात्मजः ॥३३॥
काले काले तु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः। अभ्यागच्छद्विनीतात्मा पितरं मातरं च हि ॥३४॥

स देवगन्धर्वगणैरभिष्टुतस्तथाप्सरोनृत्यविभूषितालयः।
गभस्तिभिः सूर्य इवावभासयन्पितुः समीपं प्रययौ स वित्तपः ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

वती बनी है ॥ २६ ॥ अतः तुम लंकामें निवास करो, तुम्हारा कल्याण हो। वहाँ सुवर्णकी खाई और चार दीवारी बनाई हुई है, यंत्र और शस्त्रोंसे वह सुरक्षित है ॥ २७ ॥ वह पुरी बड़ी रमणीय है, सुवर्ण और वैदूर्यका उसका तोरण बना है। विष्णुके भयसे भीत होकर राक्षसोंने उस नगरीका त्याग कर दिया है ॥ २८ ॥ वहाँ अब राक्षस नहीं रहते वे पातालमें चले गये हैं। इस समय लंका सूनी पड़ी है कोई उसका स्वामी नहीं है ॥ २९ ॥ अतएव पुत्र सुखपूर्वक निवास करनेके लिए तुम वहाँ जाओ। वहाँ तुम्हारा निवास निर्दोष होगा, कोई बाधा-विघ्न न होगा ॥ ३० ॥

धर्मात्मा पिताके ये धर्म-युक्त वचन सुनकर पर्वतशिखरपर बसी हुई लङ्कामें उन्होंने निवास किया ॥ ३१ ॥ वैश्रवणकी आज्ञासे थोड़े ही समयमें हजारों राक्षस प्रसन्नतापूर्वक वहाँ बस गये ॥३२॥ समुद्रसे घिरी हुई उस लङ्का नगरीमें विश्रवाके पुत्र धर्मात्मा वैश्रवण राक्षस-राज होकर निवास करने लगे ॥ ३३ ॥ समय-समयपर धर्मात्मा धनेश्वर पुष्पक विमानपर चढ़कर विनयपूर्वक पिता-माताके पास आ जाया करते थे ॥ ३४ ॥ देवता और गन्धर्व उनकी स्तुति करते थे, अप्सराएँ उनके यहाँ नाचती थीं। सूर्यके समान किरणोंके द्वारा प्रकाश फैलाते हुए धनेश पिताके पास गये ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त

चतुर्थः सर्गः ४

श्रुत्वागस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः । कथमासीत्तु लङ्कायां संभवो रक्षसां पुरा ॥ १ ॥
ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम् । तमगस्त्यं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥
भगवन्पूर्वमप्येषा लङ्कासीत्पिशिताशिनाम् । श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः ॥ ३ ॥
पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम् । इदानीमन्यतश्चापि संभवः कीर्तितस्त्वया ॥ ४ ॥
रावणात्कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद्विकटादपि । रावणस्य च पुत्रेभ्यः किं नु ते बलवत्तराः ॥ ५ ॥
क एषां पूर्वको ब्रह्मन्किंनामा च बलोत्कटः । अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ॥ ६ ॥
एतद्विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ । कुतूहलमिदं मह्यं नुद भानुर्यथा तमः ॥ ७ ॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम् । अथ विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥ ८ ॥
प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसंभवः । तासां गोपायने सत्त्वानसृजत्पद्मसंभवः ॥ ९ ॥
ते सत्त्वा सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः । किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥१०॥
प्रजापतिस्तु तान्सर्वान्प्रत्याह प्रहसन्निव । आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानवाः ॥११॥
रक्षाम इति तत्रान्यैर्यक्षाम इति चापरैः । भुङ्क्षिताभुङ्क्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥१२॥
रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः । यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ॥१३॥

अगस्त्यकी ये बातें सुनकर रामचन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा, पहले लंकामें राक्षस कहाँसे आये ॥ १ ॥ अनन्तर सिर हिलाकर अग्निहोत्रकी अग्निके समान तेजोमय शरीर अगस्त्यकी ओर बार-बार देखकर रामचन्द्र मुस्कुराकर बोले ॥ २ ॥ भगवन, यह लंका पहले भी राक्षसोंकी ही थी, यह आपकी बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है ॥ ३ ॥ हमने सुना है कि पुलस्त्य-वंशसे राक्षसोंकी उत्पत्ति हुई है, इस समय आप दूसरोंसे उनकी उत्पत्ति बतलाते हैं ॥ ४ ॥ रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट तथा रावणके पुत्रोंसे भी क्या वे राक्षस बलवान थे ॥ ५ ॥ उन राक्षसोंका पूर्वज कौन, उसका नाम क्या था और वह कैसा बलि था, किस अपराधसे विष्णुने उन राक्षसोंको लंकासे भगाया और कैसे भगाया ॥ ६ ॥ निष्पाप, यह सब विचारके साथ आप कहें । मुझे इसका बड़ा कुतूहल है उसे आप दूर करें जिस प्रकार सूर्य अन्धकार दूर करता है ॥ ७ ॥ रामचन्द्रके ये शुद्ध और सुन्दर वचन सुनकर अगस्त्यको आश्चर्य हुआ और वे रामचन्द्रसे बोले ॥ ८ ॥ जलसे उत्पन्न ब्रह्माने पहले जलकी सृष्टि की । उस जलकी रक्षाके लिए पद्मसम्भव ब्रह्माने कई प्रकारके प्राणियोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ प्राणियोंका उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माके पास वे सब प्राणी विनयपूर्वक उपस्थित हुए और बोले, हमलोग क्या करें, वे प्राणी भूख-प्यास-से व्याकुल थे ॥ १० ॥ प्रजापति उन सबसे हँसते हुए बोले, मनुष्यो, तुमलोग प्रयत्नपूर्वक रक्षा करो ॥ ११ ॥ उनमें जो भूखे नहीं थे उन लोगोंने कहा कि हम रक्षा करेंगे । जो लोग भूखे थे उन लोगोंने कहा कि हम पूजा करेंगे । यहाँ "यक्षाम" प्रयोग किया गया है, जो पूजनार्थक क्रिया है उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा उनसे बोले ॥ १२ ॥ जिन लोगोंने रक्षा करनेके लिए कहा था ब्रह्माने उनसे कहा कि तुमलोग राक्षस कहे जाओगे । जिन लोगोंने पूजा करनेके लिए कहा था ब्रह्माने उनसे कहा कि तुमलोग यक्ष कहलाओगे ॥ १३ ॥

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ। मधुकैटभसंकाशौ बभूवतुररिंदमौ ॥१४॥
प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनगतस्तदा। हेतिर्दारक्रियार्थे तु परं यत्नमथाकरोत् ॥१५॥
स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम महाभयाम्। उदावहदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ॥१६॥
स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुंगवः। पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केशमिति श्रुतम् ॥१७॥
विद्युत्केशो हेतिपुत्रः स दीप्तार्कसमप्रभः। व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुजम् ॥१८॥
स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः। ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥१९॥
संध्यादुहितरं सोऽथ संध्यातुल्यां प्रभावतः। वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुंगवः ॥२०॥
अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति संध्यया। चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥२१॥
संध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः। रमते स तया सार्धं पौलोम्या मघवानिव ॥२२॥
केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा। विद्युत्केशाद्गर्भमाप घनराजिरिवार्णवात् ॥२३॥
ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम्। प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम्।
समुत्सृज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशरतार्थिनी ॥२४॥
रेमे तु सार्धं पतिना विसृज्य सुतमात्मजम्। उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः ॥२५॥
तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरदर्कसमद्युतिः। निधायास्ये स्वयं मुष्टिं रुरोद शनकैस्तदा ॥२६॥

उनमें हेति और प्रहेति नामके दो राक्षस थे जो राक्षसोंके स्वामी थे। वे मधु-कैटभके समान शत्रुओंके नाश करनेवाले थे ॥ १४ ॥ प्रहेति धार्मिक था अतएव वह तपोवनमें चला गया और हेतिने ब्याह करनेके लिए बहुत प्रयत्न किया ॥ १५ ॥ उस बुद्धिमानने यमराजकी बहन भया नामकी कन्यासे ब्याह किया। उदारात्मा उस राक्षसने, इस कन्याके लिए स्वयं जाकर प्रार्थना की थी ॥ १६ ॥ उस राक्षस-श्रेष्ठ हेतिने उस कन्यासे विद्युत्केश नामका प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया, उस पुत्रके कारण वह पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ हुआ ॥ १७ ॥ मध्याह्नसूर्यके समान तेजस्वी हेतिपुत्र विद्युत्केश बढ़ने लगा, जिस प्रकार जलमें कमल बढ़ता है ॥ १८ ॥ वह विद्युत्केश जब सुन्दर युवा हुआ, तब पिताने उसके ब्याह करनेकी इच्छा की ॥ १९ ॥ राक्षसश्रेष्ठ हेतिने अपने पुत्रके लिए सन्ध्याकी पुत्रीको चुना, जो प्रभावमें सन्ध्याके समान थी ॥ २० ॥ सन्ध्याने सोचा कि कन्या दूसरेको किसी तो देनी ही होगी, यही सोचकर उसने विद्युत्केशको कन्या दे दी ॥ २१ ॥ सन्ध्याकी कन्याको पाकर निशाचर विद्युत्केश उसके साथ रमण करने लगा, जिस प्रकार इन्द्र पौलोमीके साथ रमण करते हैं ॥ २२ ॥ सालकटंकटा वह सन्ध्याकी कन्याने कुछ दिनोंके बाद विद्युत्केशसे गर्भ धारण किया, जिस प्रकार मेघमाला समुद्रसे गर्भ धारण करती है ॥ २३ ॥ उस राक्षसीने मेघगर्भके समान गर्भ धारण किया। मन्दर पर्वतपर जाकर उसने प्रसव किया, जिस प्रकार गङ्गाने अग्निके छोड़े गर्भका प्रसव किया था। प्रसव करके वह सन्ध्यापुत्री विद्युत्केशसे रमण करनेके लिए चली गयी ॥ २४ ॥ वह गर्भको छोड़कर पतिके साथ रमण करने लगी। उसका छोड़ा हुआ गर्भ मेघके समान शब्द करने लगा ॥ २५ ॥ शरद् ऋतुके मेघके तुल्य प्रकाशमान उसका छोड़ा वह बालक मुँहमें मुट्ठी रखकर धीरे-धीरे रोने लगा ॥ २६ ॥ उस समय महादेव बैलपर चढ़कर पार्वतीके साथ वायु-

ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः । वायुमार्गेण गच्छन्वै शुश्राव रुदितस्वनम् ॥२७॥
अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् । कारुण्यभावात्पार्वत्या भवस्त्रिपुरसूदनः ॥२८॥
तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयः समम् । अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्ययः ॥२९॥
पुरमाकाशगं प्रादात्पार्वत्याः प्रियकाम्यया । उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज ॥३०॥
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च । सद्य एव वयः प्राप्तिं मातुरेव वयः समम् ॥३१॥

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ।
चचार सर्वत्र महान्महामतिः खगंपुरं प्राप्य पुरंदरो यथा ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् । ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥१॥
तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा । त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयौवनशालिनी ॥२॥
तां सुकेशाय धर्मात्मा ददौ रक्षःश्रियं यथा । वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥३॥
आसीद्देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः । स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ॥४॥

मार्गसे जा रहे थे उन्होंने उसके रोनेका शब्द सुना ॥ २७ ॥ पार्वतीके साथ शिवने उस राक्षसपुत्रको रोते देखा । पार्वतीके दया आनेसे महादेवने उस राक्षसपुत्रकी उमर माताकी उमरके बराबर कर दी और उसे अमर बना दिया । अविनाशी महादेवने पार्वतीकी प्रसन्नताके लिए उसे आकाशमें चलनेवाला एक विमान दिया, जो नगरके समान था । राजपुत्र, महादेवने राक्षसियों और राक्षसों दोनोंको उस समय वर दिया । वे शीघ्र ही गर्भ धारण करेंगी, शीघ्र ही प्रसव करेंगी और प्रसूत बालक शीघ्र ही अपनी माताकी अवस्थाका हो जायगा । यही वर महादेवने उनको दिया ॥ २८ ॥ ३१ ॥

वह सुकेश वरदान पाकर गर्वित हुआ, उसने प्रभु महादेवसे ऐश्वर्य पाया, वह बुद्धिमान् आकाशगामी विमान पाकर इन्द्रके समान सर्वत्र विचरण करने लगा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ।

—:०:—
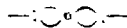
अनन्तर विश्वावसुके समान प्रभावशाली ग्रामणि नामके गन्धर्वने सुकेशको देखा, यह राक्षस धार्मिक है तथा वर पाकर यह प्रभावशाली हुआ है ॥ १ ॥ उस गन्धर्वके देववती नामकी एक कन्या थी जो दूसरी लक्ष्मीके समान सुन्दरी थी । तीनों लोकोंमें उसके रूप-यौवनकी प्रसिद्धि थी ॥ २ ॥ धर्मात्मा गन्धर्वने वह कन्या सुकेशको दी, मानों वह राक्षसोंकी लक्ष्मी हो । वरदानसे जिसने ऐश्वर्य पाया है, वैसे प्रिय पतिको पाकर देववती सन्तुष्ट हुई, जिस प्रकार निर्धन धन पाकर सन्तुष्ट होता है । उस स्त्रीको पाकर राक्षस भी शोभित हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ अञ्जन नामक दिग्गजसे उत्पन्न महागज मानों हथिनीके साथ

अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेण्वेव महागजः । ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव
त्रीन्पुत्राञ्जनयामास त्रेताग्निसमविग्रहान् ॥५॥
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् । त्रींस्त्रिनेत्रसमान्पुत्रान्राक्षसान्राक्षसाधिपः ॥६॥
त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः । त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः ॥७॥
त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमतेजसः । विवृद्धिमगमंस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ॥८॥
वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वैश्वर्यं तपोबलात् । तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥९॥
प्रगृह्य नियमान्घोरान्राक्षसा नृपसत्तम । विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूतभयावहम् ॥१०॥
सत्यार्जवशमोपेतैस्तपोभिर्भुवि दुर्लभैः । संतापयन्तस्त्रींल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥११॥
ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमाश्रितः । सुकेशपुत्रानामन्त्र्य वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥१२॥
ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इव द्रुमाः ॥१३॥
तपसाराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् । अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ॥
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥१४॥
एवं भविष्यथेत्युक्त्वा सुकेशतनयान्विभुः । स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥१५॥

विचरता हो, सुकेशकी शोभा उस समय ऐसी ही थी । रामचन्द्र, पुनः समय होनेपर सुकेशने तीन पुत्र उत्पन्न किये जो तीनों त्रेता मुनिके समान तेजस्वी थे ॥ ५ ॥ माल्यवान्, सुमाली और माली उसके ये तीन पुत्र हुए ये तीनों बलवानोंमें श्रेष्ठ थे, राक्षसराजने महादेवतुल्य ये तीन पुत्र पाये ॥ ६ ॥ तीनों लोकोंकी देख-रेख रखनेवाले ब्रह्मा आदि त्रिदेवके समान ये अव्यग्र थे, स्थिर थे । अग्निहोत्रकी तीन अग्नियोंके समान स्थित थे । प्रभाव, उत्साह और मन्त्रशक्तियोंके समान उग्र थे और वात-पित्त तथा कफसम्बन्धी रोगोंके समान भयंकर थे ॥ ७ ॥ सुकेशके तीनों पुत्र अग्निहोत्रकी तीन अग्नियोंके समान तेजस्वी थे । ये तीनों बढ़ने लगे, जिस प्रकार लापरवाहीसे रोग बढ़ते हैं ॥ ८ ॥ पिता-माताको वर मिला है और तपस्यासे उन्हें ऐश्वर्य मिला है यह जानकर वे तीनों भाई तपस्या करनेका निश्चय करके मेरु पर्वतपर गये ॥ ९ ॥ राजश्रेष्ठ, कठोर नियमोंका पालन करते हुए वे राक्षस उग्र तपस्या करने लगे । उनकी तपस्या सब प्राणियोंको भयभीत करनेवाली थी ॥ १० ॥ पृथिवीमें दुर्लभ सत्य, सरलता और शमसे युक्त तपस्याओंके द्वारा तीनों लोकोंके देवता असुर और मनुष्योंको वे सन्तापित करने लगे ॥ ११ ॥

अनन्तर उत्तम विमानपर चढ़कर चतुर्मुख ब्रह्मा उनके पास आये और उन लोगोंको सम्बोधित करके उन्होंने कहा कि मैं वर देनेके लिए आया हूँ ॥ १२ ॥ इन्द्र आदि देवताओंके साथ ब्रह्मा वर देनेके लिए आये हैं यह जानकर वे तीनों हाथ जोड़कर बोले, हर्षसे वे काँप रहे थे । वे उस समय काँपते वृक्षके समान मालूम होते थे ॥ १३ ॥ देव, यदि आप हमलोगोंकी तपस्यासे प्रसन्न हुए हैं, यदि आप वर देना चाहते हैं तो अजेय, शत्रुहन्ता और चिरंजीवी हमलोग हों । हमलोग प्रभावशाली और परस्पर प्रेम रखनेवाले हों ॥१४॥ ब्रह्माने सुकेशपुत्रोंको इच्छित वर दिया और ब्राह्मणप्रेमी ब्रह्मा ब्रह्मलोकको चले गये ॥१५॥ रामचन्द्र, वर पाकर वे राक्षस देवता और असुरोंको पीड़ा देने लगे क्योंकि वे वरदान पाकर

वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिंचरास्तदा । सुरासुरान्प्रबाधन्ते वरदानसुनिर्भयाः ॥१६॥
तैर्बाध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसङ्घाः सचारणाः । त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥१७॥
अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् । ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥१८॥
ओजस्तेजोबलवतां महतामात्मतेजसा । गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ॥१९॥
अस्माकमपि तावत्त्वं गृहं कुरु महामते । हिमवन्तमुपाश्रित्य मेरुमन्दरमेव वा ॥२०॥
महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् । विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ॥२१॥
निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् । दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥२२॥
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वराः । शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ॥२३॥
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥२४॥
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता । मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥२५॥
तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुंगवाः । अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥२६॥
लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः । भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥२७॥
विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः । सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन्पुरीम् ॥२८॥
दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम् । लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्यवसन्रजनीचराः ॥२९॥

निर्भय हो गये थे ॥ १६ ॥ उन राक्षसोंके द्वारा पीड़ित होनेपर देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंको अपना कोई रक्षक दिखायी नहीं पड़ता था, जिस प्रकार नरकवासी मनुष्यका कोई रक्षक नहीं होता ॥ १७ ॥ रघुसत्तम, एकबार वे राक्षसश्रेष्ठ शिल्पी विश्वकर्माके पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ १८ ॥ ओजस्वी तेजस्वी और बली महान् देवताओंके लिए आप ही अपने तेजसे गृह बनाते हैं। अतएव हमलोगोंके लिए भी आप गृह बना दें जैसा हमलोग चाहते हैं। हिमालय अथवा मेरु पर्वतपर आप हमलोगोंके लिए घर बनावें ॥ १९ ॥ २० ॥ उन लोगोंने कहा कि महादेवके घरके समान घर तुम हमलोगोंके लिए बनाओ अनन्तर विश्वकर्माने उन राक्षसोंको रहनेके लिए स्थान बतलाया, जिस प्रकार इन्द्रके लिए अमरावती है उसी प्रकार उन लोगोंके लिए, दक्षिण समुद्रके तीरपर त्रिकूट पर्वत बतलाया ॥ २१ ॥ २२ ॥ उन्होंने कहा, उसके अतिरिक्त दूसरा सुवेल नामका पर्वत है। उस त्रिकूट पर्वतके बीचवाले शिखरपर, जो मेघके समान है जहां पक्षी भी नहीं पहुँच सकता, जिसके चारों ओर टंकसे काट दिया गया है, वहां तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी लंका नामकी नगरी इन्द्रकी आज्ञासे मैंने बनायी है। जिस नगरीके चारों ओर सोनेकी चार दीवारी है और सोनेका तोरण बना हुआ है ॥ २३ ॥ २५ ॥ अजेय राक्षसश्रेष्ठो, आपलोग वहाँ निवास करें, जिस प्रकार अमरावतीमें देवताओंके साथ इन्द्र निवास करते हैं ॥ २६ ॥ अनेक राक्षसोंके साथ आपलोग जब लंका नगरीमें रहेंगे उस समय शत्रुओंसे अजेय हो जायँगे ॥ २७ ॥ विश्वकर्माके वचन सुनकर हजारों अनुचरोंके साथ वे राक्षस उस नगरीमें जाकर निवास करने लगे ॥ २८ ॥ उस नगरीकी खाई और चारदीवारी मजबूत थी, उसमें सैकड़ों सुवर्णके गृह बने हुए थे। वहाँ जाकर वे राक्षस प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे ॥ २९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव । नर्मदा नाम गन्धर्वी बभूव रघुनन्दन ॥३०॥
तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीद्ध्रीश्रीकीर्तिसमद्युति । ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ॥३१॥
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ॥३२॥
दत्ता मात्रा महाभागा नक्षत्रे भगदैवते । कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ॥३३॥
चिक्रीडुः सह भार्याभिरप्सरोभिरिवामराः । ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥३४॥
स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत् । वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥३५॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च । अनला चाभवत्कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी ॥३६॥
सुमालिनोऽपि भार्यासीत्पूर्णचन्द्रनिभानना । नाम्ना केतुमती राम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥३७॥
सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः । केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥३८॥
प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालिकामुखः । धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ॥३९॥
संह्रादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः । राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसि च शुचिस्मिताः ।
कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥४०॥
मालेस्तु वसुदा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी । भार्यासीत्पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षी वरोपमा ॥४१॥
सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामास यत्प्रभो । अपत्यं कथ्यमानं तु मया त्वं शृणु राघव ॥४२॥
अनलश्चानिलश्चैव हरः संपातिरेव च । एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ॥४३॥

उसी समय नर्मदा नामकी एक गन्धर्वस्त्री थी ॥ ३० ॥ उसकी तीन कन्याएँ थीं, जो ह्री, श्री और कीर्तिके समान थीं, उस गन्धर्वस्त्रीने क्रमके अनुसार पूर्ण चन्द्रानन वे तीनों कन्याएँ उनको दीं। बड़ी बड़ेको, बिचली बिचलेको और छोटी छोटेको, इस प्रकार वे तीनों राक्षसकन्याएँ तीनों राक्षसोंको ब्याही गयीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ माताने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उन कन्याओंका दान किया। राम, सुकेशके तीनों पुत्र ब्याह करके अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करने लगे, जिस प्रकार देवता अप्सराओंके साथ क्रीडा करते हैं। माल्यवानकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था और वह सुन्दरी थी भी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ माल्यवानने उससे जो सन्तान उत्पन्नकी उनको जानो, वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त, उन्मत्त, ये पुत्र तथा अनला नामकी एक कन्या सुन्दरीके गर्भसे उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सुमालीकी स्त्री भी पूर्ण चन्द्रानन थी, उसका नाम केतुमती था, वह सुमालीको प्राणोंसे भी प्रिय थी ॥ ३७ ॥ महाराज, सुमाली राक्षसने केतुमतीसे जो पुत्र उत्पन्न किये उन्हें क्रमसे सुनो ॥ ३८ ॥ प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबलीसुपार्श्व, संह्रादी, प्रघस, भासकर्ण ये पुत्र तथा राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी ये कन्याएँ सुमालीके हुईं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

मालीकी गन्धर्वस्त्रीका नाम वसुदा था, वह सुन्दरी थी उसके नेत्र कमल-पत्रके समान थे, उसकी चितवन मधुर थी, वह यक्षकन्याओंके समान थी ॥ ४१ ॥ सुमालीके छोटे भाई मालीने इस स्त्रीसे जो सन्तान उत्पन्न की, रामचन्द्र, उन्हें मैं कहता हूँ सुनो ॥ ४२ ॥ अनल, अनिल, हर और सम्पाति ये राक्षस मालीके पुत्र हैं और ये विभीषणके सलाहकार थे ॥ ४३ ॥ ये तीनों राक्षस अपने पराक्रमके घमण्डमें

ततस्तु ते राक्षसपुंगवास्त्रयो निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः ।
सुरान्सहेन्द्रानृषिनागयक्षान्बबाधिरे तान्बहुवीर्यदर्पिताः ॥४४॥
जगद्भ्रमन्तोऽनिलवद्दुरासदा रणेषु मृत्युप्रतिमानतेजसः ।
वरप्रदानादपि गर्विता भृशं क्रतुक्रियाणां प्रशमंकराः सदा ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

षष्ठः सर्गः ६

तैर्वध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः । भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम् ॥१॥
जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम् । आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम् ॥२॥
ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम् । ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ॥३॥
सुकेशपुत्रैर्भगवन्पितामहवरोद्धतैः । प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः ॥४॥
शरण्यान्यशरण्यानि आश्रमाणि कृतानि नः । स्वर्गाच्च देवान्प्रच्याव्य स्वर्गे क्रीडन्ति देववत् ॥५॥
अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम् । अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ॥६॥
इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसः । बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरःसराः ॥७॥

आकर सैकड़ों पुत्रोंके साथ इन्द्रप्रभृति देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षोंको पीड़ा देने लगे ॥ ४४ ॥ ये राक्षस वायुके समान सदा संसारमें भ्रमण किया करते थे, युद्धमें अजेय थे, मृत्युके समान इनका तेज भयंकर था । वरके कारण इनका घमंड बढ़ गया था ये यज्ञोंमें विघ्न डाला करते थे ॥ ४५ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तर काण्डका पाचवां सर्ग समाप्त ।

इन राक्षसोंसे पीड़ित होकर देवता, ऋषि और तपस्वी भयभीत होकर देव-देव महेश्वरकी शरण गये ॥ १ ॥ वे जगत्‌का सृष्टि और प्रलय करनेवाले हैं, स्वयं अजन्मा हैं, अव्यक्त स्वरूप हैं, समस्त लोकोंके आधार हैं, आराध्य हैं और ज्ञान-दाता परमगुरु हैं ॥ २ ॥ कामारि त्रिपुरारि त्रिलोचनके पास आकरके देवता हाथ जोड़कर बोले, भयके कारण वे साफ बोल नहीं सकते थे ॥ ३ ॥ पितामहसे वर पाकर गर्वित सुकेशपुत्रोंके द्वारा प्रजाध्यक्ष, समस्त प्रजा पीड़ित हो रही है, शत्रुके अत्याचारोंको सहा ही है ॥ ४ ॥ हमलोगोंके आश्रम, जहाँ हमलोग रहते थे, अतिथियोंको आश्रय मिलता था वहाँ भी हमलोगोंके लिए स्थान नहीं है । स्वर्गसे देवताओंको निकालकर ये राक्षस देवताके समान स्वयं वहाँ रहते हैं ॥ ५ ॥ मैं विष्णु हूँ, रुद्र हूँ, ब्रह्मा हूँ, इन्द्र हूँ, मैं यम हूँ, वरुण हूँ, चन्द्र हूँ, सूर्य हूँ, ऐसा ही वे समझते हैं । माली, सुमाली और माल्यवान् तथा उनके साथ रहनेवाले युद्धोन्मत्त होकर हमलोगोंको दुःख देते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ देव, इन राक्षसोंके कारण हमलोग भयभीत हो रहे हैं, आप अभय दान दें, आप कालरूप धारण करके

तन्नो देव भयार्तानामभयं दातुमर्हसि । अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देव कण्टकान् ॥८॥
इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः । सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान्प्रभुः ॥९॥
अहं तान्न हनिष्यामि ममावध्या हि ते सुराः । किं तु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान्निहनिष्यति ॥१०॥
एतमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षयः । गच्छध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान्प्रभुः ॥११॥
ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् । विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः ॥१२॥
शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च । ऊचुः संभ्रान्तवद्वाक्यं सुकेशतनयान्प्रति ॥१३॥
सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसंनिभैः । आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ॥१४॥
लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता । तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान्नः क्षणदाचराः ॥१५॥
स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान्मधुसूदन । शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ॥१६॥
चक्रकृत्तास्यकमलान्निवेदय यमाय वै । भयेष्वभयदोऽस्माकं नान्योऽस्ति भवता विना ॥१७॥
राक्षसान्समरे हृष्टान्सानुबन्धान्मदोद्धतान् । नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥१८॥
इत्येवं दैवतैरुक्तो देवदेवो जनार्दनः । अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ॥१९॥
सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम् । तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥२०॥
तानहं समतिक्रान्तमर्यादान्राक्षसाधमान् । निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ॥२१॥

देव, शत्रुओंका नाश कीजिए, ॥ ८ ॥ देवताओंके इस प्रकार कहनेपर नीललोहित कपर्दी शिव देवताओं-से बोले, शिवका सुकेशके प्रति पक्षपात था, उसे उन्होंने जीवित किया था इसलिए वे उससे प्रेम करते थे ॥ ९ ॥ मैं उन राक्षसोंको नहीं मार सकूँगा, क्योंकि वे मेरे अवध्य हैं, मैंने उनकी रक्षा की है। पर मैं आप-लोगोंको वह उपाय बतलाऊँगा जिससे वे मारे जाँयगे ॥ १० ॥ इसी उपायके द्वारा आपलोग विष्णुकी शरण जाँय, प्रभु विष्णु अवश्य ही इन राक्षसोंका वध करेंगे ॥ ११ ॥ अनन्तर राक्षसोंके भयसे दुःखी वे देवता आदि जय-जयकारके द्वारा शिवका अभिनन्दन करके विष्णुके समीप आये ॥ १२ ॥ शंखचक्रधारी विष्णुको प्रणाम करके तथा उनका सम्मान करके सुकेशके पुत्रोंके भयसे घबड़ाये हुए वे देवता आदि बोले ॥ १३ ॥ देव, सुकेशके तीनों पुत्रोंने जो त्रेताग्निके समान सदा जलते वाले हैं वरदानके बलसे बलवान होकर हमलोगोंके स्थान छीन लिये हैं ॥ १४ ॥ त्रिकूट पर्वतपर लंका नामकी नगरी है जिसमें प्रवेश करना कठिन है, वहां रहकर वे राक्षस हम सबलोगोंको पीड़ा देते हैं ॥१५॥ मधुसूदन, हमलोगोंके कल्याणके लिए आप उनका वध करें, हम सब आपकी शरण आये हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ १६ ॥ इनके कमल-रूपी मुख चक्रसे काटकर आप यमराजको अर्पित करें। इस भयके समयमें हमलोगोंको निर्भय करने-वाला आपके अतिरिक्त दूसरा नहीं है ॥ १७ ॥ मदमत्त होकर प्रसन्नतापूर्वक भ्रमण करनेवाले राक्षसोंका उनके अनुचरोंके साथ युद्धमें आप वध करें और हमलोगोंका भय दूर करें, जिस प्रकार सूर्य कुहासा नष्ट कर देता है ॥ १८ ॥ देवताओंके ऐसा कहनेपर शत्रुओंको भय देनेवाले देव-देव जनार्दन उनको अभय देकर बोले ॥ १९ ॥ मैं सुकेशको जानता हूँ जो शिवके वरसे बलवान् बना है, उसके पुत्रोंको भी जानता हूँ, जिनमें सबसे बड़ा माल्यवान है ॥ २० ॥ उन लोगोंने मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, उन नीच राक्षसों-

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना । यथावासं ययुर्हृष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ॥२२॥
विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः । श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥२३॥
अमरा ऋषयश्चैव संगम्य किल शंकरम् । अस्मद्वधं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ॥२४॥
सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः । बाधन्तेऽस्मान्समुद्दृप्ता घोररूपाः पदेपदे ॥२५॥
राक्षसैरभिभूताः स्मो न शक्ताः स्म प्रजापते । स्वेषु सद्मसु संस्थातुं भयात्तेषां दुरात्मनाम् ॥२६॥
तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन । राक्षसान्हुंकृतेनैव दह प्रदहतां वर ॥२७॥
इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः । शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥२८॥
अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे । मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान्वै निहनिष्यति ॥२९॥
योऽसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः । हरिर्नारायणः श्रीमान्शरणं तं प्रपद्यथ ॥३०॥
हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च । नारायणालयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥३१॥
ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः । सुरारींस्तान्हनिष्यामि सुरा भवत निर्भयाः ॥३२॥
देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ । प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं चिन्त्यतां यदिह क्षमम् ॥३३॥
हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम् । नमुचिः कालनेमिश्च संह्लादो वीरसत्तमः ॥३४॥

को क्रोध करके मैं मारूँगा, देवताओं, आपलोग निश्चिन्त हो जाँय ॥ २१ ॥ प्रभु विष्णु, विष्णुके ऐसा कहने-पर वे सब देवता अपने-अपने स्थानपर गये वे सब प्रसन्न थे और विष्णुकी प्रशंसा करते जाते थे ॥ २२ ॥

देवताओंके इस उद्योगको निशाचर माल्यवानने भी सुना । वह अपने वीर दोनों भाइयोंसे इस प्रकार बोला ॥ २३ ॥ देवता और ऋषि दोनों मिलकर शिवके यहाँ गये थे, वे हमलोगोंका वध चाहते हैं, इसी इच्छासे उन लोगोंने शिवसे ऐसा कहा था ॥ २४ ॥ देव, सुकेशके पुत्र वरदान पाकर बड़े उद्धत हो गये है, अहंकारी और भयंकर वे राक्षस प्रतिक्षण हमलोगोंको पीड़ा पहुँचाते हैं ॥ २५ ॥ हमलोग राक्षसोंसे शङ्कित हो गये हैं, उन दुरात्माओंके भयसे हमलोग अपने घरमें भी नहीं रह सकते ॥ २६ ॥ अतएव त्रिलोचन, हमलोगोंके कल्याणके लिए आप उनका वध करें, हुँकारके द्वारा आप उनको जला दें, क्योंकि आप जलानेवालोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २७ ॥ देवताओंके ये वचन सुनकर अन्धकसूदन शिव सिर कँपाकर तथा हाथ पटककर इस प्रकार बोले ॥ २८ ॥ देवताओ, युद्धमें सुकेशके पुत्रोंको मैं नहीं मार सकता मैं आपलोगोंको उपाय बतलाता हूँ जिससे वे मारे जा सकते हैं ॥ २९ ॥ चक्र और गदाधारण करनेवाले जो जनार्दन हैं, जो पीतवस्त्रधारी हैं जो हरि और नारायण कहे जाते हैं, उनकी शरण आपलोग जाँय ॥ ३० ॥ शिवसे उपाय जानकर तथा कामशत्रु शिवको प्रणाम करके वे नारायणके स्थानपर गये और उनसे उन लोगोंने सब कहा ॥ ३१ ॥ विष्णुने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा कि मैं उन देव-शत्रुओंका वध करूँगा आपलोग निर्भय हो जाँय ॥ ३२ ॥ हे राक्षसराजों, भयभीत देवताओंसे विष्णुने हमलोगोंके वध करनेकी प्रतिज्ञा की है, अब जो उचित हो वह आपलोग निश्चय करें ॥ ३३ ॥ हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवशत्रुओंकी मृत्यु इसी नारायणके द्वारा हुई है । नमुचि, कालनेमि, वीरश्रेष्ठ संह्लाद, मायावी राधेय, धार्मिक लोकपाल यमलार्जुन, हार्दिक्य शुम्भ और निशुम्भ आदि महाबली महाप्राण असुर दानव युद्धक्षेत्रमें

राधेयो बहुमायी च लोकपालोऽथ धार्मिकः । यमलार्जुनौ च हार्दिक्यः शुम्भश्चैव निशुम्भकः॥३५॥
असुरा दानवाश्चैव सत्ववन्तो महाबलाः । सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते पराजिताः ॥३६॥
सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वे मायाविदस्तथा । सर्वे सर्वास्त्रकुशलाः सर्वे शत्रुभयंकराः ॥३७॥
नारायणेन निहताः शतशोऽथ सहस्रशः । एतज्ज्ञात्वा तु सर्वेषां क्षमं कर्तुमिहार्हथ ।
दुःखं नारायणं जेतुं यो नो हन्तुमिहेच्छति ॥३८॥
ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः । ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठमश्विनाविव वासवम् ॥३९॥
स्वधीतं दत्तमिष्टं च ऐश्वर्यं परिपालितम् । आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः स्थापितः पथि ॥४०॥
देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रैः समवगाह्य च । जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ॥४१॥
नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा । अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वे बिभ्यति सर्वदा ॥४२॥
विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर । देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ॥४३॥
तस्मादद्यैव सहिता सर्वेऽन्योन्यसमावृताः । देवानेव जिघांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः ॥४४॥
एवं संमन्त्र्य बलिनः सर्वसैन्यसमुपासिताः । उद्योगं घोषयित्वा तु सर्वे नैर्ऋतपुंगवा ॥४५॥
युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जम्भवृत्रादयो यथा । इति ते राम संमन्त्र्य सर्वोद्योगेन राक्षसाः ॥४६॥
युद्धाय निर्ययुः सर्वे महाकाया महाबलाः । स्यन्दनैर्वारणैश्चैव हयैश्च करिसंनिभैः ॥४७॥
खरैर्गोभिरथोष्ट्रैश्च शिशुमारैर्भुजंगमैः । मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहंगैर्गरुडोपमैः ॥४८॥

जाकर अपराजित नहीं सुने गये हैं। अर्थात् वे सभी मारे गये हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ये सभी सैकड़ों यज्ञों-के अनुष्ठान करनेवाले थे, सभी माया जाननेवाले थे, सभी अस्त्रोंके ज्ञाता थे और शत्रुओंको भयभीत करनेवाले थे ॥ ३७ ॥ ऐसे सैकड़ों हजारोंको नारायणने मारा था। जो नारायण हमलोगोंको मारना चाहते हैं उनको जीतना कठिन है यह जानकर जो उचित हो वह आपलोग करें ॥ ३८ ॥ बड़े भाई माल्य-वानके वचन सुनकर माली और सुमाली बड़े भाईसे बोले, मानो अश्विनीकुमार इन्द्रसे बोल रहे हों ॥ ३९ ॥ हमलोगोंने स्वाध्याय किया है, दान दिया है, यज्ञ किया है और ऐश्वर्यभोग किया है। आयु और आरोग्य हमलोगोंने पाया है, धर्मको मर्यादामें स्थापित किया है ॥ ४० ॥ दुष्प्रवेश देवसमुद्रमें हम-लोगोंने शस्त्रोंके द्वारा प्रवेश किया है, सर्वश्रेष्ठ शत्रुओंको हमलोगोंने जीता है, अतएव हमलोगोंको मृत्यु का भय नहीं है। अर्थात् जो कुछ करना था कर चुके हैं अब मृत्यु भी हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं ॥ ४१ ॥ नारायण, शिव, यम और इन्द्र आदि देवता युद्धमें हमलोगोंके सामने खड़े होते भयभीत होते हैं ॥ ४२ ॥ राक्षसेश्वर, हमलोगोंसे विष्णुके द्वेषका कोई कारण नहीं है, देवताओंके ही कारण हमलोगोंके विरुद्ध विष्णुका मन हुआ है ॥ ४३ ॥ अतएव हम सबलोग एकत्र होकर आज ही देवताओंका वध करें, जिनके कारण यह सब झंझट उत्पन्न हुआ है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार निश्चय करके रक्षित सेना तथा अन्य राक्षस जम्भवृत्र आदिने अपने उद्योगकी घोषणा की और वे सब युद्धके लिए निकले। राम, इस प्रकार निश्चयकरके तथा समस्त उद्योगोंके साथ महाबली विशालशरीर राक्षस युद्धके लिए निकले। रथ, हाथी, हाथी के समान घोड़े, गधा, बैल, ऊँट, हंस, सर्प, मगर, कच्छप, मछली, गरुड़के समान पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर

सिंहैर्व्याघ्रवराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि । त्यक्त्वा लङ्कां गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ॥४९॥
प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः । लङ्काविपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ॥५०॥
भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः । रथोत्तमैरुह्यमानाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥५१॥
प्रयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोकं प्रयत्नतः । रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ॥५२॥
भौमाश्चैवान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः । उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभावाय समुत्थिताः ॥५३॥
अस्थीनि मेघा ववृषुरुष्णं शोणितमेव च । वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ भूधराः ॥५४॥
अट्टहासान्विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः । वाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं घोरदर्शनाः ॥५५॥
संपतन्त्यथ भूतानि दृश्यन्ते च यथाक्रमम् । गृध्रचक्रं महच्चात्र प्रज्वालोद्गारिभिर्मुखैः ॥५६॥
रक्षोगणस्योपरिष्टात्परिभ्रमति कालवत् । कपोता रक्तपादाश्च सारिका विद्रुता ययुः ॥५७॥
काका वाश्यन्ति तत्रैव विडालाय द्विपादिकाः । उत्पातांस्ताननादृत्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥५८॥
यान्त्येव न निवर्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः । माल्यवांश्च सुमाली च माली च सुमहाबलः ॥५९॥
पुरःसरा राक्षसानां ज्वलिता इव पावकाः । माल्यवन्तं तु ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ॥६०॥
निशाचरा आश्रयन्ति धातारमिव देवताः । तद्बलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ॥६१॥
जयेप्सया देवलोकं ययौ मालिवशे स्थितम् । राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ॥६२॥

नीलगाय, चमरीगौ इन वाहनोंपर चढ़कर बलोन्मत्त राक्षस लंका छोड़कर युद्धके लिए चले ॥४८॥ ४९ ॥ इन देवशत्रुओंने युद्धके लिए देवलोककी यात्रा की। जो जीव लंकामें रह गये थे उन लोगोंने लंकामें कुशकुन देखे, जो भयकी सूचना देनेवाले थे इन कुशकुनोंसे वे भयभीत हो गये। इस प्रकार सैकड़ों हजारों रथोंपर बैठकर वे राक्षस शीघ्रतापूर्वक देवलोक जानेके लिए उपस्थित हुए और देवता राक्षसोंके मार्गसे हटने लगे॥ ५० ॥ ५२ ॥ कालसे प्रेरित अतएव भयंकर पृथिवी और आकाशमें उत्पात होने लगे जो राक्षसोंके विनाशके सूचक थे ॥ ५३ ॥ मेघ हड्डी तथा गर्म रुधिर बरसाने लगे, समुद्रोंने तीरकी मर्यादा तोड़ दी, और पर्वत काँपने लगे ॥ ५४ ॥ देखनेमें भयंकर शृगालिन क्रूर स्वरसे बोलने लगीं, मेघके समान बोलनेवाले प्राणी अट्टहास करने लगे ॥ ५५ ॥ पृथिवी आदि भूत गिरते हुएसे मालूम पड़ने लगे, विशाल गृद्धोंका समूह, जिनके मुँहसे अग्निकी ज्वाला निकल रही थी, राक्षसोंके ऊपर कालके समान घूमने लगे। कबूतर, लाल पैरवाली सारिका दौड़ती चल रही हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कौआ, बिल्ली आदि क्रूर स्वरसे बोल रहे हैं, पर बलोन्मत्त राक्षसोंने इन उत्पातोंकी ओर ध्यान नहीं दिया ॥ ५८ ॥ इन उत्पातोंको देखकर भी वे युद्धके लिए चले ही गये लौटे नहीं। क्योंकि वे मृत्युपाशसे बँधे हुए थे। माल्यवान्, सुमाली और माली ये राक्षसोंके आगे-आगे जा रहे थे, मानों दहकते हुए अंगारे हों, माल्यवान् पर्वके तुल्य माल्यवान् नामक राक्षसके आश्रयमें सभी राक्षस थे, जिस प्रकार देवता ब्रह्माके आश्रयमें रहते हैं। महामेघके समान गर्जन करनेवाली वह राक्षसोंकी सेना मालीके अधीन होकर देवलोक जीतनेके लिए चली। देवदूतके मुँहसे राक्षसोंका उद्योग जानकर प्रभु नारायणने भी युद्ध करनेकी इच्छा की। अस्त्र तथा तरकस लेकर वे गरुड़पर बैठे। दिव्य कवच उन्होंने धारण किया जो हजारों सूर्यके समान प्रकाशमान था, बाणोंसे भरे

देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः । स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः ॥६३॥
आसाद्य कवचं दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति । आबध्य शरसंपूर्णौ इषुधी विमले तदा ॥६४॥
श्रोणिसूत्रं च खड्गं च विमलं कमलेक्षणः । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गांश्चैव वरायुधान् ॥६५॥
संपूर्णं गिरिसंकाशं वैनतेयमथास्थितः । राक्षसानामभावाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ॥६६॥
सुपर्णपृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः । काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सतडित्तोयदो यथा ॥६७॥

स सिद्धदेवर्षिमहोरगैश्च गन्धर्वयक्षैरुपगीयमानः ।
समाससादासुरसैन्यशत्रुश्चक्रासिशार्ङ्गायुधशङ्खपाणिः ॥६८॥
सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।
चचाल तद्राक्षसराजसैन्यं चलोपलं नीलमिवाचलाग्रम् ॥६९॥
ततः शितैः शोणितमांसरूषितैर्युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ।
निशाचराः संपरिवार्य माधवं वरायुधैर्निर्बिभिदुः सहस्रशः ॥७०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तमः सर्गः ७

नारायणगिरिं ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः । अर्दयन्तोऽस्त्रवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥१॥
श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तंचरोत्तमैः । वृत्तोऽञ्जनगिरीवायं वर्षमाणैः पयोधरैः ॥२॥

दो तरकस उन्होंने बाँधे ॥ ५९ ॥ ६४ ॥ कमरपट्टा, निर्मल तलवार, शंख, चक्र, गदा, धनुष और बाण तथा अन्य उत्तम अस्त्रोंको लेकर प्रभु विष्णु पर्वतके समान ऊँचे गरुड़पर बैठे और राक्षसोंके विनाशके लिए शीघ्र प्रस्थित हुए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ पीताम्बरधारी श्याम हरि गरुड़की पीठपर ऐसे मालूम होते थे, जैसे सुवर्णपर्वतपर विद्युत युक्त मेघ हो ॥ ६७ ॥ सिद्ध देवर्षि, सर्प, गन्धर्व और यक्षोंने उनकी स्तुति की। चक्र गदा शंख धनुष आदि लेकर वे राक्षसी सेनाके शत्रु युद्धस्थानमें गये ॥ ६८ ॥ गरुड़की पाँखकी हवा से राक्षसी सेना काँप गयी, उनकी पताका चक्कर खाने लगी, उनके अस्त्र-शस्त्र बिखर गये, वह राक्षससेना उस पर्वतशिखरके समान मालूम होती थी, जिसके पत्थर गिरते हों ॥ ६९ ॥ अनन्तर तीखे मांस रुधिर-से युक्त प्रलयाग्निके समान अस्त्रोंसे राक्षस माधवको घेरकर उन्हें छेदने लगे ॥ ७० ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छठा सर्ग समाप्त ।

राक्षसरूपी मेघ नारायणरूपी पर्वतपर गर्जकर अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे और उन्हें पीड़ित करने लगे, जिस प्रकार मेघ पर्वतपर वृष्टि करते हैं ॥ १ ॥ विष्णु उज्ज्वल श्याम वर्ण थे, राक्षस काले थे, उन्होंने उनको घेर लिया। मालूम होता था कि अञ्जन पर्वतको बरसनेवाले मेघोंने घेर लिया हो ॥ २ ॥ पतंग जिस प्रकार कारोमें घुसते हैं, मच्छर आगमें घुसते हैं, मधुके घड़ेमें जिस प्रकार मधुमक्खी घुसती है,

शलभा इव केदारं मशका इव पावकम्। यथामृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ॥३॥
तथा रक्षोधनुर्मुक्ता प्रजानिलमनोजवाः। हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ॥४॥
स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजमूर्धगाः। अश्वारोहास्तथाश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ॥५॥
राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टितोमरैः। निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायामा इव द्विजम् ॥६॥
निशाचरैस्ताड्यमानो मीनैरिव महोदधिः। शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ॥७॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रकल्पैर्मनोजवैः। चिच्छेद विष्णुर्निशितैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥८॥
विद्राव्य शरवर्षेण वर्षं वायुरिवोत्थितम्। पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ॥९॥
सोऽम्बुजो हरिणाध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट्। ररास भीमनिर्ह्रादस्त्रैलोक्यं व्यथयन्निव ॥१०॥
शङ्खराजरवः सोऽथ त्रासयामास राक्षसान्। मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥११॥
न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराभवन्। स्यन्दनेभ्यश्च्युता वीराः शङ्खरावितदुर्बलाः ॥१२॥
शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः। विदार्य तानि रक्षांसि सुपुङ्खा विविशुः क्षितिम् ॥१३॥
भिद्यमानाः शरैः संख्ये नारायणकरच्युतैः। निपेतू राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ॥१४॥
व्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्रकृतानि हि। असृक्क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः ॥१५॥
शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा। राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः ॥१६॥

तथा मगर समुद्रमें घुसते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंके धनुषसे छूटे हुए वज्रतुल्य तथा वायु और मनके समान वेगवान् बाण विष्णुके शरीरमें प्रवेश करते थे, अथवा प्रलयकालमें जिस प्रकार समस्त लोक उनके शरीरमें प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ रथसवार रथोंपर, हाथीसवार हाथीपर, घुड़सवार घोड़ापर तथा पैदल ऊँचे चढ़कर पर्वतके समान ऊँचे राक्षस, बाण, शक्ति, ऋष्टि तोमरसे विष्णुका सांस लेना बन्द कर दिया, जिस प्रकार प्राणायामसे ब्राह्मणोंका साँस लेना बन्द हो जाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ राक्षसोंने हरिको मारा, जिस प्रकार मछलियाँ समुद्रको मारती है। उन्होंने धनुष चढ़ाकर राक्षसोंपर बाण चलाया ॥ ७ ॥ हरि पूरा खींचकर बाण छोड़ते थे, वे बाण वज्रके समान कठोर और मनके समान वेगवान् थे। उन तीखे बाणों से विष्णुने सैकड़ों हजारों राक्षसोंको छेद डाला ॥ ८ ॥ बाणवृष्टिके द्वारा उन्होंने राक्षसोंको भगा दिया, जिस प्रकार वायु वृष्टिको हटा देती है। अनन्तर पुरुषोत्तम विष्णुने पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ ९ ॥ बड़े जोरसे विष्णुने उस शंखको बजाया उससे बड़ा ही भयंकर शब्द हुआ, जिससे त्रिलोक व्यथित हो गया ॥ १० ॥ उस शंखके शब्दसे राक्षस भयभीत हो गये जिस प्रकार बनमें सिंहके शब्दसे मतवाले हाथी भयभीत हो जाते हैं ॥ ११ ॥ घोड़े मैदानमें ठहर न सके, हाथियोंकी मस्ती झर गयी, शंखके शब्दसे भयभीत होकर वीर रथोंसे गिर पड़े ॥ १२ ॥ विष्णुके धनुषसे निकले वज्रमुख बाण राक्षसोंको छेदकर पंखके साथ पृथिवीमें घुस गये ॥ १३ ॥ नारायणके हाथसे छूटे बाणोंसे विधकर राक्षस पृथिवीपर गिरने लगे, जिस प्रकार वज्रसे आहत होकर पर्वत गिरते हैं ॥ १४ ॥ विष्णुचक्रसे बने घाव शत्रुके शरीरसे धाराप्रवाह रुधिर बहाते हैं, मालूम होता है कि पर्वत गेरूकी धारा बहा रहे हों ॥ १५ ॥ शंखके शब्द, धनुषके शब्द तथा राक्षसोंके शब्द, विष्णुके शब्दसे छिप जाते हैं ॥ १६ ॥ विष्णुने राक्षसोंके काँपते हुए

तेषां शिरोधरान्धूतान्छत्रध्वजधनूंषि च । रथान्पताकास्तूणीरांश्चिच्छेद स हरिः शरैः ॥१७॥
सूर्यादिव करा घोरा वार्योघा इव सागरात् । पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौघा इव चाम्बुदात् ॥१८॥
तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः । निर्धावन्तीषवस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥१९॥
शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा । द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥२०॥
द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारको यथा । मार्जारेण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाऽऽखवः ॥२१॥
तथा ते राक्षसाः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना । द्रवन्ति द्राविताश्चान्ये शायिताश्च महीतले ॥२२॥
राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः । वारिजं पूरयामास तोयदं सुरराडिव ॥२३॥
नारायणशरत्रस्तं शङ्खनादसुविह्वलम् । ययौ लङ्कामभिमुखं प्रभग्नं राक्षसं बलम् ॥२४॥
प्रभग्ने राक्षसबले नारायणशराहते । सुमाली शरवर्षेण निववार रणे हरिम् ॥२५॥
स तु तं छादयामास नीहार इव भास्करम् । राक्षसाः सत्त्वसंपन्नाः पुनर्धैर्यं समादधुः ॥२६॥
अथ सोऽभ्यपतद्रोषाद्राक्षसो बलदर्पितः । महानादं प्रकुर्वाणो राक्षसाञ्जीवयन्निव ॥२७॥
उत्क्षिप्य लम्बाभरणं धुन्वन्करमिव द्विपः । ररास राक्षसो हर्षात्सतडित्तोयदो यथा ॥२८॥
सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम् । चिच्छेद यन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ॥२९॥
तैरश्वैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः । इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः ॥३०॥

गले, बाण, ध्वजा, धनुष, रथ, पताका और तूणीर अपने बाणसे काट डाले ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सूर्यसे किरणें निकलती हैं, समुद्रसे जलधारा निकलती है, पर्वतसे बड़े-बड़े सर्प निकलते हैं, तथा मेघोंसे जलधारा निकलती हैं, उसी प्रकार नारायणके धनुषसे छूटे हुए नारायणप्रेरित सैकड़ों हजारों बाण निकल रहे हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ शरभसे सिंह, सिंहसे हाथी, हाथीसे बाघ, बाघसे चीता, चीतासे कुत्ता, कुत्तासे बिल्ली, बिल्लीसे साँप और साँपसे चूहे जिस प्रकार भागते हैं, उसी प्रकार प्रभुविष्णु विष्णुसे भयभीत होकर राक्षस भागने लगे, बहुतसे पृथिवीमें सो गये अर्थात् मर गये ॥ २० ॥ २२ ॥ हजारों राक्षसोंको मारकर मधुसूदनने शंख बजाया, जिस प्रकार इन्द्र-मेघ गर्जन करता है ॥ २३ ॥ नारायणके बाणोंसे भीत और शंखध्वनिसे व्याकुल वह राक्षससेना लंकाकी ओर भाग चली ॥ २४ ॥ नारायणके बाणसे पीड़ित होकर राक्षससेनाके भाग जानेपर सुमाली बाणवृष्टि करके नारायणको रोकने लगा ॥ २५ ॥ उसने बाणोंसे नारायणको ढँक दिया जिस प्रकार कुहासा सूर्यको ढँक लेता है । उस बली राक्षसोंमें पुनः उत्साह आया ॥ २६ ॥ बलोन्मत्त सुमाली राक्षसने क्रोध करके हरिपर आक्रमण किया वह भयंकर गर्जन कर रहा था, मानों राक्षसोंको जिला रहा हो ॥ २७ ॥ जिस प्रकार हाथी सूँड पटकता है उसी प्रकार आभरणयुक्तकर—हाथ पटककर उस राक्षसने हर्षसे गर्जन किया, मानो विद्युत्युक्त मेघ गर्जता हो ॥२८॥ इस प्रकार गर्जते सुमालीका सिर, जिसमें कुण्डल चमक रहा था और उसके सारथिका सिर नारायणने काट डाले, इससे उसके रथके घोड़े इधर-उधर भागने लगे ॥ २९ ॥ घोड़ोंके इधर-उधर रथ लेकर भागनेके कारण सुमाली भी इधर-उधर घूमने लगा । जिस प्रकार इन्द्रियरूपी घोड़ोंके पथभ्रष्ट होनेपर अधीर मनुष्य भटकने लगता है ॥ ३० ॥ महाबाहु विष्णु रणक्षेत्रमें आकर आक्रमण करने लगे, घोड़े सुमाली

ततो विष्णुं महाबाहुं प्रतपन्तं रणाजिरे । हृते सुमालेरश्वैश्च रथे विष्णुरथं प्रति ।
माली चाभ्यद्रवद्युक्तः प्रगृह्य स शरासनम् ॥३१॥
मालेर्धनुश्च्युता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः । विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चं पत्ररथा इव ॥३२॥
अर्द्यमानः शरैः सोऽथ मालिमुक्तैः सहस्रशः । चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ॥३३॥
अथ मौर्वीस्वनं कृत्वा भगवान्भूतभावनः । मालिनं प्रति बाणौघान्ससर्जासिगदाधरः ॥३४॥
ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः । पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव सुधारसम् ॥३५॥
मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः । मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत् ॥३६॥
विरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तंचरोत्तमः । आपुप्लुवे गदापाणिर्गिर्यग्रादिव केसरी ॥३७॥
गदया गरुडेशानमीशानमिव चान्तकः । ललाटदेशेऽभ्यहनद्वज्रेणेन्द्रो यथाचलम् ॥३८॥
गदयाभिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम् । रणात्पराङ्मुखं देवं कृतवान्वेदनातुरः ॥३९॥
पराङ्मुखे कृते देवे मालिना गरुडेन वै । उदतिष्ठन्महाञ्शब्दो रक्षसामभिनर्दताम् ॥४०॥
रक्षसां रुवतां रावं श्रुत्वा हरिहयानुजः । तिर्यगास्थाय संक्रुद्धः पक्षीशे भगवान्हरिः ॥४१॥
पराङ्मुखोऽप्युत्ससर्ज मालेश्चक्रं जिघांसया । तत्सूर्यमण्डलाभासं स्वभासा भासयन्नभः ॥४२॥
कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् । तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रोत्कृत्तं विभीषणम् ।
पपात रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा ॥४३॥

के रथको लेकर भाग गये । उस समय मालीने धनुष लेकर विष्णुके रथपर आक्रमण किया ॥ ३१ ॥ मालीके धनुषसे निकले सुवर्णभूषित बाण विष्णुके शरीरमें प्रवेश करने लगे जिस प्रकार क्रौंच पर्वतमें पक्षी प्रवेश करते हैं ॥ ३२ ॥ मालिके छोड़े हजारों बाणोंसे पीड़ित होकर भी विष्णु क्षुभित नहीं हुए, जिस प्रकार जितेन्द्रिय मनुष्य मानसिक पीड़ासे व्याकुल नहीं होता ॥ ३३ ॥ अनन्तर तलवार और गदा धारण करनेवाले भूतभावन भगवानने मालीके प्रति अनेक बाण छोड़े ॥ ३४ ॥ वज्रके समान कठोर और विद्युत्के समान तीखे बाण मालिके देहमें घुस करके उसका रुधिरपान करने लगे, मानों सर्प अमृतपान करते हों ॥ ३५ ॥ शंखचक्रगदाधारीने मालिको हटाकर उसका मुकुट, ध्वजा, धनुष और घोड़ोंको काट गिराया ॥ ३६ ॥ राक्षसश्रेष्ठ मालि रथहीन होकर गदा लेकर रणक्षेत्रमें कूद पड़ा । जिस प्रकार सिंह पर्वतशिखरसे कूदता है ॥३७॥ उसने गदासे गरुड़के मस्तकपर मारा, जिस प्रकार यमराजने शिवको मारा था और इन्द्रने पर्वतको मारा था ॥३८॥ मालिके द्वारा गदासे आहत होकर गरुड़ बहुत व्यथित हुआ और वह नारायणको युद्धक्षेत्रसे हटा ले गया ॥ ३९ ॥ मालि और गरुड़के द्वारा विष्णुके रणक्षेत्रसे हटाये जानेपर राक्षस घोर गर्जन करने लगे, जिससे बड़ा कोलाहल हुआ ॥ ४० ॥ इन्द्रके छोटे भाई विष्णुने राक्षसोंके गर्जनका शब्द सुनकर क्रोध किया और वे गरुड़पर टेढ़े होकर बैठ गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकार पराङ्मुख होनेपर भी मालिको मारनेके लिए उन्होंने चक्र चलाया, जो सूर्यमण्डलके समान प्रकाशमान था, उसके प्रकाशसे आकाश प्रकाशित हो गया ॥४२॥ काल चक्रके समान उस चक्रने मालिका

ततः सुरैः संप्रहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः । सिंहनादरवो मुक्तः साधु दैवतिनाभिभिः ॥४४॥
मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि । सबलौ शोकसंतप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ ॥४५॥
गरुडस्तु समाश्वस्तः संनिवृत्य यथा पुरा । राक्षसान्द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ॥४६॥
चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः । लाङ्गलग्लपितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ॥४७॥
केचिच्चैवासिना छिन्नास्तथान्ये शरताडिताः । निपेतुरम्बरात्तूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ॥४८॥

नारायणोऽपीषुवराशनीभिर्विदारयामास धनुर्विमुक्तैः ।
नक्तंचरान्धूतविमुक्तकेशान्यथाशनीभिः सतडिन्महाभ्रः ॥४९॥
भिन्नातपत्रं पतमानशस्त्रं शरैरपध्वस्तविनीतवेषम् ।
विनिःसृतान्त्रं भयलोलनेत्रं बलं तदुन्मत्तनरं बभूव ॥५०॥
सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणां निशाचराणां सह कुञ्जराणाम् ।
रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ॥५१॥
ते वार्यमाणा हरिबाणजालैः स्वबाणजालानि समुत्सृजन्तः ।
धावन्ति नक्तंचरकालमेघा वायुप्रणुन्ना इव कालमेघाः ॥५२॥
चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः संचूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः ।
असिप्रहारैर्द्विविधा विभिन्नाः पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ॥५३॥

सिर गिरा दिया । चक्रसे कटा हुआ वह सिर बड़ा भयंकर था उससे रुधिर गिर रहा था, पहले समयके राहुके सिरके समान वह मालूम होता था ॥४३॥

इससे देवता बड़े प्रसन्न हुए, उन लोगोंने पूरा बल लगाकर सिंहनाद किया, और वे विष्णुको साधुवाद देने लगे ॥ ४४॥ मालिका मारा जाना देखकर सुमाली और माल्यवान् दोनों ही बड़े दुःखी हुए, ये सेनाके साथ लंकाकी ओर भाग गये ॥४५॥ गरुड़ भी आश्वास होकर लौटा और क्रोध करके पंखकी हवासे राक्षसोंको भगाने लगा ॥ ४६ ॥ जिनका मुखकमल चक्रसे कट गया है, गदासे जिनकी छाती चूर हो गयी है, हलसे जिनका गला मरोड़ दिया गया है, मूसलसे जिनका मस्तक फूट गया है, जो तलवारसे कट गये हैं, जो बाणसे घायल हुए हैं, वे राक्षस ऊपर समुद्रके जलमें गिरे ॥ ४७, ४८ ॥ नारायण भी धनुषसे छूटे वज्रतुल्य बाणोंसे राक्षसोंको मारने लगे, उन राक्षसोंके बाल खुल गये और बिखर गये थे । जिस प्रकार वज्रके लगनेसे मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥४९॥ उस राक्षसी सेनाका रूप उन्मत्तके समान हो गया, उनके छाते टूट गये, शस्त्र गिर पड़े, बाणोंसे उनका सुन्दरवेष नष्ट कर दिया गया । कइयोंकी आँतें निकल आयीं और भयसे आँखें चंचल हो गयीं ॥५०॥ सिंह-पीड़ित हाथियोंके समान प्राचीन सिंहके द्वारा पीड़ित राक्षसरूपी हाथियोंका शब्द—हाहाकार और वेग भागना एक साथ ही हुआ । अर्थात् विष्णुको देखते ही राक्षस हाय-हाय करते भागे ॥ ५१ ॥ विष्णुके बाणोंसे राक्षस ढँक गये, तथापि वे बाण चलाते रहे, वायुप्रेरित कालमेघके समान राक्षसरूपी मेघ दौड़ने लगे ॥५२॥ चक्रप्रहारसे राक्षसोंके सिर कट गये हैं, गदा-प्रहारसे उनके अंग चूर हो गये हैं और तलवारसे उनके दो टुकड़े हो गये हैं,

विलम्बमानैर्मणिहारकुण्डलैर्निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ।
निपात्यमानैर्ददृशे निरन्तरं निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

हन्यमाने बले तस्मिन्पद्मनाभेन पृष्ठतः । माल्यवान्संनिवृत्तोऽथ वेलामेत्य इवार्णवः ॥ १ ॥
संरक्तनयनः क्रोधाच्चलन्मौलिर्निशाचरः । पद्मनाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥
नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम् । अयुद्धमनसो भीतानस्मान्हंसि यथेतरः ॥ ३ ॥
पराङ्मुखवधं पापं यः करोति सुरेश्वर । स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥
युद्धश्रद्धाथवा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर । अहं स्थितोऽस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत्तव ॥ ५ ॥
माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तमिवाचलम् । उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ॥ ६ ॥
युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाभयम् । राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥ ७ ॥
प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया । सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥
देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरुहलोचनम् । शक्त्या बिभेद संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥

इस प्रकार राक्षस पर्वतके समान गिर रहे हैं ॥ ५३ ॥ नीलमेघके समान राक्षस मणिहार, कुण्डल आदि धारण किये हुए थे, वे निरन्तर गिराये जाने लगे, मानों नीलपर्वत ही गिराये जाते हों ॥५४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

विष्णु जब राक्षससेनाको मार रहे थे उस समय माल्यवान पीछेसे लौटकर आया जैसे समुद्र तीरपर जाकर लौट आता है ॥१॥ क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयी थीं, माथा हिल रहा था वह पुरुषोत्तम विष्णुसे इस प्रकार बोला ॥२॥ नारायण तुम पुराना क्षात्रधर्म नहीं जानते हो, अतः युद्ध करनेकी इच्छा न रखनेवाले भीत हमलोगोंको अर्थात् राक्षसोंको नीच मनुष्यके समान मार रहे हो ॥ ३ ॥ सुरेश्वर, युद्धसे पराङ्मुखका वध करके जो पाप करता है, वह मारनेवाला स्वर्ग नहीं पाता और पुण्यात्माओंका लोक नहीं पाता ॥४॥ शंखचक्रगदाधर, यदि तुम्हें युद्धका उत्साह हो तो मैं खड़ा हूँ अपना बल दिखाओ ॥५॥ माल्यवान् पर्वतके समान खड़े माल्यवान्को देखकर इन्द्रके छोटे भाई बली विष्णु राक्षसेन्द्र माल्यवान्से बोले ॥६॥ आप लोगोंके भयसे देवता भयभीत हो गये थे, उनको मैंने अभयदान दिया है मैंने राक्षसनाशकी प्रतिज्ञा की है उसीका पालन करता हूँ ॥७॥ अपने प्राण देकर भी मैं देवताओंका प्रिय कार्य सदा करता आया हूँ, अतएव मैं तुमलोगोंको मारूँगा, चाहे तुम पातालमें ही क्यों न चले जाओ ॥८॥ लालकमलके समान नेत्रवाले देव-देव विष्णु इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय राक्षसेन्द्रने क्रोध करके उनकी भुजाओंके मध्यमें शक्तिसे मारा ॥९॥ माल्यवान्की भुजासे छूटकर घण्टाका शब्द करती हुई शक्ति हरिकी

माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना । हरेरुरसि बभ्राज मेघस्थेव शतह्रदा ॥१०॥
ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः । माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥११॥
स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता । काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्महोल्केवाञ्जनाचलम् ॥१२॥
सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभारावभासिते । आपतद्राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ॥१३॥
तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद्विपुलं तमः । माल्यवान्पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥१४॥
ततः कालायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चितम् । प्रगृह्याभ्यहनद्देवं स्तनयोरन्तरे दृढम् ॥१५॥
तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् । ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ॥१६॥
ततोऽम्बरे महाञ्छब्दः साधु साध्विति चोत्थितः । आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत् ॥१७॥
वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् । व्यपोहद्बलवान्वायुः शुष्कपर्णचयं यथा ॥१८॥
द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् । सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ ॥१९॥
पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः । स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्कां ह्रिया वृतः ॥२०॥
एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण । बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ॥२१॥
अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः । त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥२२॥
सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम । स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ॥२३॥

छातीपर शोभित हुई, जिस प्रकार मेघमें विद्युत शोभित होती है ॥१०॥ शक्तिधर कार्तिकेयसे प्रेम करनेवाले विष्णुने उसी शक्तिको निकालकर माल्यवानको लक्ष्यकरके चलाया ॥११॥ विष्णुके हाथसे छूटी वह शक्ति कार्तिकेयके हाथसे छूटी शक्तिके समान राक्षसको मारनेके लिए चली, मानों उल्का अंजन पर्वतकी ओर जा रहा हो ॥ १२ ॥ हारोंके भारसे शोभित राक्षस-राजके विशाल वक्षस्थलपर वह शक्ति गिरी मानों पर्वतपर वज्र गिरा हो ॥१३॥ शक्तिके लगनेसे माल्यवानका कवच टूट गया और वह बेहोश हो गया पुनः अश्वस्थ होकर माल्यवान् पर्वतके समान अचल होकर खड़ा हुआ ॥ १४ ॥ राक्षसराजने इस्पात लोहेका शूल उठाया जिसमें बहुतसे काँटे लगे हुए थे, उससे विष्णुकी छातीमें जोरसे मारा ॥ १५ ॥ अनन्तर रणप्रिय राक्षसराजने विष्णुको घूँसासे मारा और वह एक धनुष पीछे हट गया ॥१६॥ उस समय आकाशमें साधु-साधुका कोलाहल होने लगा। राक्षसने विष्णुको मारकर गरुड़को मारा ॥ १७ ॥ अनन्तर गरुड़ने क्रोधकरके पंखकी हवासे राक्षसको विचलित कर दिया वह वहाँ ठहर न सका जिस प्रकार हवा सूखे पत्तेको उड़ा देती है ॥१८॥ गरुड़के पंखकी हवासे बड़े भाईको भगा देखकर सुमाली अपनी सेनाके साथ लंकाकी ओर चला ॥१९॥ माल्यवान् भी पंखकी हवासे विचलित होकर अपनी सेना एकत्र करके लज्जित होकर लंकाकी ओर चला ॥२०॥

कमल नेत्र राम, प्रधान सेनापतिके मारे जानेसे वे राक्षस युद्ध क्षेत्रसे भाग गये ॥ २१ ॥ विष्णुके बलसे पीड़ित होकर वे उनसे युद्ध न कर सके अतएव अपनी स्त्रियोंके साथ रहनेके लिये लंका छोड़कर पातालमें चले गये ॥ २२ ॥ सालकंटक वंशके प्रख्यात पराक्रमी राक्षस सुमालीके आश्रममें रहने लगे ॥ २३ ॥ रामचन्द्र, पुलस्त्यवंशी जिन राक्षसोंको तुमने मारा है उनसे तथा रावणसे भी सुमाली माल्य-।

ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः । सुमाली माल्यवान्माली ये च तेषां पुरःसराः ।
सर्व एते महाभागा रावणाद्बलवत्तराः ॥२४॥
न चान्यो राक्षसान्हन्ता सुरारीन्देवकण्टकान् । ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥२५॥
भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः । राक्षसान्हन्तुमुत्पन्नो ह्यजय्यः प्रभुरव्ययः ॥२६॥
नष्टधर्मव्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः । उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः ॥२७॥
एषा मया तव नराधिप राक्षसानामुत्पत्तिरद्य कथिता सकला यथावत् ।
भूयो निबोध रघुसत्तम रावणस्य जन्मप्रभावमतुलं ससुतस्य सर्वम् ॥२८॥
चिरात्सुमाली व्यचरद्रसातलं स राक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा ।
पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली ततस्तु लङ्कामवसद्धनेश्वरः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः । रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्ममिव श्रियम् ॥ २ ॥
राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन्वै महीतले । तदापश्यत्स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ॥ ३ ॥

वान् और माली बलवान थे ॥ २४ ॥ शंख चक्र गदाधारी विष्णुके अतिरिक्त देवशत्रु इन राक्षसोंको मारनेवाला दूसरा नहीं था ॥ २५ ॥ आप चतुर्भुज सनातन नारायण है, आप अव्यय प्रभु हैं। राक्षसोंका वध करनेके लिए आप उत्पन्न हुए हैं ॥ २६ ॥ धर्म व्यवस्था नष्ट करनेवाले राक्षसोंके वधके लिए समय समयपर प्रजापालक भगवान विष्णु उत्पन्न होते हैं। दस्यु रावण आदिका वध करनेके लिए शरणागत वत्सल वे उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥ राजन, इस प्रकार समस्त राक्षसोंकी उत्पत्ति आज मैंने आपसे कही, अब आप पुनः रावण तथा उसके पुत्रका जन्म तथा अनुलनीय प्रभाव आप सुनें ॥ २८ ॥ विष्णुके भयसे भीत होकर सुमाली नामका राक्षस बहुत दिनोंतक पातालमें पुत्रों और पौत्रोंके साथ रहा। उस समय लंकामें धनेशने निवास किया ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका आठवां सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

अनन्तर थोड़े दिनोंतक सुमाली नामका राक्षस, जो नील मेघके समान था, उज्ज्वल सुवर्णका कुण्डल धारण किये हुए था। कमलरहित लक्ष्मी तुल्य कन्याको लेकर पातालसे निकलकर मर्त्यलोकमें भ्रमण करने लगा ॥ १, २ ॥

वह राक्षस राज जिस समय पृथिवीमें भ्रमण कर रहा था, उस समय उसने पुष्पकपर चढ़कर धनेश्वरको जाते उसने देखा ॥ ३ ॥ देवतुल्य और अग्नितुल्य तेजस्वी धनेश्वर पुलस्त्य पुत्र अपने पिताको

गच्छन्तं पितरं द्रष्टुं पुलस्त्यतनयं विभुम् । तं दृष्ट्वामरसंकाशं गच्छन्तं पावकोपमम् ॥ ४ ॥
रसातलं प्रविष्टः सन्मर्त्यलोकात्सविस्मयः । इत्येवं चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः ॥ ५ ॥
किं कृत्वा श्रेय इत्येवं वर्धेमहि कथं वयम् । नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ॥ ६ ॥
राक्षसेन्द्रः स तु तदाचिन्तयत्सुमहामतिः । अथाब्रवीत्सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥ ७ ॥
पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते । प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः परिगृह्यसे ॥ ८ ॥
त्वत्कृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः । त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ॥ ९ ॥
कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् । न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ॥१०॥
मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव च दीयते । कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥११॥
सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम् । भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥१२॥
ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः । तेजसा भास्करसमो यादृशोऽयं धनेश्वरः ॥१३॥
सा तु तद्वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् । तत्र गत्वा च सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते ॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः । अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ॥१५॥
अविचिन्त्य तु तां वेलां दारुणां पितृगौरवात् । उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥१६॥
विलिखन्ती मुहुर्भूमिमङ्गुष्ठाग्रेण भामिनी । स तु तां वीक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥१७॥

देखनेको लिए जा रहे थे ॥ ४ ॥ राक्षसोंमें बुद्धिमान नीलमेघके समान काला और उज्ज्वल सुवर्ण कुण्डल धारण करनेवाला सुमाली मर्त्यलोकसे पातालमें जाकर इस प्रकार विचार करने लगा । "क्या करनेसे हम-लोगोंका कल्याण होगा किस प्रकार हमलोगों की वृद्धि होगी" ॥ ५ ॥ ६ ॥ बुद्धिमान् राक्षस राज इस प्रकार विचार करता हुआ कैकसी नामकी अपनी कन्यासे बोला ॥ ७ ॥ पुत्रि, अब तुम्हारे दानका समय आ गया है, तुम्हारा यौवन बीत रहा है । तुम स्वीकार न करोगी इस कारण कोई वर तुमको ग्रहण नहीं करता तुमसे व्याह करनेकी इच्छा प्रकट नहीं करता ॥ ८ ॥ धर्म बुद्धि हमलोग तुम्हारे व्याहके लिए चिन्तित हैं । तुम सब प्रकारसे गुणवती हो, तुम साक्षात् लक्ष्मीके समान हो ॥ ९ ॥ कौन कन्याको ग्रहण करेगा यह मालूम नहीं है, अतएव सम्मान चाहनेवाले पुरुषोंके लिए कन्याका पिता होना दुखदायी होता है ॥ १० ॥ माता-पिता तथा जहाँ कन्या दी जाती है वह इस प्रकार तीनों कुल कन्याको सदा सन्देह-में डाल देते हैं । कैसे कन्याका चरित्र शुद्ध बना रहेगा इसकी चिन्ता तीनोंको बनी रहती है ॥ ११ ॥ अतएव, पुत्रि, तुम स्वयं जाकर प्रजापति कुलमें उत्पन्न विश्रवा नामके मुनिको अपना पति बनाओ ॥ १२ ॥ पुत्रि, तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे, जैसा सूर्यके समान तेजस्वी यह धनेश्वर है इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥

वह कन्या पिताके वचन सुनकर तथा पिताके गौरवके कारण विश्रवा मुनि जहाँ तपस्या करते थे वहाँ जाकर रहने लगी ॥ १४ ॥ राम, इसी समय पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाने अग्निहोत्र किया, सायंकालका हवन किया, वे चौथे अग्निके समान तेजस्वी थे ॥ १५ ॥ पितामें भक्ति होनेके कारण उस कन्याने प्रदोष समयकी भयंकरताका विचार नहीं किया वह मुनिके सामने जाकर सिर झुकाकर खड़ी हो गयी ॥१६॥ अँगूठेके अग्रभागसे वह पृथिवीमें चिन्ह बनाने लगी । पूर्ण चन्द्रमुखी सुश्रोणी तथा अपने प्रकाशसे प्रका-

अब्रवीत्परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा। भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता।
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥१८॥
एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत्। आत्मप्रभावेण मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ॥१९॥
किं तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात्पितुरागताम्। कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥२०॥
स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह। विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ॥२१॥
सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातंगगामिनि। दारुणायां तु वेलायां यस्मात्त्वं मामुपस्थिता ॥२२॥
शृणु तस्मात्सुतान्भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यसि। दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान् ॥२३॥
प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान्क्रूरकर्मणः। सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥२४॥
भगवन्नीदृशान्पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः। नेच्छामि सुदुराचारान्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥२५॥
कन्यया त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुंगवः। उवाच कैकसीं भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम् ॥२६॥
पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने। मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च न संशयः ॥२७॥
एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित्। जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥२८॥
दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम्। ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥२९॥
तस्मिञ्जाते ततस्तस्मिन्सज्वालकवलाः शिवाः। क्रव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥३०॥
ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिःस्वनाः। प्रबभौ न च सूर्यो वै महोल्काश्चापतन्भुवि ॥३१॥

शित उस कन्याको देखकर उदार मुनि उससे बोले, भद्रे, तुम किसकी कन्या हो, कहाँसे यहाँ आयी हो क्या काम है, क्यों आयी हो यह सब शोभने, मुझसे कहो ॥ १७ ॥ १८ ॥

मुनिके ऐसा कहनेपर वह कन्या हाथ जोड़कर बोली, मुने, आप अपनी शक्तिसे मेरा अभिप्राय समझलें ॥ १९ ॥ ब्रह्मर्षि, मैं पिताकी आज्ञासे आपके पास आयी हूँ। मेरा नाम कैकसी है और सब बातें आप स्वयं जानलें ॥ २० ॥ मुनिने ध्यान किया पुनः वे बोले, भद्रे, तुम्हारे मनमें जो बात है वह मालूम हुई ॥ २१ ॥ मत्तगजगामिने, तुम मुझसे पुत्र चाहती हो। पर तुम भयंकर बेलामें मेरे पास आयी हो अतएव तुम्हारे पुत्र जैसे होंगे वह सुनलो, वे पुत्र क्रूर होंगे उनका आकार भयंकर होगा तथा वे भयंकर स्त्री-पुरुषोंके साथ रहना पसन्द करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ सुश्रोणि, तुम भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको उत्पन्न करोगी। मुनिके ये वचन सुनकर वह कन्या प्रणाम करके उनसे बोली, भगवान् ब्रह्मवादी आपके द्वारा ऐसे दुराचारी पुत्रोंका उत्पन्न होना मैं नहीं चाहती, अतएव आप प्रसन्न हों जिससे ऐसे पुत्र न हों ॥२४,२५॥ कन्या कैकसीके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्रवा पुनः उससे बोले, मानों चन्द्रमा रोहणीसे बोल रहे हों ॥२६॥ सुन्दरि, सबसे छोटा जो पुत्र होगा वह मेरे वंशके अनुरूप होगा, धर्मात्मा होगा इसमें सन्देह नहीं ॥२७॥ रामचन्द्र, इस तरह कुछ दिनोंके बीतनेपर उस कन्याने बीभत्स भयंकर राक्षसपुत्र उत्पन्न किये ॥२८॥ उसके दस मस्तक थे, लम्बे दाँत थे, बिलकुल काला था, लाल ओठ थे, बीस भुजाएँ थीं, बड़े मुँह थे, चमकीले बाल थे ॥२९॥ उसके उत्पन्न होनेके समय शृगालिन जिनके मुँहमें अंगारके साथ कौर था और अन्य मांस-भक्षी प्राणी बायीं ओरसे मण्डलाकार भ्रमण करने लगे ॥ ३० ॥ रुधिरकी वर्षा

चकम्पे जगती चैव ववुर्वाताः सुदारुणाः । अक्षोभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः ॥३२॥
अथ नामाकरोत्तस्य पितामहसमः पिता । दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥३३॥
तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः । प्रमाणाद्यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥३४॥
ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना । विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥३५॥
तस्मिञ्जाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह । नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तथा ।
वाक्यं चैवान्तरिक्षे च साधु साध्विति तत्तदा ॥३६॥
तौ तु तत्र महारण्ये ववृधाते महौजसौ । कुम्भकर्णदशग्रीवौ लोकोद्वेगकरौ तदा ॥३७॥
कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन्धर्मवत्सलान् । त्रैलोक्ये नित्यसंतुष्टो भक्षयन्विचचार ह ॥३८॥
विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः । स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥३९॥
अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् । आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ॥४०॥
तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा । आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाच ह ॥४१॥
पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसा वृतम् । भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥४२॥
दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम । यथा त्वमपि मे पुत्र भवेर्वैश्रवणोपमः ॥४३॥
मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् । अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत्तदा ॥४४॥

होने लगी, मेघ कठोर गर्जन करने लगे, सूर्यका प्रकाश धीमा पड़ गया, उल्कायें गिरने लगीं ॥३१॥ पृथिवी काँपने लगी, प्रखर वायु चलने लगी, नदीनाथ समुद्र जो अक्षोभ्य था वह भी क्षुभित हो गया ॥३२॥ ब्रह्मातुल्य पिताने उस पुत्रका नामकरण किया । उन्होंने कहा यह दसग्रीवाके साथ उत्पन्न हुआ है इस कारण इसका नाम दसग्रीव होगा ॥३३॥ उसके पश्चात् महाबली कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ, जिसके समान विशाल यहाँ कुछ भी नहीं है ॥३४॥ अनन्तर विकृत मुँहवाली सूर्पनखा उत्पन्न हुई । विभीषण कैकसीका सबसे छोटा पुत्र हुआ, वह धर्मात्मा था ॥ ३५ ॥ विभीषणके उत्पन्न होनेपर आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई, आकाशमें देवताओंने दुन्दुभि बजायी और साधु-साधु कहा ॥३६॥ उस महावनमें दसग्रीव और कुम्भकर्ण बढ़ने लगे । वे बड़े बली और लोगोंको पीड़ा देनेवाले थे ॥३७॥ कुम्भकर्ण प्रमादी था, अधिक खानेपर भी वह भूखा ही रहता था, वह धर्मात्मा ऋषियोंको खाता हुआ त्रिलोकमें विचरण करने लगा ॥३८॥ विभीषण धर्मात्मा था, वह धर्मपूर्वक रहता था, स्वाध्याय और नियमित आहार करता था तथा इन्द्रियोंको अपने अधीन रखता था ॥३९॥

अनन्तर कुछ दिनोंके बाद धनेश्वर वैश्रवणदेव पिताका दर्शन करनेके लिए पुष्पक विमानपर आये ॥४०॥ तेजसे प्रकाशमान धनेश्वरको देखकर राक्षसी कैकसी अपने पुत्र दसग्रीवके पास आयी और उससे बोली ॥४१॥ पुत्र, अपने भाई वैश्रवणको देखो, कैसा तेजस्वी है । यद्यपि भाई होनेके कारण तुम दोनों समान हो, तथापि तुम अपनेको देखो, कैसे हो ॥४२॥ अमित पराक्रमी, दसग्रीव, तुम वैसा प्रयत्न करो जिससे तुम भी वैश्रवणके समान हो जाओ ॥४३॥ माताके ये वचन सुनकर प्रतापी दसग्रीवको बड़ा क्रोध आया और उसने उसी समय प्रतिज्ञा की ॥४४॥ मैं तुमसे सत्य-सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने

सत्य ते प्रतिजानामिभ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा। भविष्याम्याजसा चैव संतापं त्यज हृद्गतम् ॥४५॥
ततः क्रोधेन तेनैव दशग्रीवः सहानुजः। चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म तपसे धृतमानसः॥४६॥
प्राप्स्यामि तपसा काममिति कृत्वाध्यवस्य च। आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ॥४७॥
स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः॥९॥

दशमः सर्गः १०

अथाब्रवीन्मुनिं रामं कथं ते भ्रातरो वने। कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपस्तेपुर्महाबलाः॥ १ ॥
अगस्त्यस्त्वब्रवीत्तत्र रामं सुप्रीतमानसम्। तांस्तान्धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन्॥ २ ॥
कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः। ततापं ग्रीष्मकाले तु पञ्चाग्नीन्परितः स्थितः॥ ३ ॥
मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत। नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः॥ ४ ॥
एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यापचक्रमुः। धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च॥ ५ ॥
विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः। पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान्॥ ६ ॥
समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः। पपात पुष्पवर्षं च तुष्टुवुश्चापि देवताः॥ ७ ॥

भाईके समान या उससे अधिक अपने पराक्रमसे होऊँगा, तुम हृदयका दुःख दूर करो। सन्ताप छोड़ो ॥४५॥ भाईके साथ दसग्रीवने उसी क्रोधसे कठोर कर्म करनेके लिए तपस्या करनेका निश्चय किया ॥४६॥ तपस्याके द्वारा मैं अपने मनोरथ पूरा करूँगा ऐसा निश्चय करके अपनी सिद्धिके लिए वह गोकर्णके पवित्र आश्रमपर आया ॥४७॥ उग्र पराक्रमी वह राक्षस भाईके साथ वहाँ अतुलनीय तपस्या करने लगा, उसने तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न किया और उनसे विजयी होनेका वर पाया ॥४८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

अनन्तर रामचन्द्रने पूछा, ब्रह्मन, वे तीनों महाबली भाई वनमें कैसी और किस प्रकार तपस्या करते थे ॥ १ ॥ प्रसन्नचित्त रामचन्द्रसे अगस्त्य बोले, उन भाइयोंने धर्मकी भिन्न-भिन्न विधियोंका अनुष्ठान किया था ॥ २ ॥ कुम्भकर्ण इन्द्रियोंको वश करके तथा धर्ममें आरूढ़ होकर गरमीके दिनोंमें पञ्चाग्नि सेवन करने लगा ॥ ३ ॥ वर्षाके समयमें वीरासनपर बैठकर सदा मेघके जलसे वह भींगता रहता था और जाड़के दिनोंमें जलमें जाकर वह तपस्या करता था ॥ ४ ॥ इस प्रकार सन्मार्गमें स्थित होकर धर्माचरण करते हुए कुम्भकर्णके दस हजार वर्ष बीत गये ॥ ५ ॥

सदा धर्मपरायण, पवित्र विभीषणने एक पैरपर खड़े रहकर पाँच हजार वर्ष बिताये ॥ ६ ॥ विभीषणके इस नियमके समाप्त होनेपर अप्सराओंने नृत्य किया, पुष्पवृष्टि हुई और देवताओंने स्तुति

पञ्चवर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत । तस्थौ चोर्ध्वशिरोबाहुः स्वाध्याये धृतमानसः ॥ ८ ॥
एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने । दशवर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥
दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः । पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ॥१०॥
एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः । शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥११॥
अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥१२॥
पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः । तव तावद्दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥१३॥
शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः । कं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥१४॥
अथाब्रवीद्दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥१५॥
भगवन्प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद्भयम् । नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥१६॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह । नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ॥१७॥
एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककर्तृणा । दशग्रीव उवाचेदं कृताञ्जलिरथाग्रतः ॥१८॥
सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् । अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥१९॥
नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित । तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥२०॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा । उवाच वचनं देवः सह देवैः पितामहः ॥२१॥

की ॥ ७ ॥ अनन्तर विभीषणने पाँचहजार वर्षोंतक सूर्यकी आराधना की, मस्तक और बाहु ऊपर उठाकर वे खड़े रहे और सदा स्वाध्याय करते रहे ॥ ८ ॥ इस प्रकार नियतात्मा विभीषणके भी दस हजार वर्ष बीत गये । स्वर्गीय नन्दनवनके समान उनके ये वर्ष बीते ॥ ९ ॥

दसग्रीवने भी दस हजार वर्षोंतक निराहार रहकर तपस्या की । प्रत्येक हजारवर्षके पूर्ण होनेपर वह अपना एक सिर अग्निमें हवन करता था ॥१०॥ इस प्रकार उसके नौ हजार वर्ष बीत गये और उसके नौ मस्तक भी अग्निमें चले गये ॥११॥ जब दस हजार वर्ष पूरे हुए तब वह अपना दसवाँ सिर काटनेको उद्यत हुआ, उस समय ब्रह्मा उसके पास आये ॥१२॥ ब्रह्मा प्रसन्न होकर देवताओंके साथ वहाँ आये और उन्होंने कहा दसग्रीव, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥१३॥ धर्मज्ञ, शीघ्र वर माँगो, जो तुम्हारा अभीष्ट हो, तुम्हारा कौन मनोरथ पूरा करूँ जिससे तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ न जाय ॥१४॥ अनन्तर प्रसन्न चित्त होकर तथा ब्रह्माको सिर झुकाकर प्रणाम करके दसग्रीव हर्षसे गद्‌गद् होकर बोला ॥१५॥ भगवन्, प्राणियोंको मृत्युके अतिरिक्त और किसीसे भय नहीं है । मनुष्यका मृत्युके समान दूसरा शत्रु नहीं है, अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ ॥ १६ ॥ दसग्रीवके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा उससे बोले, सभी अमर नहीं हो सकते अतएव तुम दूसरा वर माँगो ॥१७॥ राम, लोककर्ता ब्रह्माके ऐसा कहनेपर दसग्रीव उनके सामने हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला ॥१८॥ प्रजाध्यक्ष, पक्षी, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओंका मैं सदा अवध्य होऊँ ॥ १९ ॥ देवपूजित, अन्य प्राणियोंकी मुझे चिन्ता नहीं है । मनुष्य आदि प्राणियोंको मैं तृणके समान समझता हूँ ॥२०॥ राक्षस दसग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा पितामह ब्रह्मा, देवताओंके साथ उससे इस प्रकार बोले ॥२१॥ राक्षसश्रेष्ठ, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा, तुम जैसा

भविष्यत्येवमेतत्ते वचो राक्षसपुंगव। एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥२२॥
शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम। हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयानघ ॥२३॥
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस। वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ॥२४॥
छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम्। एवं पितामहोक्तं च दशग्रीवस्य रक्षसः ॥२५॥
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि पुनस्तान्युत्थितानि वै। एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥२६॥
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः। विभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ॥२७॥
परितुष्टोऽस्मि धर्मात्मन्वरं वरय सुव्रत। विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ॥२८॥
वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा। भगवन्कृतकृत्योऽहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ॥२९॥
प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत। परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ॥३०॥
अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन्प्रतिभातु मे। या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ॥३१॥
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये। एष मे परमोदार वरः परमको मतः ॥३२॥
नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम्। पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ॥३३॥
धर्मिष्ठ त्वं यथा वत्स तथा चैतद्भविष्यति। यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ॥३४॥
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते। इत्युक्त्वा कुम्भकर्णाय वरं दातुमवस्थितम् ॥३५॥

चाहते हो वैसा होगा। पितामह पुनः दसग्रीवसे बोले, प्रसन्न होकर मैं तुम्हें दूसरा भी वर देता हूँ सुनो, निष्पाप, तुमने अपने जो सिर अग्निमें हवन किये हैं राक्षस, वे सिर पुनः तुम्हारे होंगे। सौम्य, एक और भी अप्राप्य वर मैं तुमको देता हूँ ॥२२,२४॥ तुम जैसा चाहोगे, जैसा अपना रूप बनाना चाहोगे वैसा तुम्हारा रूप होगा। इस प्रकार राक्षस दसग्रीवसे पितामहने कहा ॥२५॥

रावणने काटकर जो मस्तक हवन किये थे वे पुनः लग आये, लोकपितामह ब्रह्मा दसग्रीवको वर देकर विभीषणसे बोले, वत्स, विभीषण धर्मयुक्त बुद्धिके कारण मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, सुव्रत, धर्मात्मन् वर माँगो, हाथ जोड़कर धर्मात्मा विभीषण बोला ॥२६,२८॥ वह विभीषण सदा समस्त गुणोंसे गुणवान् है, जिस प्रकार चन्द्रमा सदा किरणोंसे युक्त रहता है। वह बोला, लोकगुरु स्वयं आप जो मेरे पास आये मैं इसीसे कृत-कृत्य हूँ ॥२९॥ फिर भी प्रसन्न होकर आप अवश्य ही मुझे वर देना चाहते हों तो सुनिए। किसी बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी मेरी बुद्धि धर्मसे विचलित न हो ॥३०॥ भगवन्, बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मा-रूपका ज्ञान हो जाय। जिस-जिस आश्रममें मेरी जो-जो बुद्धि उत्पन्न हो, जो-जो इच्छा हो वह धर्मानुकूल हो और मैं उस धर्मका पालन करूँ। यही मेरा सर्वप्रधान और सर्वप्रिय वर है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ क्योंकि जो लोग धर्मानुरागी हैं उनके लिए संसारमें कोई भी बात दुर्लभ नहीं है। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा विभीषणसे पुनः बोले ॥ ३३ ॥ धर्मिष्ठ, तुम जैसे हो वैसा ही तुम्हारा यह वर भी है, अतएव यह ऐसा ही होगा। राक्षसकुलमें उत्पन्न होनेपर भी अधर्ममें तुम्हारी बुद्धि न जाय इसलिए मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ, तुम्हें देवता बनाता हूँ। विभीषणसे ऐसा कहकर ब्रह्मा कुम्भकर्णको वरदेनेके लिए उद्यत हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उस समय हाथ जोड़कर देवता ब्रह्मासे बोले, भगवन्, आप कुम्भकर्णको वर

प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन्। न तावत्कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ॥३६॥
जानीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः। नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ॥३७॥
अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषास्तथा। अलब्धवरपूर्वेण यत्कृतं राक्षसेन तु ॥३८॥
यद्येष वरलब्धः स्याद्भक्षयेद्भुवनत्रयम्। वरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयताममितप्रभ ॥३९॥
लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद्भवेदस्य च संमतिः। एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माचिन्तयत्पद्मसंभवः ॥४०॥
चिन्तिता चोपतस्थेऽस्य पार्श्वं देवी सरस्वती। प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती ॥४१॥
इयमस्म्यागता देव किं कार्यं करवाण्यहम्। प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ॥४२॥
वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेप्सिता। तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥४३॥
कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः। कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥४४॥
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम्। एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद्ब्रह्मा सुरैः समम् ॥४५॥
देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः। ब्रह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभःस्थलम् ॥४६॥
विमुक्तोऽसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञां च ततो गतः। कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥४७॥
ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्च्युतम्। अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ॥४८॥
एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः। श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन्सुखम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

न दें ॥३६॥ आप जानते ही हैं यह मूर्ख समस्त लोगोंको भयभीत किये हुए है। इसने नन्दन वनमें सात अप्सराओंको और इन्द्रके दस अनुचरोंको खा लिया है ॥३७॥ ब्रह्मन् बिना वर पाये ही इस राक्षसने ऋषियों और मनुष्योंको खा लिया है ॥३८॥ यदि इसको वर मिल जाय तो यह तीनोंलोकोंको खा जाय। अतएव वरके बहाने आप इसे मोह दें, इसे ठग लें ॥३९॥ इस प्रकार लोकका कल्याण होगा और इसका भी सम्मान हो जायगा देवताओंके ऐसा कहनेपर कमलयोनि ब्रह्मा विचार करने लगे ॥ ४० ॥ विचार करते समय सरस्वती देवी इनके समीप आयीं और पास खड़ी होकर तथा हाथ जोड़कर वे बोलीं ॥४१॥ मैं यहाँ आ गयी हूँ, क्या काम करूँ, किस आज्ञाका पालन करूँ। ब्रह्मा उपस्थित सरस्वतीसे बोले ॥४२॥ वाणि, तुम राक्षसराज कुम्भकर्णके मुँहमें देवताओंको अभीष्ट देनेवाली वाणी बनो। ब्रह्माकी आज्ञासे सरस्वतीने कुम्भकर्णके मुँहमें प्रवेश किया। पुनः ब्रह्मा उससे बोले ॥ ४३ ॥ कुम्भकर्ण, तुम जो चाहो वह वर मांगो, ब्रह्माके वचन सुनकर कुम्भकर्ण बोला ॥ ४४ ॥ महाबाहो, मैं अनेक वर्षोंतक सोना चाहता हूँ। एवमस्तु कहकर ब्रह्मा देवताओंके साथ चले गये ॥ ४५ ॥ ब्रह्माके साथ देवताओंके आकाशमें चले जानेपर देवी सरस्वतीने उस राक्षसका त्याग किया ॥ ४६ ॥ सरस्वतीके छोड़कर चले जानेपर उसको ज्ञान हुआ। दुष्ट कुम्भकर्ण दुःखी होकर सोचने लगा ॥४७॥ यह कैसा वाक्य मेरे मुँहसे निकल गया। अवश्य ही उस समय आये हुए देवताओंने मुझे मोहित कर लिया ॥४८॥ इस प्रकार तेजस्वी तीनों भाइयोंने वर पाया। वर पाकर वे तीनों पिताके आश्रममें जाकर रहने लगे। जहाँ बहेराका वन था ॥ ४९ ॥

आदि काव्यवाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडका दसवाँ सर्गसमाप्त ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान्निशाचरान । उदतिष्ठद्भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥१॥
मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः । उदतिष्ठन्सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥२॥
सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षसपुंगवैः । अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥३॥
दिष्ट्या ते वत्स संप्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः । यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान्वरमुत्तमम् ॥४॥
यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् । तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥५॥
असकृत्तद्भयाद्भग्नाः परित्यज्य स्वमालयम् । विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम्॥६॥
अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोषिता । निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥७॥
यदि नामात्र शक्यं स्यात्साम्नादानेन वानघ । तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥८॥
त्वं च लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः । त्वया राक्षसवंशोऽयं निमग्नोऽपि समुद्धृतः ॥९॥
सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल । अथाब्रवीद्दशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ॥१०॥
वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम् । साम्ना हि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ॥११॥
किंचिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् । कस्यचित्त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ॥१२॥
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह स रावणम् । दशग्रीव महाबाहो नार्हसे वक्तुमीदृशम् ॥१३॥

इन राक्षसोंने वर पाया है, यह जानकर सुमाली निर्भय होकर अपने साथियोंके साथ पातालसे निकला ॥ १ ॥ मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष, महोदर ये उसके सचिव भी पातालसे निकले, ये बड़े क्रोधी थे ॥ २ ॥ सुमाली, राक्षसश्रेष्ठ अपने सचिवोंके साथ जाकर और आलिङ्गन करके दसग्रीवसे इस प्रकार बोला ॥ ३ ॥ यह प्रसन्नताकी बात है कि त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्मासे तुमने उत्तम वर पाया है अवश्य ही इससे तुम्हारा चिन्तित मनोरथ पूरा हुआ है ॥ ४ ॥ महाबाहो, जिस कारण लंकाका रहना छोड़कर हमलोग पाताल चले गये थे, वह विष्णुसम्बन्धी हमलोगोंका भय दूर हुआ ॥ ५ ॥ विष्णुके भयसे कई बार हमलोगोंको अपना घर छोड़ना पड़ा है । हम सभी साथ ही यहाँसे भगे थे और पातालमें आश्रय लिया था ॥ ६ ॥ यह लंकानगरी हमलोगोंकी है इसमें राक्षस रहते थे, इस समय तुम्हारा भाई धनेश इसमें रहता है ॥ ७ ॥ निष्पाप महाबाहो, यदि सामसे दामसे अथवा बलसे यह लंकानगरी लौटायी जा सके तो हमलोगोंका मनोरथ पूरा हो ॥ ८ ॥ तात, तुम लङ्काधिपति बनोगे इसमें सन्देह नहीं । इस डूबते हुए राक्षसवंशका तुमने उद्धार किया है ॥ ९ ॥ महाबल, तुम हम सबलोगोंके स्वामी बनोगे । दसग्रीव अपने मातामह—नानासे बोला ॥ १० ॥ धनेश हमारे बड़े भाई हैं, उनके सम्बन्धमें आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए । इस प्रकार राक्षसेन्द्र रावणने अपने नानाका प्रस्ताव बड़ी कोमलतासे अस्वीकार किया, अतएव रावणकी इच्छा जानकर वे भी कुछ न बोले । इस प्रकार कुछ समयके बीतनेपर प्रहस्तने रावणसे विनयपूर्वक कहा । महाबाहो दसग्रीव, आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए । धनेश बड़ा भाई है ऐसा आपको नहीं कहना चाहिए ॥ ११ ॥ १२ ॥ क्योंकि वीरोंमें भ्रातृप्रेम नहीं होता । आप मेरी बात सुनें । अदिति और दिति

सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम । अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हि ते ॥१४॥
भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः । अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥१५॥
दितिस्त्वजनयद्दैत्यान्कश्यपस्यात्मसंभवान् । दैत्यानां किल धर्मज्ञ पुरेयं वसनार्णवा ॥१६॥
सपर्वता मही वीर तेऽभवन्प्रभविष्णवः । निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१७॥
देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् । नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम् ॥१८॥
सुरासुरैराचरितं तत्कुरुष्व वचो मम । एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१९॥
चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोऽब्रवीत् । स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान् ॥२०॥
वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः । त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः ॥२१॥
प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदः । प्रहस्त शीघ्रं गच्छ त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुंगवम् ॥२२॥
वचसा मम वित्तेशं सामपूर्वमिदं वचः । इयं लङ्का पुरी राजन्राक्षसानां महात्मनाम् ॥२३॥
त्वया निवेशिता सौम्य नैतद्युक्तं तवानघ । तद्भवान्यदि नो ह्यद्य दद्यादतुलविक्रम ॥२४॥
कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः । स तु गत्वा पुरीं लङ्कां धनदेन सुरक्षिताम् ॥२५॥
अब्रवीत्परमोदारं वित्तपालमिदं वचः । प्रेषितोऽहं तव भ्रात्रा दशग्रीवेण सुव्रत ॥२६॥
त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वर । वचनं मम वित्तेश यद्ब्रवीति दशाननः ॥२७॥
इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा । भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥२८॥

दो बहिनें थीं ॥ १४ ॥ ये दोनों प्रजापतिकी स्त्रियाँ थीं ये रूपवती थीं । अदितिने त्रिभुवन स्वामी देवताओं को उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ दितिने कश्यपसे दैत्योंको उत्पन्न किया । धर्मज्ञ, पहले यह समुद्रवसना पृथिवी और पर्वत दैत्योंके थे । अतएव वे इसके स्वामी थे प्रभावशाली थे । पुनः युद्धमें दैत्योंको मारकर विष्णुने प्रभावशाली बननेके लिए समस्त त्रिलोक, देवताओंके अधीन कर दिया, फिर क्या आप ही एक इसके विपरीत करेंगे ॥ १६ ॥ १८ ॥ देवता और असुरोंने यही किया है, अतएव आप मेरी बात सुनें । उसके ऐसा कहनेपर दसग्रीव प्रसन्नचित्तसे थोड़ी देर सोचता रहा पुनः उसने कहा, अच्छा, मैं वैसा ही करूँगा । उस दिन उसी प्रसन्नतामें पराक्रमी दसग्रीव राक्षसोंके साथ वनमें गया । त्रिकूट पर्वतपर जाकर राक्षस दसग्रीवने वाग्मी प्रहस्तको दूत बनाकर भेजा । उसने कहा, प्रहस्त, तुम शीघ्र जाओ और नैर्ऋत पुंगव धनेशसे मेरी ओरसे प्रेमपूर्वक यह कहो । राजन्, यह लंकापुरी महात्मा राक्षसोंकी है ॥ १९ ॥ २३ ॥ सौम्य, आप उसमें निवास कर रहे हैं, निष्पाप, यह आपके लिए उचित नहीं है । अतएव अतुलविक्रम, आप वह नगरी यदि हमलोगोंको लौटा दें तो आप हमारी प्रसन्नता पावेंगे और धर्मका पालन कर सकेंगे । वह प्रहस्त धनेशके द्वारा रक्षित लंकापुरीमें जाकर उदार धनेशसे यह वचन बोला । सुव्रत, तुम्हारे भाई दसग्रीवने हमको तुम्हारे पास भेजा है । शास्त्रज्ञ श्रेष्ठ, महाबाहो धनेश, दसाननने मेरे द्वारा जो कहा है वह आप सुनें ॥ २४ ॥ २६ ॥ विशालाक्ष, भीमपराक्रमी सुमालि आदि राक्षसोंने इस रमणीय नगरीका उपभोग पहले किया है अर्थात् वे पहले यहाँ रहते थे ॥ २८ ॥ विश्रवात्मज, वह आपसे प्रार्थना करता है

तेन विज्ञाप्यते सोऽयं सांप्रतं विश्रवात्मज । तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ॥२९॥
प्रहस्तादपि संश्रुत्य देवो वैश्रवणो वचः । प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥३०॥
दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः । निवेशिता च मे रक्षो दानमानादिभिर्गुणैः ॥३१॥
ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम । तवाप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥३२॥
अविभक्तं त्वया सार्धं राज्यं यच्चापि मे वसु । एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ॥३३॥
अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम् । एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान्मम ॥३४॥
दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता । मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥३५॥
ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुंगवः । प्राञ्जलिं धनदं प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥३६॥
दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान्मम संनिधौ । मया निर्भर्त्सितश्चासीद्बहुशोक्तः सुदुर्मतिः ॥३७॥
स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंससे च पुनः पुनः । श्रेयोभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥३८॥
वरप्रदानसंमूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः । न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥३९॥
तस्माद्गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम् । निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः ॥४०॥
तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी । काञ्चनैः सूर्यसंकाशैः पङ्कजैः संवृतोदका ॥४१॥

विनयपूर्वक माँगता है आप यह नगरी उसे दे दें ॥ २९ ॥

प्रहस्तके वचन सुनकर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ वैश्रवणने उससे इस प्रकार कहा ॥ ३० ॥ यह नगरी मुझे मेरे पिताने दी है, यहाँ कोई राक्षस नहीं रहता था। मैंने इसे बसाया है, दान-मानके द्वारा सम्मानित करके राक्षसोंको भी मैंने यहाँ बसाया है ॥ ३१ ॥ तुम जाओ और दसग्रीवसे कहो, महाबाहो, पुरी और राज्य जो कुछ मेरा है वह तुम्हारा भी है तुम निर्विघ्न इस राज्यका भोग करो ॥ ३२ ॥ मेरा राज्य और धन तुम्हारे साथ है वह बँटा हुआ नहीं है। ऐसा कहकर धनाध्यक्ष पिताके पास चले गये ॥ ३३ ॥ पिता-को प्रणाम करके रावण जो चाहता था वह उन्होंने पितासे कहा। तात, दसग्रीवने मेरे पास दूत भेजा था ॥ ३४ ॥ उसने कहा, यह नगरी मुझे दो क्योंकि यहाँ पहले राक्षस रहते थे। अब इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिए यह आप बतलावें ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि विश्रवा पुत्र धनेशके ऐसा कहनेपर उनसे बोले, धनेश हाथ जोड़े हुए थे। पुत्र मेरी बात सुनो ॥ ३६ ॥ महाबाहु दसग्रीवने मेरे सामने भी यह कहा था, मैंने उसे बहुत डाँटा, उस मूर्खको बहुत समझाया ॥ ३७ ॥ मैंने क्रोधसे उससे कहा था कि तुम मर्य्यादाका नाश कर दोगे। हे कल्याणकारी और धर्मानुकूल मेरे वचन तुम सुनो ॥ ३८ ॥ वर पानेसे वह उन्मत्त हो गया है, मेरे शापसे उसका स्वभाव भी क्रूर हो गया है अतएव वह मूर्ख, कौन माननीय है और कौन नहीं यह नहीं जानता ॥ ३९ ॥ अतएव महाबाहो, लङ्काका त्याग करके अपने साथियोंके साथ विलास करनेके लिए तुम कैलाश नामक पर्वतपर जाओ ॥ ४० ॥ नदियोंमें श्रेष्ठ मन्दाकिनी नदी वहाँ बहती है। सूर्यके समान प्रकाशमान सुवर्णके कमलोंसे उसका जल ढँका रहता है। कुमुद उत्पल तथा अन्य सुगन्धित पुष्पोंसे उसका जल ढँका रहता है। वहाँ गन्धर्व, देवता, अप्सरा, नाग, किन्नर ये विहार-शील वहाँ रमण करते हैं और वहाँ सदा बने रहते हैं। धनद, इस राक्षससे बैर करना तुम्हारे लिए उचित

कुमुदैरुत्पलैश्चैव अन्यैश्चैव सुगन्धिभिः। तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिन्नराः ॥४२॥
विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाश्रिताः।
नहि क्षमं त्वयानेन वैरं धनद रक्षसा। जानीषे हि यथानेन लब्धः परमको वरः ॥४३॥
एवमुक्तो गृहीत्वा तु तद्वचः पितृगौरवात्। सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनो गतः ॥४४॥
प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत्। प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम् ॥४५॥
शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः। प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय ॥४६॥
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः। विवेश नगरीं लङ्कां भ्रातृभिः सबलानुगैः ॥४७॥
धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापथाम्। आरुरोह स देवारिः स्वर्गं देवाधिपो यथा ॥४८॥

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा निवेशयामास पुरीं दशानन।
निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥४९॥
धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगौरवान्न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम्।
स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषितां पुरंदरः स्वर्गे यथामरावतीम् ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकादशः सर्गः ॥११॥

द्वादशः सर्गः १२

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभिः सहितस्तदा। ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ॥ १ ॥
ददौ तां कालकेन्द्राय दानवेन्द्राय राक्षसीम्। स्वसां शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय राक्षसः ॥ २ ॥

नहीं है। यह तुम जानते ही हो कि इसने बहुत बड़ा वर पाया है॥ ४१ ॥ ४३ ॥ धनेशने पिताके सम्मानके लिए उनकी बातें मान लीं और वे स्त्री, पुत्र, अमात्य-वाहन तथा धन लेकर वहाँसे चले गये ॥ ४४ ॥

प्रहस्त प्रसन्न होकर दसग्रीवके पास गया और अमात्यों तथा भाइयों सहित दसग्रीवसे बोला ॥ ४५ ॥ लंकानगरी सूनी पड़ी है, उसे छोड़कर धनेश चले गये। वहाँ चलकर आप हमलोगोंके साथ अपने धर्म—राक्षसधर्म या राजधर्मका पालन कीजिए ॥ ४६ ॥ प्रहस्तके ऐसा कहनेपर महाबली रावणने भाइयों तथा अपने अनुयायियोंके साथ लंकानगरीमें प्रवेश किया ॥ ४७ ॥ धनेशने उसे छोड़ दिया था, वह नगरी बड़े-बड़े रास्तोंमें बँटी हुई थी। जिस प्रकार देवराज स्वर्गमें प्रवेश करते हैं उसी प्रकार देवशत्रु रावणने लंकामें प्रवेश किया ॥४८॥ राक्षसोंने उस नगरीमें दसग्रीवका अभिषेक किया। उसने उस नगरीको बसाया, नीलमेघ तुल्य राक्षसोंसे वह नगरी भर गयी ॥ ४९ ॥

धनेशने भी पिताके वाक्यमें आदरके कारण चन्द्रमाके समान श्वेत पर्वतपर अपनी नगरी बसायी। सजे हुए भवनोंसे वह नगरी शोभित हुई। जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्रने अमरावती नगरी बसायी है ॥५०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११॥

अभिषेक होनेपर राक्षसेन्द्र रावणने अपनी बहनके ब्याहका भाइयोंके साथ विचार किया ॥१॥ अपनी सूर्पनखाको उसने दानवेन्द्र कालकपुत्र विद्युज्जिह्वको दिया ॥ २ ॥ इस प्रकार बहनका ब्याह करके

अथ दत्त्वा स्वयं रक्षो मृगयामटते स्म तत् । तत्रापश्यत्ततो राम मयं नाम दितेः सुतम् ॥ ३ ॥
कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः । अपृच्छत्को भवानेको निर्मनुष्यमृगे वने ॥ ४ ॥
अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि । मयस्तदाब्रवीद्राम पृच्छन्तं तं निशाचरम् ॥ ५ ॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं तव । हेमा नामाप्सरास्तत्र श्रुतपूर्वा यदि त्वया ॥ ६ ॥
दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः । तस्यां भक्तमना ह्यासं दशवर्षशतान्यहम् ॥ ७ ॥
सा च दैवतकार्येण त्रयोदश समा गताः । वर्षं चतुर्दशं चैव ततो हेममयं पुरम् ॥ ८ ॥
वज्रवैदूर्यचित्रं च मायया निर्मितं मया । तत्राहमवसं दीनस्तया दीनः सुदुःखितः ॥ ९ ॥
तस्मात्पुराद्दुहितरं गृहीत्वा वनमागतः । इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धित्रा ॥१०॥
भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम् । कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम्॥११॥
कन्या हि द्वे कुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति । पुत्रद्वयं ममाप्यस्यां भार्यायां संबभूव ह ॥१२॥
मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः । एवं ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः ॥१३॥
त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति । एवमुक्तं तु तद्रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ॥१४॥
अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः । मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ॥१५॥
एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः । महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो दानवपुंगवः ॥१६॥
दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास तत्र वै । करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ॥१७॥

वह राक्षस शिकारके लिए भ्रमण करने लगा । राम, एकबार उसने दितिके पुत्र मयको देखा ॥ ३ ॥ एक कन्याके साथ उसको देखकर राक्षस दसग्रीवने उससे पूछा, तुम कौन हो जो इस मनुष्यहीन वनमें अकेला घूम रहे हो ॥ ४ ॥ इस मृगनेत्रीके साथ क्यों रहते हो । राम, मयने राक्षसके पूछनेपर यह उत्तर दिया ॥ ५ ॥ सुनिए, जैसी बात है वह सब मैं कहूँगा, हेमा नामकी एक अप्सरा थी, उसका नाम आपने सुना होगा ॥ ६ ॥ देवताओंने वह अप्सरा मुझे दी, जिस प्रकार इन्द्रको पौलो भी दी गयी थी । मैं दस सौ वर्षों तक उसमें अनुरक्त रहा ॥ ७ ॥ वह देवताओंके कार्यसे यहाँसे चली गयी, जिसे तेरह वर्ष बीत गये, चौदहवाँ वर्ष बीत रहा है । तब मैंने एक सुवर्ण नगर बनाया, उसमें हीरा और वैदूर्यमे चित्र बनाये । यह सब मैंने मायासे बनाये थे । उससे विरहित होकर अकेला दुःखसे मैं उसी नगरमें निवास करता था ॥८। ॥ ९ ॥ अपनी कन्याके साथ उसी नगरसे मैं वनमें आया हूँ । राजन् यह मेरी कन्या है, उसी हेमाके गर्भमें बढ़ी है ॥ १० ॥ इसके लिए पति ढूँढ़ने मैं इसे लेकर वनमें आया हूँ । कन्याका पिता होना सभी सम्मान चाहनेवालोंके लिए दुखदायी है ॥११॥ कन्याके कारण दो कुल पिता और पतिकुल, सन्देहमें पड़े रहते हैं । उस स्त्रीसे मुझे दो पुत्र भी हुए थे ॥१२॥ बड़ा मायावी है और दुन्दु भी छोटा । आपके पूछनेपर जैसी बात थी वह मैंने कहीं ॥१३॥ अच्छा भाई अब आप अपनी कहें, आपको मैं क्या समझूँ, मयके पूछनेपर राक्षस दसग्रीव विनयपूर्वक यह बोला ॥ १४ ॥ मैं पौलस्त्यका पुत्र हूँ । मेरा नाम दसग्रीव है । विश्रवा मुनि मेरे पिता हैं, जो ब्रह्माकी तीसरी पीढ़ीमें हैं ॥ १५ ॥ राक्षसेन्द्र दसग्रीवके ऐसा कहने-पर दानवराज मयने उन्हें महर्षिपुत्र समझा अतएव उन्हें कन्या देनेका विचार किया । मयने अपनी

प्रहसन्प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः । इयं ममात्मजा राजन्हेमयाप्सरसा धृता ॥१८॥
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् । बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ॥१९॥
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत्पाणिसंग्रहम् । स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ॥२०॥
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् । अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम् ॥२१॥
परेण तपसा लब्धां जघ्निवाँल्लक्ष्मणं यया । एवं स कृत्वा दारान्वै लङ्काया ईश्वरः प्रभुः ॥२२॥
गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत् । वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ॥२३॥
तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत् । गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ॥२४॥
सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः । तीरे तु सरसो वै तु संजज्ञे मानसस्य हि ॥२५॥
सरस्तदा मानसं तु ववृधे जलदागमे । मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ॥२६॥
सरो मा वर्धतेत्युक्तं ततः सा सरमाभवत् । एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ॥२७॥
स्वां स्वां भार्यामुपादाय गन्धर्वा इव नन्दने । ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥२८॥
स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते । जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ॥२९॥
रुदता सुमहान्मुक्तो नादो जलधरोपमः । जडीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ॥३०॥

कन्याका हाथ दसग्रीवको पकड़ा दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ दैत्येन्द्र मयने हँसकर राक्षसेन्द्रसे यह कहा, राजन्, यह मेरी कन्या है, हेमा अप्सराने इसे उत्पन्न किया है ॥ १८ ॥ यह अभी कन्या है इसका नाम मन्दोदरी है आप पत्नीके लिए इसका ग्रहण करें । दसग्रीवने 'हाँ' कहकर मयकी बातें स्वीकारकीं ॥१९॥ वहीं आग जलाकर उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया । दसग्रीवको तपोधन (पिता) ने शाप दिया है यह बात मय जानता था । इसका स्वभाव क्रूर है यह वह जानता था अतएव भयभीत होकर उसने कन्या दी । दसग्रीवका कुल भी श्रेष्ठ है, इसका पितामह महर्षि है यह भी जानकर उसने कन्या दी और अद्भुत और अमोघ एक शक्ति भी उसने दी ॥ २० ॥ २१ ॥ बड़ी तपस्यासे वह शक्ति लक्ष्मणको मिली थी, दसग्रीवने उसी शक्तिसे लक्ष्मणको घायल किया था । इस प्रकार लंकाके स्वामीने अपना ब्याह किया ॥ २२ ॥ लंका नगरीमें जाकर उसने अपने दोनों भाइयोंके लिए भी स्त्री ला दीं, वैरोचनकी दौहित्रीको जिसका नाम वज्रज्वाला था रावणने कुम्भकर्णकी स्त्री बनाया । गन्धर्वराज महात्मा शैलूषकी कन्याको जिसका नाम सरमा था जो धर्मज्ञ थी, विभीषणने स्त्रीरूपमें पाया । (विभीषणकी स्त्रीका नाम सरमा क्यों पड़ा यह बतलाया जाता है) मानस सरके तीरपर वह उत्पन्न हुई थी ॥ २३ ॥ २५ ॥ वर्षाकाल होनेके कारण वह सर बढ़ने लगा उसका जल कन्याके पास आया । इससे कन्या चिल्लायी, उसका चिल्लाना सुनकर माताने स्नेहसे कहा, "सर-मा" अर्थात् सर मत बढ़ो । इससे उस कन्याका नाम सरमा हुआ । इस प्रकार ब्याह करके वे तीनों राक्षस अपनी-अपनी स्त्रीको लेकर रमण करने लगे । जिस प्रकार गन्धर्व नन्दनवनमें विहार करते हैं । अनन्तर मन्दोदरीने मेघनाद नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ २८ ॥ यह वही है जिसका नाम आपलोग इन्द्रजित् कहते हैं । उत्पन्न होते ही इस रावणपुत्रने रोते हुए महान् शब्द किया था जो मेघके शब्दके समान था,

पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् । सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ॥३१॥
रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः । मातापित्रोर्महाहर्षं जनयन्रावणात्मजः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् । निद्रा समभवत्तीव्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥
ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः । निद्रा मां बाधते राजन्कारयस्व ममालयम् ॥ २ ॥
विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् । विस्तीर्णं योजनं स्निग्धं ततो द्विगुणमायतम् ॥३॥
दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे । स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ॥४॥
वैदूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा । दान्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम् ॥५॥
मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः । सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव ॥६॥
तत्र निद्रां समाविष्टः कुम्भकर्णो महाबलः । बहून्यब्दसहस्राणि शयानो न च बुध्यते ॥७॥
निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः । देवर्षियक्षगन्धर्वान्संजघ्ने हि निरङ्कुशः ॥८॥
उद्यानानि विचित्राणि नन्दनादीनि यानि च । तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनत्ति स्म दशाननः ॥९॥

उस शब्दसे समूची लंका जड़ बन गयी थी ॥ २९ ॥ ३० ॥ स्वयं पिताने उसका 'मेघनाद' नाम रखा। वह बालक रावणके महलमें बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥ सुन्दरी स्त्रियाँ उसकी रक्षा करती थीं। लकड़ीमें अग्निके समान वहाँ छिपा हुआ था। उस रावणपुत्रने माता-पिताको प्रसन्न किया ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बारहवाँ सर्गसमाप्त ॥ १२ ॥

अनन्तर कुछ समय बीतनेपर ब्रह्माकी भेजी हुई रूपवती निद्रा तीव्र होकर कुम्भकर्णके पास आयी ॥ १ ॥ उस समय कुम्भकर्ण बैठे हुए भाईसे बोला, राजन्, मुझे नींद आ रही है, मेरे लिए घर बनवा दीजिए ॥ २ ॥ राजाने विश्वकर्माके समान शिल्पियोंको कुम्भकर्णके लिए घर बनानेकी आज्ञा दी। उनलोगोंने एक योजन चौड़ा और दो योजन लम्बा घर बनाया ॥ ३ ॥ सुन्दर तथा सुखपूर्वक रहने योग्य घर उनलोगोंने कुम्भकर्णके लिए बनाया, उसमें सर्वत्र स्फटिकके खम्भे लगे थे। जिनपर सुवर्णका काम किया हुआ था, वैदूर्यमणिकी सीढ़ियाँ बनी थीं, जगह-जगह छोटी-छोटी घण्टी लगी हुई थीं, हाथीदाँत-का तोरण बना था और हीरा तथा स्फटिककी वेदी बनी हुई थी ॥ ४ ॥ ५ ॥ राक्षस रावणने सबके लिए तथा सब समयके लिए सुखकारी मनोहर वह घर बनवाया, वह मेरुकी पवित्र गुहाके समान था ॥ ६ ॥ महाबली कुम्भकर्ण उस घरमें जाकर सोया, कई हजार वर्षोंतक वह सोता रहा उठा नहीं ॥७॥ कुम्भकर्णके सो जानेपर रावण निरङ्कुश होकर देवता, ऋषि तथा गन्धर्वोंको पीड़ा देने लगा ॥ ८ ॥ नन्दन आदि जो सुन्दर उद्यान थे वहाँ जाकर वह क्रोधसे उन्हें तोड़ने-फोड़ने लगा ॥ ९ ॥ जिस

नदीं गज इव क्रीडन्वृक्षान्वायुरिव क्षिपन्। नगान्वज्र इवोत्सृष्टो विध्वंसयति राक्षसः ॥१०॥
यथावृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः। कुलानुरूपं धर्मज्ञो वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः ॥११॥
सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा। लङ्कां संप्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥१२॥
स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद विभीषणम्। मानितस्तेन धर्मेण पृष्टश्चागमनं प्रति ॥१३॥
पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च विभीषणः। सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम् ॥१४॥
स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा। जयेति वाचा संपूज्य तूष्णीं समभिवर्तते ॥१५॥
स तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरणशोभिते। उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६॥
राजन्वदामि ते सर्वं भ्राता तव यदब्रवीत्। उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च ॥१७॥
साधु पर्याप्तमेतावत्कृतश्चारित्रसंग्रहः। साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥१८॥
दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः। देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन्मया श्रुतः ॥१९॥
निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप। सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥२०॥
अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम्। रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥२१॥
तत्र देवो मया दृष्ट उमया सहितः प्रभुः। सव्यं चक्षुर्मया दैवात्तत्र देव्यां निपातितम् ॥२२॥

प्रकार क्रीड़ा करता हुआ हाथी नदीको तोड़ता है, वायु वृक्षोंको उखाड़ती है इन्द्रका वज्र पर्वतोंको तोड़ता है उसी प्रकार वह राक्षस उद्यानोंको तोड़ने लगा ॥ १० ॥

धनेशने रावणके ये सब वृतान्त सुनें और अपने कुलके योग्य कार्योंका उन्होंने स्मरण किया, पुनः भ्रातृ-प्रेम दिखानेके लिए तथा दसग्रीवका हित करनेके लिए उन्होंने लंकामें दूत भेजा ॥ ११,१२ ॥ दूत लंका पहुँचकर विभीषणके यहाँ गया, विभीषणने धर्मपूर्वक उसका सत्कार किया और उसके आनेका कारण पूछा ॥ १३ ॥ विभीषणने राजा वैश्रवणके बान्धवोंका भी समाचार पूछा, पुनः सभामें बैठे दसाननको उसे दिखाया ॥१४॥ अपने तेजसे प्रकाशमान राजाको देखकर दूतने जय-जय कहकर उनका अभिनन्दन किया, पुनः वह चुप हो गया ॥१५॥ रावण अच्छे पलंगपर बैठा था जिसपर बहुमूल्य वस्त्र बिछे थे। वह दूत रावणसे इस प्रकार बोला ।१६॥ राजन, आपसे मैं वह सब कहता हूँ जो आपके भाईने कहा है, वह सन्देश माता-पिताके कुल तथा उनके चरित्रके योग्य है ॥ १७ ॥ "इतना ही बहुत है, जो बुराई हो गयी वह हो गयी, अब उत्तम चरित्रका संग्रह करना चाहिए, यदि हो सके तो धर्ममें आस्था करना अच्छा है ॥ १८ ॥ तुम्हारे द्वारा नन्दनवनका तोड़ा जाना मैंने देखा है और ऋषियोंका मारा जाना मैंने सुना है, देवता तुम्हारे लिए जो उद्योग करते हैं वह भी मैंने सुना है। अर्थात् तुम्हारे अत्याचारोंसे घबड़ाकर देवता जो उद्योग कर रहे हैं, जो वे तुम्हें दण्ड देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं उसकी खबर मुझे लगी है ॥ १९ ॥ राक्षसाधिप, तुमने हमें लंकासे निकाल दिया है। पर तुम हमारे छोटे भाई हो, बालक अपराध भी करे तो भी बान्धव उसकी रक्षा करते ही हैं ॥ २० ॥ एक बार धर्मोपासना-तपस्या करने मैं हिमालय-पर गया था, इन्द्रियोंको वशमें करके मैंने कठोर व्रत धारण किया था ॥ २१ ॥ वहाँ मैंने पार्वतीके साथ महादेवको देखा, उस समय सहसा मेरी बायीं आँख पार्वतीकी ओर जा लगी ॥ २२ ॥ यह कौन है यह

कान्वेषेति महाराज न खल्वन्येन हेतुना। रूपं चानुपमं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ॥२३॥
देव्या दिव्यप्रभावेण दग्धं सव्यं ममेक्षणम्। रेणुध्वस्तमिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥२४॥
ततोऽहमन्यद्विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम्। तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समधारं महाव्रतम् ॥२५॥
समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः। ततः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥२६॥
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसानेन सुव्रत। मया चैतद्व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ॥२७॥
तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद्व्रतमीदृशम्। व्रतं सुदुष्करं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुरा ॥२८॥
तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर। तपसा निर्जितश्चैव सखा भव ममानघ ॥२९॥
देव्या दग्धं प्रभावेण यच्च सव्यं तवेक्षणम्। पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूपनिरीक्षणात् ॥३०॥
एकाक्षिपिङ्गलीत्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम्। एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शंकरात् ॥३१॥
आगतेन मया चैवं श्रुतस्ते पापनिश्चयः। तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषणात् ॥३२॥
चिन्त्यते हि वधोपायः सर्षिसङ्घैः सुरैस्तव। एवमुक्तो दशग्रीवः कोपसंरक्तलोचनः ॥३३॥
हस्तान्दन्तांश्च संपिष्य वाक्यमेतदुवाच ह। विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यत्त्वं प्रभाषसे ॥३४॥
नैव त्वमसि नैवासौ भ्राता येनासि चोदितः। हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ॥३५॥
महेश्वरसखित्वं तु मूढः श्रावयते किल। नैवेदं क्षमणीयं मे यदेतद्भाषितं त्वया ॥३६॥

जाननेके लिए मैंने उन्हें नहीं देखा, किन्तु रुद्राणीने उस समय बड़ा सुन्दर रूप बनाया था ॥ २३ ॥ देवी-के दिव्यप्रभावके कारण मेरी बायीं आँख जल गयी, धूल पड़नेके समान आँखकी ज्योति धुँधली पड़ गयी ॥ २४ ॥ तब मैं वहाँसे उसी पर्वतके दूसरी ओर एक विस्तीर्ण स्थानमें चला गया, वहाँ चुपचाप मैंने आठ सौ वर्ष महाव्रत धारण किया ॥२५॥ उस व्रतके समाप्त होनेपर महेश्वर देव वहाँ आये और वे प्रसन्न मनसे यह बोले ॥२६॥ धर्मज्ञ सुव्रत, मैं तुम्हारे इस व्रतसे प्रसन्न हूँ। मैंने भी इस व्रतको किया था और तुमने भी यह व्रत किया ॥ २७ ॥ तीसरा मनुष्य नहीं है जो इस व्रतको करे, इस कठोर व्रतको मैंने ही उत्पन्न किया है ॥ २८ ॥ सौम्य धनेश्वर, इस कारण तुम मेरे मित्र बनना स्वीकार करो, हे निष्पाप, तुमने तपस्यासे मुझे जीता है इस कारण मेरे मित्र बनो ॥ २९ ॥ देवीके प्रभावसे जो तुम्हारी बायीं आँख जल गयी है और देवीका रूप देखनेसे जो वह धुँधली हो गयी, इस कारण तुम्हारा "एकाक्षपिङ्गली" यह स्थायी नाम होगा। इस प्रकार महादेवसे मैत्री करके तथा उनसे आज्ञा पाकर जब लौटा तब मैंने तुम्हारा पाप सुना। तुमको इन पापोंसे हट जाना चाहिए क्योंकि ये कुलको दूषित करनेवाले हैं ॥ ३०, ३२ ॥ देवताओंके साथ ऋषिगण तुम्हारे वधका उपाय सोच रहे हैं। दूतके ऐसा कहनेपर उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं ॥ ३३ ॥ हाथ मलकर तथा दाँत पीसकर वह इस प्रकार बोला, दूत, जो बात तुम कहते हो वह सब मैंने समझ लिया ॥ ३४ ॥ अतएव तुम अपनेको तथा जिसके भेजे आये हो उसको न समझो, अर्थात् दोनों ही मारे जाओगे। धनरक्षकने जो कहवाया है वह मेरा हित नहीं है, किन्तु अपने और महेश्वरके मित्र होनेका वृतान्त सुना रहा है। तुमने जो कहा है वह क्षमाके योग्य नहीं है, अर्थात कुबेरने जो अपना ऐश्वर्य बतलाया है वह क्षमा नहीं किया जा सकता ॥ ३५,३६ ॥ दूत, अभीतक जो

यदेतावन्मया कालं दूत तस्य तु मर्षितम् । न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो ममायमिति मन्यते ॥३७॥
तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः । त्रींल्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ॥३८॥
एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते । चतुरो लोकपालांस्तान्नयिष्यामि यमक्षयम् ॥३९॥
एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान् । ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥४०॥
ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः । त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

ततः स सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यबलोद्धतः । महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥१॥
धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगर्द्धिना । वृतः संप्रययौ श्रीमान्क्रोधाल्लोकान्दहन्निव ॥२॥
पुराणि स नदीः शैलान्वनान्युपवनानि च । अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत् ॥ ३ ॥
संनिविष्टं गिरौ तस्मिन्राक्षसेन्द्रं निशम्य तु । युद्धेप्सुं तं कृतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम् ॥ ४ ॥
यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः । राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः ॥ ५ ॥
ते गत्वा सर्वमाचख्युर्भ्रातुस्तस्य चिकीर्षितम् । अनुज्ञाता ययुर्हृष्टा युद्धाय धनदेन ते ॥ ६ ॥
ततो बलानां संक्षोभो व्यवर्धत इवोदधेः । तस्य नैर्ऋतराजस्य शैलं संचालयन्निव ॥ ७ ॥

मैंने क्षमा किया है वह यह समझकर कि माननीय बड़े भाईका वध न करना चाहिए, पहले मैं यही समझता रहा ॥ ३७ ॥ पर उसकी इन बातोंको सुनकर मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अपने बाहुबलका आश्रय करके तीनों लोकोंको मैं जीतूँगा ॥ ३८ ॥ इसी समय उस एकके अपराधके कारण चारों लोकपालोंको मैं यमराजके घर भेजूँगा ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर लंकेशने दूतको तलवारसे काट दिया और उसे दुरात्मा राक्षसोंको खानेको दे दिया ॥ ४० ॥ अनन्तर रावण स्वस्तिवाचन आदि कराकर त्रिलोक विजय करनेकी इच्छासे धनेशके पास चला गया ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तेरहवाँ सर्गसमाप्त ॥ १३ ॥

अनन्तर सदा बलोन्मत रहनेवाला श्रीमान् रावण, महोदर, प्रहस्त मारीच, शुकसारण और युद्ध चाहनेवाले वीर धूम्राक्ष इन छः मन्त्रियोंके साथ, लोकोंको क्रोधसे जलाते हुए चला ॥ १,२ ॥ नगरों नदियों, पर्वतों, वनों, उपवनोंको शीघ्र ही लाँघकर वह कैलाश पर्वतपर पहुँचा ॥ ३ ॥ युद्धके लिए उत्साहित दुरात्मा राक्षस मन्त्रियोंके साथ आकर इस पर्वतपर ठहरा है यह सुनकर तथा यह धनेश कुबेरका भाई है यह जानकर यक्ष उसके सामने नहीं ठहर सके, वे धनेशके पास गये ॥ ४,५ ॥ उन लोगोंने धनेशके भाईका अभिप्राय जाकर कहा, पुनः धनेशसे युद्धकी आज्ञा पाकर वे प्रसन्नतापूर्वक चले ॥ ६ ॥ नैर्ऋत-राज कुबेरकी सेनाओंका संक्षोभ बहुत बढ़ गया, जिससे वह पर्वत हिलने-सा लगा, वह सेनाओंका

ततो युद्धं समभवद्घोरं राक्षससंकुलम् । व्यथिताश्चाभवंस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते ॥ ८ ॥
स दृष्ट्वा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः । हर्षनादान्बहून्कृत्वा स क्रोधादभ्यभाषत ॥ ९ ॥
ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोरविक्रमाः । तेषां सहस्रमेकैको यक्षाणां समयोधयत् ॥१०॥
ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोमरैः । हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत ॥११॥
स निरुच्छ्वासवत्तत्र वध्यमानो दशाननः । वर्षद्भिरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुध्यत ॥१२॥
न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः । महीधर इवाम्भोदैर्धाराशतसमुक्षितः ॥१३॥
स महात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम् । प्रविवेश ततः सैन्यं नयन्यक्षान्यमक्षयम् ॥१४॥
स कक्षमिव विस्तीर्णं शुष्केन्धनमिवाकुलम् । वातेनाग्निरिवादीप्तो यक्षसैन्यं ददाह तत् ॥१५॥
तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः । अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः ॥१६॥
केचित्समाहता भग्नाः पतिताः समरे क्षितौ । ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन्कुपिता रणे ॥१७॥
श्रान्ताश्चान्योन्यमालिङ्ग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे । सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह ॥१८॥
हतानां गच्छतां स्वर्गं युध्यतामथ धावताम् । प्रेक्षतामृषिसङ्घानां बभूव न तदान्तरम् ॥१९॥
भग्नांस्तु तान्समालक्ष्य यक्षेन्द्रांस्तु महाबलान् । धनाध्यक्षो महाबाहुः प्रेषयामास यक्षकान् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्णबलवाहनः । प्रेषितो न्यपतद्यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ॥२१॥

क्षोभ समुद्र-क्षोभके समान था ॥७॥ अनन्तर यक्ष और राक्षसोंका तुमुल युद्ध हुआ, जिससे राक्षस रावण के मन्त्री व्यथित हुए ॥ ८ ॥ राक्षस दसग्रीव उस सेनाको उस रूपमें देखकर तथा अनेक हर्ष नाद करके क्रोधपूर्वक दौड़ा ॥ ९ ॥ राक्षसेन्द्रके जो भीम पराक्रमी सचिव थे, उनमेंका एक-एकने हजार यक्षोंको लड़ाया ॥ १० ॥ गदा, मुसल, शक्ति, तोमर, तलवार इनका प्रहार सहता हुआ दसग्रीवने उस सेनाको मथित किया ॥ ११ ॥ रावण प्राणहीनके समान वहाँ मारा जाने लगा । जल बरसानेवाले मेघोंके समान यक्षोंने बाण वर्षासे रावणको रोक दिया ॥ १२ ॥ यक्षोंके शस्त्रोंसे आहत होनेपर भी रावणको व्यथा नहीं हुई, मेघोंकी धारासे जिस प्रकार पर्वत सींचा जाता है वैसे ही वह भी मानो सींचा जाता रहा ॥१३॥ अनन्तर महात्मा रावणने कालदण्डके समान गदा उठाकर उस सेनामें प्रवेश किया और यक्षों यमराजके भवन भेजा ॥ १४ ॥ जिस प्रकार वायुसे धधकी आग, सूखी लकड़ीकी ढेरको जला देती है उसी प्रकार रावण यक्ष-सेनाको जलाने लगा ॥ १५ ॥ रावणके सचिव महोदर शुक आदिने यक्षोंका नाश कर दिया, जिससे वे थोड़े ही बचे रहे । जिस प्रकार वायु मेघोंका नाश कर देती है ॥ १६ ॥ कई यक्ष आहत होकर भाग गये कई भूमिपर गिर पड़े, कई क्रोध करके तीखे दाँतोंसे ओठ काटने लगे ॥ १७ ॥ जिनके शस्त्र छूट गये हैं जो थक गये हैं वे परस्पर आलिङ्गन करके व्यथित होने लगे । जलवेगके कारण तीरका जो दशा होती है वैसी ही दशा उनकी हुई ॥ १८ ॥ युद्धमें मरकर स्वर्ग जानेवाले, युद्ध करनेवाले, भागनेवाले यक्षों तथा युद्ध देखनेवाले ऋषियोंसे उस समय आकाश भर गया था ॥ १९ ॥ प्रधान-प्रधान बलवान् यक्ष युद्ध-क्षेत्रसे भाग गये यह देखकर महाबाहु धनेशने छोटे-छोटे यक्षोंको भेजा ॥ २० ॥ राम, इसी समय संयोधकंटकनामक यक्ष युद्धक्षेत्रमें गया इसके पास अधिक सेना और वाहन थे, इसको

तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः। पतितो भूतले शैलात्क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥२२॥
ससंज्ञस्तु मुहूर्तेन स विश्रम्य निशाचरः। तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे ॥२३॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यरजतोक्षितम्। मर्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत् ॥२४॥
तं तु राजन्दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम्। सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ॥२५॥
स वार्यमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचरः। यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत्स राक्षसः ॥२६॥
ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः। रुधिरं प्रस्रवन्भाति शैलो धातुस्रवैरिव ॥२७॥
स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः। जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात्स्वयंभुवः ॥२८॥
तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः। नादृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृततनुस्तदा ॥२९॥
ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षःपराक्रमम्। ततो नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः।
त्यक्तप्रहरणाः श्रान्ता विवर्णवदनास्तदा ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

पञ्चदशः सर्गः १५

ततस्तॉंल्लक्ष्य वित्रस्तान्यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः। धनाध्यक्षो महायक्षं माणिचारमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
रावणं जहि यक्षेन्द्र दुर्वृत्तं पापचेतसम्। शरणं भव वीराणां यक्षाणां युद्धशालिनाम् ॥ २ ॥

धनेशने भेजा था ॥ २१ ॥ उसने विष्णुके समान चक्रसे मारीचको मारा जिससे वह पर्वतके नीचे गिरा। जिस प्रकार पुण्यसे क्षीण होनेपर ग्रह आकाशसे गिरते हैं ॥ २२ ॥ थोड़ी देरमें होश आनेपर वह राक्षस विश्राम करके उस यक्षसे युद्ध करने लगा, जिससे वह यक्ष भाग गया ॥ २३ ॥ अनन्तर रावणने तोरणद्वारमें प्रवेश किया, जहाँ द्वारपाल रहते हैं, इस तोरणद्वारमें सुवर्णका काम किया हुआ था। वैदूर्यमणि और चाँदी वहाँ लगी हुई थी ॥२४॥ राक्षस रावण तोरणद्वारमें प्रवेश कर रहा है यह देखकर सूर्यभानु नामक द्वारपालने उसे रोका ॥ २५ ॥ यक्षके रोकनेपर भी जब वह राक्षस न रुका, यक्षके रोकने पर भी उसने प्रवेश किया ही, तब यक्षने तोरणद्वार उखाड़कर उससे उसे मारा। रावणके शरीरसे रुधिर बहने लगा, जिस प्रकार पर्वतसे गेरूकी धारा बहती है ॥ २७ ॥ पर्वत शिखरके तुल्य उस तोरणसे मारे जानेपर भी रावणकी कोई हानि नहीं हुई क्योंकि उसे ब्रह्माका वर मिला था ॥ २८ ॥ उसी तोरणसे रावणने उस यक्षको मारा जिससे वह यक्ष सदाके लिए लुप्त हो गया, उसका शरीर जल गया ॥२९॥ रावणका पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये, भयभीत होकर वे नदियों और गुहाओंमें जाकर छिप गये। उन लोगोंने अस्त्र छोड़ दिये, थकनेके कारण उनके मुँह मुरझा गये थे ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

धनेशने जब उन हजारों यक्षोंको भयभीत होकर भागते देखा तब वे मणिभद्र नामक महायक्षसे बोले ॥ १ ॥ यक्षेन्द्र, पापी दुराचारी रावणका वध करो, युद्धमें गये हुए वीर यक्षोंकी रक्षा करो ॥ २ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्माणिभद्रः सुदुर्जयः। वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ॥ ३ ॥
ते गदामुसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्गरैः। अभिघ्नन्तस्तदा यक्षा राक्षसान्समुपाद्रवन् ॥ ४ ॥
कुर्वन्तस्तुमुलं युद्धं चरन्तः श्येनवल्लघु। बाढं प्रयच्छ नेच्छामि दीयतामिति भाषिणः ॥ ५ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयो ब्रह्मवादिनः। दृष्ट्वा तत्तुमुलं युद्धं परं विस्मयमागमन् ॥ ६ ॥
यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे। महोदरेण चानिन्द्यं सहस्रमपरं हतम् ॥ ७ ॥
क्रुद्धेन च तदा राजन्मारीचेन युयुत्सुना। निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ८ ॥
क्व च यक्षार्जवं युद्धं क्व च मायाबलाश्रयम्। रक्षसां पुरुषव्याघ्र तेन तेऽभ्यधिका युधि ॥ ९ ॥
धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे। मुसलेनोरसि क्रोधात्ताडितो न च कम्पितः ॥१०॥
ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः। धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलः स पपात ह ॥११॥
धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितम्। अभ्यधावत सङ्ग्रामे माणिभद्रं दशाननः ॥१२॥
संक्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम्। शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुंगवः ॥१३॥
ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद्रणे। तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम् ॥१४॥
ततःप्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरभूत्किल। तस्मिंस्तु विमुखीभूते माणिभद्रे महात्मनि।
संनादः सुमहान्राजंस्तस्मिन्शैले व्यवर्धत ॥१५॥
ततो दूरात्प्रददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः। शुक्रप्रौष्ठपदाभ्यां च पद्मशङ्खसमावृतः ॥१६॥

धनेशके ऐसा कहनेपर चार हजार यक्षोंको साथ लेकर दुर्जय महाबाहु मणिभद्र युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ गदा, मुसल, प्रास, शक्ति, तोमर, मुद्गरसे राक्षसोंको मारते हुए यक्षोंने उनपर आक्रमण किया ॥४॥ यक्ष भयंकर युद्ध करने लगे, बाजके समान युद्ध-क्षेत्रमें भ्रमण करने लगे, वे परस्पर इस प्रकार बातें करने लगे। एकने कहा युद्ध हो, दूसरेने कहा नहीं चाहता हूँ, तीसरेने कहा अपना शस्त्र दो ॥ ५ ॥ उस तुमुल युद्धको देखकर गन्धर्व देवता तथा ब्रह्मवादी ऋषि बड़े विस्मित हुए ॥ ६ ॥ प्रहस्तने युद्धमें एक हजार यक्षोंको मारे, महोदरने दूसरे एक हजार यक्ष मारे ॥ ७ ॥ राजन्, युद्ध चाहनेवाले मारीचने क्रोध करके निमेष मात्रमें ही दो हजार यक्षोंको मार गिराया ॥ ८ ॥ यक्ष सीधे होते हैं वे सिधाईसे युद्ध करते हैं, राक्षस मायावी होते हैं वे छलसे युद्ध करते हैं, अतएव पुरुषसिंह, मायावी होनेके कारण राक्षस यक्षोंसे युद्धमें प्रबल हुए ॥ ७ ॥ उस महायुद्धमें धूम्राक्षने आकर मुलससे क्रोध करके मणिभद्रकी छातीमें मारा, पर इससे वह कम्पित न हुआ ॥ १० ॥ अनन्तर धूम्राक्षके मस्तकपर मणिभद्रने गदासे मारा जिससे वह व्याकुल हुआ और गिर पड़ा ॥११॥ धूम्राक्ष घायल हुआ वह गिरा और उसके शरीरसे रुधिर बहने लगा यह देखकर दसानन मणिभद्रकी ओर झपटा ॥१२॥ यक्ष-श्रेष्ठ मणिभद्रने क्रोध करके अपनी ओर आते रावणको देखकर तीन शक्तियोंसे उसे मारा ॥ १३ ॥ घायल होनेपर रावणने मणिभद्रके मुकुटमें मारा, उस प्रहारसे उसका मुकुट बगलमें गिर पड़ा ॥ १४ ॥ तबसे वह यक्ष पार्श्वमौलि कहा जाने लगा। अर्थात् जिसका मुकुट टेढ़ा हो गया है। महात्मा मणिभद्रके युद्धसे पराङ्मुख होनेपर उस पर्वतपर बड़ा कोला-हल होने लगा ॥ १५ ॥ मणिभद्रके युद्ध-क्षेत्रसे हट जानेपर शुक्र और प्रौष्ठपद मन्त्रियोंके साथ शंख

स दृष्ट्वा भ्रातरं संख्ये शापाद्विभ्रष्टगौरवम् । उवाच वचनं धीमान्युक्तं पैतामहे कुले ॥१७॥
यन्मया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मते । पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥१८॥
यो हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः । स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥१९॥
दैवतानि न नन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् । येन त्वमीदृशं भावं नीतस्तच्च न बुद्ध्यसे ॥२०॥
मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्य वै । स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥२१॥
अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोर्जनम् । स पश्चात्तप्यते मूढो मृतो गत्वात्मनो गतिम् ॥२२॥
कस्यचिन्नहि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः । यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥२३॥
ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान्वित्तं शूरत्वमेव च । प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥२४॥
एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी । न त्वां समभिभाषिष्येऽसद्वृत्तेष्वेष निर्णयः ॥२५॥
एवमुक्तास्ततस्तेन तस्यामात्याः समाहताः । मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥२६॥
ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना । गदयाभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानात्प्रकम्पितः ॥२७॥
ततस्तौ राम निघ्नन्तौ तदान्योन्यं महामृधे । न विह्वलौ न च श्रान्तौ तावुभौ यक्षराक्षसौ ॥२८॥
आग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा । राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥२९॥

और पद्म नामक धनके देवताओंमें रक्षित होकर धनेश वहाँ युद्धक्षेत्रमें दीख पड़े ॥ १६ ॥ उन्होंने युद्धक्षेत्रमें भाई रावणको देखा, आपके कारण उसका गौरव नष्ट हो गया है, बुद्धिमान् धनेश पिता यह कुलके अनुरूप वचन उससे बोले ॥ १७ ॥ मैंने तुम्हें रोका, पर तुम मूर्खने समझा नहीं, जब इसका फल पाकर तुम नरकमें जाओगे तब समझोगे ॥ १८ ॥ जो मूर्ख अज्ञानसे विष पी लेता है और समझता नहीं, पर अन्तमें वह अपने इस कर्मका फल समझता है । जब विपका प्रभाव फैलता है तब उसे मालूम होता है ॥ १९ ॥ तुम कोई धर्मका काम नहीं करते हो जिससे देवता तुमपर प्रसन्न हों, इसी देवताओंकी अकृपासे तुम इतने क्रूर हो गये हो और अपने पापोंको नहीं समझते हो ॥ २० ॥ माता-पिता ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करके मनुष्य उसका फल तब समझता है जब वह यमराजके वस होता है ॥२१॥ यह शरीर तो विनाशी है, इससे जो तपस्या नहीं करता वह मूर्ख उस समय पछताता है जब उसे अपने दुष्कर्मोंका फल मिलता है ॥ २२ ॥ किसी बुद्धिहीनकी बुद्धि स्वभावतः शुद्ध नहीं होती, किन्तु जैसा काम वह करता है फल भी उसको वैसा ही मिलता है । बुद्धि भी उसकी वैसी ही होती है ॥ २३ ॥ ऐश्वर्य रूप, बल, पुत्र, धन तथा वीरता मनुष्य अपने पुण्यकर्मोंसे ही पाता है ॥ २४ ॥ अतएव तुम अवश्य नरकगामी होगे क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ही ऐसी है अतएव मैं तुमसे बातें न करूँगा क्योंकि पापियोंके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है ॥ २५ ॥ धनेशने रावणके सचिवोंसे भी ऐसा ही कहा और उनपर प्रहार किया इससे मारीच आदि रावणके मन्त्री युद्धसे विमुख होकर भाग गये ॥ २६ ॥ अनन्तर यक्षराजने रावणके मस्तकपर गदासे मारा पर वह अपने स्थानसे हटा नहीं वहीं खड़ा रहा ॥ २७ ॥ राम, इसके बाद वे दोनों युद्ध करने लगे, एक दूसरेपर प्रहार करने लगे । उन दोनों यक्ष और राक्षसोंमें कोई भी विह्वल नहीं हुआ कोई भी थका नहीं ॥ २८ ॥ धनेशने रावणपर आग्नेय

ततो मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः। रूपाणां शतसाहस्रं विनाशाय चकार च ॥३०॥
व्याघ्रो वराहो जीमूतः पर्वतः सागरो द्रुमः। यक्षो दैत्यस्वरूपी च सोऽदृश्यत दशाननः ॥३१॥
बहूनि च करोति स्म दृश्यन्ते न त्वसौ ततः। प्रतिगृह्य ततो राम महदस्त्रं दशाननः ॥
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविद्ध्य महतीं गदाम् ॥३२॥
एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः। कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ॥३३॥
ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स तदा वृतः। धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम् ॥३४॥
निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः। पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ॥३५॥
काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम्। मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकालफलद्रुमम् ॥३६॥
मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम्। मणिकाञ्चनसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ॥३७॥
देवोपवाह्यमक्षय्यं सदा दृष्टिमनःसुखम्। बह्वाश्चर्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा परिनिर्मितम् ॥३८॥
निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम्। न तु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम् ॥३९॥
स तं राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्जितम्। जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात्सुदुर्मतिः ॥
जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात्समवातरत् ॥४०॥

अस्त्र चलाया, राक्षसेन्द्र रावणने वारुण अस्त्रसे उसे रोका ॥ २९ ॥ तब राक्षसराजने राक्षसी मायाकी, शत्रुओंका नाश करनेके लिए उसने सैकड़ों हजारों रूप बनाये ॥३०॥ बाघ वराह मेघ, पर्वत सागर वृक्ष यक्ष दैत्य आदिके रूप उसने बनाये, वह इन्हीं रूपोंमें दीख पड़ने लगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उसने अनेक रूप बनाये, ये ही रूप दीख पड़ते थे वह नहीं दीखता था। राम, इसके पश्चात् रावणने बहुत बड़ी गदा उठाकर उससे धनेशके मस्तकपर मारा ॥ ३२ ॥ उस गदाके प्रहारसे धनेश विह्वल हो गये उनके रुधिर बहने लगा जड़कटे अशोक वृक्षके समान वे गिर पड़े ॥३३। उस समय धनेशकी पद्म आदिने रक्षा की, नन्दन वनमें ले जाकर उन्हें होश कराया ॥ ३४ ॥ धनेशको जीतकर राक्षसेन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ। विजयका चिन्ह पुष्पकविमान उसने ले लिया ॥ ३५ ॥ उस विमानमें सुवर्णके खम्भे थे, वैदूर्यका तोरण-बाहर-का द्वार था, मोतियोंकी जाली थी, सब कालमें फल देनेवाले वृक्ष थे ॥३६। मनके तुल्य उसका वेग था आकाशमें चलनेवाला वह विमान जहाँ चाहे जा सकता था जैसा चाहे छोटा-बड़ा हो सकता था। मणि और सुवर्ण-की उसकी सीढ़ियाँ थीं, उज्ज्वल सुवर्णकी वेदियाँ उसमें बनी थीं ॥ ३७ ॥ देवता उसपर चढ़ते थे, कभी टूटनेवाला न था, आँख और मनको प्रसन्न करनेवाला था। उसमें अनेक आश्चर्य जनक बातें थीं, अनेक प्रकारकी रचना थी, ब्रह्माने उसे बनाया था ॥ ३८ ॥ वह ऐसा मनोहर और उत्तम बनाया गया था जिसमें सभी आवश्यक वस्तु रक्खी जा सकती थीं, उसमें न सरदी लगती थी न गरमी, सब ऋतुओंमें वह सुख-दायी था ॥ ३९ ॥ पराक्रमसे जीते हुए उस विमानपर चढ़कर राजा रावणने अहङ्कारके कारण समझा कि मैंने त्रिभुवन जीत लिया, क्योंकि वह मूर्ख था। वैश्रवणको जीतकर वह कैलाससे नीचे उतरा ॥ ४० ॥

स तेजसा विपुलमवाप्य तं जयं प्रतापवान्विमलकिरीटहारवान्।
रराज वै परमविमानमास्थितो निशाचरः सदसि गतो यथानलः ॥४१॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षष्ठदशः सर्गः १६

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधिपः। महासेनप्रसूतिं तद्ययौ शरवणं महत् ॥१॥
अथापश्यद्दशग्रीवो रौक्मं शरवणं महत्। गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥२॥
स पर्वतं समारुह्य कंचिद्रम्यवनान्तरम्। प्रेक्षते पुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं तदा ॥३॥
विष्टब्धं किमिदं कस्मान्नागमत्कामगं कृतम्। अचिन्तयद्राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ॥४॥
किंनिमित्तमिच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम्। पर्वतस्योपरिष्टस्य कर्मेदं कस्यचिद्भवेत् ॥५॥
ततोऽब्रवीत्तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः। नेदं निष्कारणं राजन्पुष्पकं यन्न गच्छति ॥६॥
अथवा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम्। अतो निष्पन्दमभवद्धनाध्यक्षविनाकृतम् ॥७॥
इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः। वामनो विकटो मुण्डी नन्दी ह्रस्वभुजो बली ॥८॥
ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽब्रवीत्। नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥९॥

प्रतापी रावणने बलसे वह बड़ी विजय पायी, उज्ज्वल किरीट और हार उसने धारण किया था उस समय बिमान पर बैठकर वह सभामें बैठे अग्निके समान शोभित होता था ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

राम, भाई धनेशको जीतकर राक्षसाधिप रावण विशाल शरवणमें गया जहाँ कार्तिकेय उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ दसाननने सोनेका शरवण देखा जो किरणयुक्त दूसरा सूर्य मालूम पड़ता था ॥ २ ॥ वह एक पर्वतपर गया जहाँ बड़ा ही सुन्दर वन था वहाँ जाकर उसने देखा कि पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ ३ ॥ यह रुक क्यों गया चलता क्यों नहीं यह तो इच्छानुसार चलनेवाला है, राक्षसेन्द्र अपने मन्त्रियोंके साथ यही सोचने लगा ॥ ४ ॥ किस कारण यह पुष्पक मेरी इच्छाके अनुसार नहीं चलता, अथवा पर्वतपर रहनेवाले किसीने यह किया है, उसीने इसकी गति रोक दी है ॥ ५ ॥ अनन्तर बुद्धिमान् मारीच बोला, राजन्, पुष्पकका रुक जाना निष्कारण नहीं है ॥ ६ ॥ अथवा यह पुष्पक धनेशको छोड़कर दूसरेको नहीं ले जाता, अर्थात् उन्हींके चढ़नेपर यह चलता है अतएव उनके न रहनेसे यह रुक गया है ॥७॥

मारीचके इस वाक्यके समाप्त होते ही शिवका अनुचर नन्दी रावणके पास आकर बोला, वह भयंकर काला था, उसका मस्तक बड़ा, हाथ छोटे थे और वह वामन था। नन्दीश्वर निःशङ्क होकर राक्षस राजासे बोला ॥ ८,९ ॥ दसानन, लौट जाओ, इस पर्वतपर महादेव क्रीड़ा करते हैं। अतएव पक्षी, नाग यक्ष, देव, गन्धर्व और राक्षस सभी प्राणियोंका इस पर्वतपर आना रोक दिया गया है। नन्दीके वचन

निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शंकरः । सुपर्णनागयक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥१०॥
सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः । इति नन्दिवचः श्रुत्वा क्रोधात्कम्पितकुण्डलः ॥११॥
रोषात्तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः । कोऽयं शंकर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ॥१२॥
सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् । दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शंकरम् ॥१३॥
तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः । प्रहासं मुमुचे तत्र सतोय इव तोयदः ॥१४॥
तं क्रुद्धो भगवान्नन्दी शंकरस्यापरा तनुः । अब्रवीत्तत्र तद्रक्षो दशाननमुपस्थितम् ॥१५॥
यस्माद्वानररूपं मामवज्ञाय दशानन । अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान् ॥१६॥
तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः । उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥१७॥
नखदंष्ट्रायुधाः क्रूर मनःसंपातरंहसः । युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः ॥१८॥
ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम् । व्यपनेष्यन्ति संभूय सहामात्यसुतस्य च ॥१९॥
किं त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर । न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ॥२०॥
इत्युदीरितवाक्ये तु देवे तस्मिन्महात्मनि । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥२१॥
अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं महाबलः । पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमाह दशाननः ॥२२॥
पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः । तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥२३॥
केन प्रभावेण भवो नित्यं क्रीडति राजवत् । विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥२४॥

सुनते ही रावणके कुण्डल क्रोधसे काँप गये ॥१०,११॥ उसकी आँखें लाल हो गयीं, वह पुष्पकसे उतरकर "यह शंकर कौन है" कहता हुआ पर्वतकी जड़में आया ॥ १२ ॥ उसने नन्दीको देखा जो शिवके पास ही शूल लेकर दूसरे शिवके समान खड़ा था ॥ १३ ॥ वह राक्षस नन्दीका वानरके समान मुँह देखकर जल-वाले मेघके गर्जनके समान जोरसे हँसा ॥ १४ ॥ शिवके दूसरे स्वरूप भगवान नन्दी क्रोध करके उस सामने खड़े दसाननसे बोले ॥ १५ ॥ रावण, मेरा वानरका आकार देखकर तुमने अपमान किया है और वज्रपातके समान घोर अट्टहास किया है ॥ १६ ॥ अतएव मेरे ही समान रूप, बल और तेजवाले वानर तुम्हारे कुलका नाश करनेके लिए उत्पन्न होंगे ॥ १७ ॥ नख और दाँत उनके अस्त्र होंगे, मनके समान वे वेगवान होंगे, तुम्हारे कुलका वध करनेके लिए वानर उत्पन्न होंगे ॥ १८ ॥ वे मन्त्री और पुत्रोंके साथ तुम्हारा प्रबल अहंकार खास तरहका उसको दूर करेंगे ॥ १९ ॥ निसाचर, मैं तुमको इसी समय मार सकता हूँ ! पर मैं मारता नहीं, क्योंकि अपने बुरे कर्मोंके द्वारा तुम पहलेसेही मारे गये हो ॥ २० ॥ महात्मा नन्दीदेवके इस प्रकारके वाक्य कहनेपर देवदुन्दुभि बजने लगी और आकाशसे पुष्प वृष्टि हुई ॥ २१ ॥ पर महाबली रावणने नन्दीके वचनोंकी ओर ध्यान नहीं दिया और वह पर्वतके पास जाकर इस प्रकार बोला ॥ २२ ॥ मैं जा रहा था मेरे पुष्पककी गति इस पर्वतने रोक दी अतएव, हे बैलोंके स्वामी मैं तुम्हारे इस पर्वतको उखाड़ फेकूँगा ॥ २३ ॥ किस ऐश्वर्य बलसे शिव, राजाके समान क्रीड़ा करता है, उसे सामने आया हुआ भय जानना चाहिए था, पर वह इसे नहीं जानता ॥ २४ ॥ राम, ऐसा कहकर

एवमुक्त्वा ततो राम भुजान्विक्षिप्य पर्वते । तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत ॥२५॥
चालनात्पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः । चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥२६॥
ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः । पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥२७॥
पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्तम्भोपमा भुजाः । विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥२८॥
रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात्तथा । मुक्तो विरावः सहसा त्रैलोक्यं येन कम्पितम् ॥२९॥
मेनिरे वज्रनिष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये । तदा वर्त्मसु चलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥३०॥
समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः । यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥३१॥
तोषयस्व महादेवं नीलकण्ठमुमापतिम् । तमृते शरणं नान्यं पश्यामोऽत्र दशानन ॥३२॥
स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज । कृपालुः शंकरस्तुष्टः प्रसादं ते विधास्यति ॥३३॥
एवमुक्तस्तदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् । सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः ।
संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ॥३४॥
ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितं प्रभुः । मुक्त्वा चास्य भुजान्राम प्राह वाक्यं दशाननम् ॥३५॥
प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य शौण्डीर्याच्च दशानन । शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः ॥३६॥
यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम् । तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन्भविष्यसि ॥३७॥
देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले । एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥३८॥

रावणने अपनी भुजाएँ पर्वतमें लगायीं और वह उसे उठाने लगा, जिससे पर्वत काँप गया ॥ २५ ॥ पर्वतके काँपनेसे महादेवके गण भी काँप गये, और पार्वती घबड़ाकर महादेवसे लिपट गयीं ॥ २६ ॥ तब देवताओंमें श्रेष्ठ महादेव हरने अपने पैरके अँगूठेसे उस पर्वतको साधारणतः दबा दिया ॥ २७ ॥ इससे रावणकी पर्वततुल्य भुजाएँ दब गयीं, इससे दसाननके मन्त्री विस्मित हुए ॥ २८ ॥ राक्षस रावणने क्रोधसे तथा भुजाओंकी पीड़ासे घोर राव-शब्द किया जिससे त्रिलोक काँप गया ॥ २९ ॥ उस शब्दको सुनकर रावणके मन्त्रियोंने प्रलयकालीन वज्रका शब्द समझा। उस समय नक्षत्र मार्गमें वर्तमान इन्द्र आदि देवता विचलित हो गये, समुद्र क्षुभित हुए और पर्वत काँपने लगे। यक्ष विद्याधर और सिद्ध क्या है, यह आश्चर्यसे पूछने लगे ॥ ३०,३१ ॥ रावणके मन्त्रियोंने उस समय कहा, दसानन, नीलकण्ठ महादेव उमापतिको प्रसन्न करो। उनके अतिरिक्त दूसरा रक्षक नहीं दीख पड़ता ॥३२॥ नम्र होकर स्तुतिके द्वारा तुम उन्हींकी शरण जाओ! शंकर कृपालु हैं, वे सन्तुष्ट होकर तुमपर कृपा करेंगे ॥ ३३ ॥ मन्त्रियोंके इस प्रकार कहनेपर दसानन प्रणाम करके सन्तुष्ट करनेवाले अनेक प्रकारके स्तोत्रोंके द्वारा महादेवकी स्तुति करने लगा ॥ इस प्रकार रोते-रोते रावणके एक हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥ अनन्तर पर्वतके शिखरपर बैठे हुए प्रभु महादेव प्रसन्न हुए, उसकी भुजाओंको छोड़कर वे उससे बोले ॥ ३५ ॥ दसानन, तुम वीर हो तुम्हारे बलसे मैं प्रसन्न हूँ। पर्वतसे दबनेके समय तुमने जो भयकर शब्द किया था, जिससे तीनों लोक रावित-प्रतिध्वनित और भयभीत हो गये थे, राजन्, इस कारण तुम्हारा नाम रावण होगा ॥ ३६,३७ ॥ देवता मनुष्य यथा-तथा पृथिवीमें और जो प्राणी हैं वे सब तुमको रावण कहेंगे, क्योंकि तुमने लोकोंको

गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धं पथा येन त्वमिच्छसि । मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥३९॥
एवमुक्तस्तु लङ्केशः शंभुना स्वयमब्रवीत् । प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥४०॥
अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः । राक्षसैर्गुह्यकैर्नागैर्ये चान्ये बलवत्तराः ॥४१॥
मानुषान्न गणे देव स्वल्पास्ते मम संमताः । दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ।
वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे ॥४२॥
एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्करः । ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ।
आयुषश्चावशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा ॥४३॥
दत्त्वोवाच ततः शंभुर्नावज्ञेयमिदं त्वया । अवज्ञातं यदि हि ते मामेवैष्यत्यसंशयः ॥४४॥
एवं महेश्वरेणैव कृतनामा स रावणः । अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ॥४५॥
ततो महीतलं राम पर्यक्रामत रावणः । क्षत्रियान्सुमहावीर्यान्बाधमानस्ततस्ततः ॥४६॥
केचित्तेजस्विनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः । तच्छासनमकुर्वन्तो विनेशुः सपरिच्छदाः ॥४७॥
अपरे दुर्जयं रक्षो जानन्तः प्राज्ञसंमताः । जिताः स्म इत्यभाषन्त राक्षसं बलदर्पितम् ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥१६॥

रावित किया है ॥ ३८ ॥ पौलस्त्य, निःशङ्क होकर जिधरसे चाहो उधरसे जाओ । राक्षसाधिप, मेरी आज्ञा है, तुम जाओ ॥ ३९ ॥ महादेवके ऐसा कहनेपर लंकेश स्वयं बोला, महादेव, यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे वर दीजिए, मैं माँगता हूँ ॥ ४० ॥ देवता, गन्धर्व दानव, राक्षस, गुह्यक नाग तथा और जो बली हैं उनसे अवध्यत्व मैंने पाया है, अर्थात् वे मेरा वध नहीं कर सकेंगे ॥ ४१ ॥ देव, मैं मनुष्योंको कुछ नहीं समझता, क्योंकि मेरी समझसे वे छोटे हैं । त्रिपुरान्तक, ब्रह्मासे मुझे दीर्घ आयु भी प्राप्त है । अब मैं ब्रह्माकी दी हुई आयुसे भी अधिक आयु चाहता हूँ और शस्त्र चाहता हूँ ॥ ४२ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर महादेव शंकर उसे चन्द्रहास नामक चमकीली तलवार दी और उसकी आयु भी बढ़ा दी ॥ ४३ ॥ तलवार देकर महादेवने कहा कि इसका तिरस्कार न करना, यदि तुम तिरस्कार करोगे तो यह मेरे ही पास लौट आवेगी ॥ ४४ ॥ इस प्रकार महादेवसे नया नाम पाकर रावणने उन्हें प्रणाम किया और पुष्पक विमानपर सवार हुआ ॥ ४५ ॥

राम, अनन्तर रावण पृथिवीपर मारे भ्रमण करनेलगा और यहाँ अनेक वीर क्षत्रियोंको उसने पीड़ित किया ॥ ४६ ॥ जो क्षत्रिय शूर तेजस्वी युद्धके उत्साही थे उन्होंने रावणकी आज्ञा नहीं मानी इस कारण वे परिवारके साथ नष्ट हो गये । रावणने उनका नाश कर दिया ॥ ४७ ॥ जो बुद्धिमान् थे, और रावणका जीतना कठिन है यह जानते थे उन लोगों ने बलदर्पित रावणके सामने हार मान ली ॥ ४८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७

अथ राजन्महाबाहुर्विचरन्पृथिवीतले । हिमवद्वनमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥ १ ॥
तत्रापश्यत्स वै कन्यां कृष्णाजिनजटाधराम् । आर्षेण विधिना युक्तां दीप्यन्तीं देवतामिव ॥ २ ॥
स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् । काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥ ३ ॥
किमिदं वर्तते भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते । नहि युक्ता तवैतस्य रूपस्यैव प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥
रूपं तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं नृणाम् । न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ॥ ५ ॥
कस्यासि किमिदं भद्रे कश्च भर्ता वरानने । येन सम्भुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग्भुवि ॥ ६ ॥
पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतोः परिश्रमः । एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ॥ ७ ॥
अब्रवीद्विधिवत्कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना । कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ।
बृहस्पतिसुतः श्रीमान्बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ॥ ८ ॥
तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः । सम्भूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ॥ ९ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे ॥१०॥
न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान्राक्षसेश्वर । कारणं तद्वदिष्यामि निशामय महाभुज ॥११॥
पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः । अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ॥१२॥

राम, महाबाहु रावण पृथिवी तलपर भ्रमण करता हुआ रावण हिमालयकी तराईमें आकर भ्रमण करने लगा ॥ १ ॥ वहाँ उसने एक कन्या देखी जो कृष्ण मृगचर्म और जटा धारण किये हुए थी, ऋषियोंकी विधिसे रहती थी तथा देवताओंके समान प्रकाशमान थी ॥ २ ॥ व्रतधारी रूपवती उस कन्याको देखकर रावण कामसे मोहित हुआ और हँसकर उसने उससे पूछा ॥ ३ ॥ भद्रे, यह यौवनके विरुद्ध कैसा बर्ताव करती हो, यह उचित नहीं है, तुम्हारा यह कार्य्य यौवनके प्रतिकूल है ॥ ४ ॥ भीरु, तुम्हारा रूप अनुपम है यह पुरुषोंको उन्मत्त करनेवाला है । तुम्हारी जैसी स्त्रीको तपस्या नहीं करनी चाहिए, यह बूढ़ोंका मत है ॥ ५ ॥ भद्रे, तुम किसकी कन्या हो, यह क्या करती हो, तुम्हारा पति कौन है, जो तुम्हारा भोग करता है वह सचमुच पृथिवीमें पुण्यात्मा है ॥ ६ ॥ मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझसे कहो किसलिए यह परिश्रम कर रही हो । वह यशस्विनी कन्या रावणके ऐसा कहने-पर विधिपूर्वक उसका आतिथ्य करके बोली । अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षि कुशध्वज मेरे पिता थे । वे बृहस्पति-के पुत्र थे और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ वे महात्मा सदा वेदाभ्यास किया करते थे उनसे ही वाङ्मयी कन्या मैं उत्पन्न हुई, मेरा नाम वेदवती है ॥ ९ ॥ अनन्तर, देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस पन्नग आदिने जाकर मेरे पितासे मुझे माँगा । मुझसे ब्याह करनेकी इच्छा प्रकटकी ॥ १० ॥ राक्षसेश्वर, मेरे पिताने उन लोगोंको मुझे नहीं दिया, महाराज इसका कारण कहती हूँ सुनो ॥ ११ ॥ मेरे पिता त्रिलोकेश विष्णुको अपना दामाद बनाना चाहते थे । अतएव दूसरेको देना वे नहीं चाहते थे । यह सुनकर दैत्योंके राजा शम्भुने मेरे पितापर क्रोध किया, उस पापीने रातको सोते समय मेरे पिताको मार डाला ॥१२॥१३॥

दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः । शंभुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ।
तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥१३॥
ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम । परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥१४॥
ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति । करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्वहे ॥१५॥
इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तपः । एतत्ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुंगव ॥१६॥
नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् । आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥१७॥
विज्ञातस्त्वं हि मे राजन्गच्छ पौलस्त्यनन्दन । जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥१८॥
सोऽब्रवीद्रावणो भूयस्तां कन्यां सुमहाव्रताम् । अवरुह्य विमानाग्रात्कंदर्पशरपीडितः ॥१९॥
अवलिप्तासि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी । वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसञ्चयः ॥२०॥
त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुमीदृशम् । त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते ॥२१॥
अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः । तस्य मे भव भार्या त्वं भुङ्क्ष्व भोगान्यथासुखम् ॥२२॥
कश्च तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे । वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ॥
स मया नो समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ॥२३॥
इत्युक्तवति तस्मिंस्तु वेदवत्यथ साब्रवीत् । मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ॥२४॥
त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोकनमस्कृतम् । त्वदृते राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान् ॥२५॥

इससे दुःखी होकर बिचारी मेरी माताने मेरे पिताका शरीर लेकर अग्निमें प्रवेश किया ॥ १४ ॥ नारायण-के लिए पिताकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिए मैं नारायणको हृदयमें धारण करती हूँ । उन्हींका ध्यान करती हूँ उन्हींके लिए तपस्या करती हूँ ॥ १५ ॥ मैं पिताकी प्रतिज्ञा मानकर कठोर तप कर रही हूँ । राक्षस श्रेष्ठ, मैंने तुमसे यह सब बातें कहीं ॥ १६ ॥ मेरे पति नारायण हैं, पुरुषोत्तमके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा पति नहीं है नारायणको पानेके लिए ही मैं कठोर नियमोंका पालन करती हूँ ॥ १७ ॥ पौलस्त्य नन्दन, मैंने तुमको जान लिया है, तुम जाओ, क्योंकि संसारमें जो कुछ है वह सब मैं तपस्याके प्रभावसे जान लेती हूँ ॥ १८ ॥

व्रतधारिणी उस कन्यासे रावण कामबाणोंसे पीड़ित विमानसे उतरकर बोला ॥ १९ ॥ सुश्रोणि, तुम्हें अहंकार हो गया है, जिससे तुम्हारी बुद्धि ऐसी है, तुमने ऐसा निश्चय किया है । मृगशावाक्षि, पुण्य संग्रह करना, तपस्या करना वृद्धोंको शोभता है ॥ २० ॥ तुम सब प्रकारसे गुणवती हो, तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए, तपस्याकी बात नहीं बोलनी चाहिए । भीरु, तुम त्रिलोकमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हो तुम्हारा यौवन बीता जा रहा है ॥ २१ ॥ मैं लंकापति हूँ, मेरा नाम दसग्रीव है, तुम मेरी स्त्री बनो और सुखपूर्वक सब भोगों-को-भोगो ॥ २२ ॥ वह कौन है जिसको तुम विष्णु कह रही हो । जिसको तुम चाहती हो, वह वीर्य, तपस्या, भोग और बलमें मेरे समान नहीं है ॥ २३ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर वह कन्या वेदवती उस राक्षससे बोली, नहीं, ऐसा मत कहो ॥ २४ ॥ विष्णु त्रिलोकके स्वामी हैं सबके आदरणीय हैं, राक्षसेन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त और कौन बुद्धिमान् उनका

एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः। मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत् ॥२६॥
ततो वेदवती क्रुद्धा केशान्हस्तेन साच्छिनत्। असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छिन्नांस्तदाकरोत् ॥२७॥
सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम्। उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतत्वरा ॥२८॥
धर्षितायास्त्वयानार्य न मे जीवितमिष्यते। रक्षस्तस्मात्प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ॥२९॥
यस्मात्तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने। तस्मात्तव वधार्थं हि समुत्पत्स्याम्यहं पुनः ॥३०॥
नहि शक्यः स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः। शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ॥३१॥
यदि त्वस्ति मया किंचित्कृतं दत्तं हुतं तथा। तस्मात्त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ॥३२॥
एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम्। पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ॥३३॥
सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो। तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ॥३४॥
पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्ययासौ निहतस्तया। उपाश्रयित्वा शैलाभस्तव वीर्यममानुषम् ॥३५॥
एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पत्स्यते पुनः। क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ॥३६॥
एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे। त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः।
उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अनादर करेगा । २५ ॥ वेदवतीके यह कहनेपर उस राक्षसने हाथसे उसके बाल पकड़े ॥ २६ ॥ इससे वेदवती क्रुद्ध हुई और उसने अपने बालोंको हाथसे काटा । उसका हाथ उस समय तलवार बन गया उसने उसके बाल काट डाले ॥ २७ ॥ वह क्रोधसे जलने लगी मानों राक्षस रावणको जला रही हो, उसने मरनेका निश्चय कर लिया और अग्नि एकत्र करके वह रावणसे बोली । २८ ॥ राक्षस, तुमने मेरा अपमान किया है, पर पुरुष होकर तुमने मुझे छू लिया है । अब मेरा जीना अनुचित है । अतएव तुम्हारे सामने ही मैं अग्निमें प्रवेश करती हूँ ॥ २९ ॥ पापी, तुमने वनमें मेरा अपमान किया है अतएव तुम्हारे वधका कारण बननेके लिए मैं पुनः उत्पन्न हूँगी ॥ ३० ॥ स्त्रियोंको पापी पुरुषका वध नहीं करना चाहिए, अतएव मैं तुम्हारा वध नहीं करती, शाप दे सकती हूँ, पर शाप देनेमें मेरी तपस्या नष्ट होगी ॥ ३१ ॥ यदि मैंने कुछ धर्म किया है, दान किया है, हवन किया है तो मैं किसी धार्मिककी अयोनिजा साध्वी कन्या हूँगी ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर वह कन्या जलती आगमें घुस गयी उसी समय आकाशसे पुष्प वृष्टि होने लगी । ३३॥

महाबाहो, वही राजा जनककी कन्या हुई और तुम्हारी स्त्री हुई, क्योंकि तुम सनातन विष्णु हो ॥ ३४ ॥ जिसने पहले वेदवतीके रूपमें शत्रुको क्रोधसे मारा था उसीने उसी पर्वततुल्य शत्रुको देवतुल्य तुम्हारा बल पाकर मारा ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार यह महाभागा वेदवती मृत्युलोकमें पुनः उत्पन्न होगी । हलके फालसे यह खेतमें उत्पन्न होगी, जिस प्रकार वेदीसे अग्निशिखा उत्पन्न होती है ॥ ३६ ॥ यह पहले सत्ययुगमें वेदवती नामसे प्रसिद्ध थी, त्रेता युगमें राक्षस रावणके वधके लिए महात्मा जनकके मैथिल कुलमें हलके फालसे उत्पन्न हुई। जिससे मनुष्य इसे सीता कहते हैं । (सीता हलके फालको भी कहते हैं)॥३७॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सत्रहवाँ सर्गसमाप्तः ॥१७॥

अष्टादशः सर्गः १८

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः। पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥
ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः। उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ॥ २ ॥
संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद्भ्राता बृहस्पतेः। याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा देवास्तु तद्रक्षो वरदानेन दुर्जयम्। तिर्यग्योनिं समाविष्टास्तस्य धर्षणभीरवः ॥ ४ ॥
इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः। कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥
अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन। रावणः प्राविशद्यज्ञं सारमेय इवाशुचिः ॥ ६ ॥
तं च राजानमासाद्य रावणो राक्षसाधिपः। प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोऽस्मीति वा वद ॥ ७ ॥
ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम्। अवहासं ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव। धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥
त्रिषु लोकेषु कोऽन्योऽस्ति यो न जानाति मे बलम्। भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥१०॥
ततो मरुत्तः स नृपस्तं रावणमथाब्रवीत्। धन्यः खलु भवान्येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः।
न त्वया सदृशः श्लाघ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते। नाधर्मं सहितं श्लाघ्यं तल्लोकं प्रतिसंहितम् ॥
कर्म दौरात्म्यकं कृत्वा श्लाघसे भ्रातृनिर्जयात् ॥११॥
कं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम्। श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृशं स्वयम् ॥१२॥

वेदवतीके अग्निप्रवेश करनेपर रावण पुष्पक विमानपर बैठकर पृथिवी परिभ्रमण करने लगा ॥ १ ॥ रावणने उशीर बीजनामक देशमें जाकर देवताओंके साथ यज्ञ करते हुए मरुत नामक राजाको देखा ॥ २ ॥ बृहस्पतिके सगे भाई संवर्त नामक ब्रह्मर्षि देवताओंको साथलेकर यज्ञ करा रहे थे ॥ ३ ॥ वरदानके कारण अजेय उस राक्षसको देवताओंने देखा, उसके पीड़नसे भयभीत होकर देवताओंने पशु-पक्षी आदिके शरीरमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ इन्द्रमयूर हुए, यमराज काक हुए, धनेश गिरगिट हुए और वरुण हंस हुए ॥ ५ ॥ इसी प्रकार अन्य देवताओंने भी भिन्न-भिन्न योनियोंमें प्रवेश किया। कुत्तेके समान अपवित्र रावणने उसी समय उस यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ राजाके पास जाकर राक्षसाधिप रावण बोला, या तो मुझसे युद्ध करो या हार मान लो ॥ ७ ॥ राजा मरुतने उससे पूछा, आप कौन है ? इसे अपना उपहास समझकर रावण बोला ॥ ८ ॥ राजन आपकी इस गम्भीरतासे मैं प्रसन्न हूँ, मुझे देखकर भी आप भयभीत नहीं हुए इससे मैं खुश हूँ। धनेशका छोटा भाई मैं रावण हूँ। आप मुझे नहीं जानते। ॥ ९ ॥ तीनों लोकोंमें कौन ऐसा है जो मेरा बल न जानता हो। बड़े भाई धनेशको जीतकर मैं यह विमान ले आया हूँ ॥ १० ॥

राजा मरुतने रावणसे कहा, आप धन्य है, जिन्होंने युद्धमें बड़े भाईको जीता है। तुम्हारे समान श्लाघनीय तीनों लोकोंमें कोई नहीं है अधर्मयुक्त कार्य श्लाघनीय नहीं होता और न वह लोक सम्मत ही होता है। पापकर्म करके भाईको जीतकर तुम अपनी तारीफ करते हो ॥ ११ ॥ पहले कौनसा धर्माचरण करके तुमने वर पाया है। तुमने स्वयं अपने मुँहसे जो धर्मकार्य बतलाये हैं, वैसे कार्य तो मैंने पहले

तिष्ठेदानीं न मे जीवन्प्रतियास्यसि दुर्मते । अद्य त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ॥१३॥
ततः शरासनं गृह्य सायकांश्च नराधिपः । रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ॥१४॥
सोऽब्रवीत्स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः । श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं संप्रहारो न ते क्षमः ॥१५॥
माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं कुलं दहेत् । दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ॥१६॥
संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः । स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः ।
विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत् ॥१७॥
ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः । रावणो जयतीत्युच्चैर्हर्षान्नादं विमुक्तवान् ॥१८॥
तान्भक्षयित्वा तत्रस्थान्महर्षीन्यज्ञमागतान् । वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः संप्रययौ महीम् ॥१९॥
रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः । ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि चाब्रुवन् ॥२०॥
हर्षात्तदाब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम् । प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ भुजंगाद्धि न ते भयम् ॥२१॥
इदं नेत्रसहस्रं तु यत्तद्बर्हे भविष्यति । वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणम् ।
एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः ॥२२॥
नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिप । सुराधिपाद्वरं प्राप्य गताः सर्वेऽपि बर्हिणः ॥२३॥
धर्मराजोऽब्रवीद्राम प्राग्वंशे वायसं प्रति । पक्षिंस्तवास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु ॥२४॥
यथान्ये विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया । ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥२५॥

कभी नहीं सुने ॥ १२ ॥ मूर्ख ठहर, तू मेरे यहाँसे जीता नहीं लौट सकता है । आज तीखे बाणोंसे तुझे यमराजके घर भेजता हूँ ॥ १३ ॥ राजा मरुत्त धनुष बाण लेकर युद्धके लिए चले, संवर्त ऋषिने उनका मार्ग रोक लिया ॥ १४ ॥ स्नेहपूर्वक वे ऋषि राजा मरुत्तसे बोले, यदि तुम मेरी बात सुनो तो युद्ध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ॥ १५ ॥ यह माहेश्वर यज्ञ है, बिना समाप्त किये ही यदि यह छोड़ दिया जाय तो यह कुलको जला देता है । जिसने यज्ञकी दीक्षा ली है उसे क्या युद्ध करना चाहिए और जिसने दीक्षा ली है क्या उसे क्रोध करना चाहिए ॥ १६ ॥ विजयमें सदा सन्देह बना रहता है, यह राक्षस भी अजेय है । गुरुके कहनेसे राजा मरुत्त लौट आये । धनुष-बाण रखकर वे यज्ञमें लग गये ॥ १७ ॥ अनन्तर शुकने राजाकी हार घोषितकी और रावण जीता यह भी हर्षित होकर घोषित किया ॥ १८ ॥ यज्ञमें आये हुए वहाँ वर्तमान ऋषियोंको खाकर और उनके रुधिरसे तृप्त होकर रावण पुनः पृथिवी परिभ्रमण करने लगा ॥ १९ ॥ रावणके चले जानेपर इन्द्र आदि देवता पुनः अपने-अपने रूपमें आये और जिन-जिन प्राणियोंके रूपमें उन लोगोंने प्रवेश किया था उनसे बोले ॥ २० ॥ प्रसन्न होकर इन्द्र नीलवर्णी मयूरसे बोले, धर्मज्ञ, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ, सर्पोंसे तुम्हें भय न होगा ॥ २१ ॥ मेरे जो ये हजार नेत्र हैं वे तुम्हारे पंखपर होंगे । जब मैं वृष्टि करूँगा उस समय प्रेमका चिन्ह स्वरूप तुम्हें आनन्द होगा । इस प्रकार देवराज इन्द्रने मयूरको वर दिया ॥ २२ ॥ मयूरोंके पंख पहले काले थे, इतने सुन्दर न थे, इन्द्रसे वर पानेपर वे सुन्दर हुए उनपर आँखे हुईं ॥ २३ ॥ धर्मराज, यज्ञशालाका धरनपर बैठे काकसे बोले, पक्षी, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ और प्रसन्न होकर जो कहता हूँ वह सुनो ॥ २४ ॥ जिस प्रकार अनेक रोगोंके द्वारा मैं

मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहंगम। यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्भविष्यसि ॥२६॥
ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः। त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥२७॥
वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविचारिणम्। श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं ततः पत्ररथेश्वरम् ॥२८॥
वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः। भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥२९॥
मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि। प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥३०॥
हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः। पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥३१॥
अथाब्रवीद्वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम्। हैरण्यं संप्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥३२॥
सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम्। एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥३३॥
एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन्यज्ञोत्सवे सुराः। निवृत्ते सह राज्ञा ते पुनः स्वभवनं गताः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः। नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकाङ्क्षी दशाननः ॥ १ ॥
समासाद्य तु राजेन्द्रान्महेन्द्रवरुणोपमान्। अब्रवीद्राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥ २ ॥
निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः। अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥

प्राणियोंको पीड़ा देता हूँ। मेरे प्रसन्न होनेके कारण उन रोगोंका असर तुमपर न होगा ॥ २५ ॥ विहँगम, मेरे वरके कारण मृत्युसे तुम्हें भय न होगा। जबतक मनुष्य तुम्हें मार न देंगे तबतक तुम बने रहोगे ॥ २६ ॥ मेरे राज्यमें जो भूखे मनुष्य रहते हैं वे तुम्हारे खानेसे सपरिवार सन्तुष्ट हो जायँगे ॥ २७ ॥ गंगाके जलमें विचरण करनेवाले हंससे वरुण बोले, हे पक्षिराज, प्रेमयुक्त मेरा वचन सुनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा वर्ण चन्द्र मण्डलके समान और स्वच्छ फेनके समान सुन्दर होगा तथा प्रसिद्ध होगा ॥ २९ ॥ मेरा शरीर, रूप, जल पाकर तुम बहुत सुन्दर होगे और प्रसन्नता पाओगे, यही मेरे प्रेमका चिन्ह है, यही मेरा प्रेमोपहार है ॥ ३० ॥ राम, पहले हंसोंका समस्त शरीर श्वेत नहीं होता था, पंखके अग्र भागमें नीला होता था और दोनों पैरोंके बीचका भाग घासके वर्णका होता था ॥ ३१ ॥ पर्वतपर बैठे गिरगिटसे धनेश बोले, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सोनेका रंग देता हूँ ॥ ३२ ॥ तुम्हारे सिरका वर्ण सदा सोनेका रहेगा, वह कभी नष्ट नहीं होगा और न बदलेगा यह सोनेका तुम्हारा रंग मेरी प्रसन्नताके कारण होगा ॥ ३३ ॥ उस यज्ञोत्सवमें उनको देवताओंने इस प्रकारके वर दिये। यज्ञ समाप्त होनेपर राजाके साथ वे अपने घर गये ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१८॥

अनन्तर युद्ध की इच्छा रखनेवाला राक्षसाधिप रावण राजा मरुतको जीतकर राजाओंकी राजधानियोंमें गया ॥ १ ॥ इन्द्रवरुण तुल्य राजाओंको पाकर राक्षसराजने कहा कि आप मेरे साथ युद्ध करें ॥ २ ॥ अथवा अपनी हार मान लीजिए। इन दोनोंमेंसे आपको एक करना ही होगा यही मेरा

ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः। मन्त्रयित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ॥ ४ ॥
निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः। दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरूरवः ॥ ५ ॥
एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः। अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवामरावतीम्। स तं पुरुषशार्दूलं पुरंदरसमं बले ॥ ७ ॥
प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः। निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि त्वमेवं मम शासनम् ॥ ८ ॥
अयोध्याधिपतिस्तस्य श्रुत्वा पापात्मनो वचः। अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥
दीयते द्वन्द्वयुद्धं ते राक्षसाधिपते मया। संतिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ॥१०॥
अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहद्बलम्। निष्क्रामत्तन्नरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥११॥
नागानां दशसाहस्रं वाजिनां नियुतं तथा। रथानां बहुसाहस्रं पत्तीनां च नरोत्तम ॥१२॥
महीं संछाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं रणे। ततः प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं युद्धविशारद ॥१३॥
अनरण्यस्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चाद्भुतम्। तद्रावणबलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ॥१४॥
प्राणश्यत तदा सर्वं हव्यं हुतमिवानले। युद्ध्वा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ॥१५॥
प्रज्वलन्तं तमासाद्य क्षिप्रमेवावशेषितम्। प्राविशत्तत्सकुलं तत्र शलभा इव पावकम् ॥१६॥
सोऽपश्यत्तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम्। महार्णवं समासाद्य वनापगशतं यथा ॥१७॥

निश्चय है। यदि आपने इसके विरुद्ध आचरण किया तो आपको छुटकारा न मिलेगा ॥ ३ ॥ अनन्तर निर्भय, बुद्धिमान, बलवान् तथा धर्मपूर्वक कर्तव्यका निर्णय करनेवाले राजाओंने आपसमें सलाहकी और उन लोगोंने हार मान ली, क्योंकि शत्रु बलवान् है, दुष्यन्त सुरथ गाधि, गय राजा पुरूरवा आदि राजाओं ने अपनी हार मानली। इन स्थानोंसे राक्षसराज रावण अयोध्या आया ॥ ४ ॥ ६ ॥ उस समय राजा अनरण्य अयोध्याकी रक्षा करते थे, जिस प्रकार इन्द्र अमरावतीकी रक्षा करते हैं। इन्द्रके समान बली पुरुषसिंह राजाके पास जाकर रावणने युद्ध माँगा अथवा हार माननेको कहा। रावणने कहा यही मेरी आज्ञा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस पापीके वचन सुनकर अयोध्याधिपति अनरण्य क्रोध करके उससे बोले ॥९॥ राक्षसराज, मैं तुमको द्वन्द्वयुद्ध देता हूँ। ठहरो, शीघ्र तैयार हो जाओ मैं भी तैयार होता हूँ ॥ १० ॥ राजाने रावणके वृत्तान्त पहले सुने थे और उसको जीतनेके लिए बड़ी सेना नियुक्तकी थी, वही रावणके वधके लिए उद्यत राजाकी सेना युद्धके लिए निकली ॥ ११ ॥ इस सेनामें दस हजार हाथी थे, एक लाख घोड़े और रथ, कई हजार पैदल ॥ १२ ॥ पैदल और रथोंके साथ वह सेना निकली जिससे पृथिवी ढँक गयी। राजा अनरण्य तथा राक्षसराज रावणमें बड़ा भयंकर और अद्भुत युद्ध प्रारंभ हुआ। राजाकी वह सेना रावणकी सेनाके सामने जाकर नष्ट होने लगी। जिस प्रकार अग्निमें हवन की हुई हवि नष्ट हो जाती है। बहुत समयतक राजाकी सेनाने युद्ध किया, अद्भुत पराक्रम दिखाया, पर रावणकी सेनासे शीघ्र ही नष्ट हो गयी जिस प्रकार पतंग प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करके नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ १६ ॥ राजाने अपनी सेनाको नष्ट होते देखा जिस प्रकार समुद्रमें जाकर जलसे भरी नदियाँ अपना अस्तित्व खो देती हैं ॥१७॥ तब राजा क्रोधसे उत्साहित होकर इन्द्रधनुषके समान धनुषका टंकार करते हुए रावणके सामने आये

ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन्स्वयम् । आससाद नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्च्छितः ॥१८॥
अनरण्येन तेऽमात्या मारीचशुकसारणाः । प्रहस्तसहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव ॥१९॥
ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि । तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥२०॥
तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतं क्वचित् । वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ॥२१॥
ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा । तलेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ॥२२॥
स राजा पतितो भूमौ विह्वलः प्रविवेपितः । वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा ॥२३॥
तं प्रहस्याब्रवीद्रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम् । किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रति युध्यता ॥२४॥
त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप । शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥२५॥
तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत् । किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरतिक्रमः ॥२६॥
नह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना । कालेनैव विपन्नोऽहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥२७॥
किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये । नह्यहं विमुखो रक्षो युध्यमानस्त्वया हतः ॥२८॥
इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद्वचो वक्ष्यामि राक्षस । यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ।
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक्तदा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥२९॥
उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् । रामो दाशरथिर्नाम यस्ते प्राणान्हरिष्यति ॥३०॥

॥ १८ ॥ शुकसारण मारीच और प्रहस्त रावणके ये मन्त्री राजा अनरण्यसे हारकर मृगाके समान भाग गये ॥ १९ ॥ अनन्तर इक्ष्वाकुकुल नन्दन अनरण्यने राक्षसराजके मस्तकपर आठ सौ बाण मारे ॥२०॥ राजाके बाणोंसे रावणके शरीरमें कहीं घाव नहीं हुआ, वे बाण पर्वत शिखरपर मेघोंकी जलधाराके समान रावणपर मारे ॥ २१ ॥ राक्षसराजने क्रोध करके राजाके मस्तकपर तलसे (इस नामका शस्त्र) मारा जिससे राजा रथसे गिर पड़े ॥ २२ ॥ राजा विह्वल होकर काँपते हुए पृथिवीपर गिर पड़े, जिस प्रकार वज्रसे जला हुआ सालवृक्ष वनमें गिरता है ॥ २३ ॥ उस समय इक्ष्वाकु राजासे हँसकर राक्षस बोला, मुझसे युद्ध करके तुमने क्या फल पाया ॥ २४ ॥ राजन , त्रिलोकमें ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे द्वन्द्व-युद्धकर सके । मालूम होता है, तुम युद्धमें फँसे रहते हो इसमें मेरा बल तुमने नहीं सुना है ॥ २५ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर मरते हुए राजा बोले, मैं क्या कर सकता हूँ, समय बड़ा बली है वह टाला नहीं जा सकता ॥२६॥ राक्षस, अपनी प्रशंसा करनेवाले तुमने मुझे नहीं जीता है, कालके कारण मेरी यह दशा हुई, तुम तो इसके निमित्त मात्र हो ॥२७॥ इस समय तो मेरे प्राण जा रहे हैं मैं क्या कर सकता हूँ । पर मैं युद्धमें विमुख नहीं हुआ हूँ । युद्ध करता हुआ ही तुम्हारे द्वारा मारा गया हूँ ॥ २८ ॥ राक्षस, इस समय तुमने इक्ष्वाकुवंशका तिरस्कार किया है इसलिए कुछ कहता हूँ । यदि मैंने दान किया है, हवन किया है यदि पुण्य किया है, तप किया है, यदि अच्छी तरह प्रजाका पालन किया है तो मेरा वचन सत्य हो ॥२९॥ महात्मा इक्ष्वाकुओंके इसी कुलमें दसरथ पुत्र राम उत्पन्न होंगे । जो तुम्हारे प्राणोंको हरण करेंगे ॥ ३० ॥

उस समय मेघगर्जनके समान गम्भीर देव दुन्दुभिका शब्द हुआ । राजाके शाप देनेपर आकाशसे

ततो जलधरोद्गस्ताडितो देवदुन्दुभिः । तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥३१॥
ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम् । स्वर्गते च नृपे तस्मिन्राक्षसः सोऽपसर्पत ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

विंशः सर्गः २०

ततो वित्रासयन्मर्त्यान्पृथिव्यां राक्षसाधिपः । आससाद घने तस्मिन्नारदं मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
तस्याभिवादनं कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः । अब्रवीत्कुशलं पृष्ट्वा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥
नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः । अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ॥ ३ ॥
राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत । प्रीतोऽस्म्यभिजनोपेत विक्रमैरूर्जितैस्तव ॥ ४ ॥
विष्णुना दैत्यघातैश्च गन्धर्वोरगधर्षणैः । त्वया समं विमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ॥ ५ ॥
किंचिद्वक्ष्यामि तावत्तु श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि । तन्मे निगदतस्तात समाधिं श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥
किमयं वध्यते तात त्वयावध्येन दैवतैः । हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ॥ ७ ॥
देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् । अवध्येन त्वया लोकः क्लेष्टुं योग्यो न मानुषः ॥ ८ ॥
नित्यं श्रेयसि संमूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् । हन्यात्कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ ९ ॥
तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्रं यत्र कुत्र कः । मतिमान्मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥१०॥

पुष्प वृष्टि हुई ॥ ३१ ॥ इसके बाद राजा अनरण्य स्वर्ग गये । राजाके स्वर्ग जानेपर वह राक्षस भी वहाँसे चला गया ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका उन्नीसवाँ सर्गसमाप्त ॥ १९ ॥

पृथिवीमें मनुष्योंको भयभीत करता हुआ रावणने मेघमण्डल स्थित नारदको देखा ॥ १ ॥ रावणने उन्हें प्रणाम किया और कुशल पूछकर उनके आनेका कारण पूछा ॥ २ ॥ मेघमण्डलमें वर्तमान तेजस्वी अमितप्रभ देवर्षि नारद पुष्पक विमानपर बैठे रावणसे बोले ॥ ३ ॥ विश्रवाके पुत्र सौम्य राक्षसराज, ठहरो, हे कुलीन, तुम्हारे असीम पराक्रमोंसे मैं प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥ दैत्योंका नाश करके विष्णुने मुझे सन्तुष्ट किया था पुनः गन्धर्व नाग आदिको पीड़ा देकर तुमने प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ यदि तुम सुनना चाहो तो मैं सुनने योग्य बातें कहूँगा । तुम मेरी बातें सुननेके लिए सावधान हो जाओ ॥ ७ ॥ यहाँके प्राणी मृत्युके अधीन है, अतएव वे तो मरे ही हैं फिर देवताओंके अवध्य होकर तुम इन्हें क्यों मारते हो ॥ ७ ॥ तुम देवता दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षसोंके द्वारा अवध्य हो, अतः विचारे मनुष्योंको कष्ट देना तुम्हें उचित नहीं ॥ ८ ॥ जो सदा अपने कल्याणके विषयमें अज्ञान है, बड़े-बड़े दुःखोंसे घिरे हुए हैं, जरा और सैकड़ों रोगोंसे युक्त हैं, ऐसे मनुष्यको कौन मारेगा ॥९॥ जिस किसी समय, जिस किसी स्थानमें मनुष्यों-को सदा अनिष्टोंमें फँसना पड़ता है अर्थात् मनुष्य जीवन सदा सङ्कटापन्न है । फिर ऐसे मनुष्योंसे युद्ध करनेका अनुरागी कौन होगा ॥ १० ॥ भाग्यका मारा यह मनुष्य क्षुधापिपासा जरा आदिसे क्षीण होता

क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः। विषादशोकसंमूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥११॥
पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम्। मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥१२॥
क्वचिद्वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः। रुद्यते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥१३॥
मातापितृसुतस्नेहैर्भार्याबन्धुमनोरमैः। मोहितोऽयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥१४॥
तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम्। जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥१५॥
अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम्। तन्निगृह्णीष्व पौलस्त्य यमं परपुरंजय ॥१६॥
तस्मिञ्जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः। एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥१७॥
अब्रवीन्नारदं तत्र संप्रहस्याभिवाद्य च। महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय ॥१८॥
अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम्। ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान्सुरान्वशे।
समुद्रममृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम् ॥१९॥
अथाब्रवीद्दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः। क्व खल्विदानीं मार्गेण त्वयेहान्येन गम्यते ॥२०॥
अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति। मार्गो गच्छति दुर्धर्ष यमस्यामित्रकर्शन ॥२१॥
स तु शारदमेघाभं हासं मुक्त्वा दशाननः। उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ॥२२॥
तस्मादेवं महाब्रह्मन्वैवस्वतवधोद्यतः। गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ॥२३॥
मया हि भगवन्क्रोधात्प्रतिज्ञातं रणार्थिना। अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ॥२४॥

रहता है, विषाद और शोकमें बेचैन रहता है ऐसे मनुष्योंका नाश तुम मत करो ॥ ११ ॥ महाबाहो राक्षसेश्वर, तुम मनुष्योंको देखो, ये बड़े मूर्ख हैं, इन्हें अपनी गतिका ज्ञान नहीं है, ये अपनी भावीके विषयमें कुछ भी नहीं जानते, फिर भी वे अनेक आशा लगाये रहते हैं, अनेक प्रयत्न करते रहते हैं ।१२॥ कहीं कुछ लोग प्रसन्न होकर नाच-गानमें लगे हैं, कई लोग आँखोंसे अश्रुधारा बहाते हुए रो रहे हैं ॥ १३ ॥ माता, पिता स्त्री, भाई आदिके मोहमें फँसा हुआ मनुष्य अपने दुःखोंको नहीं गिनता ॥ १४ ॥ सौम्य, तुम तो समस्त मनुष्य लोकको जीत लिया, फिर मोह ग्रस्त मनुष्योंको कष्ट देनेमें क्या लाभ ॥ १५ ॥ ये सब तो अवश्य ही यमपुर जानेवाले हैं, अतएव पौलस्त्य तुम यमराजको जीतो, उनको जीतनेपर तुम सबको जीत लोगे ॥ १६ ॥ लंकेशने अपने तेजसे प्रकाशमान नारदको प्रणामकर तथा हँसकर उनसे कहा, समरप्रिय महर्षे, आप देवता और गन्धर्वोंके समान बिहार करनेवाले हैं। मैं पाताल विजय करनेको जानेके लिए उद्यत हूँ। तीनों लोकोंको जीतकर देवता और नागोंको अधीन बनाकर अमृतके लिए मैं समुद्र मथन करूँगा ॥ १७ ॥ १९ ॥

भगवान्, नारद ऋषि, रावणसे बोले, तुम दूसरे मार्गसे कहाँ जा रहे हो, पाताल जानेका यह मार्ग नहीं है ॥२०॥ शत्रुनाशन दुर्धर्ष, यह दुर्गम मार्ग यमराजके प्रेतराजपुरका है, यह मार्ग वहीं जाता है ॥२१॥ शारदके मेघकीसी हँसी हँसकर दसाननने कहा अच्छा, मैंने आपकी बात मान ली ॥ २२ ॥ महाब्रह्म, आपके कहनेके अनुसार यमराजका वध करनेके लिए मैं दक्षिण दिशामें जाता हूँ, जहाँ सूर्यपुत्र राजा यमराज रहता है ॥२३॥ भगवन्, युद्धकी इच्छासे क्रोधकरके मैंने प्रतिज्ञा की है कि चारों लोकपालों-

तदिह प्रस्थितोऽहं वै पितृराजपुरं प्रति । प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ॥२५॥
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च । प्रययौ दक्षिणामाशां प्रविष्टः सह मन्त्रिभिः ॥२६॥
नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः । चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ॥२७॥
येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः । क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम् ॥२८॥
स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः । लब्धसंज्ञा विचेष्टन्ते लोका यस्य महात्मनः ॥२९॥
यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः । तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति ॥३०॥
यो विधाता च धाता च सुकृतं दुष्कृतं तथा । त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं विजयिष्यते ।
अपरं किं तु कृत्वैव विधानं संविधास्यति ॥३१॥
कौतूहलं समुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् । विमर्दं द्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोः स्वयम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः । आख्यातुं तद्यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति ॥१॥
अपश्यत्स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् । विधानमनुतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥२॥

को मैं जीतूँगा ॥ २४ ॥ अतएव प्रेतराजपुरके लिए मैं प्रस्थान करता हूँ । प्राणियोंको क्लेश देनेवाले यमराजका मैं वध करूँगा ॥ २५ ॥ ऐसा कहकर तथा मुनिको प्रणाम करके, वह मंत्रियोंके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥ २६ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ तेजस्वी नारद ध्यान धरकर एक मुहूर्ततक सोचते रहे । उस समय वे धूमरहित अग्निके समान मालूम पड़ते थे ॥ २७ ॥ आयुके क्षीण होनेपर इन्द्रसहित तीनों लोकों तथा चर-अचर प्राणियोंको धर्मपूर्वक कष्ट देता है, उसको यह रावण कैसे जीतेगा ॥ २८ ॥ जो दिये हुए दान और किये हुए कर्मोंका साक्षी है, जिसके प्रभावसे चेतना पाकर मनुष्य काम करता है, चेष्टा करता है जो दूसरे अग्निके समान है । भयभीत होकर जिससे तीन लोक दूर भागते हैं । उसीके पास यह राक्षसराज स्वयं कैसे जायगा ॥ २९, ३० ॥ जो मनुष्योंके पाप-पुण्यको करानेवाला है । तथा उनके फल देनेवाला है, जिसने त्रिलोकको जीत लिया है उसको रावण कैसे जीतेगा । क्या उसको जीतनेके लिए यह कोई और उपाय करेगा ॥ ३१ ॥ मुझे कुतूहल हो रहा है । यमराज और राक्षसका युद्ध देखनेके लिए मैं यमलोक जाऊँगा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

ऐसा निश्चय करके शीघ्र चलनेवाले नारद, रावणसे जो बातें हुई थीं वह कहनेके लिए यमराजकी नगरीमें गये ॥ १ ॥ वहाँ उन्होंने यमराजको देखा, उनके आगे अग्निदेव थे । और वे जिसका जैसा कर्म था उसको वैसा फल दे रहे थे ॥ २ ॥ यमराजने आये हुए महर्षि नारदको देखा, उनके सुख-

स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षिं तत्र नारदम् । अब्रवीत्सुखमासीनमर्घ्यमावेद्य धर्मतः ॥३॥
कच्चित्क्षेमं नु देवर्षे कच्चिद्धर्मो न नश्यति । किमागमनकृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित ॥४॥
अब्रवीत्तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः । श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ॥५॥
एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः । उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम् ॥६॥
एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो । दण्डप्रहरणस्याद्य तव किं नु भविष्यति ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् । ददृशुर्दीप्तमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ॥८॥
तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः । कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपमभ्यवर्तत ॥९॥
सोऽपश्यत्स महाबाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः । प्राणिनः सुकृतं चैव भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम् ॥१०॥
अपश्यत्सैनिकांश्चास्य यमस्यानुचरैः सह । यमस्य पुरुषैरुग्रैर्घोररूपैर्भयानकैः ॥११॥
ददर्श वध्यमानांश्च क्लिश्यमानांश्च देहिनः । क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनतत्परान् ॥१२॥
कृमिभिर्भक्ष्यमाणांश्च सारमेयैश्च दारुणैः । श्रोत्रायासकरा वाचो वदतश्च भयावहाः ॥१३॥
संतार्यमाणान्वैतरणीं बहुशः शोणितोदकाम् । वालुकासु च तप्तासु तप्यमानान्मुहुर्मुहुः ॥१४॥
असिपत्रवने चैव भिद्यमानानधार्मिकान् । रौरवे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि ॥१५॥
पानीयं याचमानांश्च तृषितान्क्षुधितानपि । शवभूतान्कृशान्दीनान्विवर्णान्मुक्तमूर्धजान् ॥१६॥

पूर्वक बैठजानेपर धर्मानुकूल अर्घ्य देकर यमराज उनसे बोले ॥ ३ ॥ देवर्षे, कुशल तो है, धर्मनाश तो नहीं हुआ है, हे देवगंधर्वप्रिय तुम्हारे आनेका उद्देश्य क्या है ॥ ४ ॥ भगवान नारदऋषिने कहा सुनिए, कहता हूँ और उसका उचित उपाय कीजिए ॥ ५ ॥ पितृराज दसानन नामका राक्षस अपने पराक्रमसे आपको वश करने आरहा है। आप अजेय हैं तो भी आपको अपने अधीन करना चाहता है ॥ ६ ॥ इसी कारणसे मैं शीघ्र-शीघ्र यहाँ आया हूँ। आपका अस्त्र तो कालदण्ड है, आपका क्या होगा। अर्थात् क्या राक्षस आपको जीत सकेगा ॥ ७ ॥ इसी समय उदित सूर्यके समान प्रकाशमान विमानको आते हुए दूरसे ही उन लोगोंने देखा जो विमान उस राक्षसका था ॥ ८ ॥ महाबली रावणने पुष्पकविमानकी प्रभासे उस स्थानका अन्धकार हटाया और वह यमराजके पास गया ॥ ९ ॥ वहाँ दसग्रीवने प्राणियोंको पुण्य और पापका फल भोगते हुए देखा ॥ १० ॥ वहाँ उसने यमराजके सैनिकों तथा उसके अनुचरोंको देखा। वहाँ उसने यमराजके भय रूपवाले दूतोंद्वारा, प्राणियोंको बाँधते तथा क्लेशपाते देखा। कोई बड़े जोरसे चिल्ला रहा था कोई बड़े दुःखसे चिन्ता कर रहा था ॥ ११, १२ ॥ कितने ही प्राणियोंको कीड़े खा रहे थे और कितनेको ही भयंकर कुत्ते काट रहे थे, कई कानोंको दुखानेवाले भय उपजानेवाले शब्द बोल रहे थे ॥ १३ ॥ कई वैतरणी पार कराये जा रहे थे, जिसमें रुधिरका जल है। कई बार-बार तपी बालूमें तपाये जा रहे थे ॥ १४ ॥ जिस वनमें वृक्षोंके पत्ते तलवारके समान थे, वहाँ रावणने अधार्मिकोंको छिदते देखा। रौरवनरकमें, क्षारनदीमें तथा क्षुरधारामें (अर्थात् जिस नदीकी धारा क्षुरके समान थी।) लोगोंको पीड़ित होते उसने देखा ॥ १५ ॥ भूख और प्याससे व्याकुल होकर भोजन और पानी माँगते देखा। शवके समान कृश, दीन, मुरझाये हुए और बिखरे बालवाले प्राणियोंको

मलपङ्कधरान्दीनान्रूक्षांश्च परिधावतः। ददर्श रावणो मार्गे शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७॥
कांश्चिच्च गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिःस्वनैः। प्रमोदमानानद्राक्षीद्रावणः सुकृतैः स्वकैः ॥१८॥
गोरसं गोप्रदातारो अन्नं चैवान्नदायिनः। गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमश्नतः ॥१९॥
सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलंकृतान्। धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान्स्वतेजसा ॥२०॥
ददर्श स महाबाहू रावणो राक्षसाधिपः। ततस्तान्भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ॥२१॥
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद्बली। प्राणिनो मोक्षितास्तेन दशग्रीवेण रक्षसा ॥२२॥
सुखमापुर्मुहूर्तं ते ह्यनर्कितमचिन्तितम्। प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा ॥२३॥
प्रेतगोपाः सुसंक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन्। ततो हलहलाशब्दः सर्वदिग्भ्यः समुत्थितः।
धर्मराजस्य योधानां शूराणां संप्रधावताम् ॥२४॥
ते प्रासैः परिघैः शूलैर्मुसलैः शक्तितोमरैः। पुष्पकं समवर्षन्त शूराः शतसहस्रशः ॥२५॥
तस्यासनानि प्रासादान्वेदिकास्तोरणानि च। पुष्पकस्य बभञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ॥२६॥
देवनिष्ठानभूतं तद्विमानं पुष्पकं मृधे। भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ॥२७॥
असंख्या सुमहत्यासीत्तस्य सेना महात्मनः। शूराणामग्रयातॄणां सहस्राणि शतानि च ॥२८॥
ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा। ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम् ॥२९॥

उसने देखा ॥१६॥ शरीरमें मल लपेटे हुए दुःखी रूखे इधर-उधर भागते सैकड़ों हजारों मनुष्योंको रावणने मार्गमें देखा ॥ १७ ॥ कई अपने पुण्यसे अच्छे मकानोंमें थे, गाने-बजानेसे आनन्द मना रहे थे, रावणने उनको भी देखा ॥ १८ ॥ गौदान करनेवाले गोरस, अन्न देनेवाले अन्न तथा घर दान करनेवाले उत्तम घर पाये हुए थे, इस प्रकार वे अपने कर्मका फल भोग रहे थे ॥ १९ ॥ वहाँ उसने ऐसे धार्मिक भी देखे, जो सुवर्ण, मणि, मुक्ताके द्वारा भूषित, सुन्दरी स्त्रियाँ उनके पास थीं और वे अपने प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ २० ॥ महाबाहु राक्षसाधिप रावणने वहाँ अपने पापोंके कारण अनेक प्रकारके कष्ट भोगनेवाले मनुष्योंको भी देखा ॥२१॥ बली राक्षस दसग्रीवने बलपूर्वक इन यातना भोगनेवाले प्राणियोंको मुक्त कर दिया। जिससे थोड़ी देरतक उन लोगोंने अचिन्तित और अपूर्व सुख पाया। बली रावणके द्वारा प्रेतोंके मुक्त होनेपर उनके रक्षक क्रोध करके रावणपर टूट पड़े। यमराजके वीर योधाओंके दौड़नेका शब्द सब दिशाओंमें होने लगा ॥ २२।२४ ॥ प्रास, परिघ, शूल, मुशल, शक्ति, तोमर लेकर सैकड़ों हजारों वीरोंने पुष्पक विमानको घेर लिया ॥ २५ ॥ पुष्पकविमानके आसन, अटारियाँ, चौतरे और तोरणको उन लोगोंने भौंरोंके समान एक साथ झुककर तोड़ दिया ॥ २६ ॥ उस पुष्पकविमानमें देवताओंका निवास था इस कारण युद्धमें तोड़े जानेपर भी वह वैसा ही ज्योंका-त्यों था ब्रह्माके प्रभावसे वह टूटा नहीं ॥ २७ ॥ महात्मा यमराजकी सेना असंख्य थी, उसमें सैकड़ों हजारों वीर, सेनाके अग्रभागमें चलनेवाले थे ॥ २८ ॥ अनन्तर यमराजके मन्त्री और रावणके मन्त्री इच्छा तथा बलके अनुसार वृक्षों, पर्वतों तथा सैकड़ों महलों-से युद्ध करने लगे (पर्वतोंके समान शायद महल भी उखाड़कर अस्त्रके काममें लाये गये हों) दसानन भी युद्ध करने लगा। सब प्रकारके अस्त्रोंसे घायल होनेके कारण उनके शरीर रुधिरसे भर गये थे ॥ २९ ॥

अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः । ते तु शोणितदिग्धाङ्गाः सर्वशस्त्रसमाहताः ॥३०॥
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् । अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्भृशम् ॥३१॥
यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः । अमात्यांस्तांस्तु संत्यज्य यमयोधा महाबलाः ॥३२॥
तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् । ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
फुल्लाशोक इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ॥३३॥
स तु शूलगदाप्रासाञ्छक्तितोमरसायकान् । मुमोच च शिलावृक्षान्मुमोचास्त्रबलाद्बली ॥३४॥
तरूणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् । यमसैन्येषु तद्वर्षं पपात धरणीतले ॥३५॥
तांस्तु सर्वान्विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहत्य च । जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ॥३६॥
परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव । भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमपोथयन् ॥३७॥
विमुक्तकवचः क्रुद्धः सिक्तः शोणितविस्रवैः । ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ॥३८॥
ततः स कार्मुकी बाणी समरे चाभिवर्धत । लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथान्तकः ॥३९॥
ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं संधाय कार्मुके । तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तच्चापं व्यपकर्षत ॥४०॥
आकर्णात्स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे । मुमोच तं शरं क्रुद्धस्त्रिपुरे शंकरो यथा ॥४१॥
तस्य रूपं शरस्यासीत्सधूमज्वालमण्डलम् । वनं दहिष्यतो घर्मे दावाग्नेरिव मूर्च्छतः ॥४२॥
ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे । मुक्तो गुल्मान्द्रुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ॥४३॥

॥ ३० ॥ राक्षसराजके मन्त्री भयंकर युद्ध करने लगे और तथा यमराजके मन्त्री परस्पर प्रहार करने लगे। यमराजके महाबली सैनिक मन्त्रियोंको छोड़कर रावणपर ही शूलोंकी वृष्टि करने लगे। इससे उसका शरीर रुधिरसे भर गया, प्रहारोंसे वह जर्जर हो गया। पुष्पकविमानपर वह विकसित अशोक वृक्षके समान मालूम पड़ने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अस्त्र-बलसे बलवान रावणने शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर, बाण, पत्थर और वृक्षोंसे प्रहार किया ॥ ३४ ॥ यमराजकी सेनापर वृक्षों, पत्थरों और शस्त्रोंकी भयंकर वृष्टि होने लगी और वह सैनिकोंपर गिरकर पृथिवीमें गिरने लगी ॥ ३५ ॥ इन पत्थरों, वृक्षोंको तथा रावणके चलाये अन्य अस्त्रोंको काटकर यमराजके सैकड़ों हजारों सैनिक एक रावणको ही मारने लगे ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार मेघ पर्वतोंको घेर लेते हैं उसी प्रकार यमराजके सैनिकोंने रावणको घेर लिया। और साँस लेनेका समय बिना दिये ही वे समस्त शूल और भिन्दिपाल नामक अस्त्रोंसे युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥ रावणका कवच टूट गया, वह रुधिरसे भीग गया अतएव क्रोधकरके वह पुष्पकविमानसे पृथिवीपर उतरा ॥ ३८ ॥ थोड़ी देरमें चैतन्य होकर क्रुद्ध यमराजके समान धनुष-बाण लेकर रावण युद्धमें उत्साह दिखाने लगा ॥ ३९ ॥ अनन्तर उसने धनुषपर पाशुपत नामक अस्त्र चढ़ाया और ठहरो, ठहरो कहकर तथा यमसैनिकोंको लक्ष्य बनाकर धनुष चढ़ाया ॥ ४० ॥ इन्द्रशत्रु रावणने कानतक धनुष खींचकर बाण चलाया, जिस प्रकार क्रोधकरके शंकरने त्रिपुरपर बाण चलाया था ॥ ४१ ॥ उस बाणसे धूँआ तथा लपटें निकल रही थीं, जैसे ग्रीष्मकालमें वनको जलानेवाली बढ़ी हुई दावाग्नि होती है ॥ ४२ ॥ लपटें उगलनेवाला वह बाण गुल्मों वृक्षोंको जलाकर रणक्षेत्रमें घूमने लगा और राक्षस उसके

ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु । बले तस्मिन्निपतिता माहेन्द्रा इव केतवः ॥४४॥
ततस्तु सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः । ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतः प्रभुः । शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ॥१॥
स हि योधान्हतान्मत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः । अब्रवीत्त्वरितः सूतं रथो मे उपनीयताम् ॥२॥
तस्य सूतस्तदा दिव्यमुपस्थाप्य महारथम् । स्थितः स च महातेजा अध्यारोहत तं रथम् ॥३॥
प्रासमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः । येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥४॥
कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत् । यमप्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलदग्निवत् ॥५॥
ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः । कालं दृष्ट्वा तथा क्रुद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥६॥
ततस्त्वचोदयत्सूतस्तानश्वान्रुचिरप्रभान् । प्रययौ भीमसंनादो यत्र रक्षःपतिः स्थितः ॥७॥
मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिहयोपमाः । प्रापयन्मनसस्तुल्या यत्र तत्प्रस्तुतं रणम् ॥८॥
दृष्ट्वा तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् । सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥९॥
लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयार्दिताः । नेह योद्धुं समर्थाः स्म इत्युक्त्वा ययुर्दिशः ॥१०॥

पीछे दौड़ने लगे ॥ ४३ ॥ उस वाणके तेजसे यमराजके सैनिक जल गये और इन्द्रधनुषके समान सेना-पर गिर पड़े ॥ ४४ ॥ अनन्तर मन्त्रियोंके साथ भीमपराक्रमी रावणने पृथिवीको कम्पित करनेवाला भयंकर गर्जन किया ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥
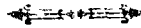
रावणका घोर गर्जन सुनकर यमराजने अपनी सेनाका नाश तथा शत्रुको विजयी समझा ॥ १ ॥ मेरे सैनिक मारे गये यह जानकर यमराजकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं उन्होंने सारथिसे कहा कि मेरा रथ शीघ्र ले आओ ॥ २ ॥ सारथि शीघ्र ही दिव्य रथ लाकर खड़ा हो गया, तेजस्वी यमराज उस रथ-पर बैठे ॥३॥ जो समस्त त्रिलोकका नाश करती है वह मृत्यु, प्रास और मुद्गर लेकर यमराजके आगे खड़ी हुई ॥ ४ ॥ यमराजका दिव्य अस्त्र कालदण्ड, जिसका तेज धधकती आगके समान है, मूर्तिमान् होकर यमराजके बगलमें आकर खड़ा हुआ ॥ ५ ॥ समस्त लोकोंको भयभीत करनेवाले कालको क्रुद्ध देखकर तीनों लोक क्षुभित हुए, देवता काँप गये ॥ ६ ॥ सुन्दर घोड़ोंको सारथिने चलाया, भयंकर शब्द करता हुआ वह रथ जहाँ राक्षसराज था वहाँ चला ॥ ७ ॥ इन्द्रके घोड़ोंके तुल्य वे घोड़े, मनके समान वेगसे यमराजको लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ युद्ध हो रहा था ॥ ८ ॥ मृत्युके बैठनेके कारण भयंकर उस रथको देखकर रावणके मन्त्री शीघ्र ही वहाँसे भाग गये ॥ ९ ॥ वे दुर्बल थे अतएव भयके कारण सुध-बुध खो

स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् । नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ॥११॥
स तु रावणमासाद्य व्यसृजच्छक्तितोमरान् । यमो मर्माणि संक्रुद्धो रावणस्य न्यकृन्तत ॥१२॥
रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह । तस्मिन्वैवस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥१३॥
ततो महाशक्तिशतैः पात्यमानैर्महोरसि । नाशक्नोत्प्रतिकर्तुं स राक्षसः शल्यपीडितः ॥१४॥
एवं नानाप्रहरणैर्यमेनामित्रकर्षिणा । सप्तरात्रं कृतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः ॥१५॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः । जयमाकाङ्क्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः ॥१६॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । प्रजापतिं पुरस्कृत्य समेतास्तद्रणाजिरे ॥१७॥
संवर्त इव लोकानां युध्यतोरभवत्तदा । राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च ॥१८॥
राक्षसेन्द्रोऽपि विस्फार्य चापमिन्द्राशनिप्रभम् । निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन्बाणांस्ततोऽसृजत् ॥१९॥
मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरार्दयत् । यमं शतसहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ॥२०॥
ततः क्रुद्धस्य वदनाद्यमस्य समजायत । ज्वालामाली सनिःश्वासः सधूमः कोपपावकः ॥२१॥
तदाश्चर्यमथो दृष्ट्वा देवदानवसंनिधौ । प्रहर्षितौ सुसंरब्धौ मृत्युकालौ बभूवतुः ॥२२॥
ततो मृत्युः क्रुद्धतरो वैवस्वतमभाषत । मुञ्च मां समरे यावद्धन्मीमं पापराक्षसम् ॥२३॥
नैषा रक्षो भवेदद्य मर्यादा हि निसर्गतः । हिरण्यकशिपुः श्रीमान्नमुचिः शम्बरस्तथा ॥२४॥

चुके थे, "हम युद्ध नहीं कर सकते" ऐसा कहकर वे दिशाओंकी ओर भाग गये ॥ १० ॥ उस भयंकर रथको देखकर भी रावण क्षुभित नहीं हुआ और वह डरा नहीं ॥ ११ ॥ रावणके पास जाकर यमराजने शक्ति और तोमर चलाये। क्रोध करके उन्होंने रावणके मर्मस्थान काटे ॥ १२ ॥ स्वस्थ होकर रावण यमराजके रथपर बाणवृष्टि करने लगा, मानो मेघ जल बरसाते हों ॥ १३ ॥ शल्यसे पीड़ित राक्षस यमराजके वक्षःस्थलमें सैकड़ों शक्तियोंका प्रहार करके भी अपना बदला न चुका सका। वह यमराजके प्रहारसे जितना घायल हो चुका था उतना भी उनको न कर सका ॥ १४ ॥ शत्रुको पीड़ित करनेवाले यमराजने इस प्रकार सात रात तक युद्ध किया, जिससे रावण बेहोश और रणसे विमुख हो गया ॥१५॥ यमराज और रावणका बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ, दोनों जय चाहते थे, कोई भी युद्धसे हटनेवाला न था ॥ १६ ॥

अनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और परमर्षि ब्रह्माके साथ उस युद्धक्षेत्रमें आये ॥ १७ ॥ राक्षसोंके स्वामी रावण और प्रेतोंके अधिपति यम इन दोनोंके युद्धका समय संसारके लिए प्रलयकालके समान हुआ ॥ १८ ॥ रावणने भी इन्द्रके वज्रतुल्य धनुष चढ़ाकर बाणोंको चलाकर उनसे आकाशको पाट दिया ॥ १९ ॥ मृत्युको चार बाणोंसे सारथिको सात बाणोंसे और यमराजको सैकड़ों हजारोंबाणोंसे मर्मस्थानमें रावणने मारा ॥ २० ॥ उस समय यमराजने क्रोध किया उनके मुँहसे क्रोधाग्नि निकली जिससे धूम और ज्वालाकी लपटें निकल रही थीं ॥ २१ ॥ देवता और दानवके सामने ऐसा आश्चर्य देखकर मृत्यु और काल दोनों घबड़ा गये और प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ मृत्युने क्रोधकरके यमराजसे कहा-आप मुझे छोड़ दें, मैं इस पापी राक्षसको मारूँ ॥ २३ ॥ यह राक्षस नहीं रहेगा, अर्थात् इसे मैं मारूँगी, यह

निसन्दिर्धूमकेतुश्च बलिर्वैरोचनोऽपि च । शंभुर्दैत्यो महाराजो वृत्रो बाणस्तथैव च ॥२५॥
राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वाः समहोरगाः । ऋषयः पन्नगा दैत्या यक्षाश्च ह्यप्सरोगणाः ॥२६॥
युगान्तपरिवर्ते च पृथिवी समहार्णवा । क्षयं नीता महाराज सपर्वतसरिद्द्रुमा ॥२७॥
एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः । विनिपन्ना मया दृष्टाः किमुतायं निशाचरः ॥२८॥
मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम् । नहि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ॥२९॥
बलं मम न खल्वेतन्मर्यादैषा निसर्गतः । स दृष्टो न मया काल मुहूर्तमपि जीवति ॥३०॥
तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् । अब्रवीत्तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्म्यहम् ॥३१॥
ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः । कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ॥३२॥
यस्य पार्श्वेषु निहिताः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः । पावकाशनिसंकाशो मुद्गरो मूर्तिमान्स्थितः ॥३३॥
दर्शनादेव यः प्राणान्प्राणिनामपि कर्षति । किं पुनः स्पृशमानस्य पात्यमानस्य वा पुनः ॥३४॥
स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम् । तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥३५॥
ततो विदुद्रुवुः सर्वे तस्मात्त्रस्ता रणाजिरे । सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ॥३६॥
तस्मिन्प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम् । यमं पितामहः साक्षाद्दर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥३७॥
वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम । न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ॥३८॥
वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुंगव । स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥३९॥

स्वाभाविक मर्यादा है, मृत्यु सभीकी होती है । हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, निसन्दी, धूमकेतु, बलि-विरोचन, शंभुनामक दैत्य, महाराज वृत्र, बाण, शास्त्रज्ञ राजर्षि, गन्धर्व, नाग, ऋषि, पन्नग, दैत्य, यक्ष, अप्सराएँ, समुद्र, पर्वत, तालाब और वृक्षोंके साथ यह पृथिवी, इन सबका नाश युगकी समाप्तिमें मैंने किया है ॥ २४ ॥ २७ ॥ इन तथा अन्य अनेक बलवानोंको मैंने मरते देखा है फिर यह राक्षस क्या वस्तु है ॥ २८ ॥ धर्मज्ञ, आप मुझे छोड़ें, मेरा प्रयोग करें, जिससे मैं इसे मारूँ, मेरे सामने आया हुआ कोई बली भी नहीं जीता ॥ २९ ॥ मेरा देखा हुआ मनुष्य एक क्षण भी नहीं जीता, ऐसा कहकर मैं अपना बल नहीं बतला रही हूँ किन्तु यही स्वभाव है, यही मर्यादा है ॥ ३० ॥ मृत्युके ये वचन सुनकर प्रतापी यमराज उससे बोले, तुम ठहरो, मैं इसे मारता हूँ ॥ ३१ ॥ अनन्तर रक्तनेत्र क्रुद्ध यमराजने अमोघ कालदण्डको हाथसे उठाया ॥ ३२ ॥ जिस कालदण्डके पास कालपाश भी रखा हुआ था । अग्नि और वज्रतुल्य शरीरधारी मुद्गर भी वहीं रखा हुआ था ॥ ३३ ॥ जो देखते ही मनुष्योंके प्राण खींच लेते हैं, उनके स्पर्शसे तथा शरीरपर गिरनेसे क्या होगा ॥ ३४ ॥ ज्वाला उगलनेवाला वह महास्त्र बली यमराजके उठानेपर फड़कने लगा, मानों वह रावणको जलाना चाहता हो ॥ ३५ ॥ यमराजने कालदण्ड उठाया यह देखकर सभी राक्षस युद्धक्षेत्रसे भाग गये और देवता क्षुभित हुए ॥ ३६ ॥ यम-राज कालदण्डसे रावणको मारना ही चाहते थे उसी समय प्रकट होकर ब्रह्माने उनसे कहा ॥ ३७ ॥ अमित विक्रम महाबलि यम, कालदण्डसे तुम इस राक्षसको न मारो ॥ ३८ ॥ देवश्रेष्ठ, मैंने इसे वर दिया है, अतएव तुम मेरी कही बातको असत्य न करो ॥ ३९ ॥ जो मुझको झूठा बना देगा, मेरी कही

यो हि मामनृतं कुर्याद्देवो वा मानुषोऽपि वा । त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥४०॥
क्रुद्धेन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेषं प्रियाप्रिये । प्रजाः संहरते रौद्रो लोकत्रयभयावहः ॥४१॥
अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममितप्रभः । कालदण्डो मया सृष्टः सर्वमृत्युपुरस्कृतः ॥४२॥
तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि । नह्यस्मिन्पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥४३॥
यदि ह्यस्मिन्निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः । म्रियते वा दशग्रीवस्तदाप्युभयतोऽनृतम् ॥४४॥
तन्निवर्तय लङ्केशाद्दण्डमेतं समुद्यतम् । सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकांस्त्वं यद्यवेक्षसे ॥४५॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा । एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥४६॥
किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि । न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥४७॥
एष तस्मात्प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः । इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥
दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः । आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥४९॥
स तु वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः । जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

आपको असत्य सिद्ध कर देगा वह देवता हो या मनुष्य, उसने त्रिलोकको असत्य बनाया इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ क्रोध करके जब तुम इस दण्डको चलाओगे तब यह प्रिय-अप्रियका विचार न करके समस्त प्रजाका संहार करेगा, क्योंकि यह बड़ा ही भयंकर है तथा त्रिलोकको भयभीत करनेवाला है ॥४१॥ मेरा बनाया यह कालदण्ड सबको मारनेवाला है । अमितप्रभ, यह सब प्राणियोंके लिए अमोघ है, यह कभी निष्फल नहीं होता ॥ ४२ ॥ अतएव, सौम्य, यह कालदण्ड तुम रावणके मस्तकपर न गिराओ, इसके गिरनेसे कोई एक मुहूर्त भी नहीं जी सकता ॥ ४३ ॥ यदि इससे रावण नहीं मरा, अथवा मर गया, इन दोनों दशाओंमें मैं असत्यवादी होता हूँ । क्योंकि मैंने रावणको अवध्य कहा है और इसको अमोघ ॥ ४४ ॥ अतएव रावणपर उठे इस दण्डको रोक लो मुझे सत्यवादी बने रहने दो, यदि तुम लोककल्याण चाहते हो ॥ ४५ ॥

धर्मात्मा यमराज ब्रह्मासे बोले, मैंने दण्डका चलाना रोक दिया, क्योंकि आप हमारे स्वामी हैं, आपकी आज्ञा माननी चाहिए ॥ ४६ ॥ वरपानेके कारण यदि मैं इस राक्षसको मार नहीं सकता, तो यहाँ रणक्षेत्रमें मेरे आनेसे क्या लाभ ॥ ४७ ॥ अतएव इस राक्षसके सामनेसे मैं शीघ्र ही हटता हूँ ऐसा कहकर यमराज रथ और घोड़ोंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥ रावण इस प्रकार यमराजको जीतकर तथा अपने नामकी घोषणा करके पुष्पकविमानपर चढ़कर यमपुरीसे निकल गया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा, देवताओं तथा नारद मुनिके साथ यमराज भी प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गमें गये ॥ ५० ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बाइसवाँ सर्गसमाप्तः ॥२२॥

त्रयोविंशतः सर्गः २३

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुंगवम् । रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान्ददर्श ह ॥१॥
ततो रुधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् । रावणं राक्षसा दृष्ट्वा विस्मयं समुपागमन् ॥२॥
जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः । पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्विता रावणेन तु ॥३॥
ततो रसातलं रक्षः प्रविष्टः पयसां निधिम् । दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥४॥
स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् । कृत्वा नागान्वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥५॥
निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरावसन् । राक्षसस्तान्समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत् ॥६॥
ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः । नानाप्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ॥७॥
शूलैस्त्रिशूलैः कुलिशैः पट्टिशासिपरश्वधैः । अन्योन्यं बिभिदुः क्रुद्धा राक्षसा दानवास्तथा ॥८॥
तेषां तु युध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः । न चान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥९॥
ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरव्ययः । आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ॥१०॥
निवातकवचानां तु निवार्य रणकर्म तत् । वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ॥११॥
नह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः । न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः ॥१२॥
राक्षसस्य सखित्वं च भवद्भिः सह रोचते । अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥१३॥

देवश्रेष्ठ यमराजको जीतकर युद्धप्रेमी रावणने अपने सहायकोंको देखा ॥ १ ॥ रावणका समस्त शरीर रुधिरसे भींग गया था, प्रहारोंसे वह जर्जर हो गया था उस रावणको देखकर उन लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ, यमके पास जाकर भी यह लौट आया इस कारण उन्हें विस्मय हुआ ॥ २ ॥ मारीच आदिने रावणका जय-जयकार किया, रावणने उन्हें समझाया, पुनः वे पुष्पक विमानपर बैठे ॥ ३ ॥ अनन्तर रावणने पाताल जानेके लिए समुद्रमें प्रवेश किया, जहाँ दैत्य और सर्प रहते हैं तथा जिसकी रक्षा वरुण करते हैं ॥ ४ ॥ रावण भोगवती नामकी नगरीमें गया, जहाँका राजा वासुकि है, वहाँ नागोंको अधीन करके वह मणिपुर गया ॥ ५ ॥ वहाँ निवातकवच दैत्य वरदान पाकर निवास करते हैं, उनके पास जाकर रावणने उन्हें युद्धके लिए ललकारा ॥ ६ ॥ ये सभी दैत्य बलशाली थे, पराक्रमी थे, अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, उनके पास थे, युद्धका नाम सुनकर वे उन्मत्त हो जाते थे, वे रावणके आनेसे प्रसन्न हुए ॥७॥ राक्षस और दानव क्रोधकरके शूल, त्रिशूल, कुलिश, पट्टिश, तलवार और परशुसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ उनलोगोंके परस्पर युद्ध करते-करते एक वर्षसे अधिक बीत गया, पर उनमें न तो कोई विजयी हुआ और न किसीका नाश हुआ ॥ ९ ॥ त्रिलोकमें भ्रमण करनेकी शक्ति रखनेवाले अव्यय ब्रह्मा उत्तम विमानपर बैठकर वहाँ शीघ्र आये ॥ १० ॥ उन्होंने निवातकवचोंका युद्ध करना रोक दिया, पुनः वे वृद्धपितामह बोले, मानों उन्हें वहाँकी सब बातें मालूम हों ॥ ११ ॥ यह रावण देवता और असुरोंके द्वारा युद्धमें जीता नहीं जा सकता । देवता और दानव एक साथ मिलकर भी इसका नाश नहीं कर सकते ॥ १२ ॥ अतएव मैं चाहता हूँ कि आपलोग रावणसे मैत्री कर लें, मित्रोंकी कोई चीज़ बटी नहीं रहती,

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः । निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत्तदा ॥१४॥
अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरमथोषितः । स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः ॥१५॥
तत्रोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान् । सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम् ॥१६॥
ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम् । गत्वा तु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान् ॥१७॥
शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत्तदा । श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम् ॥१८॥
जिह्वया संलिहन्तं च राक्षसं समरे तदा । तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ॥१९॥
ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव भास्वरम् । वरुणस्यालयं दिव्यमपश्यद्राक्षसाधिपः ॥२०॥
क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम् । यस्याः पयोभिनिष्पन्दात्क्षीरोदो नाम सागरः ॥२१॥
ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम् । यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः ॥२२॥
यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः । अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजिनाम् ॥२३॥
यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः । प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ।
प्रविवेश महाघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः ॥२४॥
ततो धाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा । नित्यप्रहृष्टं ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम् ॥२५॥
ततो हत्वा बलाध्यक्षान्समरे तैश्च ताडितः । अब्रवीच्च ततो योधान्राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ॥२६॥

धन, जन, विजय, पराजय आदि सभी एक होते हैं। एकका धन दूसरेका होता है, एककी विजय दूसरेकी होती है ॥१३॥ अग्निको साक्षी बनाकर रावणने निवातकवचोंके साथ मैत्रीकी और वह इससे प्रसन्न हुआ ॥१४॥ निवातकवचोंने रावणका उचित और उत्तम सत्कार किया, रावण वहाँ एक वर्षतक रहा, और वहाँ अपनी राजधानीके समान उसने आनन्द पाया ।१५॥ मित्रताके नाते एकसौ निवातकवचोंको रावणने साथ लिया, पुनः वरुणनगरीका पता लगानेके लिए वह पातालमें परिभ्रमण करने लगा ॥ १६ ॥ रावण अश्मनामक नगरमें जहाँ कालकेय रहते थे, वहाँ जाकर बलवान कालकेयोंको उसने मारा ॥१७॥ सूर्पनखाके पति बलवान और बलाभिमानी विद्युज्जिह्वको रावणने तलवारसे काट डाला ॥ १८ ॥ क्योंकि वह युद्धमें रावणको जीभसे चाट रहा था अर्थात् खा रहा था। उसको जीतकर एक मुहूर्तमें ही रावणने चार सौ दैत्योंको मार डाला ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् रावणने कैलासपर्वतके समान उज्वल और श्वेत मेघतुल्य वरुणका घर रावणने देखा ॥ २० ॥ वहाँ एक गौ थी, जिसके दूध चू रहा था। उसके दूध चूनेसे क्षीरोदनामक समुद्र बन गया है ॥ २१ ॥ वहाँ रावणने महावृषभकी साक्षात् माताको देखा जिससे शीतकिरण चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है ॥ २२ ॥ जिसके आश्रयसे फेन पीकर जीनेवाले ऋषि जीते हैं और जहाँसे अमृतखानेवाले देवताओंके लिए अमृत उत्पन्न हुआ है ॥ २३ ॥ जिसका नाम लोग सुरभि बतलाते हैं। रावणने उस परमाद्भुत गौकी प्रदक्षिणा की। पुनः उसने अनेक सेनाओंसे रक्षित उस भयङ्कर नगरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ सदा जगमग रहनेवाला और शरद्के मेघके तुल्य वरुणका उत्तम घर रावणने देखा, वहाँ सैकड़ों धाराएँ बह रही थीं ॥ २५ ॥ युद्धमें वरुणके जमादारोंको मारकर तथा उनके द्वारा मार खाकर उसने कहा—जाकर राजासे शीघ्र कहो "युद्धके लिए रावण आया है। उससे युद्ध करो अथवा हाथ जोड़कर कह दो कि

युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् । वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोऽस्मीति साञ्जलिः ॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः । पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन्गौश्च पुष्कर एव च ॥२८॥
ते तु तत्र गुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः । युक्त्वा रथान्कामगमानुद्यद्भास्करवर्चसः ॥२९॥
ततो युद्धं समभवद्दारुणं रोमहर्षणम् । सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः ॥३०॥
अमात्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः । वारुणं तद्बलं सर्वं क्षणेन विनिपातितम् ॥३१॥
समीक्ष्य स्वबलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा । अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः ॥३२॥
महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके । आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥३३॥
महदासीत्ततस्तेषां तुल्यं स्थानमवाप्य तत् । आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥३४॥
ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसंनिभैः । विमुखीकृत्य संहृष्टा विनेदुर्विविधान्रवान् ॥३५॥
ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं वीक्ष्य धर्षितम् । त्यक्त्वा मृत्युभयं क्रुद्धो युद्धाकाङ्क्षी व्यलोकयत् ॥३६॥
तेन ते वारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः । महोदरेण गदया हतास्ते प्रययुः क्षितिम् ॥३७॥
तेषां वरुणसूनूनां हत्वा योधान्हयांश्च तान् । मुमोचाशु महानादं विरथान्प्रेक्ष्य तान्स्थितान् ॥३८॥
ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्वरैः । महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥३९॥
ते तु त्यक्त्वा रथान्पुत्रा वरुणस्य महात्मनः । आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः ॥४०॥
धनूंषि कृत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम् । रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समवारयन् ॥४१॥

कि मैं हार गया, ऐसा करनेसे तुम्हें किसी प्रकारका भय न रहेगा" ॥२६,२७॥ महात्मा वरुणके पुत्र और पौत्र युद्धके लिए निकले, गौ और पुष्कर ये भी उनके साथ चले, ये दोनों वरुणके पुत्र और पौत्रोंकी सेनाके सेनापति थे ॥२८॥ ये शौर्यवीर्य आदि गुणोंसे गुणवान् थे अपनी-अपनी सेनाके साथ थे, सूर्यके समान तेजस्वी थे। इच्छानुसार चलनेवाले रथ जुड़वाकर ये चले ॥२९॥ वरुणके पुत्रों तथा रावणसे भयंकर युद्ध हुआ ॥३०॥ राक्षस रावणके बली मन्त्रियोंने क्षणमें ही वरुणकी सेनाको नष्ट कर दिया ॥३१॥ वरुणके पुत्रोंने युद्धमें अपनी सेनाकी दशा देखी और स्वयं वे बाणोंसे पीड़ित हुए, इससे वे युद्धसे हट गये। अर्थात् उन्होंने युद्ध रोक दिया ॥३२॥ वरुणपुत्र पृथिवीपर हैं और रावण पुष्पकविमानपर आकाशमें है यह देखकर वे भी शीघ्रगामी रथोंपर बैठकर आकाशमें चले गये। ३३॥ बराबरका स्थान पानेसे दोनोंमें देवदानवके समान तुमुल आकाशयुद्ध होने लगा ॥ ३४ ॥ अग्नितुल्य बाणोंसे रावणको युद्धसे विमुख करके वरुणपुत्र बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्नतासूचक अनेक शब्द किये ॥ ३५ ॥ राजाको घायल देखकर महोदरने क्रोध किया। मृत्युभय छोड़कर क्रोध करके युद्धकी इच्छासे उसने देखा ॥३६॥ महोदरने क्रोध करके इच्छानुसार चलनेवाले पवनके समान वेगवान् घोड़ोंको गदासे मारा, जिससे वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३७ ॥ वरुणपुत्रोंके घोड़ों तथा वीरोंको मारकर तथा उनको रथहीन देखकर उसने सिंहनाद किया ॥ ३८ ॥ महोदरके द्वारा निहत होकर वरुणपुत्रोंके घोड़े और सारथिके साथ रथ पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥ महात्मावरुणके पुत्र रथ छोड़कर आकाशमें ही अपने प्रभावसे ठहरे रहे, उन्हें कोई भी कष्ट नहीं हुआ ॥ ४० ॥ धनुष तैयार करके उन्होंने महोदरको छेदा और क्रोध करके साथ ही रावणको घेर लिया जैसे मेघ पर्वतको घेर

सायकैश्चापविभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः । दारयन्ति स्म संक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम् ॥४२॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव मूर्च्छितः । शरवर्षं महाघोरं तेषां मर्मस्वपातयत् ॥४३॥
मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च । पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीर्महतीरपि ।
पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः ॥४४॥
ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातिनः । महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः षष्टिहायनाः ॥४५॥
सीदमानान्सुतान्दृष्ट्वा विह्वलान्स महाबलः । ननाद रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा ॥४६॥
ततो रक्षो महानादान्मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान् । नानाप्रहरणोपेतैर्धारापातैरिवाम्बुदः ॥४७॥
ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले । रणात्स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः ॥४८॥
तानब्रवीत्ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् । रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहासो नाम वारुणः ॥४९॥
गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः । गन्धर्वं वरुणः श्रोतुं यं त्वमाह्वयसे युधि ॥५०॥
तत्किं तव यथा वीर परिश्रम्य गते नृपे । ये तु संनिहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ॥५१॥
राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः। हर्षान्नादं विमुञ्चन्वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥५२॥
आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः । लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ॥५३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

लेते हैं। क्रोध करके वे, धनुषसे निकले वज्रतुल्य भयंकर बाणोंसे राक्षसोंको छेदने लगे ॥ ४१,४२ ॥ तब रावणने क्रोध किया, कालाग्निके समान उत्साहित होकर वह वरुणपुत्रोंके मर्मस्थानमें भयंकर बाणवृष्टि करने लगा ॥ ४३ ॥ विचित्र प्रकारके मुशल, भाले, पट्टिश, शक्ति, बड़ी शतघ्नी रावणने उन लोगोंपर चलाये ॥४४॥ इस अस्त्रवर्षासे वरुणके पैदल सैनिक बहुत व्यथित हुए, जिस प्रकार साठ वर्षका हाथी कीचड़में फँसकर व्यथित होता है ॥ ४५ ॥ वरुणपुत्र व्यथित और विह्वल हो रहे हैं यह देखकर बली रावणने हर्षनाद किया मानो मेघ गर्ज रहा हो ॥ ४६ ॥ रावण इस प्रकार घोरगर्जन करके अनेक अस्त्रोंसे वरुण-पुत्रोंको मारने लगा मेघ जैसे जलवृष्टि कर रहे हों ॥४७॥ इससे वरुणपुत्र युद्धसे विमुख हो गये, युद्धक्षेत्रसे हट गये और पृथिवीपर गिर पड़े, उनके सेवक उन्हें घरमें उठा ले गये ॥ ४८ ॥ वरुणके मनुष्योंसे रावणने पुनः कहा, वरुणसे जाकर कहो। वरुणके मन्त्री प्रहासने उत्तर दिया, महाराज वरुण ब्रह्मलोकमें गान सुनने गये हैं, जिन्हें तुम युद्धके लिए बुला रहे हो ॥ ४९,५० ॥ वीर, राजा बाहर हैं फिर तुम यहाँ व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो, राजकुमार यहाँ थे उन्हें तुमने जीत ही लिया ॥ ५१ ॥ मन्त्रीकी बात सुन-कर रावणने अपने नामकी घोषणा की और हर्षनाद करता हुआ वह वरुणलोकसे निकला ॥ ५२ ॥ जिस मार्गसे वह गया था उसीमार्गसे आकर वह लंकाकी ओर आकाश मार्गसे चला ॥ ५३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तेइसवाँ सर्गसमाप्त ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान् । जह्रे पथि नरेन्द्रर्षिदेवदानवकन्यकाः ॥ १ ॥
दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वापि पश्यति। हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः ॥ २ ॥
एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः । यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ॥ ३ ॥
ता हि सर्वाः समं दुःखान्मुमुचुर्बाष्पजं जलम् । तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निभयसंभवम् ॥ ४ ॥
ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः । आपूरितं विमानं तद्भयशोकाशिवाश्रुभिः ॥ ५ ॥
नागगन्धर्वकन्याश्च महर्षितनयाश्च याः । दैत्यदानवकन्याश्च विमाने शतशोऽरुदन् ॥ ६ ॥
दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । पीनस्तनतटा मध्ये वज्रवेदिसमप्रभाः ॥ ७ ॥
रथकूबरसंकाशैः श्रोणीदेशैर्मनोहराः । स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभाः ॥ ८ ॥
शोकदुःखभयत्रस्ता विह्वलाश्च सुमध्यमाः । तासां निःश्वासवातेन सर्वतः संप्रदीपितम् ॥ ९ ॥
अग्निहोत्रमिवाभाति संनिरुद्धाग्निपुष्पकम् । दशग्रीववशं प्राप्तास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ॥१०॥
दीनवक्त्रेक्षणाः श्यामा मृग्यः सिंहवशा इव । काचिच्चिन्तयती तत्र किं नु मां भक्षयिष्यति ॥११॥
काचिद्दध्यौ सुदुःखार्ता अपि मां मारयेदयम् । इति मातॄः पितॄन्स्मृत्वा भर्तॄन्भ्रातॄंस्तथैव च ॥१२॥
दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः । कथं नु खलु मे पुत्रो भविष्यति मया विना ॥१३॥

दुरात्मा रावणने लौटनेके समय राजा, ऋषि, देवता-दानवकी कन्याओंका हरण किया उन्हें पकड़कर ले गया ॥ १ ॥ जिस किसी कन्या या स्त्रीको वह सुन्दरी देखता था उसके बान्धवोंको मारकर वह उसे विमानपर बैठा देता था ॥ २ ॥ इस प्रकार उसने नाग, राक्षस, असुर, मनुष्य, यक्ष और दानवकन्याओंको उसने विमानपर बैठा लिया था ॥ ३ ॥ वे सब कन्याएँ और स्त्रियाँ दुःखिनी होकर अग्निज्वालाके तुल्य, शोभाग्निसे उत्पन्न अश्रुजल साथ ही बहाने लगीं ॥ ४ ॥ भय-शोकसे-पीड़ित और दुःखकी आँसू बहानेवाली उन सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्रियोंसे वह विमान भर गया, जिस प्रकार नदियोंसे समुद्र भरता है ॥ ५ ॥ नाग, गन्धर्व, महर्षि, दैत्य, दानवकी सैकड़ों जो लड़कियाँ उस विमानपर थीं वे सब रो रही थीं ॥ ६ ॥ उनके बाल लम्बे थे, अंग सुडौल थे, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख था, स्तन मोटे थे, दोनों स्तनोंके बीचका भाग हीरेकी वेदीके समान उज्ज्वल था ॥ ७ ॥ पीठके नीचेका भाग मोटा था, तपे सोनेके समान उनका वर्ण था, वे स्त्रियाँ देवाङ्गनाओंके समान थीं ॥८॥ वे स्त्रियाँ शोक, दुःख और भयसे पीड़ित थीं, उनके श्वाससे वह स्थान मानों जल रहा था ॥ ९ ॥ उस समय पुष्पकविमान अग्निहोत्रके समान मालूम पड़ता था जहाँ अग्निका संग्रह रहता है । दसग्रीवके हाथमें पड़ी वे स्त्रियाँ शोकसे व्याकुल थीं, उनका मुँह और आँखें सूख गयी थीं । वे युवती स्त्रियाँ सिंहके पंजेमें आयो मृगोंके समान दुःखिनी थीं । उनमें कोई सो सोच रही थी कि क्या यह हमको खा जायगा ॥१०,११॥ कोई बहुत दुःखिनी होकर सोच रही थी क्या यह मुझे मार डालेगा । इस प्रकार माता-पिता भाई और पतिका स्मरण करके सभी स्त्रियाँ एक साथ दुःख और शोकसे विलाप कर रही थीं । मेरे बिना मेरे पुत्रकी क्या दशा होगी ॥ १२,१३ ॥ शोक

कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे । हा कथं नु करिष्यामि भर्तुस्तस्मादहं विना ॥१४॥
मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुःखभागिनीम् । किं नु तद्दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ॥१५॥
एवं स्म दुःखिताः सर्वा पतिताः शोकसागरे । न खल्विदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मनः ॥१६॥
अहो धिङ्मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः । यद्दुर्बला बलवता भर्तारो रावणेन नः ॥१७॥
सूर्येणोदयता काले नक्षत्राणीव नाशिताः । अहो सुबलवद्रक्षो बधोपायेषु रज्यते ॥१८॥
अहो दुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते । सर्वथा सदृशस्तावद्विक्रमोऽस्य दुरात्मनः ॥१९॥
इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् । यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ॥२०॥
तस्माद्वै स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः । सतीभिर्वरनारीभिरेवं वाक्येऽभ्युदीरिते ॥२१॥
नेदुर्दुन्दुभयः खस्था पुष्पवृष्टिः पपात च । शप्तः स्त्रीभिः स तु समं हतौजा इव निष्प्रभः ॥२२॥
पतिव्रताभिः साध्वीभिर्बभूव विमना इव । एवं विलपितं तासां शृण्वन्राक्षसपुंगवः ॥२३॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः । एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ॥२४॥
सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्य सा । तां स्वसारं समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ॥२५॥
अब्रवीत्किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम् । सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥
कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात् । एते राजंस्त्वया वीर्याद्दैत्या विनिहता रणे ॥२७॥

सागरमें पड़कर वे माता-पिताकी बातें सोच रही थीं। कोई कहती थी हाय, पतिके बिना मैं क्या करूँगी ॥ १४ ॥ कोई कहती थी, मृत्यु, मैं तुमको अपनेपर प्रसन्न कर रही हूँ, अपनेपर दया करनेको कहती हूँ, मुझ दुःखिनीको ले चलो। पहले जन्ममें मैंने कौन पाप किया है, दुःखमें पड़कर सभी स्त्रियाँ इसी प्रकार कहती थीं। कोई कहती, अब मैं अपने इस दुःखका अन्त नहीं देख रही हूँ। मेरे दुःखका अन्त न होगा ॥ १५,१६ ॥ मनुष्यलोकको धिक्कार है कि हमारे दुर्बल पतिको बलवान् रावणने मार डाला, जिस प्रकार सूर्य उदय होकर नक्षत्रोंका नाश कर देता है। ओह क्या आश्चर्य है यह बलवान् राक्षस लोगोंको मारकर प्रसन्न होता है ॥ १७,१८ ॥ पाप करके यह अपनेको धिक्कारता नहीं। इस दुरात्माका बल तो इसीके योग्य है। पर दूसरेकी स्त्रीका हरण करना बहुत बुरा है, यह इसके योग्य नहीं है। यह अधम राक्षस दूसरेकी स्त्रीके साथ रमण करता है, इस कारण स्त्रीके निमित्तसे ही इस मूर्खका वध होगा, सती, सुन्दरी स्त्रियोंके ऐसा कहनेपर देवदुन्दुभि बज उठी, आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई। पतिव्रता, साध्वी स्त्रियोंके शाप देनेसे रावणका तेज घट गया, वह प्रभाहीन हो गया ॥ १९,२२॥ राक्षसराज उन स्त्रियोंका विलाप सुन-कर उदास हो गया ॥ २३ ॥

राक्षसोंका सत्कार पाकर रावणने लंकापुरीमें प्रवेश किया। इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी रावणकी बहिन सहसा आकर पृथिवीपर गिर पड़ी, रावणने बहिनको उठाया और समझाया ॥ २४, २५ ॥ रावण बोला, भद्रे, तुम क्या शीघ्र मुझसे कुछ कहना चाहती हो। सूर्प-नखाकी आँखें आँसूसे भर गयीं थीं और वे लाल हो गयीं थीं, वह बोली, ॥ २६ ॥ बली राजन्, तुमने जबरदस्ती मुझे विधवा बना दिया। तुमने अपने पराक्रमसे युद्धमें चौदहहजार दैत्योंको मारा है जो कालकेय

कालकेया इति ख्याताः सहस्राणि चतुर्दश । प्राणेभ्योऽपि गरीयान्मे तत्र भर्ता महाबलः ॥२८॥
सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगन्धिना । त्वयास्मि निहता राजन्स्वयमेव हि बन्धुना ॥२९॥
राजन्वैधव्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृतं ह्ययम् । ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ॥३०॥
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे । एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया ॥३१॥
अब्रवीत्सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः । अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ॥३२॥
दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः । युद्धप्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयाकांक्षी क्षिपञ्शरान् ॥३३॥
नाहमज्ञासिषं युध्यन्स्वान्परान्वापि संयुगे । जामातरं न जाने स्म प्रहरन्युद्धदुर्मदः ॥३४॥
तेनासौ निहतः संख्ये मया भर्ता तव स्वसः । अस्मिन्काले तु यत्प्राप्तं तत्करिष्यामि ते हितम् ॥३५॥
भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः । चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ॥३६॥
प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः । तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्रातायं वै खरः प्रभुः ॥३७॥
भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन्निशाचरः । शीघ्रं गच्छत्वयं वीरो दण्डकान्परिरक्षितुम् ॥३८॥
दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः । तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति तदा खरः ॥३९॥
रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेष भविष्यति । एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ॥४०॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम् । स तैः परिवृतः सर्वै राक्षसैर्घोरदर्शनैः ॥४१॥

कहे जाते थे, उन्हींमें महाबली मेरा पति भी था, जो मुझे प्राणोंसे भी प्रिय था ॥ २७ ॥ २८ ॥ भाई नामक शत्रु, तुमने उसे भी मार डाला । राजन्, स्वयं भाई होकर तुमने मुझे मार डाला ॥ २९ ॥ राजन्, तुम्हारे कारणसे अब मुझे वैधव्यका दुःख भोगना पड़ेगा । क्या युद्धमें अपने जामाताकी, बहिनके पतिकी भी रक्षा नहीं की जाती ॥ ३० ॥ राजन्, मेरे पतिको मारकर क्या तुम लज्जित नहीं हो रहे हो, रोकर सूर्पनखाने रावणसे ऐसा कहा ॥ ३१ ॥ रावणने स्नेहपूर्वक उसे समझाया, वत्से, रोना व्यर्थ है, तुमको किसी बातका भय नहीं करना चाहिए ॥ ३२ ॥ दान, मान, प्रसादनके द्वारा यत्नपूर्वक तुमको मैं प्रसन्न रखूँगा । युद्धमें मैं उन्मत्त हो गया था कुछ ध्यान ही नहीं था, विजयी होनेके लिए बाण चला रहा था, युद्ध करते समय मुझे अपना पराया नहीं दिखायी पड़ता था, युद्धमें मतवाला होकर मैंने जामाताको पहचाना नहीं ॥ ३३, ३४ ॥ बहन, इसी कारण युद्धमें मैंने तुम्हारे पतिको मार डाला । इस समय तुम्हारे कल्याणके लिए जो मुझे करना है वह मैं करता हूँ ॥ ३५ ॥ धनी भाई खरके पास तुम रहो, तुम्हारा भाई चौदहहजार सेनाका अध्यक्ष होगा ॥ ३६ ॥ वह चौदह-हजार सेनाके साथ आक्रमण करने तथा उनको कहीं भेजनेमें स्वाधीन होगा । तुम्हारा भाई खर तुम्हारी मौसीका लड़का है ॥ ३७॥ वह आज्ञाओंका सदा पालन करेगा । दण्डकारण्यकी रक्षा करनेके लिए यह वीर शीघ्र यहाँसे जाय ॥ ३८ ॥ महाबली दूषण इसका जमादार होगा । वीर खर तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेगा ॥ ३९ ॥ इच्छानुसार रूपधारण करनेवाले राक्षसोंका वह स्वामी होगा, ऐसा कहकर रावणने सेनाको आज्ञा दी ॥ ४० ॥ भयंकर रूपवाले बलवान् चौदहहजार राक्षसोंकी सेनाके साथ

आगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः । स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ।
सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद्दण्डके वने ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५

स तु दृष्ट्वा दशग्रीवो बलं घोरं खरस्य तत् । भगिनीं च समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत् ॥ १ ॥
ततो निकुम्भिला नाम लङ्कोपवनमुत्तमम् । तद्राक्षसेन्द्रो बलवान्प्रविवेश सहानुगः ॥ २ ॥
ततो यूपशताकीर्णं सौम्यचैत्योपशोभितम् । ददर्श विष्ठितं यज्ञं श्रिया संप्रज्वलन्निव ॥ ३ ॥
ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम् । ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम् ॥ ४ ॥
तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः । अब्रवीत्किमिदं वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्वतः ॥ ५ ॥
उशना त्वब्रवीत्तत्र यज्ञसंपत्समृद्धये । रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः ॥ ६ ॥
अहमाख्यामि ते राजञ्श्रूयतां सर्वमेव तत् । यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्तास्ते बहुविस्तरा ॥ ७ ॥
अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः । राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८ ॥
माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुंभिः सुदुर्लभे । वरांस्ते लब्धवान्पुत्रः साक्षात्पशुपतेरिह ॥ ९ ॥
कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम् । मायां च तामसीं नाम यया संपद्यते तमः ॥१०॥

खर निर्भय होकर दण्डकारण्यमें आया । वहाँ वह छोटे-छोटे शत्रुओंका नाश करके राज्य करने लगा । सूर्पनखा भी दण्डकारण्यमें रहने लगी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त । २४ ॥

रावणने खरको बड़ी सेना दी, बहिनको धैर्य दिया, तब वह प्रसन्न और सुखी हुआ ॥१॥ लङ्काके पास निकुम्भिला नामका एक उपवन था, राक्षसेन्द्र रावण अपने साथियोंके साथ वहाँ गया ॥ २ ॥ वहाँ रावणने सैकड़ों यज्ञस्तूपोंका चिन्ह देखा, वहाँ अनेक देवस्थान थे, वहाँ यज्ञ हो रहा था जो अपनी शोभासे प्रकाशमान था ॥ ३ ॥ रावणने वहाँ अपने पुत्र मेघनादको भयंकर रूपमें देखा, वह काला मृगचर्म धारण किये हुए था, उसकी लम्बी चोटी थी और दण्ड-कमण्डलु लिये हुए था ॥ ४ ॥ उसके पास जाकर तथा आलिङ्गन करके रावणने पूछा, बेटा यह क्या कर रहे हो, इसका यथार्थ कारण कहो ॥ ५ ॥ यज्ञका ऐश्वर्य बना रहनेके लिए, विघ्न न होने देनेके लिए द्विजश्रेष्ठ तपस्वी उशना रावणसे बोले, ये यज्ञ करानेवाले थे, मेघनाद मौन था इसलिए उन्होंने उत्तर दिया ॥ ६ ॥ राजन्, सुनिए मैं आपसे सब कहता हूँ । तुम्हारे पुत्रने बड़े-बड़े सात यज्ञ किये हैं ॥ ७ ॥ अग्निष्टोम और अश्वमेधयज्ञ तुम्हारे पुत्रने किये हैं, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव यज्ञ इसने किये हैं । महेश्वरयज्ञके प्रारम्भ होनेपर, जिसका करना मनुष्यके लिए कठिन है, तुम्हारे पुत्रने साक्षात् महादेवसे वर पाये ॥ ८ ॥ ९ ॥ आकाशचारी कामग दिव्य विमान मिला है और तामसी माया मिली है जिसके द्वारा अन्धकार फैलाया जा सकता है ॥ १० ॥ राक्षसेश्वर,

एतया किल सङ्ग्रामे मायया राक्षसेश्वर। प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥११॥
अक्षयाविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम्। अस्त्रं च बलवद्राजञ्छत्रुविध्वंसनं रणे ॥१२॥
एतान्सर्वान्वरॉल्लब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन। अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिदृक्षन्स्थितो ह्यहम् ॥१३॥
ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम्। पूजिताः शत्रवो यस्माद्द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः ॥१४॥
एहीदानीं कृतं यद्धि सुकृतं तन्न संशयः। आगच्छ सौम्य गच्छामः स्वमेव भवनं प्रति ॥१५॥
ततो गत्वा दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः। स्त्रियोऽवतारयामास सर्वास्ता बाष्पगद्गदाः ॥१६॥
लक्षिण्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम्। तस्य तासु मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥
ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोऽर्थकुलनाशनैः। धर्षणं प्राणिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विचेष्टसे ॥१८॥
ज्ञातींस्तान्धर्षयित्वेमास्त्वयानीता वराङ्गनाः। त्वामतिक्रम्य मधुना राजन्कुम्भीनसी हृता ॥१९॥
रावणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नावगच्छामि किं त्विदम्। कोऽयं यस्तु त्वयाख्यातो मधुरित्येव नामतः ॥२०॥
विभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत्। श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम् ॥२१॥
मातामहस्य योऽस्माकं ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः। माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः ॥२२॥
पिता ज्येष्ठो जनन्या नो ह्यस्माकं चार्यकोऽभवत्। तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताभवत् ॥२३॥
मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्यानलोद्भवा। भवत्यस्माकमेवैषा भ्रातॄणां धर्मतः स्वसा ॥२४॥

युद्धक्षेत्रमें इस मायाका प्रयोग करनेपर देवता और असुरोंको भी दिखायी नहीं पड़ता, उन्हें मायाका कारण मालूम नहीं पड़ता ॥ ११ ॥ बाणोंके साथ दो तरकस, दुर्जय धनुष और शत्रुनाशी अस्त्र तुम्हारे पुत्रने पाये हैं ॥ १२ ॥ दसानन, इतने वर पाकर आज यज्ञ-समाप्तिके दिन तुम्हारा पुत्र और मैं तुम्हें देखनेके लिए उत्सुक थे ॥ १३ ॥ रावण बोला, यह अच्छा नहीं किया जो इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा पदार्थोंसे की, क्योंकि ये हमारे शत्रु हैं ॥ १४ ॥ जो किया वह अच्छा ही किया, इसमें सन्देह न करो आओ अब हमलोग घर चलें ॥ १५ ॥ रावण, पुत्र और विभीषणके साथ घर गया, वहाँ उसने स्त्रियोंको जिन्हें हरकर वह ले आया था, पुष्पकविमानसे उतारा, वे उस समय भी रो रही थीं ॥ १६ ॥ ये देव-दानव और राक्षसोंकी सुलक्षणा स्त्री-रत्न हैं, इनके विषयमें रावणकी पापबुद्धि उत्पन्न हुई है यह जानकर धर्मात्मा विभीषण बोला ॥ १७ ॥ तुम्हारा यह आचरण यश, धन और कुलका नाश करनेवाला है, तुम जो प्राणियोंका तिरस्कार कर रहे हो वह अपनी ही इच्छासे। इस विषयमें शास्त्रोंकी आज्ञा जाननेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥ इनके ज्ञाति बान्धवोंको मारकर तुम इन्हें हर ले आये हो। राजन्, इधर तुम्हारी परवा न कर मधुने कुम्भीनसीका हरण कर लिया ॥ १९ ॥

रावणने कहा, यह क्या है मैं कुछ नहीं जानता, यह कौन है जिनका नाम तुमने मधु बतलाया है ॥ २० ॥ विभीषण क्रोधकरके भाईसे बोला सुनिए इसी तुम्हारे पापका फल हमलोगोंको मिला है ॥ २१ ॥ हमलोगोंके नाना सुमालीके बड़े भाई माल्यवान थे वे बूढ़े और बुद्धिमान् थे ॥ २२ ॥ वे माल्य-वान् हमलोगोंकी माताके ज्येष्ठ पिता थे, पिताके बड़े भाई थे। उन्हींकी कन्याकी कन्या कुम्भीनसी है ॥२३॥ माल्यवान्की कन्याका नाम अनला था वह हमलोगोंकी मौसी होती है। इस प्रकार कुम्भीनसी हम तीनों

सा हृता मधुना राजन्राक्षसेन बलीयसा। यज्ञ प्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्तर्जलोषिते ॥२५॥
कुम्भकर्णो महाराज निद्रामनुभवत्यथ। निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह संमतान् ॥२६॥
धर्षयित्वा हृता राजन्गुप्ताप्यन्तःपुरे तव। श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः ॥२७॥
यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि भ्रातृभिः। तदेतत्कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मतेः ॥२८॥
अस्मिन्नेवाभिसंप्राप्तं लोके विदितमस्तु ते। विभीषणवचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रः स रावणः ॥२९॥
दौरात्म्येनात्मनोद्धूतस्तप्ताम्भा इव सागरः। ततोऽब्रवीद्दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥३०॥
कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः। भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ॥३१॥
वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः। अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ॥३२॥
सुरलोकं गमिष्यामि युद्धकाङ्क्षी सुहृद्वृतः। अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम् ॥३३॥
नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम्। इन्द्रजित्त्वग्रतः सैन्यात्सैनिकान्परिगृह्य च ॥३४॥
जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः। विभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरन् ॥३५॥
शेषाः सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति। खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैः शिशुमारैर्महोरगैः ॥३६॥
राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाकाशं निरन्तरम्। दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ॥३७॥
रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन्हि पृष्ठतः। स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ॥३८॥
न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान्। सा च प्रह्वाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ॥३९॥

भाइयोंकी धर्मतः बहिन हुई ॥ २४ ॥ राजन्, उसको बलवान् मधुनामक राक्षसने हर लिया। उस समय पुत्र यज्ञ कर रहा था और मैं जलके भीतर निवास कर रहा था ॥ २५ ॥ महाराज, कुम्भकर्ण तो आज भी सो रहा है। हमारे प्रिय प्रधान राक्षसमन्त्रियोंको मारकर तथा हमलोगोंका तिरस्कारकर वह कुम्भीनसीको हर ले गया। यद्यपि वह आपके महलमें सुरक्षित थी। महाराज, आपने सुनकर भी उसे क्षमा कर दिया, उसे मारा नहीं, ॥ २६, २७ ॥ बड़े कन्याका दान करते हैं, विधिपूर्वक वह पतिको सौंपी जाती हैं, पर यहाँ तो बलपूर्वक उसका हरण हुआ है, बुद्धिहीन, यह आपके पापोंका फल इसी लोकमें मिल गया यह आप जान लें। विभीषणके वचन सुनकर रावण अपने पापोंसे पीड़ित होकर गर्म जलवाले समुद्रके समान हो गया, वह भीतर ही भीतर खौलने लगा। रावणकी आँखें लाल हो गयी थीं उसने क्रोध करके कहा, ॥ २८, ३० ॥ मेरा रथ शीघ्र तैयार हो, वीरगण तैयार हो जाँय, आज रावणसे न डरनेवाले मधुको युद्धमें मारकर, युद्ध करनेके लिए मित्रोंके साथ देवलोकमें जाऊँगा। चार हजार अक्षौहिणी युद्ध चाहनेवाले राक्षसोंकी प्रधान सेना अनेक प्रकारके अस्त्रोंको लेकर चली। सैनिकोंको एकत्र करके इन्द्रजित् सेनाके आगे चला ॥ ३२, ३४ ॥ बीचमें रावण और पीछे कुम्भकर्ण चला। धर्मात्मा विभीषण लंकामें तो रहकर धर्माचरण करने लगे ॥ ३५ ॥ और सभी लोग मधुपुर गये। गधा, ऊँट, घोड़ा, सूस और बड़े साँपपर चढ़कर राक्षस चले, जिससे आकाश भर गया। सैकड़ों ऐसे दैत्य थे जिनका देवताओंसे वैर था। रावण देवलोक जीतने जा रहा है यह देखकर वे भी पीछे-पीछे चले। रावणने जाकर मधुपुरमें प्रवेश किया ॥ ३६, ३८ ॥ वहाँ रावणने मधुको न देखा पर अपनी बहिनको देखा। चरणोंपर मस्तक

तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा। तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥४०॥
रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते। साब्रवीद्यदि मे राजन्प्रसन्नस्त्वं महाभुज ॥४१॥
भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद। नहीदृशं भयं किंचित्कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥४२॥
भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत्। सत्यवाग्भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ॥४३॥
त्वयाप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम्। रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ॥४४॥
क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम्। सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयाय हि ॥४५॥
तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात्। इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशाचरम् ॥४६॥
अब्रवीत्संप्रहृष्टेव राक्षसी सा पतिं वचः। एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ॥४७॥
सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च। तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ॥४८॥
स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम्। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ॥४९॥
ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्यायमुपेत्य सः। पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ॥५०॥
प्राप्य पूजां दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान्। तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥५१॥
ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम्। राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

रखकर और हाथ जोड़कर वह बोली ॥ ३९ ॥ क्योंकि वह राक्षसराज रावणसे बहुत डर गयी थी। रावणने उसे उठाया और वह बोला डरो मत ॥ ४० ॥ उसने कहा, तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ। उसने कहा, महाभुज राजन्, आप प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ आपको मेरे पतिका वध नहीं करना चाहिए। कुल-स्त्रियोंके लिए इससे बढ़कर भयकी कोई बात नहीं है ॥ ४२ । सभी भयोंमे बढ़कर स्त्रियोंके लिए वैधव्य-का भय है। अतएव राजेन्द्र, आप अपनी वाणी सत्य करें, मेरी ओर देखिए, मैं प्रार्थना करती हूँ ॥४३॥ राजन्, आपने भी मुझे निर्भय होनेका आश्वासन दिया है। रावण प्रसन्न होकर, पास बैठी बहिनसे बोला ॥ ४४ ॥ तुम्हारा वह पति कहाँ है, शीघ्र मेरे पास ले आओ वह मेरे साथ देवलोक विजय करनेके लिए चले ॥ ४५ ॥ तुम्हारी दया और प्रेमके कारण अब मैं मधुका वध न करूँगा। रावणके ऐसा कहनेपर उसने सोते हुए अपने पतिको जगाया और वह राक्षसी प्रसन्न होकर अपने पतिसे बोली, मेरा भाई महा-बली यह रावण आया है, वह देवलोक जीतना चाहता है और तुम्हारी सहायता चाहता है, अतएव उसकी सहायताके लिए अपने बान्धवोंके साथ तुम जाओ ॥ ४६, ४८ ॥ जो स्नेही है, सम्बन्धी है, उसके काममें सम्मिलित होना उचित है। उस राक्षसीके वचन मधुने स्वीकार किये ॥ ४९ ॥ मधुने शिष्टाचारके साथ जाकर रावणको देखा और उसने धर्मपूर्वक उस राक्षसराजकी पूजा की ॥ ५० ॥ मधुके घर पूजा पाकर और वहाँ एक रात रहकर बली रावण वहाँसे चला ॥ ५१ ॥ वह कैलास-पर्वतपर गया, जहाँ कुबेर रहते हैं। इन्द्रतुल्य राक्षसराज रावणने वहाँ अपनी सेना ठहरायी ॥ ५२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् । अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥ १ ॥
उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि । प्रसुप्तं सुमहत्सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ॥ २ ॥
रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धनि । स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादपशोभितान् ॥ ३ ॥
कर्णिकारवनैर्दीप्तैः कदम्बबकुलैस्तथा । पद्मिनीभिश्च फुल्लाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥ ४ ॥
चम्पकाशोकपुंनागमन्दारतरुभिस्तथा । चूतपाटललोध्रैश्च प्रियङ्ग्वर्जुनकेतकैः ॥ ५ ॥
तगरैर्नारिकेरैश्च प्रियालपनसैस्तथा । एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे ॥ ६ ॥
किंनरा मदनेनार्ता रक्ता मधुरकण्ठिनः । समं संप्रजगुर्यत्र मनस्तुष्टिविवर्धनम् ॥ ७ ॥
विद्याधरा मदक्षीबा मदरक्तान्तलोचनाः । योषिद्भिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जहृषुश्च वै ॥ ८ ॥
घण्टानामिव संनादः शुश्रुवे मधुरस्वनः । अप्सरोगणसङ्घानां गायतां धनदालये ॥ ९ ॥
पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः । शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥१०॥
मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् । प्रववौ वर्धयन्कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ॥११॥
गेयात्पुष्पसमृद्ध्या च शैत्याद्वायोर्गिरेर्गुणात् । प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥१२॥
रावणः स महावीर्यः कामस्य वशमागतः । विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य शशिनं समवैक्षत ॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरणभूषिता । सर्वाप्सरोवरा रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥१४॥

सूर्यास्त होनेपर दशग्रीवने सेनाके साथ वहाँ रहनेका विचार किया ॥ १ ॥ चन्द्रमाका उदय हुआ, जो उसी कैलासपर्वतके समान स्वच्छ था, अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवाली समस्त सेना सो गयी ॥ २ ॥ महाबली रावण पर्वतशिखरपर बैठा था, वह चन्द्रोदय और वृक्षोंके द्वारा उत्पन्न कैलासकी शोभा देखने लगा ॥३॥ उस प्रकाशमें कर्णिकार, कदम्ब, बकुल, विकसित कमलिनी, मन्दाकिनीका जल, चम्पक, अशोक, पुंनाग, तगरके वृक्षोंसे, आम, पाटल, लोध, प्रियंगु, अर्जुन, केतक, नारिकेल, प्रियाल, पनस, इन तथा अन्य वृक्षोंसे शोभित उस वनमें मीठे गलेवाले किन्नर मदसे उत्साहित होकर साथ गा रहे थे, कई मिलकर एक साथ गाते थे, जिससे मनकी प्रसन्नता बढ़ती थी ॥४,७॥ मदोन्मत्त विद्याधर स्त्रियों-से मिलकर क्रीड़ा करते थे और प्रसन्न होते थे, मदसे उनकी आँखें लाल हो गयी थीं ॥ ८ ॥ कुबेरके उस पर्वतपर एक साथ मिलकर अप्सराओंके गानेका मधुरस्वर सुन पड़ता था, जो घण्टाके शब्दके समान मनोहर था ॥ ९ ॥ वायुसे कम्पित होकर वृक्ष पुष्पवर्षा करते थे, वे वसन्तकालके पुष्पोंसे पर्वतको वास रहे थे, सुगन्धित कर रहे थे ॥ १० ॥ पुष्पोंके रस और धूलसे सनी गन्ध लेकर वायु बहने लगी जिससे रावणका काम बढ़ा ॥ ११ ॥ गानसे, पुष्पोंकी शोभासे, उस पर्वतपर बहनेके कारण वायुकी शीतलतासे, रात होनेके कारण चन्द्रोदयसे महाबली रावण कामके अधीन हो गया, वह उसाँसे ले-लेकर चन्द्रमाकी ओर देखने लगा ॥ १२,१३ ॥ इसी समय रावणने सर्वश्रेष्ठ अप्सरा पूर्णचन्द्रमुखी रम्भाको देखा, वह दिव्य आभरणोंसे भूषित थी ॥ १४ ॥ उसके शरीरमें दिव्य चन्दन लगा था, मन्दारपुष्पोंसे

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा । दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ॥१५॥
चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् । समुद्वहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ॥१६॥
कृतैर्विशेषकैरार्द्रैः षडर्तुकुसुमोद्भवैः । बभावन्यतमेव श्रीः कान्तिश्रीद्युतिकीर्तिभिः ॥१७॥
नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवगुण्ठिता । यस्या वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ॥१८॥
ऊरू करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ । सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपलक्षिता ॥१९॥
तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामबाणवशं गतः । करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥२०॥
क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् । कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥२१॥
त्वदाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः । सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥२२॥
स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ । कस्योरःस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥२३॥
सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामचितं पृथु । अध्यारोक्ष्यति कस्तेऽद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ॥२४॥
मद्विशिष्टः पुमान्कोऽद्य शक्रो विष्णुरथाश्विनौ । मामतीत्य हि यच्च त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥२५॥
विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् । त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ॥२६॥
तदेवं प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः । भर्तुर्भर्ता विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥२७॥

उसके बाल शोभित थे, दिव्य पुष्पोंसे भूषित वह अप्सरा दिव्य उत्सव आरम्भ करने जा रही थी ॥ १५ ॥ उसकी आँखें मनोहर थीं, जघन मोटे थे, वह अप्सरा रम्भा, रतिके लिए एक उपहारकी वस्तु थी ॥१६॥ सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले ताजे पुष्पोंके उसका तिलक किया था, अर्थात् मस्तक और कपोलोंपर रचना बनायी थी, कान्ति, शोभा, द्युति और कीर्तिसे वह दूसरी लक्ष्मीके समान मालूम पड़ती थी ॥१७॥ उसने नीला वस्त्र पहना था, उसका मुख चन्द्रमाके समान था और भौं धनुषके समान सुन्दर थे ॥ १८ ॥ उसकी उरु हाथीके सूँड़के समान थे, हाथ पल्लवके समान कोमल थे । रावणने सेनाके बीचसे जाती हुई उस रम्भाको देखा ॥ १९ ॥ रावण कामके बाणोंके अधीन हो गया, उठकर उसने उसका हाथ पकड़कर मुस्कुराकर कहा, रम्भा लज्जित हो रही थी ॥२०॥ वरारोहे, कहाँ जा रही हो, कौन-सी सिद्धि चाहती हो, किसके भाग्योदय हुए हैं जो तुम्हारा उपभोग करेगा ॥ २१ ॥ कमलके समान सुगन्धित, अमृतके समान मधुर तुम्हारे मुखामृतका पान करके कौन तृप्त होगा ॥ २२ ॥ भीरु, तुम्हारे ये स्तन जो सुवर्णकलसके समान हैं मोटे सुन्दर और आपसमें जुड़े हुए हैं किसके वक्षस्थलका स्पर्श करेंगे ॥२३॥ तुम्हारे जघनपर, जो सुवर्णचक्रके तुल्य है, सुवर्णकी करधनीसे भूषित है कौन बैठकर स्वर्गारोहणका आनन्द पावेगा ॥२४॥ भीरु, मुझसे बढ़कर कौन पुरुष है, इन्द्र, विष्णु और अश्विनी भी नहीं हैं । मुझको छोड़कर जो तुम जा रही हो यह अच्छा नहीं ॥ २५ ॥ पृथुश्रोणि, इस शिलातलपर तुम विश्राम करो, त्रिलोकका जो स्वामी है वह मेरे अतिरिक्त दूसरा नहीं है अर्थात् मैं ही त्रिलोकका स्वामी हूँ ॥ २६ ॥ त्रिलोकके स्वामीका भी स्वामी उनका पालन करनेवाला दसानन हाथ जोड़कर विनयपूर्वक तुमसे प्रार्थना करता है तुम मुझे अङ्गीकार करो ॥ २७ ॥

एवमुक्ताब्रवीद्रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः। प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥२८॥
अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां धर्षणं यदि। तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥२९॥
अथाब्रवीद्दशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम्। रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टमात्रेण तां तदा ॥३०॥
सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः। बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ॥३१॥
धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुंगव। पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ॥३२॥
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्ययम्। धर्मतो यो भवेद्विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ॥३३॥
क्रोधाद्यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः। तस्यास्मि कृतसंकेता लोकपालसुतस्य वै ॥३४॥
तमुद्दिश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम्। यथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ॥३५॥
तेन सत्येन मां राजन्मोक्तुमर्हस्यरिंदम। स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्ष्य समुत्सुकः ॥३६॥
तत्र विघ्नं तु तस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम्। सद्भिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुंगव ॥३७॥
माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथास्मि ते। एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ॥३८॥
स्नुषास्मि यदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः। देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ॥३९॥
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः। एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥४०॥
कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे। सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ॥४१॥

रावणके ऐसा कहनेपर काँपती हुई रम्भा हाथ जोड़कर बोली, कृपा कीजिए, आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, क्योंकि आप मेरे बड़े हैं ॥ २८ ॥ यदि दूसरा कोई मुझे छेड़ता हो, मेरा अपमान करता हो, उस समय आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए, मैं धर्मतः आपकी पुत्रवधू हूँ, आपसे मैं यह सत्य कहती हूँ ॥ २९ ॥ रावणको देखते ही भयसे उसके रोंगटे खड़े हो गये थे, वह सिर नीचा करके अपने पैरोंकी ओर देख रही थी, रावण उससे बोला ॥ ३० ॥ यदि तुम मेरे पुत्रकी स्त्री होती तो तुम्हारी बात ठीक होती। रम्भाने कहा, हाँ ठीक यही बात है ॥ ३१ ॥ मैं धर्मतः तुम्हारी पुत्रवधू हूँ। तुम्हारे भाई वैश्रवणके प्राणोंसे भी प्रिय पुत्र नलकूबर तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। जो धर्मसे ब्राह्मण, बलसे क्षत्रिय, क्रोधसे अग्नि और क्षमासे पृथिवीके समान हैं। उन्हीं लोकपालपुत्रके यहाँ जानेका मेरा निश्चय है, उन्हींके यहाँ जानेका मैंने वचन दिया है ॥ ३२ ॥ ३४ ॥ उन्हींके लिए मैंने यह शृंगार किया है, आभूषण धारण किया है, अतएव आज उन्हींका मुझपर अधिकार है, दूसरेका नहीं। उनका मुझपर जैसा प्रेम है वैसा दूसरेका नहीं ॥ ३५ ॥ राजन्, धर्मात्मा नलकूबर उत्सुक होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। नलकूबरसे मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसके लिए आप मुझे छोड़ दें ॥ ३६ ॥ अपने पुत्र नलकूबरके काममें तुम्हें विघ्न नहीं डालना चाहिए, मुझे छोड़ दो, सज्जनोंके मार्गपर चलो ॥ ३७ ॥ तुम मेरे माननीय हो उसी प्रकार मैं तुम्हारी पालनीय हूँ। रम्भाके ऐसा कहनेपर दसानन विनयपूर्वक उससे बोला ॥ ३८ ॥ मैं तुम्हारी "पुत्रवधू हूँ" यह जो तुमने कहा है वह एक पुरुषकी स्त्रीके लिए है। देवलोकमें देवताओंकी यह रीति सदासे चली आ रही है, अप्सराओंका कोई पति नहीं होता और न पुरुष ही, किसी एक स्त्रीको रखता है। ऐसा कहकर राक्षसने उसको शिलातलपर बैठा दिया ॥ ३९, ४० ॥ कामभोगके लिए

गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता । लुलिताकुलकेशान्ता करवेपितपल्लवा ॥४२॥
पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी । सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलिः ॥४३॥
नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह । तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ॥४४॥
अब्रवीत्किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे । सा वै निःश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ॥४५॥
तस्मै सर्वं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे । एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ॥४६॥
तेन सैन्यसहायेन निशेयं परिणामिता । आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिंदम ॥४७॥
गृहीता तेन पृष्टास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा । मया तु सर्वं यत्सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ॥४८॥
काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत्तद्वचो मम । याच्यमानो मया देव स्नुषा तेऽहमिति प्रभो ॥४९॥
तत्सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात्तेनास्मि धर्षिता । एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रत ॥५०॥
नहि तुल्यं बलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य हि । एतच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ॥५१॥
धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं संप्रविवेश ह । तस्य तत्कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ॥५२॥
मुहूर्तात्क्रोधताम्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना । गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्य यथाविधि ॥५३॥
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् । अकामा तेन यस्मात्त्वं बलाद्भद्रे प्रधर्षिता ॥५४॥
तस्मात्स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति । यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ॥५५॥

कामुक रावणने उसका उपभोग किया, उपभोग करके रावणने उसे छोड़ दिया, उस समय उसकी मालाएँ और आभूषण बिखर गये थे ॥४१॥ हाथीके हलोडनेसे जैसी नदी हो जाती है वैसी ही वह हो गयी थी, उसके बाल बिखर गये थे, हाथका कमल काँप रहा था ॥ ४२ ॥ वायुकी झकोरी विकसित लताके समान वह हो गयी थी, वह लजायी, डरी और काँपती हुई हाथ जोड़कर आयी और नलकूबरके पैरोंपर गिर पड़ी। उसको उस अवस्थामें देखकर महात्मा नलकूबर बोले ॥ ४३, ४४ ॥ नलकूबरने कहा, भद्रे, यह क्या है, मेरे पैरोंपर क्यों पड़ी हो। हाथ जोड़कर काँपती और उसाँसे लेती हुई रम्भाने जो कुछ बातें थीं जैसा हुआ था वह सब कह सुनाया। देव, यह रावण स्वर्गजानेके लिए आया है ॥ ४५, ४६ ॥ सेनाके साथ वह यहाँ रात बिता रहा है, तुम्हारे पास आनेके समय उसने मुझे देख लिया ॥ ४७ ॥ उस राक्षसने मुझे पकड़ा और पूछा तुम किसकी हो। जो सच था वह सब मैंने उससे कह दिया ॥ ४८ ॥ पर वह कामसे मोहित था, सुध-बुध खो चुका था, उसने मेरी बात न सुनी। देव, मैं उससे कहती ही रह गयी कि मैं आपकी पुत्रवधू हूँ ॥ ४९ ॥ इन बातोंको अनसुनीकरके बलपूर्वक उसने मुझपर अत्याचार किया। सुव्रत, आप मेरा यह अपराध क्षमा करें ॥ ५० ॥ स्त्री और पुरुष दोनोंका बल बराबर नहीं होता। यह सुनकर वैश्रवणपुत्र नलकूबरने क्रोध किया ॥ ५१ ॥ रम्भापर अत्याचार हुआ है यह सुनकर उन्होंने ध्यान लगाया और रावणके समस्त कर्मोंको जान लिया, उसका अत्याचार उन्हें मालूम हो गया ॥ ५२ ॥ मुहूर्तमें ही उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, उन्होंने हाथमें जल लिया और विधिपूर्वक आँख नाक आदिमें वह जल लगाकर रावणके लिए भयंकर शाप छोड़ा, उन्होंने उसे शाप दिया। भद्रे, तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध उसने तुमपर बलपूर्वक अत्याचार किया है अतएव वह इच्छाविरुद्ध दूसरी स्त्रीके पास

मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा । तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ॥५६॥
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता । पितामहमुखाश्चैव सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ॥५७॥
ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वां तस्य मृत्युं च रक्षसः । श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ॥५८॥
नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत् । तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिव्रताः ।
नलकूबरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम् ॥५९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७

कैलासं लङ्घयित्वा तु ससैन्यबलवाहनः । आससाद महातेजा इन्द्रलोकं दशाननः ॥ १ ॥
तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यतः । देवलोके बभौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ॥ २ ॥
श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात् । देवानथाब्रवीत्तत्र सर्वानेव समागतान् ॥ ३ ॥
आदित्यांश्च वसून्रुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान् । सज्जा भवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥
एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमा युधि । संनह्य सुमहासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥ ५ ॥
स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति । विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥
विष्णो कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति । अहोऽतिबलवद्रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥ ७ ॥

न जा सकेगा। यदि कामपीड़ित होकर वह न चाहनेवाली स्त्रीपर बलात्कार करेगा तो उसके मस्तकके सात टुकड़े हो जाँयगे, नलकूबरके ज्वलित अग्निके समान शाप देनेपर देवदुन्दुभि बजने लगी, और आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई। ब्रह्मा आदि समस्त देवता प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ ५७ ॥ रावणके द्वारा लोकपीड़ा तथा उसकी मृत्युको जानकर देवता प्रसन्न हुए। उस भयंकर शापको सुनकर रावणने इच्छाविरुद्ध स्त्रियों-का उपभोग करना छोड़ दिया। सभी पतिव्रता स्त्रियाँ जिन्हें रावण हर ले आया था नलकूबरके इस शापको सुनकर प्रसन्न हुईं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२६॥

सेना और वाहनोंके साथ कैलास पार करके तेजस्वी रावण इन्द्रलोक पहुँचा ॥ १ ॥ देवलोकमें चारों ओर फैलकर राक्षससेनाके चलनेसे जो शब्द हुआ वह समुद्रके टूटनेके शब्दके समान था। अर्थात् समुद्र तीर तोड़कर फैल रहा हो और उसकी धाराका भयंकर शब्द हो रहा हो ॥२॥ रावणका आना सुनकर इन्द्र विचलित हुए, वहाँ आये हुए आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य तथा समस्त देवताओंसे कहा, दुरात्मा रावणसे युद्धके लिए आप लोग तयार हों ॥ ३, ४ ॥ इन्द्रके कहनेपर इन्द्रतुल्य महापराक्रमी देवता तयार होकर युद्ध करनेके लिए उत्साहित हुए ॥ ५ ॥ इन्द्र रावणसे डर गया था, वह दुःखी होकर विष्णुके समीप गया और बोला ॥ ६ ॥ विष्णो, रावणके लिए मैं क्या करूँ ? यह राक्षस बड़ा बली है, युद्धके लिए आया है ॥ ७ ॥ यह वर पाकर बलवान् हुआ है, इसके बलवान होनेका दूसरा कारण नहीं है, क्योंकि ब्रह्माकी

वरप्रदानाद्रक्षाम स्वम्वन्येन हेतुना । तत्तु सत्यं वचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ ८ ॥
तद्यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ । त्वद्बलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ६ ॥
नह्यन्यो देवदेवेश त्वदृते मधुसूदन । गतिः परायणं चापि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१०॥
त्वं हि नारायणः श्रीमान्पद्मनाभः सनातनः । त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्रश्चाहं सुरेश्वरः ॥११॥
त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । त्वामेव भगवन्सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये ॥१२॥
तदाचक्ष्व यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम् । असिचक्रसहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रति ॥१३॥
एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः । अब्रवीन्न परित्रासः कर्तव्यः श्रूयतां च मे ॥१४॥
न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः । हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥१५॥
सर्वथा तु महत्कर्म करिष्यति बलोत्कटः । राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥१६॥
यत्तु मां त्वमभाषिष्ठा युद्ध्यस्वेति सुरेश्वर । नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ॥१७॥
नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते । दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ॥१८॥
प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो । भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ॥१६॥
अहमेव निहन्तास्मि रावणं सपुरःसरम् । देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ॥२०॥
एतत्ते कथितं तत्त्वं देवराज शचीपते । युद्ध्यस्व विगतत्रासः सुरैः सार्धं महाबल ॥२१॥

कही बातको सत्य करना है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार आपका बल पाकर मैंने नमुचि, वृत्र, बलि नरकासुर और शम्बरको मारा था। इसके लिए भी आप वैसाही कुछ कीजिए ॥ ९ ॥ देवदेवेश मधुसूदन, चराचर इस त्रिलोकमें तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई रक्षक नहीं है, दूसरा कोई आश्रय नहीं है ॥ १० ॥ आप नारायण हैं, पद्मनाभ हैं, सनातन हैं आपने ही इन लोकोंकी स्थापना की है और इन्द्रको देवराज बनाया है ॥११॥ भगवान् इस चराचर त्रिलोक की सृष्टि आपने ही की है और प्रलयकालमें यह समस्त सृष्टि आपमें ही आश्रय पाती है ॥ १२ ॥ अतएव देवदेव, आप मुझसे यथार्थ बातें कहें, क्या आप तलवार और चक्र लेकर रावणसे युद्ध करेंगे ॥ १३ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर प्रभु नारायणदेव बोले, डरो मत, मेरी बात सुनो ॥ १४ ॥ देवता और असुर इस दुष्टात्माको मारनेके लिए आवें तो भी इस समय नही जीत सकते, क्योंकि यह वरदान पाकर दुर्जय हो गया है ॥ १५ ॥ निश्चय यह बलवान् राक्षस पुत्रके साथ होकर महाभयंकर युद्ध करेगा यह बात स्वभावतः मालूम होती है ॥ १६ ॥ देवराज, आपने मुझे युद्ध करनेके लिए कहा है, पर राक्षस रावणसे मैं युद्ध न करूँगा ॥ १७ ॥ शत्रुको विना मारे विष्णु युद्धक्षेत्रसे नहीं लौटते, पर इस समय यह कठिन है, क्योंकि वह वरदानसे रक्षित है, उसे अवध्य होनेका वर मिला है ॥ १८ ॥ पर देवराज, मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इसकी मृत्युका कारण बनूँगा । अर्थात् समय आनेपर मैं इसे मारूँगा ॥ १९ ॥ जब समय आवेगा तब मैं ही सपरिवार रावणको मारूँगा और देवताओंको प्रसन्न करूँगा ॥२०॥ शचीपते देवराज, जो यथार्थ बातें थीं वह मैंने आपसे कहीं, आप देवताओंको साथ लेकर और निर्भय होकर इससे युद्ध करें ॥ २१ ॥

ततो रुद्राः सहादित्या वसवो मरुतोऽश्विनौ । संनद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानभितः पुरात् ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्राव रजनीक्षये । तस्य रावणसैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ॥२३॥
ते प्रबुद्धा महावीर्या अन्योन्यमभिवीक्ष्य वै । संग्राममेवाभिमुखा अभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ॥२४॥
ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत । तदक्षयं महासैन्यं दृष्ट्वा समरमूर्धनि ॥२५॥
ततो युद्धं समभवद्देवदानवरक्षसाम् । घोरं तुमुलनिर्ह्रादं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः । युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ॥२७॥
मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्वमहोदरौ । अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥२८॥
संह्रादो धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो घटोदरः । जम्बुमाली महाह्रादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥२९॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः । त्रिशिराः करवीराक्षः सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥३०॥
महाकायोऽतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ । एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यैर्महाबलः ॥३१॥
रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह । स दैवतगणान्सर्वान्नानाप्रहरणैः शितैः ॥३२॥
व्यध्वंसयत्समं क्रुद्धो वायुर्जलधरानिव । तद्दैवतबलं राम हन्यमानं निशाचरैः ॥३३॥
प्रणुन्नं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुन्ना मृगा इव । एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ।
सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश रणाजिरम् ॥३४॥
सैन्यैः परिवृतो हृष्टैर्नानाप्रहरणोद्यतैः । त्रासयञ्शत्रुसैन्यानि प्रविवेश रणाजिरम् ॥३५॥

इसके पश्चात् रुद्र, आदित्य, वसु, मरुत और आश्विन तयार होकर नगरसे राक्षसोंके सामने युद्धके लिए चले ॥ २२ ॥ इस समय रात्रिके अन्तमें युद्धदक्ष रावणसेनाका शब्द चारों ओर सुन पड़ा ॥ २३ ॥ ये वीर युद्धके लिए सब प्रकारसे तयार थे, ये महाबली परस्पर देखकर प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्रकी ओर चले ॥ २४ ॥ रणक्षेत्रमें उस अक्षय महासेनाको देखकर देवताके सैनिक विचलित हुए, वे घबरा गये ॥ २५ ॥ देवता, दानव और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा जिसमें अनेक प्रकारके अस्त्र काममें लाये जाते थे और भयंकर शब्द हो रहा था ॥ २६ ॥ इसी समय रावणके मन्त्री, वीर राक्षस युद्धके लिये आये जो देखनेमें बड़े भयंकर थे ॥ २७ ॥ मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक-सारण, संह्राद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्राद विरूपाक्ष, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु महाकाय, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक इन सब पराक्रमी राक्षसोंके साथ रावणका नाना महाबली सुमालीने सेनामें प्रवेश किया, क्रोध करके एक साथ ही तीखे बाणोंसे उसने देवताओंका नाश किया, अर्थात् वह नाश करने लगा । जिस प्रकार वायु मेघोंका नाश करती है । राम, राक्षसोंकी मारसे वह देवसेना घबड़ा गयी और चारों ओर भाग गयी जिस प्रकार मृगा सिंहसे भयभीत होकर भाग जाते हैं । इस समय वसुओंमें आठवें वसु जो सावित्रके नामसे प्रसिद्ध थे और वीर थे, युद्धक्षेत्रमें आये । २८,३४ ॥ समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे सजी हुई और प्रसन्न सेनाके साथ शत्रुओंको भयभीत करता हुआ वसु, सावित्र रणक्षेत्रमें आया ॥३५॥ इसी प्रकार त्वष्टा और पूषा ये दोनों महाबली आदित्योंने भी निर्भयताके साथ रणक्षेत्रमें प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ राक्षस युद्धसे लौटना नहीं जानते उनकी

तथादित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूषा च तौ समम् । निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ॥३६॥
ततो युद्धं समभवत्सुराणां सह राक्षसैः । क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥३७॥
ततस्ते राक्षसाः सर्वे विबुधान्समरे स्थितान् । नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ॥३८॥
देवाश्च राक्षसान्घोरान्महाबलपराक्रमान् । समरे विमलैः शस्त्रैरुपनिन्युर्यमक्षयम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः । नाना प्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सोऽभ्यवर्तत ४०॥
स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः । व्यध्वंसयत संक्रुद्धो वायुर्जलधरं यथा ॥४१॥
ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः । हन्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ॥४२॥
ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना । वसूनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ॥४३॥
संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् । विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ॥४४॥
ततस्तयोर्महद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् । सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ॥४५॥
ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना । निहतः पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ॥४६॥
हत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैश्चितम् । गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ॥४७॥
ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रां कालदण्डोपमां गदाम् । तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ॥४८॥
सा तस्योपरि चोल्काभा पतन्ती विबभौ गदा । इन्द्रप्रमुक्ता गर्जन्ती गिराविव महाशनिः ॥४९॥
तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं ददृशे तदा । गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ॥५०॥

इस कीर्तिपर क्रुद्ध देवताओंका राक्षसोंसे युद्ध होने लगा ॥ ३७ ॥ युद्धक्षेत्रमें स्थित देवताओंको राक्षस अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे मारने लगे ॥ ३८ ॥ देवता भी निर्मल अस्त्रोंसे महाबली और पराक्रमी भयंकर राक्षसोंको यमपुर भेजने लगे अर्थात् मारने लगे ॥ ३९ ॥ अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर सुमाली क्रोधकरके देवसेनाकी ओर लौटा ॥ ४० ॥ क्रोध करके वह तीखे अस्त्र शस्त्रोंसे देवसेनाका नाश करने लगा । जिस प्रकार वायु मेघोंका नाश करती है ॥ ४१ ॥ बाणोंकी निरन्तर वृष्टिसे भयंकर शूलों और भालोंके प्रहारसे देवता विचलित हो गये वे युद्धक्षेत्रमें ठहर न सके ॥ ४२ ॥ सुमाली जब देवताओंको युद्धक्षेत्रसे भगाने लगा उस समय आठवाँ वसु सावित्र क्रोध करके युद्धमें सजा हुआ तत्पर हुआ ॥ ४३ ॥ अपनी सेनासे रक्षित होकर उस तेजस्वी वीरने अपने पराक्रमसे प्रहार करनेवाले राक्षसको रोका ॥ ४४ ॥ युद्धसे पराङ्मुख न होनेवाले सुमाली और वसुका बड़ा भयंकर लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥४५॥ महात्मा वसुने अपने बड़े बाणोंसे सुमालीका पन्नगारथ तोड़ दिया जिस कारण वह शीघ्रही रथसे गिर पड़ा ॥ ४६ ॥ सैकड़ों बाणोंसे विधे उसके रथको तोड़कर वसुने सुमालीके वधके लिए गदा उठायी ॥ ४७ ॥ वह गदा कालदण्डके समान भयंकर थी, उसका अग्रभाग चमकीला था । सावित्रने सुमालीके सिरपर वह गदा मारी ॥ ४८ ॥ उसके सिरपर उल्काके समान गिरती हुई वह गदा शोभित हुई, जिस प्रकार इन्द्रप्रेरित वज्र गर्जता हुआ पर्वतपर मारते समय शोभित होता है ॥ ४९ ॥ सुमाली रणक्षेत्रमें मारा गया, हड्डी माँस सिर उसका कुछ भी दीख नहीं पड़ता गदाने उसे भस्मकर दिया था ॥ ५० ॥ सुमाली युद्धमें मारा गया यह देखकर राक्षस

तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये राक्षसास्ते समन्ततः। व्यद्रवन्सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम्।
विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नावतस्थिरे ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम्। स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वार्दितं सुरैः ॥१॥
ततः स बलवान्क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा। निवर्त्य राक्षसान्सर्वान्मेघनादो व्यवस्थितः ॥२॥
स रथेन महार्हेण कामगेन महारथः। अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥३॥
ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः। विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा दर्शनादेव देवताः ॥४॥
न बभूव तदा कश्चिद्युयुत्सोरस्य संमुखे। सर्वानाविद्ध्य वित्रस्तांस्ततः शक्रोऽब्रवीत्सुरान् ॥५॥
न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणे सुराः। एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ॥६॥
ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः। रथेनाद्भुतकल्पेन सङ्ग्रामे सोऽभ्यवर्तत ॥७॥
ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम्। रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजघ्निरे ॥८॥
तेषां युद्धं समभवत्सदृशं देवरक्षसाम्। महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥९॥
ततो मातलिपुत्रस्य गोमुखस्य स रावणिः। सारथेः पातयामास शरान्कनकभूषणान् ॥१०॥

भयभीत होकर, परस्पर पुकारते हुए वहाँसे भागे। वसुके आक्रमणसे कोई राक्षस वहाँ ठहर न सका।५१।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सत्ताइसवाँ सर्ग समाप्त ॥२७॥

सुमाली मारा गया वसुने उसे भस्म कर दिया, देवताओंसे घायल और पीड़ित होकर राक्षसी सेना भाग रही है, यह देखकर रावणके बली पुत्रने क्रोध करके सब राक्षसोंको लौटाकर स्वयं युद्ध करनेको उद्यत हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ बहुमूल्य कामगरथपर चढ़कर उस महारथने देवसेनापर आक्रमण किया जिस प्रकार आग सूखे वनपर आक्रमण करती है ॥ ३ ॥ अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर जिस समय रावणपुत्रने सेनामें प्रवेश किया, उसी समय उसको देखकर ही देवता भाग खड़े हुए ।।४।। युद्ध करनेवाले रावणपुत्रका सामना कोई भी न कर सका, सभीको बाणोंसे छेदकर उसने भयभीत कर दिया। यह देखकर इन्द्र देवताओंसे बोले ।। ५ ।। आपलोग डरें नहीं, भगें नहीं, युद्ध-क्षेत्रमें लौट जाँय, यह मेरा अपराजित-पुत्र युद्धके लिए जा रहा है ।। ६ ।। जयन्त नामसे प्रसिद्ध इन्द्रका पुत्र अद्भुत रथपर बैठकर युद्धक्षेत्रमें गया ।। ७ ।। देवगण इन्द्रपुत्रके साथ होकर रावणपुत्रपर प्रहार करने लगे ।। ८ ।। इन्द्र और रावणके पुत्रोंका तथा देवता और राक्षसोंका समान युद्ध हुआ। दोनों ही पक्ष बराबर थे ।। ९ ।। रावणके पुत्रने मातलिपुत्र सारथि गोमुखपर सोनाभरे बाण छोड़े ।। १० ।। इन्द्रपुत्र जयन्तने भी रावणपुत्रके सारथिको

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् । तं चापि रावणिः क्रुद्धः समन्तात्प्रत्यविध्यत ॥११॥
स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः । रावणिः शक्रतनयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥१२॥
ततो नानाप्रहरणाञ्छितधारान्सहस्रशः । पातयामास संक्रुद्धः सुरसैन्येषु रावणिः ॥१३॥
शतघ्नीमुसलप्रासगदाखड्गपरश्वधान् । महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः ॥१४॥
ततः प्रव्यथिता लोकाः संजज्ञे च तमस्ततः । तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नतः ॥१५॥
ततस्तद्दैवतबलं समन्तात्तं शचीसुतम् । बहुप्रकारमस्वस्थमभवच्छरपीडितम् ॥१६॥
नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो या देवताथवा । तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात्परिधावत ॥१७॥
देवा देवान्निजघ्नुस्ते राक्षसान्राक्षसास्तथा । संमूढास्तमसाच्छन्ना व्यद्रवन्नपरे तथा ॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् । दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्य शचीपुत्रोऽपवाहितः ॥१९॥
संगृह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा । आर्यकः स हि तस्यासीत्पुलोमा येन सा शची ॥२०॥
ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः । अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः संप्रदुद्रुवुः ॥२१॥
रावणिस्त्वथ संक्रुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः । अभ्यधावत देवांस्तान्मुमोच च महास्वनम् ॥२२॥
दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य दैवतेषु च विद्रुतम् । मातलिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम् ॥२३॥
स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः । उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो महाजवः ॥२४॥
ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडित्वन्तो महाबलाः । अग्रतो वायुचपला नेदुः परमनिःस्वनाः ॥२५॥

मारा । तब रावणपुत्रने इन्द्र क्रोधसे उसको चारो ओरसे छेदा ॥ ११ ॥ क्रोध करके आँखें फाड़कर बली रावणपुत्रने उनको बाणवर्षा करके ढँक दिया ॥ १२ ॥ क्रोध करके उसने तीखे अनेक अस्त्र-शस्त्र देवताओं पर गिराया ॥ १३ ॥ शतघ्नी, मुसल, भाला, गदा, तलवार, परशु तथा बड़े पर्वत-शिखर रावणपुत्रने गिराये ॥ १४ ॥ रावण-पुत्र जब देवसेनाका नाश कर रहा था उस समय सर्वत्र अन्धकार हो गया यह देखकर सब लोक व्यथित हुए ॥ १५ ॥ इन्द्रपुत्रके चारो ओर फैली देवसेना बाणपीड़ित होकर अस्वस्थ हो गयी, किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गयी ॥ १६ ॥ देवता और राक्षस आपसमें किसीको पहचान न सके इस कारण उन लोगोंने विपरीत आक्रमण किया, देवताओंने देवताओंपर, और राक्षसोंने राक्षसोंपर आक्रमण किया और बहुतसे भाग गये । क्योंकि अन्धकारके कारण उनको कुछ दिखायी नहीं पड़ता था ॥१७॥१८॥

इसी समय वीर पराक्रमी दैत्यराज प्रलोमा युद्धक्षेत्रमें आया और उसने शचीपुत्र जयन्तको पकड़कर युद्धक्षेत्रसे हटा ले गया ॥ १८ ॥ अपने दौहित्र जयन्तको लेकर वह समुद्रमें चला गया, वह उसका नाना था, यह शचीका पिता था ॥ १९ ॥ जयन्तको न देखकर देवता बड़े दुःखी हुए और खिन्न होकर वे भागने लगे ॥ २१ ॥ क्रोधकरके रावणपुत्रने अपनी सेनाके साथ देवताओंपर दौड़ा और गर्जन किया ॥२२॥ पुत्रका पता न लगना तथा देवताओंका भागना देखकर देवराज इन्द्रने मातलिसे कहा कि रथ ले आओ ॥ २३ ॥ वह सजा हुआ महाभयंकर विशाल और वेगवान् रथ उपस्थित हुआ, मातलिने उसे चलाकर उपस्थित किया ॥ २४ ॥ उस रथके अग्रभागमें वर्तमान उत्तम गर्जन करनेवाले वायुके द्वारा प्रेरित बिजलीवाले महाबली मेघ गर्जन करने लगे ॥ २५ ॥ देवराजके प्रयाण करनेके समय गन्धर्वोंने सावधान

नानावाद्यानि वाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः। ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ॥२६॥
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां समरुद्गणैः। वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥२७॥
निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषः पवनो ववौ। भास्करो निष्प्रभश्चैव महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे शूरो दशग्रीवः प्रतापवान्। आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२९॥
पन्नगैः सुमहाकायैर्वेष्टितं लोमहर्षणैः। येषां निःश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगे ॥३०॥
दैत्यैर्निशाचरैश्चैव स रथः परिवारितः। समराभिमुखो दिव्यो महेन्द्रं सोऽभ्यवर्तत ॥३१॥
पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः। सोऽपि युद्धाद्विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥३२॥
ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह। शस्त्राणि वर्षतां तेषां मेघानामिव संयुगे ॥३३॥
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः। नाज्ञायत तदा राजन्युद्धं केनाभ्यपद्यत ॥३४॥
दन्तैः पादैर्भुजैर्हस्तैः शक्तितोमरमुद्गरैः। येन तेनैव संक्रुद्धस्ताडयामास देवताः ॥३५॥
स तु रुद्रैर्महाघोरैः संगम्याथ निशाचरः। प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥३६॥
ततस्तद्राक्षसं सैन्यं प्रयुद्धं समरुद्गणैः। रणे विद्रावितं सर्वं नानाप्रहरणैस्तदा ॥३७॥
केचिद्विनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले। वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥३८॥
रथान्नागान्खरानुष्ट्रान्पन्नगांस्तुरगांस्तथा। शिशुमारान्वराहांश्च पिशाचवदनानपि ॥३९॥
तान्समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुत्थिताः। देवैस्तु शस्त्रसंभिन्ना मम्रिरे च निशाचराः ॥४०॥

होकर अनेक प्रकारके बाजे बजाये और अप्सराओंने नृत्य किया ॥ २६ ॥ रुद्र, वसु आदित्य, अश्विन और मरुतके साथ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको साथ लेकर देवराज चले ॥ २७ ॥ इन्द्रके चलनेके समय सूखी हवा चलने लगी, सूर्य प्रभाहीन हो गये और महोल्का गिरीं ॥ २८ ॥

इसी समय प्रतापी वीर दसानन विश्वकर्माके बनाये दिव्य रथपर सवार हुआ ॥ २९ ॥ भयंकर विशाल शरीर सर्पोंसे वह रथ वेष्टित था। जिनके मुँहकी हवासे वह रथ प्रदीप्त हो रहा था ॥ ३० ॥ दैत्य और निशाचर भी उस रथकी रक्षाके लिए नियत थे, वह दिव्य रथ युद्धक्षेत्रकी ओर इन्द्रके पास चला ॥ ३१ ॥ पुत्रको हटाकर रावण स्वयं युद्धके लिए उद्यत हुआ, वह भी युद्धक्षेत्रसे हटकर बैठ गया ॥ ३२ ॥ राक्षसोंके साथ देवताओंका युद्ध होने लगा, मेघोंके समान वे बाण-वर्षा करने लगे ॥३३॥ दुष्टात्मा कुम्भकर्ण अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र लिये हुए था, पर वह इतना भी नहीं समझता था कि किन अस्त्रशस्त्रोंसे युद्ध किया जाता है ॥ ३४ ॥ वह क्रोध करके दाँतों, पैरों, हाथों, शक्ति, तोमर, मुद्गर, आदि जिस किसीसे देवताओंको मारने लगा ॥ ३५ ॥ भयंकर रुद्रोंके साथ कुम्भकर्णने खूब युद्ध किया और वह घायल हुआ ॥ ३६ ॥ विविध अस्त्रोंसे युक्त देवताओंके साथ उस राक्षससेनाने युद्ध किया और वहाँसे भगायी गयी, अर्थात् देवताओंने उसे भगा दिया ॥ ३७ ॥ कई मारे गये, कई काटे गये, जिससे वे केवल जमीनमें पड़े पड़े हाथ पैर हिला सकते थे, घायल होनेपर भी कई वाहनोंसे ही लिपटे हुए थे ॥ ३८ ॥ रथों, हाथियों, गधों, ऊँटों, सर्पों, घोड़ों, सूँसों, वाराहों, पिशाचमुखोंको, जो उनके वाहन थे पकड़कर कई खड़े रहे, कई उनके सहारेसे उठे, देवताओंके द्वारा युद्धमें घायल होकर कई

चित्रकर्म इवाभाति सर्वेषां रणसंप्लवः। निहतानां प्रसुप्तानां राक्षसानां महीतले ॥४१॥
शोणितोदकनिष्यन्दा काककृध्रसमाकुला। प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान्। निरीक्ष्य तु बलं सर्वं दैवतैर्विनिपातितम् ॥४३॥
स तं प्रतिविगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम्। त्रिदशान्समरे निघ्नञ्शक्रमेवाभ्यवर्तत ॥४४॥
ततः शक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम्। यस्य विस्फारनिर्घोषैः स्तनन्ति स्म दिशो दश ॥४५॥
तद्विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि। पातयामास स शरान्पावकादित्यवर्चसः ॥४६॥
तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो निशाचरः। शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥४७॥
प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः। नाज्ञायत तदा किंचित्सर्वं हि तमसा वृतम् ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

ततस्तमसि संजाते सर्वे ते देवराक्षसाः। आयुद्ध्यन्त बलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥१॥
इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः। तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ॥ २ ॥
स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं रावणो निहतं क्षणात्। क्रोधमभ्यगमत्तीव्रं महानादं च मुक्तवान् ॥ ३ ॥

राक्षस युद्धमें मरे ॥ ३९, ४० ॥ बहुतसे राक्षस युद्धक्षेत्रमें मारे गये और बहुतसे युद्धक्षेत्रमें सो गये, निश्चेष्ट होकर पड़ रहे, उनका युद्ध करना चित्रके समान मालूम होता था अर्थात् वे चित्रोंके वीर मालूम होते थे, निश्चेष्ट थे ॥ ४१ ॥ उस युद्धक्षेत्रमें रुधिरकी नदी बह निकली, कौए, गीध उसके पास जुट गये, वीरोंके अस्त्रशस्त्र उसमें ग्राहके समान मालूम पड़ते थे ॥ ४२ ॥ देवताओंने राक्षसी सेनाको नष्ट कर दिया यह देखकर प्रतापी रावणने क्रोध किया ॥ ४३ ॥ बढ़े हुए उस सेना-समुद्रमें प्रवेश करके रावणने देवताओंको मारा और वह इन्द्रके पास गया ॥ ४४ ॥ इन्द्रने भी बड़ा धनुष चढ़ाया, जिसका शब्द बड़ा भारी था। जिसके शब्दसे दसो दिशाएँ गूँज जाती थीं ॥ ४५ ॥ उस धनुषको चढ़ाकर इन्द्रने रावणके मस्तकपर अग्नि और सूर्यके समान तेजरूपी बाण चलाये ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार महाबाहु राक्षस दसाननने भी धनुषसे निकले बाणोंके द्वारा इन्द्रको ढँक दिया ॥ ४७ ॥ वे दोनों बाणवृष्टि करके जब युद्ध कर रहे थे उस समय कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था क्योंकि अन्धकार हो गया था ॥ ४८ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अट्ठाइसवाँ सर्ग समाप्त ॥२८॥

अन्धकार होनेपर भी देवता और राक्षस युद्ध करते ही रहे, एक दूसरेका नाश करते रहे, दोनों-को अपने-अपने बलका घमंड था ॥ १ ॥ इन्द्र, रावण और मेघनाद, इन्हीं तीनोंपर अन्धकारका प्रभाव नहीं फैला था, ये अन्धकारसे मोहित नहीं हुए थे ॥ २ ॥ रावणने जब अपनी सेनाका भयंकर नाश देखा तब उसने क्रोध किया और सिंह गर्जन किया ॥ ३ ॥ दुधर्ष रावण क्रोध करके रथपर बैठे सारथिसे

क्रोधात्सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ह । परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ४ ॥
अद्यैव त्रिदशान्सर्वान्विक्रमैः समरे स्वयम् । नानाशस्त्रमहासारैर्नयामि यमसादनम् ॥ ५ ॥
अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम् । त्रिदशान्विनिहत्याशु स्वयं स्थास्याम्यथोपरि ॥ ६ ॥
विषादो नैव कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम् । द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तं नयस्व माम् ॥ ७ ॥
अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तावहे वयम् । नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः ॥ ८ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तुरगान्स मनोजवान् । आदिदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः ॥ ९ ॥
तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा । रथस्थः समरस्थस्तान्देवान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥१०॥
सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत्तावन्मम रोचते । जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥११॥
एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा । गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ॥१२॥
नह्येष हन्तुं शक्योऽद्य वरदानात्सुनिर्भयः । तद्ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ॥१३॥
यथा बलौ निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया । एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥१४॥
ततोऽन्यं देशमास्थाय शक्रः संत्यज्य रावणम् । अयुध्यत महाराज राक्षसांस्त्रासयन्रणे ॥१५॥
उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तकः । दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ॥१६॥
ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः । देवतानां बलं सर्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥१७॥

बोला कि जब तक शत्रु सेनाका अन्त मैं न करलूँ तब तक मुझे शत्रु सेनाके मध्यसे ले चलो ॥ ४ ॥ मैं आज ही अपने पराक्रमसे युद्धमें अनेक शस्त्रोंके बलसे देवताओंको यमपुर भेजूँगा ॥ ५ ॥ मैं इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमका वध करूँगा । देवताओंका वध करके मैं स्वयं स्वर्गलोकमें रहूँगा ॥ ६ ॥ विषाद न करो, शीघ्र रथ चलाओ, अब मैं तुमसे दूसरी बार कहता हूँ कि जबतक देवसेनाका अन्त न होजाय तबतक तुम उसके मध्यसे मुझे ले चलो ॥ ७ ॥ यह नन्दन वन है, जहाँ इस समय हमलोग हैं, तुम मुझे वहाँ ले चलो जहाँ उदय पर्वत है ॥ ८ ॥ रावणके वचनके अनुसार मनोजव घोड़ोंको सारथिने देवसेनाके बीचसे हाँका ॥ ९ ॥ रावणके इस निश्चयको जानकर रथपर बैठे देवराज इन्द्र, रणक्षेत्रमें वर्तमान देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ देवगण, मेरी बात आपलोग सुनें, जो मुझे अच्छा लगता है, इस दसग्रीवको जीते जी आपलोग पकड़ लें तो अच्छा हो ॥ ११ ॥ यह महाबली रावण तुल्य वेगवान् रथसे मेरी सेनामें आवेगा, जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन ऊँची लहरियों वाला समुद्र बढ़ता है ॥ १२ ॥ यह मारा नहीं जा सकता क्योंकि यह वरदानसे सुरक्षित है, अतएव इस राक्षसको पकड़नेके लिए आपलोग प्रयत्न करें ॥१३॥ जिस प्रकार बलिदैत्यको पकड़कर कैद करनेसे मैंने त्रिलोककी रक्षाकी थी, उसी प्रकार इस राक्षसको पकड़ रखना मुझे अच्छा लगता है ॥ १४ ॥ देवराज इन्द्र वहाँसे हट गये रावणको उन्होंने छोड़ दिया और वे राक्षसोंको भयभीत करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ उसकी ओरसे रावणने युद्धक्षेत्रमें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे प्रवेश किया, क्योंकि उत्तरकी ओर देवसेना थी और दक्षिणकी ओर राक्षस सेना । रावणने देव सेनामें प्रवेश किया और इन्द्रने राक्षस सेनामें ॥ १६ ॥ सौ योजन तक फैली देवसेनामें प्रवेश करके रावणने बाण-वर्षासे उसे ढँक दिया ॥ १७ ॥ इन्द्रने अपनी सेनाको नष्ट

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रनष्टं तु स्वकं बलम् । न्यवर्तयदसंभ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः । हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ॥१९॥
ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्च्छितः । तत्सैन्यमतिसंक्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥२०॥
तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां पशुपतेः पुरा । प्रविवेश सुसंरब्धस्तत्सैन्यं समभिद्रवत् ॥२१॥
स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत । महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रिपोः ॥२२॥
विमुक्तकवचस्तत्र वध्यमानोऽपि रावणिः । त्रिदशैः सुमहावीर्यैर्न चकार च किंचन ॥२३॥
स मातलिं समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः । महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ॥२४॥
ततस्त्यक्त्वा रथं शक्रो विससर्ज च सारथिम् । ऐरावतं समारुह्य मृगयामास रावणिम् ॥२५॥
स तत्र मायाबलवानदृश्योऽथान्तरिक्षगः । इन्द्रं मायापरिक्षिप्तं कृत्वा स प्राद्रवच्छरैः ॥२६॥
स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जज्ञेऽथ रावणिः । तदैनं मायया बद्ध्वा स्वसैन्यमभितोऽनयत् ॥२७।
तं तु दृष्ट्वा बलात्तेन नीयमानं महारणात् । महेन्द्रममराः सर्वे किं नु स्यादित्यचिन्तयन् ॥२८॥
दृश्यते न स मायावी शक्रजित्समितिंजयः । विद्यावानपि येनेन्द्रो माययापहृतो बलात् ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा । रावणं विमुखीकृत्य शरवर्षैरवाकिरन् ॥३०॥
रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वसूंस्तदा । न शशाक स सङ्ग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ॥३१॥
स तं दृष्ट्वा परिम्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् । रावणिः पितरं युद्धे दर्शनस्थोऽब्रवीदिदम् ॥३२॥

होते देखा, निर्भय होकर अपनी सेनासे रावणको घेरकर उसे हरा दिया ॥ १८ ॥ रावणको इन्द्रने घेर लिया है उसे ग्रस लिया है, यह देखकर दानव और राक्षस हाय, हाय, चिल्लाने लगे ॥ १९ ॥ यह देखकर मेघनादको बड़ा क्रोध हुआ उसने उस भयंकर सेनामें प्रवेश किया ॥ २० ॥ उसने महादेवसे मिली माया-का प्रयोग करके क्रोधपूर्वक देवसेनामें प्रवेश किया और उसे विचलित कर दिया ॥ २१ ॥ वह अन्य देवताओंको छोड़कर इन्द्रके ही पास गया पर तेजस्वी इन्द्र शत्रु-पुत्र मेघनादको न देख सके ॥ २२ ॥ मेघनाद कवच नहीं पहने था बली देवता उसे मार रहे थे पर उसने कुछ नहीं किया, कोई उत्तर नहीं दिया ॥ २३ ॥ सामने आते हुए मातलिको उत्तम बाणोंसे उसने मारा, पुनः बाणोंकी वृष्टिसे इन्द्रको व्यथित किया ॥ २४ ॥ इन्द्रने भी रथ छोड़ दिया, मातलिको हटा दिया, ऐरावत हाथीपर बैठकर वे मेघनादको ढूँढ़ने लगे ॥ २५ ॥ मेघनाद मायासे बलवान् था वह आकाशमें अदृश्य हो गया था, उसने इन्द्रको माया से व्याकुल करके उनपर आक्रमण किया ॥ २६ ॥ जब मेघनादने समझा कि इन्द्र थक गये हैं, तब उसने मायासे इन्द्रको बाँध लिया और वह उन्हें अपनी सेनामें ले आया ॥ २७ ॥ इन्द्रको बाँधकर मेघनाद बलपूर्वक इन्द्रको युद्धक्षेत्रसे लिये जा रहा है, यह देखकर देवता सोचने लगे कि अब क्या किया जाय ॥ २८ ॥ युद्ध विजयी इन्द्रजित् दिखायी नहीं पड़ता वह मायावी छिप गया है, इन्द्र मायाको नष्ट करना जानते थे, फिर भी मायाके बलसे वह इन्द्रको जबरदस्ती ले गया ॥ २९ ॥ देवता क्रोध करके रावणको युद्धक्षेत्रसे पराङ्मुख करके बाण वर्षा करने लगे ॥ ३० ॥ आदित्यों और वसुओंके सामने पड़कर रावण युद्ध न कर सका, क्योंकि वह शत्रुओंके द्वारा पीड़ित हो गया ॥ ३१ ॥ मेघनादने देखा, उसके पिता म्लान

आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् । जितं नो विदितं तेऽस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥३३॥
अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः । स गृहीतो देवबलाद्भग्नदर्पाः सुराः कृताः ॥३४॥
यथेष्टं भुङ्क्ष्व लोकांस्त्रीन्निगृह्यारातिमोजसा । वृथा किं ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ॥३५॥
ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः । तच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं शक्रहीनाः सुरा गताः ॥३६॥

अथ स रणविगतमुत्तमौजास्त्रिदशरिपुः प्रथितो निशाचरेन्द्रः ।
स्वसुतवचनमादृतः प्रियं तत्समनुनिशम्य जगाद चैव सूनुम् ॥३७॥
अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्त्वं मम कुलवंशविवर्धनः प्रभो ।
यदयमतुलबलस्त्वयाद्य वै त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ॥३८॥
नय रथमधिरोप्य वासवं नगरमितो व्रज सेनया वृतस्त्वम् ।
अहमपि तव पृष्ठतो द्रुतं सह सचिवैरनुयामि हृष्टवत् ॥३९॥
अथ स बलवृतः सवाहनस्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ।
स्वभवनमधिगम्य वीर्यवान्कृतसमरान्विससर्ज राक्षसान् ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

होगये हैं, प्रहारोंसे जर्जर होगये हैं उस समय युद्धक्षेत्रमें वह छिपा-छिपा ही अपने पितासे बोला ॥ ३२ ॥ आप चले आवें, हमलोग अब चलें, युद्ध समाप्त कीजिए, हमलोग जीत गये यह आप समझें, चिन्ता छोड़कर आप प्रसन्न होजायँ ॥ ३३ ॥ इस देवसेनाका तथा त्रिलोकका जो स्वामी है उसे मैंने देवसेनामें-से पकड़ लिया और देवताओंका अहङ्कार नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥ शत्रुको दराड देकर तीनों लोकोंका आप भोग करें, अब परिश्रम व्यर्थ है, युद्ध निष्फल है ॥ ३५ ॥ मेघनादके ये बचन सुनकर आदित्य आदि देवताओंका गण युद्ध क्षेत्रसे हट गया और इन्द्रके बिना देवता भी लौट गये ॥ ३६ ॥

अनन्तर युद्ध समाप्त करके परम पराक्रमी देवशत्रु प्रसिद्ध राक्षसराज आदरपूर्वक पुत्रके प्रिय वचन सुनकर उससे बोला ॥ ३७ ॥ महाबलियोंके समान पराक्रमसे तुम हमारे कुल और वंशके बढ़ानेवाले हो, तुमने महाबली देवराज तथा देवताओंको जीता है ॥ ३८ ॥ इन्द्रको रथपर बैठाकर सेनासे सुरक्षित होकर तुम यहाँसे अपने नगरमें चलो । मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे यात्रियोंके साथ आनन्द पूर्वक आता हूँ ॥३९॥ वाहन और स्वयं सेनासे सुरक्षित होकर बली मेघनाद देवराजको लेकर अपने घर पहुँचा, और युद्धमें भाग लेनेवाले राक्षसोंको उसने छुट्टी दी ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै । प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ॥१॥
तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् । अब्रवीद्गगने तिष्ठन्सामपूर्वं प्रजापतिः ॥२॥
वत्स रावण तुष्टोस्मि पुत्रस्य तव संयुगे । अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥३॥
जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा । कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि ससुतस्य ते ॥४॥
अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्यवान् । जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥५॥
बलवान्दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः । यं समाश्रित्य ते राजन्स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥६॥
तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः । किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥७॥
अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः । अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते ॥८॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः । नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित्प्राणिनो भुवि ॥९॥
पक्षिणश्चतुष्पदो वा भूतानां वा महौजसाम् । श्रुत्वा पितामहेनोक्तमिन्द्रजित्प्रभुणाव्ययम् ॥१०॥
अथाब्रवीत्स तत्रस्थं मेघनादो महाबलः । श्रूयतां वा भवेत्सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥११॥
ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः संपूज्य पावकम् । सङ्ग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥१२॥
अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत्तु विभावसोः । तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो वरः ॥१३॥

रावणके पुत्रने महाबली इन्द्रको भी जीत लिया, उस समय देवता ब्रह्माको साथ लेकर लंका गये ॥१॥ भाई, बेटोंके साथ बैठे रावणके समीप जाकर आकाशसे ही ब्रह्मा कोमल वचन बोले ॥ २ ॥ रावण, युद्धमें तुम्हारे पुत्रने जो पराक्रम दिखाया है उससे मैं सन्तुष्ट हूँ, ओह ! कैसा इसका महान् पराक्रम है, यह पराक्रममें तुम्हारे समान है अथवा तुमसे भी अधिक है ॥ ३ ॥ तुमने अपने पराक्रमसे त्रिलोकको जीत लिया प्रतिज्ञा सफल की, तुमपर और तुम्हारे पुत्रपर मैं प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥ यह तुम्हारा पुत्र महाबली और पराक्रमी है, यह संसारमें इन्द्रजित्‌के नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ५ ॥ यह राक्षस बलवान् और दुर्गम है, इसीके बलसे तुमने देवताओंको वशमें किया है ॥ ६ ॥ अतएव, महाबाहो, तुम पाकशासन इन्द्रको छोड़ दो, इन्द्रके छोड़नेके बदले जो कहो वह देवता तुम्हे दें ॥ ७ ॥ इन्द्र विजयी, तेजस्वी इन्द्रजित् बोला, देव, यदि मैं इसको छोड़ूँगा तो इसके बदलेमें अमरत्व चाहूँगा, अर्थात् देवता मुझे अमर बना दें, मैं किसीसे मारा न जाऊँ, तो मैं इन्द्रको छोड़ दूँ ॥ ८ ॥ तेजस्वी ब्रह्मा मेघनादसे बोले, पृथिवीके सभी प्राणी अमर नहीं हो सकते । ऐसा नहीं हो सकता कि वे किसीसे मारे ही न जाँय, पक्षी, चतुष्पत् और मनुष्य इनमें किसीके द्वारा न मारा जाना पृथिवीमें असम्भव है । प्रभु ब्रह्माकी बात सुनकर इन्द्रजित् बोला ॥ ९ ॥ १० ॥ समीप वर्तमान् ब्रह्मासे महाबली इन्द्रजित् बोला । सुनिए, इन्द्रके छोड़नेपर जिस मनोरथकी सिद्धि मैं चाहता हूँ वह सुनिए ॥ ११ ॥ शत्रु विजयके लिए जब मैं संग्राममें जाना चाहूँ, मन्त्र और हाथसे अग्नि देवकी पूजा करूँ उस समय सदा घोड़ोंके साथ अग्निका रथ मेरे लिए उपस्थित हो । उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ अमर होऊँ, किसीके द्वारा मारा न जाऊँ । यही मेरा निश्चय वर है । इन्द्रको छोड़नेके लिए यह वर मैं

तस्मिन्यद्य समाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ । युध्येयं देव सङ्ग्रामे तदा मे स्याद्विनाशनम् ॥१४॥
सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान् । विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ॥१५॥
एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः । मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युतिः । इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्यानतत्परतां गतः ॥१७॥
तं तु दृष्ट्वा तथाभूतं प्राह देवः पितामहः । शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्कृतम् ॥१८॥
अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो । एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥१९॥
तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा । ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम् ॥२०॥
सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे । यद्यत्प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत्तदुद्धृतम् ॥२१॥
ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता । हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥२२॥
यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता । अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रकीर्तितम् ॥२३॥
निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ । भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥२४॥
त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो । स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरंदर ॥२५॥
सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः । न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥२६॥

लूँगा ही ॥ १२ ॥ १३ ॥ युद्धके उपयुक्त जप और होमको समाप्त किये बिना ही यदि मैं युद्ध करूँ तो मेरा नाश हो अर्थात् मैं मारा जाऊँ ॥ १४ ॥ देव, अन्य मनुष्य तपस्याके द्वारा अमर होते हैं पर मैं पराक्रमके द्वारा अमरत्व पाना चाहता हूँ । १५ ॥ पितामह ब्रह्मदेवने मेघनादकी बात मानली, उसने इन्द्रको छोड़ दिया, देवता स्वर्ग चले गये ॥ १६ ॥

इन्द्र दुखी होगये थे, उनका देव-तेज लुप्त होगया था । वे चिन्तित होकर बड़ी देरतक विचार करते रहे ॥ १७ ॥ उनको इस प्रकार चिन्तित देखकर पितामह ब्रह्मदेव बोले, इन्द्र, पहले पाप करके इस समय तुम सोच क्यों रहे हो ॥ १८ ॥ प्रभो, देवराज, मैंने पहले एक वर्ण, एक भाषा और एक रूप प्रजाकी सृष्टि अपनी बुद्धिसे की ॥ १९ ॥ उनमें कोई भेद न था, वे एक ही तरहके थे, एक ही रूप और एक ही लक्षण उनके थे । अतएव मैंने अपनी प्रजाके सम्बन्धमें विचार किया, इनमें कौन भेद किया जाय इसका विचार किया ॥ २० ॥ उन प्रजाओंमें भेद करनेके लिए मैंने एक स्त्रीका निर्माण किया, प्रजाके प्रत्येक अंगमें जो विशेष था, जो सौन्दर्य था उसको मैंने निकाल लिया ॥ २१ ॥ तब मैंने रूपवती और गुणवती अहल्या नामकी स्त्री बनायी । विकृत रूपको हल कहते हैं और हल्य है विकृत रूपता, अर्थात् विकृत रूपमें रहनेवाला धर्म ॥ २२ ॥ जिसमें हल्य न हो उसे अहल्य कहते हैं । अतएव मैंने उस स्त्रीका नाम अहल्या रखा ॥ २३ ॥ उस स्त्रीके निर्माण कर लेनेपर इस बातकी चिन्ता हुई कि यह किसकी स्त्री बनायी जाय । कहाँ उसके योग्य वर मिले ॥ २४ ॥ पुरन्दर, सबसे ऊँचे स्थानपर रहनेके कारण तुम अपने मनमें उसे अपनी ही स्त्री समझते थे । अर्थात् बिना मेरे दिये भी तुम उसके योग्य अपनेको समझते थे ॥ २५ ॥ मैंने वह स्त्री महात्मा गौतमके यहाँ थातीके रूपमें रखी, बहुत वर्षोंतक उसको अपने यहाँ रखकर उन्होंने वह थाती मुझे लौटा दी ॥ २६ ॥ इससे उस

ततस्तस्य परिज्ञाय महास्थैर्यं महामुनेः। ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥२७॥
स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः। आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥२८॥
त्वं क्रुद्धस्त्विह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः। दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥२९॥
सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना। दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ॥३०॥
ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा। गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥३१॥
यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात्। तस्मात्त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥३२॥
अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः। मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥३३॥
तत्रार्धं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धं निपतिष्यति। न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः ॥३४॥
यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद्ध्रुवः स न भविष्यति। एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥३५॥
तां तु भार्यां सुनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत्सुमहातपाः। दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥३६॥
रूपयौवनसंपन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता। तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥३७॥
रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः। यत्तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोऽयमुपस्थितः ॥३८॥
तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विता। सा तं प्रसादयामास महर्षिं गौतमं तदा ॥३९॥

महामुनिकी स्थिरता देखकर तथा तपस्यामें उनकी सिद्धि देखकर मैंने उन्हींको पत्नी बनानेके लिए वह स्त्री दे दी। २७॥ वे धर्मात्मा महामुनि उस स्त्रीके साथ रमण करते हैं। पर गौतमको वह स्त्री दी गयी इसमें देवता बड़े निराश हुए॥ २८॥ कामवश होकर तुमने भी क्रोध किया, उस महामुनिके आश्रमपर तुम गये, तथा वहाँ अग्निशिखाके समान उसको तुमने देखा॥ २९॥ इन्द्र, काम पीड़ित होकर क्रोधसे तुमने उसपर अत्याचार किया, उसके साथ बलात्कार किया, उस समय महर्षिने तुमको आश्रममें देख लिया॥३०। तेजस्वी मुनिने क्रोध करके तुमको शाप दिया, देवराज, उसीसे तुमने अपनी अवस्थाके विपरीत फल पाया है देवराज होकर भी आज कैदी हुए हो॥ ३१॥ मुनिने कहा था, वासव निर्भय होकर तुमने मेरी पत्नीपर बलात्कार किया है अतएव युद्धमें तुम शत्रुके हाथमें पड़ोगे, तुमको शत्रु कैद कर लेगा॥ ३२॥ मूर्ख, तुमने परस्त्रीपर बलात्कार करनेका जो भाव उत्पन्न किया है, वह मनुष्य लोकमें भी फैलेगा, इसमें सन्देह नहीं॥ ३३॥ जो परस्त्री गमन करेगा, इस पापका आधा फल करनेवालेको मिलेगा और आधा तुमको मिलेगा, क्योंकि तुमने इस भावको चलाया है। तुम्हारा कोई निश्चित स्थान भी न होगा, तुम सदा इधर-उधर मारे-मारे फिरोगे॥ ३४॥ तुम्हारे अतिरिक्त और भी जो-जो इन्द्र होंगे वे भी स्थिर न होंगे, वे भी भटकते फिरेंगे। मुनिने यह शाप तुमको दिया था और तुम्हें यह उसी समय बतला भी दिया था॥ ३५॥ तपस्वी मुनिने अपनी स्त्रीको भी डाँटा-डपटा और कहा, पापिनि, तू, इस आश्रमके पास ही नष्ट हो जा॥ ३६॥ रूपवती और युवती होनेके कारण तुम चञ्चल हो, एक पुरुषसे सन्तुष्ट नहीं हो, अतएव संसारमें एक तुम्हीं रूपवती न रहोगी और भी रूपवती होंगी॥ ३७॥ जो सौन्दर्य तुम्हें प्राप्त है वह सब स्त्रियोंको प्राप्त होगा, तुम्ही एक सुन्दरी न रह सकोगी, जिसके कारण यह काण्ड उपस्थित हुआ है॥ ३८॥ तभी प्रजा रूपवती होने लगी, उस स्त्रीने महर्षि गौतमको प्रसन्न किया।

अज्ञानाद्धर्षिता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा । न कामकाराद्विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः । उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥४१॥
रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति । ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥४२॥
तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि । स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद्दुष्कृतं कृतम् ॥४३॥
तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि । वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ॥४४॥
एवमुक्त्वा स विप्रर्षिराजगाम स्वमाश्रमम् । तपश्चचार सुमहत्सा पत्नी ब्रह्मवादिनः ॥४५॥
शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् । तत्स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत्त्वया कृतम् ॥४६॥
तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येन वासव । शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ॥४७॥
पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिवं ततः । पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ॥४८॥
नीतः संनिहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ । एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ॥४९॥
पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवराट् । एतदिन्द्रजितो नाम बलं यत्कीर्तितं मया ॥५०॥
निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः । आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत्तदा ॥५१॥
अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा । विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

॥ ३९ ॥ देव, मैं जानती न थी, इस देवताने तुम्हारे रूपमें आकर मुझे ठग लिया, मैंने इच्छासे यह पाप नहीं किया है, ब्रह्मर्षि, आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ अहल्याके ऐसा अनुनय करनेपर गौतमने उसे उत्तर दिया । इक्ष्वाकुवंशमें तेजस्वी एक महारथ उत्पन्न होगा । राम नामसे वह प्रसिद्ध होगा और वनमें भी आवेगा, वह विष्णु होगा । विष्णु ही ब्राह्मणोंके लिए मनुष्य शरीर धारण करेंगे ॥ ४१,४२ ॥ भद्रे, तुम उनको जब देखोगी, उस समय पवित्र हो जाओगी, तुमने जो पाप किया है उससे पवित्र करनेकी शक्ति उसीमें होगी ॥ ४३ ॥ उसका अतिथि-सत्कार करके तुम मेरे पास आ सकोगी, सुन्दरी, तभी तुम मेरे पास रह सकोगी ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रममें आये और कठोर तपस्या करने लगे । ब्रह्मवादी गौतमकी वह स्त्री भी कठोर तपस्या करने लगी ॥ ४५ ॥ उस मुनिके शाप देनेके कारणसे ही ऐसा हुआ है, तुम्हें कैद होना पड़ा है, अतएव, महाबाहो, तुमने जो पाप किया है उसका स्मरण करो ॥ ४६ ॥ वासव, उसी कारणसे तुम्हें शत्रुके द्वारा बँधना पड़ा है और दूसरा कारण नहीं है, अतएव सावधान होकर शीघ्र ही तुम वैष्णव यज्ञ करो ॥ ४७ ॥ उस यज्ञके द्वारा पवित्र होकर तुम स्वर्गमें जाओगे । देवराज, तुम्हारा पुत्र भी यज्ञमें मारा नहीं गया है ॥ ४८ ॥ उसका नाना उसे समुद्रमें ले गया गया है और वह वहीं नानाके पास है । ब्रह्माके इन वचनोंको सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव यज्ञ किया ॥ ४९ ॥ पुनः वे स्वर्ग गये और उन्होंने उसका शासन किया । यह जो कुछ मैंने कहा है वह इन्द्रजितके बलका वर्णन है ॥ ५० ॥ उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था फिर दूसरे प्राणियोंकी बात ही क्या । अगस्त्यके वचन सुनकर राम, लक्ष्मण, वानर तथा राक्षसोंने आश्चर्य, आश्चर्य कहा । अर्थात् मेघनादके चरित सुनकर ये लोग चकित हुए । रामके पास वर्तमान विभीषणने कहा, जो बात मैंने देखी है, उसकी याद आपने दिला दी है । अर्थात् ये बातें सत्य हैं । रामचन्द्रने अगस्त्यसे कहा, महाराज ये बातें सत्य हैं, मैंने भी सुनी

आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत्तद्दृष्टं पुरातनम् । अगस्त्यं त्वब्रवीद्रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥५३॥
एवं राम समुद्भूतो रावणो लोककण्टकः । सपुत्रो येन सङ्ग्रामे जितः शक्रः सुरेश्वरः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

ततो रामो महातेजा विस्मयात्पुनरेव हि । उवाच प्रश्रतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥१॥
भगवन्राक्षसः क्रूरो यदाप्रभृति मेदिनीम् । पर्यटत्किं तदा लोकाः शून्या आसन्द्विजोत्तम ॥२॥
राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन । धर्षणं न यत्र प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥३॥
उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः । बहिष्कृता वरास्त्रैश्च बहवो निर्जिता नृपाः ॥ ४ ॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानृषिः । उवाच रामं प्रहसन्पितामह इवेश्वरम् ॥ ५ ॥
इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान्पार्थिवर्षभ । चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥
ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् । संप्राप्तो यत्र सांनिध्यं सदासीद्वसुरेतसः ॥ ७ ॥
तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद्वसुरेतसः । अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा ॥ ८ ॥
तमेव दिवसं सोऽथ हैहयाधिपतिर्बली । अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥ ९ ॥

हैं ॥ ५१,५३ ॥ रामचन्द्र, इस प्रकार रावण उत्पन्न हुआ था वह लोकोंका शत्रु था, पुत्रके साथ होकर उसने युद्धमें इन्द्रको जीता था ॥ ४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३० ॥

अनन्तर तेजस्वी रामचन्द्र प्रणत होकर विस्मयसे ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यसे पुनः बोले ॥ १ ॥ भगवन्, क्रूर राक्षस जिस समय पृथिवीमें परिभ्रमण कर रहा था उस समय क्या पृथिवी सूनी थी, क्या उस समय कोई वीर यहाँ नहीं था ॥ २ ॥ महाराज, क्या उस समय कोई राजा अथवा अधिकारी नहीं था जिस कारण राक्षसराज रावण पराजित न हुआ ॥ ३ ॥ अथवा वे सभी राजा कमजोर थे, अस्त्र-शास्त्रोंका उन्हें ज्ञान न था। जिस कारण वे पराजित हुए ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर भगवान् अगस्त्य ऋषि उनसे हँसकर बोले। मानो ब्रह्मा रुद्रदेवसे बोल रहे हों ॥ ५ ॥ पृथिवी पते, इस प्रकार राजाओंको परास्त करता हुआ रावण समस्त पृथिवीमें परिभ्रमण करने लगा। एक बार देवनगरी अमरावतीके समान शोभावली महिष्मतीनगरीमें आया, जहाँ सदा अग्निकी उपस्थिति रहती थी ॥ ६,७ ॥ अग्निके प्रभावसे वहाँका राजा भी अग्नितुल्य तेजस्वी था, उसका नाम अर्जुन था, उसकी नगरीमें सदा कुण्डमें अग्निदेव निवास करते थे ॥ ८ ॥ जिस दिन रावण महिष्मती पुरीमें गया उस दिन हैहयोंका राजा बली अर्जुन, स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें क्रीडा करने गया था ॥ ९ ॥ उसी दिन रावण वहाँ आया, राक्षसराज रावणने राजाके मन्त्रियोंसे

तमेव दिवसं सोऽथ रावणस्तत्र आगतः। रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥१०॥
क्वार्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ। रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेप्सुर्नृवरेण ह ॥११॥
ममागमनमप्यग्रे युष्माभिः संनिवेद्यताम्। इत्येवं रावणेनोक्तास्तेऽमात्याः सुविपश्चितः ॥१२॥
अब्रुवन्राक्षसपतिमसांनिध्यं महीपतेः। श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ॥१३॥
अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्संनिभं गिरिम्। स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ॥१४॥
अपश्यद्रावणो विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम्। सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकंदरम् ॥१५॥
प्रपातपतितैः शीतैः साट्टहासमिवाम्बुभिः। देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोभिः सकिंनरैः ॥१६॥
स्वस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम्। नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फटिकप्रतिमं जलम् ॥१७॥
फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्ठितम्। उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हिमवत्संनिभं गिरिम् ॥१८॥
पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ। चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ॥१९॥
महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः। उष्णाभितप्तैस्तृषितैः संक्षोभितजलाशयाम् ॥२०॥
चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः। सारसैश्च सदा मत्तैः कूजद्भिः सुसमावृताम् ॥२१॥
फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम्। विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलिसुमेखलाम् ॥२२॥
पुष्परेण्वनुलिप्ताङ्गीं जलफेनामलांशुकाम्। जलावगाहसुखस्पर्शां फुल्लोत्पलशुभेक्षणाम् ॥२३॥

पूछा ॥ १० ॥ राजा अर्जुन कहाँ है, आपलोग ठीक-ठीक शीघ्र बतलावें। मैं रावण हूँ, राजासे युद्ध करनेके लिए आया हूँ ॥ ११ ॥ आपलोग मेरा आना भी उस राजासे कहें। रावणके कहनेपर राजाके विद्वान् मन्त्रियोंने उससे कहा,—महाराज राजधानीमें नहीं है। रावणने पुरवासियोंसे भी सुना कि राजा नगरसे बाहर गये हैं ॥ १२,१३ ॥ उस नगरीसे निकलकर रावण विन्ध्यपर्वतपर गया, वह पर्वत हिमवान् पर्वतके समान था। वह मेघोंके समान आकाशमें फैला था, पृथिवी फोड़कर निकला हुआ-सा मालूम होता था ॥ १४ ॥ रावणने विन्ध्यपर्वतको देखा, जो आकाश छू रहा था जिसके हजारों शिखर थे, जिसकी गुहाओंमें सिंह रहते थे ॥ १५ ॥ ऊँचे तटसे शीतल जल गिर रहा था, जो पर्वतके अट्टहासके समान मालूम पड़ता था। देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओं तथा अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते थे जिससे वह ऊँचा पर्वत स्वर्गके समान मालूम पड़ता था। वहाँकी नदियोंमें स्फटिकके समान जल बह रहा था जिससे चञ्चल जीभ तथा फनवाले अग्निदेवके समान मालूम पड़ता था। बहुत ऊँचा होनेके कारण वह पर्वत ऊँचे जाते हुए मालूम पड़ता था, उसमें अनेक गुहाएँ थीं वह पर्वत हिमवान् पर्वतके तुल्य था ॥ १६,१८ ॥ उस पर्वतको देखता हुआ रावण नर्मदा नदीकी ओर चला। जिसमें पत्थरके साथ जल बहता है और जो पश्चिम समुद्रमें जाकर मिलती है ॥ १९ ॥ जैसे समर, सिंह, बाघ, रीछ हाथीसे जन्तु गरमीसे तपकर तथा प्यासे होकर जिसके जलाशयको क्षुभित कर देते हैं ॥ २० ॥ चक्रवाक, कारण्डव, हंस, जलमुर्गा, और सारस मस्त होकर जहाँ कूदते हैं तथा जहाँ बने रहते हैं ॥ २१ ॥ जिस नर्मदा नदीने सुन्दरी स्त्रीके समान, विकसित वृक्षोंसे अपने कर्णभूषण बनाये थे। चकवाकी जोड़ी जिसके स्तन थे लम्बा तट जिसके कमरके नीचेका भाग था, हंसोंकी श्रेणि मेखला थी ॥ २२ ॥ पुष्पोंकी धूल जिस,

पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् । इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥२४॥
स तस्याः पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेविते । उपोपविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुंगवः ॥२५॥
प्रख्याय नर्मदां सोऽथ गङ्गेयमिति रावणः । नर्मदादर्शने हर्षमाप्तवान्स दशाननः ॥२६॥
उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुकसारणौ । एष रश्मिसहस्रेण जगत्कृत्वेव काञ्चनम् ॥२७॥
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः । मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकरः ॥२८॥
नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः । मद्भयादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ॥२९॥
इयं चापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा शर्मवर्धिनी । नक्रमीनविहंगोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥३०॥
तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि । चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥३१॥
ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् । सार्वभौममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥३२॥
अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मनो विप्रमोक्ष्यथ । अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ॥३३॥
पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः । रावणेनैवमुक्तास्तु प्रहस्तशुकसारणाः ॥३४॥
समहोदरधूम्राक्षा नर्मदां विजगाहिरे । राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ॥३५॥
वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः । ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महाबलाः ॥३६॥
उत्तीर्य पुष्पाण्याजह्रुर्बल्यर्थं रावणस्य तु । नर्मदापुलिने हृद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ॥३७॥

शरीरमें लगायी है, जलफेन जिसका स्वच्छ वस्त्र है, जिसके जलका स्पर्श सुखदायी है तथा विकसित कमल जिसके नेत्र हैं ।। २३ ।। दसानन रावणने पुष्पकविमानसे उतरकर प्रिय स्त्रीके समान नदी श्रेष्ठ नर्मदामें अवगाहन किया, स्नान किया ।। २४ ।। उस नदीके रमणीय तीरपर वह राक्षस अपने मन्त्रियोंके साथ बैठा, जहाँ अनेक मुनि निवास करते थे ।। २५ ।। नर्मदाको देखकर रावण बहुत खुश हुआ और उसने उसको गङ्गाके नामसे प्रसिद्ध किया, अथवा गङ्गा समझा ।। २६ ।। रावण, शुकसारण तथा अन्य मन्त्रियोंसे बोला, यह सूर्य हजारों किरणोंसे जगत्को सुवर्ण मय बना रहा है, यह प्रचण्ड तापवाला सूर्य आकाशके मध्यमें स्थित है. इस समय इसे खूब तपना चाहिए, पर मैं बैठा हूँ, यह जानकर चन्द्रमाके समान शीतल हो रहा है ।। २७,२८ ।। नर्मदाके जलसे शीतल, सुगन्धित तथा थकावट दूर करनेवाली यह वायु भी मेरे भयसे सावधान होकर बह रही है ।। २९ ।। कल्याण वर्धन करनेवाली नदीश्रेष्ठ यह नर्मदा भी स्त्रीके समान भयभीत होकर स्थित है, इसकी लहरोंके साथ नाग, मछली तथा पक्षी बह रहे हैं ।। ३० ।। आपलोग इन्द्रतुल्य राजाओंके द्वारा युद्धमें घायल हुए हैं, चन्दनके समान आपके अंगोंमें रुधिर लगा है, आपलोग कल्याण देनेवाली पवित्र नर्मदामें स्नान करें । जिस प्रकार सार्वभौम आदि दिग्गज गङ्गामें स्नान करते हैं । ।। ३१, ३२ ।। इस महानदीमें स्नान करके आपलोग अपने पापोंसे मुक्त होंगे । मैं भी शरदके चन्द्रमाके समान श्वेत इस नदीके तीरपर महादेवको पुष्पोपहार दूँगा । रावणके कहनेपर प्रहस्त, शुकसारण, महोदर, धूम्राक्ष आदि राक्षसोंने नर्मदामें स्नान किया । राक्षसेन्द्रके इन हाथियोंने, हाथीके समान मन्त्रियोंने, नर्मदा नदीको क्षुमित कर दिया ।। ३३,३५ ।। जिस प्रकार वामन, अञ्जन, पद्म आदि दिग्गज गङ्गा नदीको क्षुभित करते हैं । वे महाबली राक्षस गङ्गामें स्नान करके निकले और वे रावणकी पूजाके लिए पुष्प ले

राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः । पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ॥३८॥
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः । तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ॥३९॥
नर्मदासलिलात्तस्मादुत्ततार स रावणः । ततः क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतः ॥४०॥
रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः । तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥४१॥
यत्रयत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः । जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्रतत्र स्म नीयते ॥४२॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः । अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥४३॥

ततः सतामार्तिहरं परं वरं वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्त चाग्रतः ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

नर्मदापुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः स दारुणः । पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद्देशाददूरतः ॥१॥
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः । क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥२॥
तासां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः । करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥३॥
जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् । रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ॥४॥

आये । श्वेतमेघ तुल्य नर्मदाके रमणीय तटपर थोड़ी ही देरमें राक्षसोंने पुष्पका पर्वत खड़ा कर दिया । पुष्पोंके आ जानेपर राक्षसेश्वर रावण स्नान करनेके लिए नदीमें उतरा, जिस प्रकार दिग्गज गङ्गामें उतरता है । वहाँ उसने स्नान किया और विधिवत् जप किया और जलसे निकलकर गीला वस्त्र उतारकर स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण किया ॥ ३९,४० ॥ रावण हाथ जोड़कर महादेवकी ओर धीरे-धीरे जाने लगा, अन्य राक्षस भी उसके पीछे-पीछे चले, ये भी रावणके चलनेके अनुसार ही चलते थे, अतएव वे मूर्तिमान पर्वतके समान मालूम होते थे ॥ ४१ ॥ राक्षसराज रावण, जहाँ-जहाँ जाता था वहाँ-वहाँ, वह सुवर्णका शिवलिङ्ग साथ ले जाता था ॥ बालुमें वह लिङ्ग स्थापित करके अमृतगन्धी पुष्पों और चन्दनसे उसने उनकी पूजा की ॥ ४२,४३ ॥ सज्जनोंकी पीड़ा हरनेवाले, वर देनेवाले चन्द्रकिरणोंसे भूषित महादेवकी पूजा करके वह राक्षस गाने लगा और हाथ फैलाकर उस लिङ्गके सामने नाचने लगा ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

क्रूर राक्षसराज नर्मदा तीरपर जहाँ महादेवकी पुष्पोंसे पूजा कर रहा था, वहाँसे थोड़ी दूरपर माहिष्मतीका राजा विजयियोंमें श्रेष्ठ, अर्जुन, नर्मदाके जलमें स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करता था ॥ १,२ ॥ उन स्त्रियोंके बीचमें राजा अर्जुन हजारों हथिनियोंके बीचमें हाथीके समान शोभता था ॥ ३ ॥ अपनी भुजाओंका बल जाँचनेके लिए उसने नर्मदा नदीकी धारा रोक दी, क्योंकि उसकी भुजाएँ हजार थीं ॥ ४ ॥

कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् । कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ॥५॥
समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः । स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृट्काल इवाबभौ ॥६॥
स वेगः कार्तवीर्येण संप्रेषित इवाम्भसः । पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ॥७॥
रावणोऽर्धसमाप्तं तमुत्सृज्य नियमं तदा । नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥८॥
पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्गारसंनिभम् । वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ॥९॥
ततोऽनुद्भ्रान्तशकुनां स्वभावे परमे स्थिताम् । निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद्रावणो नदीम् ॥१०॥
सव्येतरकराङ्गुल्या ह्यशब्दास्यो दशाननः । वेगप्रभावमन्वेष्टुं सोऽदिशच्छुकसारणौ ॥११॥
तौ तु रावणसंदिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ । व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ॥१२॥
अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रजनीचरौ । पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ॥१३॥
बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम् । मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुलचेतसम् ॥१४॥
नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम् । गिरिं पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ॥१५॥
बालानां वरनारीणां सहस्रेण समावृतम् । समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम् ॥१६॥
तमद्भुततरं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ । संनिवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतुः ॥१७॥
बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर । नर्मदां रोधवद्रुद्ध्वा क्रीडापयति योषितः ॥१८॥

कार्तवीर्य अर्जुनकी भुजाओंसे रुका हुआ नर्मदाका निर्मल जल तीरको तोड़ता हुआ उलटा बहने लगा ॥ ५ ॥ मीन, मगर, पुष्प, कुश आदिके साथ बहता हुआ वह नर्मदा नदीका वेग वर्षाकालके वेगके समान मालूम पड़ने लगा ॥६॥ वह जलका वेग, जो कार्यवीर्यका भेजा हुआसा था, रावणके सब पुष्पों तथा जलकी सामग्रीको बहा ले गया ॥ ७ ॥ रावणकी पूजा आधी हुई थी, वह पूजा छोड़कर प्रतिकूल स्त्रीके समान नर्मदा नदीको देखने लगा ॥ ८ ॥ वह जलका वेग पश्चिमकी ओरसे समुद्रके ज्वारके समान बढ़कर पूर्व दिशाको ओर जा रहा था रावण उसको देखने लगा ॥ ९ ॥ पर बाढ़का कोई चिन्ह न था, पत्तियोंमें घबड़ाहट न थी, नदीका जल मैला न था, वह सदाके रूपमें वर्तमान था, अतएव रावणने निर्विकार स्त्रीके समान नदीको देखा ॥ १० ॥ दाहिने हाथकी अँगुलीसे रावणने बिना बोले ही शुक और सारणको नदीप्रवाहका कारण जाननेके लिए कहा ॥ ११ ॥ रावणकी आज्ञापाकर शुक और सारण दोनों वीर भाई आकाशमार्गसे पश्चिमकी ओर चले ॥ १२ ॥ आधा योजन जानेपर उन दोनों राक्षसोंने एक पुरुषको स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा करते देखा ॥ १३ ॥ वह पुरुष सालवृक्षके समान लम्बा और बड़ा था, जलकी धारासे उसके बाल बिखर रहे थे, मदसे उसकी आँखें लाल होगयी थीं और मन व्याकुल होगया था ॥ १४ ॥ वह शत्रुमर्दन अपने हजार हाथोंसे नदीको रोक रहा था, मानों पर्वत हजार पैरोंसे पृथिवीको रोकता हो ॥ १५ ॥ सुन्दरी हजार युवती स्त्रियोंसे वह घिरा था, जैसे मतवाली हजार हथिनियोंसे हाथी घिरा हो ॥ १६ ॥ उस अद्भुत पुरुषको देखकर शुक और सारण राक्षस लौटकर रावणके पास आये और बोले ॥ १७ ॥ राक्षसेश्वर, वह कोई सालवृक्षके समान लम्बा पुरुष है, बाँधकी तरह नर्मदाको रोककर स्त्रियोंको क्रीड़ा करा रहा है ॥ १८ ॥ उसके हजार हाथोंसे नदीका जल रुक गया है, अतएव समुद्रके

तेन बाहुसहस्रेण संनिरुद्धजला नदी । सागरोद्गारसंकाशानुद्गारान्सृजते मुहुः ॥१९॥
इत्येवं भाषमाणौ तौ निशम्य शुकसारणौ । रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा स ययौ युद्धलालसः ॥२०॥
अर्जुनाभिमुखे तस्मिन्रावणे राक्षसाधिपे । चण्डः प्रवाति पवनः सनादः सरजस्तथा ॥२१॥
सकृदेव कृतो रावः सरक्तपृषतो घनैः । महोदर महापार्श्व धूम्राक्ष शुकसारणैः ॥२२॥
संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद्यत्र चार्जुनः । अदीर्घेणैव कालेन स तदा राक्षसो बली ॥२३॥
तं नर्मदाह्रदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः । स तत्र स्त्रीपरिवृतं वासिताभिरिव द्विपम् ॥२४॥
नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम् । स रोषाद्रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः ॥२५॥
इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा । अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै ॥२६॥
युद्धार्थं समनुप्राप्तो रावणो नाम नामतः । रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते ॥२७॥
उत्तस्थुः सायुधास्तं च रावणं वाक्यमब्रुवन् । युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भो साधु रावण ॥२८॥
यः क्षीबं स्त्रीगतं चैव योद्धुमुत्सहसे नृपम् । स्त्रीसमक्षगतं यत्त्वं योद्धुमुत्सहसे नृपम् ॥२९॥
क्षमस्वाद्य दशग्रीव उष्यतां रजनी त्वया । युद्धे श्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात समरेऽर्जुनम् ॥३०॥
यदि वापि त्वरा तुभ्यं युद्धतृष्णासमावृत । निपात्यास्मान्रणे युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ॥३१॥
ततस्तै रावणामात्यैरमात्यास्ते नृपस्य तु । सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥३२॥
ततो हलहलाशब्दो नर्मदातीरगो बभौ । अर्जुनस्यानुयात्राणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥३३॥

ज्वारके समान नदीमें बार-बार ज्वार उठ रहा है ।। १९ ।। शुक और सारणके ऐसा कहनेपर रावणने कहा "यह अर्जुन है" और वह युद्धकी लालसासे चला ।। २० ।। अर्जुनके सामने राक्षसराज रावणके जानेपर प्रचण्ड वायु, गर्जन करती तथा धूल उड़ाती हुई बहने लगी ।। २१ ।। मेघोंने रक्तबिन्दु बरसाकर एक ही बार गर्जन किया । महोदर, महापार्श्व धूम्राक्ष और शुकसारणके साथ रावण अर्जुनके पास चला । अञ्जनके समान काला वह बली राक्षस, भीम नर्मदाके झीलके पास आया । राक्षसोंके राजा रावणने वहाँ स्त्रियोंके साथ राजा अर्जुनको देखा, जैसे हथिनियोंके साथ हाथी हो । क्रोधसे आँखें लाल करके बली राक्षसराज, अर्जुनके मन्त्रियोंसे गम्भीर वाणीसे बोला । मन्त्रियों, आपलोग हैहय राजासे जाकर शीघ्र कहो, रावण, युद्धके लिए आया है, रावणके वचन सुनकर अर्जुनके मन्त्री अस्त्रायुध लेकर उठ खड़े हुए और बोले, रावण, तुमने तो युद्धका अच्छा समय चुना है ।। २२ ।। २८ ।। राजा इस समय स्त्रियोंके साथ हैं और नशेमें हैं, तुम ऐसी दशामें उनसे युद्ध करना चाहते हो ।। २९ ।। हथिनियोंके साथ वर्तमान हाथीसे जिस प्रकार बाघ युद्ध करना चाहे । अतएव, दसग्रीव, आज आप क्षमा करें, एक रात आप निवास करें, यदि युद्धमें तुम्हारी श्रद्धा हो तो कल युद्धमें आप अर्जुनसे मिलें ।। ३० ।। हे युद्धोत्सुक, यदि तुम्हें युद्ध करनेकी उत्सुकता हो तो हमलोगोंको युद्धमें मारकर अर्जुनके पास जाओ, पहले हमलोगोंसे लड़ लो, फिर अर्जुनसे लड़ना ।। ३१ ।। अनन्तर रावणके मन्त्रियोंने युद्धमें राजा अर्जुनके मन्त्रियोंको मार डाला और वे भूखे थे इसलिए खा डाला ।। ३२ ।। राजा अर्जुनके मन्त्रियों और रावणके मन्त्रियोंका नर्मदाके तीरपर भी कोलाहल बढ़ने लगा ।।३३।। बाण, तोमर, भाला, त्रिशूल, वज्र और कर्पणनामके अस्त्रोंसे अर्जुन-

इषुभिस्तोमरैः प्रासैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्षणैः । सरावणानर्दयन्तः समन्तात्समभिद्रुताः ॥३४॥
हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत्सुदारुणः । सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निःस्वनः ॥३५॥
रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः । कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निहन्ति स्म स्वतेजसा ॥३६॥
अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः । क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्भयविह्वलैः ॥३७॥
श्रुत्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं स तदार्जुनः । उत्ततार जलात्तस्माद्गङ्गातोयादिवाञ्जनः ॥३८॥
क्रोधदूषितनेत्रस्तु स तदार्जुनपावकः । प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ॥३९॥
स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् । अभिदुद्राव रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥४०॥
बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम् । गारुडं वेगमास्थाय आपपातैव सोऽर्जुनः ॥४१॥
तस्य मार्गं समारुद्ध्य विन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः । स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ॥४२॥
ततोऽस्य मुसलं घोरं लोहबद्धं मदोद्धतः । प्रहस्तः प्रेषयन्क्रुद्धो ररास च यथान्तकः ॥४३॥
तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसंनिभः । प्रहस्तकरमुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ॥४४॥
आधावमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः । निपुणं वञ्चयामास गदया गतविक्लवः ॥४५॥
ततस्तमभिदुद्राव सगदो हैहयाधिपः । भ्रामयाणो गदां गुर्वीं पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ॥४६॥
ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा । निपपात स्थितः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥४७॥

के मन्त्रियोंने एक साथ धावा किया और रावण सहित राक्षसोंको उनलोगोंने पीड़ित किया ॥३४॥ हैहयाधिप अर्जुनके योद्धाओंका आक्रमण भयानक था । वेग रोका नहीं जा सकता था, जिस प्रकार नक्र-मीन मकरवाले समुद्रका गर्जन भयानक होता है ॥ ३५ ॥ राक्षसके मन्त्री प्रहस्त शुक, सारण आदि क्रोध करके अपने पराक्रमसे कार्तवीर्यकी सेनाको मारते थे ॥ ३६ ॥ रावण और उसके मन्त्रियोंके ये काम अर्जुनके मन्त्रियोंने भयभीत होकर क्रीडामें आसक्त राजा अर्जुनसे कहा ॥ ३७ ॥ सुनकर अर्जुनने स्त्रियोंसे कहा कि डरना मत और दिग्गज अंजन तुल्य राजाने जलमें स्त्रियोंको बाहर निकाला ॥ ३८ ॥ अर्जुन नामक अग्नि, जो प्रलय कालके अग्निके समान भयंकर था, जिसके नेत्र ओदर क्रोधमें बिगड़ गये थे, वह सहसा जल उठा ॥ ३९ ॥ सुवर्णका वस्त्रभूषण धारण करनेवाले अर्जुनने अति शीघ्र गदा लेकर राक्षसों पर आक्रमण किया, जिस प्रकार सूर्य अन्धकारपर आक्रमण करता है ॥ ४० ॥ महागदा उठाकर जो हाथसे चलायी जाती है, अर्जुनने गरुड़ वेगसे रावणकी सेनापर आक्रमण किया ॥ ४१ ॥ विन्ध्यपर्वतके समान अकाट्य प्रहस्त नामक राक्षसने मुसल लेकर अर्जुनका रास्ता रोक दिया, जिस प्रकार विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग रोका था ॥ ४२ ॥ अनन्तर मदोद्धत प्रहस्तने लोहा मढ़ा हुआ भयंकर मुसल क्रोधसे अर्जुन-पर चलाया और यमराजके समान गर्जन किया ॥ ४३ ॥ प्रहस्तके हाथसे छूटा मुसल, जिसके मुँहपर अशोक पुष्पके अग्रभागके रंगकी आग थी, वह जलाने लगी । ४४ ॥ वह मुसल अर्जुनकी ओर चला, निर्भय होकर उसने गदासे मुसलको बिलकुल व्यर्थ कर दिया ॥ ४५ ॥ हैहयाधिपने पाँच सौ हाथ ऊँची गदा घुमाकर उसपर आक्रमण किया ॥ ४६ ॥ गदाके वेगयुक्त प्रहारसे प्रहस्त गिर पड़ा, जिस प्रकार इन्द्रके वज्र प्रहारसे पर्वत गिर पड़ता है ॥४७॥ प्रहस्तको गिरा देखकर मारीच, शुक, सारण, महोदर और

प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः । समहोदरधूम्राक्षा अपसृष्टा रणाजिरात् ॥४८॥
अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते च निपातिते । रावणोऽभ्यद्रवत्तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥४९॥
सहस्रबाहोस्तद्युद्धं विंशद्बाहोश्च दारुणम् । नृपराक्षसयोस्तत्र आरब्धं रोमहर्षणम् ॥५०॥
सागराविव संक्षुब्धौ चलमूलाविवाचलौ । तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥५१॥
बलोद्धतौ यथा नागौ वासितार्थे यथा वृषौ । मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥५२॥
रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तौ तदा राक्षसार्जुनौ । परस्परं गदां गृह्य ताडयामासतुर्भृशम् ॥५३॥
वज्रप्रहारानचला यथा घोरान्विषेहिरे । गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥५४॥
यथाशनिरवेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुतिः । तथा तयोर्गदापोथैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥५५॥
अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि । काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामनी यथा ॥५६॥
तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः । अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥५७॥
नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः । सममासीत्तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥५८॥
शृङ्गैरिव वृषायुध्यन्दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ । परस्परं विनिघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥५९॥
ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा । स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥६०॥
वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि । दुर्बलेव यथावेगं द्विधाभूतापतत्क्षितौ ॥६१॥
स त्वर्जुनप्रयुक्तेन गदाघातेन रावणः । अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥६२॥

धूम्राक्ष रणक्षेत्रसे हट गये ॥४८॥ मन्त्रियोंके हट जानेपर और प्रहस्तके गिरनेपर रावणने नृप श्रेष्ठ अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ४९ ॥ हजार हाथवाले राजा और बीस हाथवाले रावणका रोमहर्षण महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ ५० ॥ वे क्षुभित सागरके समान, मूलसे उखड़े हुए पर्वतके समान, प्रचण्ड सूर्यके समान धधकती आगके समान, सिंहके समान बली मेघोंके समान गर्जन करनेवाले, हथिनीके लिए युद्ध करनेवाले बलोन्मत हाथियोंके समान वे राक्षस और अर्जुन, रुद्र और यमराजके समान क्रोध करके, गदासे बार-बार परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ५१ ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार भयंकर वज्र प्रहारोंको पर्वत सह लेते हैं, उसी प्रकार ये मनुष्य और राक्षस गदा प्रहारोंको सह लेते थे ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार वज्र गर्जनकी प्रतिध्वनि होती है, उसी प्रकार उन दोनोंके गदा-प्रहारके शब्दसे दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गयीं ॥ ५५ ॥ शत्रुकी छातीपर पड़ती हुई गदाने विद्युतके समान आकाशको सुवर्णमय बना दिया ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार रावणकी गदा बार-बार अर्जुनपर पड़ती हुई पर्वतपर गिरनेवाली उल्काके समान मालूम पड़ती थी ॥ ५७ ॥ अर्जुन थकता न था और न राक्षसराज ही थकता था उनका युद्ध बराबरका था जिस प्रकार बलि और इन्द्रका युद्ध हुआ था ॥ ५८ ॥ ये दोनों नरश्रेष्ठ और राक्षसश्रेष्ठ परस्पर प्रहार करने लगे जिस प्रकार दो बैल सींगसे प्रहार करते हैं, जिस प्रकार दो हाथी दाँतसे प्रहार करते हैं ॥ ५९ ॥ इसके पश्चात् राजा अर्जुनने बड़े जोरसे रावणकी विशाल छातीके बीचमें गदा मारी ॥ ६० ॥ रावण वरदानसे रक्षित था अतएव वह गदा वेगसे उसकी विशाल छातीपर गिरकर दुर्बलके समान दो टुकड़े होगयी और पृथिवीपर गिर पड़ी ॥ ६१ ॥ अर्जुनके गदा-प्रहारसे वह राक्षस एक धनुष पीछे हट गया और रोता हुआ वह बैठ गया ॥६२॥

स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः । सहसोत्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥६३॥
स तु बाहुसहस्रेण बलाद्गृह्य दशाननम् । बबन्ध बलवान्राजा बलिं नारायणो यथा ॥६४॥
बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः । साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥६५॥
व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगराडिव कुञ्जरम् । ररास हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ॥६६॥
प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् । सहसा राक्षसः क्रुद्ध अभिदुद्राव हैहयम् ॥६७॥
नक्तंचराणां वेगस्तु तेषामापततां बभौ । उद्धूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ॥६८॥
मुञ्चमुञ्चेति भाषन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासकृत् । मुसलानि च शूलानि सोत्ससर्ज तदा रणे ॥६९॥
अप्राप्तान्येव तान्याशु असंभ्रान्तस्तदार्जुनः । आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ॥७०॥
ततस्तान्येव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः । भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥७१॥
राक्षसांस्त्रासयामास कार्तवीर्यार्जुनस्तदा । रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥७२॥
स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करैर्द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसंनिभः ।
ततोऽर्जुनः स्वां प्रविवेश तां पुरीं बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

रावणको विह्वल देखकर अर्जुनने झपटकर उसे पकड़ लिया जिस प्रकार गरुड़ साँपको पकड़ता है ॥६३॥ बली राजाने हजार हाथोंसे उसे पकड़कर बाँध लिया, जिस प्रकार नारायणने बलिको बाँधा था ॥६४॥ रावणके बाँधे जानेपर सिद्ध, चारण और देवताओंने अर्जुनकी प्रशंसाकी उन्हें साधुवाद दिया और उनके मस्तकपर पुष्प-वृष्टिकी ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार बाघ मृगोंको पकड़ता है, सिंह हाथीको पकड़ता है उसी प्रकार रावणको पकड़कर अर्जुनने हर्षसे मेघके समान गर्जन किया ॥ ६६ ॥

प्रहस्त इस समयतक होशमें आ गया था, रावणको बँधा देखकर उसने क्रोधसे हैहयराजपर आक्रमण किया ॥ ६७ ॥ आक्रमणके लिए आनेवाले राक्षसोंका वेग वैसा दीख पड़ा जैसा ग्रीष्मके अन्तमें मेघोंका वेग समुद्रमें दीख पड़ता है ॥ ६८ ॥ वे राक्षस, छोड़ो, छोड़ो, ठहरो ठहरो, बार-बार चिल्ला रहे थे । प्रहस्तने राजापर मुसल और शूल चलाये ॥ ६९ ॥ बिना घबड़ाये शत्रुहन, अर्जुनने, राक्षसोंके उन अस्त्रोंको पास पहुँचनेके पहले ही पकड़ लिया ॥ ७० ॥ पुनः अर्जुनने उन्हीं अस्त्रोंसे राक्षसोंको घायल करके भगा दिया । जिसप्रकार वायु मेघोंको भगा देता है ॥ ७१ ॥ कार्तवीर्य अर्जुनने राक्षसोंको भयभीत कर दिया और रावणको बाँधकर वे मित्रोंके साथ नगरमें आये ॥ ७२ ॥ इन्द्रतुल्य राजापर ब्राह्मणों और पुरवासियोंने अक्षत पुष्प बरसाये । अनन्तर अर्जुनने अपनी नगरीमें प्रवेश किया, जिसप्रकार सहस्र नेत्र इन्द्रने बलिको बाँधकर प्रवेश किया था ॥ ७३ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

रावणग्रहणं तत्तु वायुग्रहणसंनिभम् । ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ॥ १ ॥
ततः पुत्रकृतस्नेहात्कम्प्यमानो महाधृतिः । माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महानृषिः ॥ २ ॥
स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः । पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसंपातविक्रमः ॥ ३ ॥
सोऽमरावतिसंकाशां हृष्टपुष्टजनावृताम् । प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ ४ ॥
पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दशम् । ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयन् ॥ ५ ॥
पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्धैहयाधिपः । शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युद्गच्छत्तपस्विनम् ॥ ६ ॥
पुरोहितोऽस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तथैव च । पुरस्तात्प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ७ ॥
ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् । अर्जुनो दृश्य संभ्रान्तो ववन्देऽन्द्र इवेश्वरम् ॥ ८ ॥
स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च । पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥
अद्यैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता । अद्याहं तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात्पश्यामि दुर्दशम् ॥१०॥
अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम् । अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥११॥
यत्ते देवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणौ तव । इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ॥
ब्रह्मन्किं कुर्मः किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ॥१२॥

रावणको पकड़ना वायुको पकड़नेके समान आश्चर्यजनक था। स्वर्गमें देवताओंके कहनेसे यह बात पुलस्त्यने सुनी ॥ १ ॥ महाधीर होनेपर भी वे पुत्र स्नेहसे काँप गये, विचलित हुए और वे महर्षि माहिष्मती नगरीके राजाको देखनेके लिए आये ॥ २ ॥ मन और वायुके समान चलनेवाले वे महर्षि वायुमार्गसे चलकर माहिष्मती नगरीमें आये ॥ ३ ॥ प्रसन्न और पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अमरावतीके तुल्य उस नगरीमें महर्षिने प्रवेश किया, जिसप्रकार ब्रह्मा इन्द्रकी अमरावतीमें प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥ वे महर्षि पैरसे चलनेवाले आदित्यके समान ऊपरसे उतर रहे थे। उनकी ओर देखना कठिन था, राजाके आदमियोंने उन्हें यह चाल और राजासे उनके आनेका सम्वाद कहा ॥ ५ ॥ उनके कहनेसे राजाने समझा कि महर्षि पुलस्त्य आये हैं, वे हाथ जोड़कर तपस्वीके सत्कारके लिए चले ॥ ६ ॥ राजाके पुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क लेकर राजाके आगे-आगे चले जिस प्रकार इन्द्रके आगे बृहस्पति चलते हों ॥ ७ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान मुनिको आते देखकर राजाने प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया, जैसे इन्द्र बृहस्पतिको प्रणाम करते हों ॥ ८ ॥ ऋषिको पाद्य अर्घ्य, मधुपर्क और गौ देकर राजा हर्ष गद्-गद् वचनसे पुलस्त्यसे बोले ॥ ९ ॥ द्विजेन्द्र, आज ही यह नगरी अमरावतीके तुल्य हुई है क्योंकि आज आपको मैं यहाँ देख रहा हूँ, नहीं तो यहाँ आप दिखायी पड़ें ऐसा भाग्य कहाँ ॥ १० ॥ देव, आज मेरा कुशल है, मेरा व्रत निर्विघ्न है, मेरा जन्म सफल है, मेरी तपस्या सफल है ॥ ११ ॥ क्योंकि आज मैं देवताओंके द्वारा वन्दनीय आपके चरणोंकी वन्दना करता हूँ। ब्रह्मन्, यह राज्य, ये पुत्र, ये स्त्रियाँ और ये हमलोग आपके हैं आप आज्ञा दें हमलोग क्या करें ॥ १२ ॥ धर्म, अग्नि, पुत्रों तथा स्वयं राजाका कुशलसंवाद पूछकर पुलस्त्य, हैहयोंके

तं धर्मेऽग्निषु पुत्रेषु शिवं पृष्ट्वा च पार्थिवम् । पुलस्त्योवाच राजानं हैहयानां तथार्जुनम् ॥१३॥
नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन । अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥१४॥
भयाद्यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ । सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः ॥१५॥
पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया । मद्वाक्याद्याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्सदशाननम् ॥१६॥
पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्याथ न किंचन वचोऽर्जुनः । मुमोचैव पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥१७॥
स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः ।
अहिंसकं सख्यमुपेत्य साग्निकं प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥१८॥
पुलस्त्येनापि संत्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ॥१९॥
पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुंगवः । मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥२०॥
एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात्प्रधर्षणम् । पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥२१॥
एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन । नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥२२॥
ततः स राजा पिशिताशनानां सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम् ।
पुनर्नृपाणां कदनं चकार चचार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

राजा अर्जुनसे इस प्रकार बोले ॥ १३ ॥ कमल नेत्र, पूर्ण चन्द्रानन आपका बल, अतुलनीय है, अतएव आपने दसग्रीवको जीता है ॥ १४ ॥ समुद्र और वायु स्वाभाविक चञ्चलता छोड़कर जिसकी सेवा करते हैं उस मेरे पौत्र दुर्भय रावणको तुमने युद्धमें जीत लिया है ॥ १५ ॥ तुमने मेरे बच्चे रावणका यश नष्ट कर दिया, अपना नाम प्रसिद्ध किया। मैं प्रार्थना करता हूँ, मेरे कहनेसे तुम दसाननको छोड़ दो ॥ १६ ॥ पुलस्त्यकी आज्ञा सुनकर अर्जुनने कुछ कहा नहीं, कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल प्रसन्नतापूर्वक राजेन्द्र अर्जुनने दसाननको छोड़ दिया ॥ १७ ॥ राजा अर्जुनने देवशत्रु रावणको छोड़ दिया, दिव्य आभूषण माला और वस्त्र देकर उसका सत्कार किया। अग्निको साक्षी बनाकर दोनोंने अहिंसक (जिसमें हिंसाका भाव न हो) मैत्री स्थापित की, अनन्तर पुलस्त्यको प्रणाम करके राजा घर गये ॥ १८ ॥ पुलस्त्यने छोड़े हुए प्रतापी राक्षसेन्द्रका आलिङ्गन किया जो अपनी हारसे लज्जित हो रहा था और राजाने जिसका अतिथि सत्कार किया था ॥१९॥ पितामह पुत्र, मुनि श्रेष्ठ पुलस्त्य, दसग्रीव रावणको वहीं छोड़कर ब्रह्मलोक चले गये ॥ २० ॥ इस प्रकार वह रावण कार्तवीर्यसे पराजित हुआ और पुलस्त्यके कहनेसे वह महाबली बन्धनसे छोड़ा गया ॥ २१ ॥ रघुनन्दन, इस प्रकार बलवानोंसे भी बलवान् हैं। अतएव जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे उसे दूसरेका अपमान नहीं करना चाहिए ॥ २२ ॥ मांसभक्षी राक्षसोंका राजा वह रावण, सहस्रबाहु अर्जुनसे मैत्री करके पुनः अहंकार पूर्वक पृथिवी परिभ्रमण करने लगा और राजाओंको दुःख देने लगा ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तेतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः । चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथा कृतः ॥ १ ॥
राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुतेऽयं बलाधिकम् । रावणस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ॥ २ ॥
ततः कदाचित्किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् । गत्वाह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥ ३ ॥
ततस्तु वानरामात्यास्तारस्तारापिता प्रभुः । उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥
राक्षसेन्द्र गतो वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत् । कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवंगमः ॥ ५ ॥
चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः संध्यामन्वास्य रावण । इदं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥
एतानस्थिचयान्पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः । युद्धार्थिनामिमे राजन्वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥
यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस । तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥ ८ ॥
पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत । इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥
अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् । वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥१०॥
स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः । पुष्पकं तत्समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥११॥
तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् । रावणो वालिनं दृष्ट्वा संध्योपासनतत्परम् ॥१२॥
पुष्पकादवरुह्याथ रावणोऽञ्जनसंनिभः । ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमव्रजत् ॥१३॥

अर्जुनके बन्धनसे छूटकर रावण पुनः पृथिवी परिभ्रमण करने लगा। अर्जुनके सत्कारसे उसका दुःख जाता रहा ॥ १ ॥ राक्षस या मनुष्य जिस किसीको यह बलवान सुनता था, उसके पास यह जाता और घमंडसे उसे युद्धके लिए ललकारता ॥ २ ॥ एक समय बालिके द्वारा रक्षित किष्किन्धा नगरीमें गया और सुवर्णकी माला धारण करनेवाले बालिको युद्धके लिए ललकारा ॥ ३ ॥ युद्धकी इच्छासे आये हुए रावणसे बालिके मन्त्री, तार, ताराके पिता सुषेण, अंगद और सुग्रीव बोले ॥ ४ ॥ राक्षसेन्द्र, बालि बाहर गया है जो तुमसे युद्ध करता दूसरा कौन वानर तुम्हारे सामने युद्धमें ठहर सकता है, तुमसे युद्ध कर सकता है ।.५॥ रावण, आप थोड़ी देर ठहरें, चारों समुद्रोंमें सन्ध्योपासन करके बाली अभी आता है ॥६॥ रावण, शंखके समान श्वेत यह हड्डियोंका ढेर आप देखें, यह युद्धार्थियोंकी हड्डियाँ हैं, वानराधिपबालिके तेजसे एकत्र हुई हैं ॥ ७ ॥ राक्षस रावण, यदि तुमने अमृतरस पीया हो, तथापि बालिके सामने जाते ही तुम्हारे जीवनका अन्त हो जायगा। तुम मारे जाओगे ॥ ८ ॥ विश्रवाके पुत्र, इस अद्भुत संसारको देख लो, क्योंकि तुम थोड़ी ही देरके लिए हो, पुनः तुम्हारा जीवन दुर्लभ हो जायगा, बालिके सामने जाते ही तुम मारे जाओगे ॥ ९ ॥ यदि तुम्हें मरनेकी शीघ्रता हो तो दक्षिण समुद्रपर जाओ, वहीं पृथिवीपर अग्निदेवके समान प्रकाशमान बालिको देखोगे ॥ १० ॥ तार आदि वानरोंको डाँटकर लोकको रुलानेवाला रावण पुष्पकविमानपर चढ़कर दक्षिण समुद्रपर गया ॥ ११ ॥ सुवर्णपर्वतके समान ऊँचा, तरुण सूर्यके समान प्रकाशमान मुख, बालिको सन्ध्योपासन करते रावणने देखा। अंजनके समान काला रावण, पुष्पक-विमानसे उतरकर बालिको पकड़नेके लिए धीरे-धीरे पैरोंका शब्द बिना किये हो चला ॥ १२ ॥ १३ ॥

यदृच्छया तदा दृष्टो वालिनापि स रावणः । पापाभिप्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु संभ्रमम् ॥१४॥
शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा । न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्चयम् ॥१५॥
जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम् । कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीन्महार्णवान् ॥१६॥
द्रक्ष्यन्त्यरिं ममाङ्कस्थं स्रंसदूरुकराम्बरम् । लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ॥१७॥
इत्येवं मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थितः । जपन्वै नैगमान्मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव ॥१८॥
तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ । प्रयत्नवन्तौ तत्कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ ॥१९॥
हस्तग्राह्यं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् । पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः ॥२०॥
ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः । खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम् ॥२१॥
तं च पीडयमानं तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः । जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा ॥२२॥
अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणे दशानने । मुमोक्षयिषवो वालिं रवमाणा अभिद्रुताः ॥२३॥
अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेऽम्बरमध्यगः । अन्वीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥२४॥
तेऽशक्नुवन्तः संप्राप्तुं वालिनं राक्षसोत्तमाः । तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ॥२५॥
वालिमार्गादपाक्रामन्पर्वतेन्द्रापि गच्छतः । किं पुनर्जीवनप्रेप्सुर्बिभ्रद्वै मांसशोणितम् ॥२६॥

अकस्मात् बालिने रावणको उस समय देख लिया, उसका बुरा अभिप्राय जान लिया, पर वह घबड़ाया नहीं ॥१४। जैसे खरगोशको देखकर सिंह नहीं घबड़ाता, साँपको देखकर गरुड़ नहीं घबड़ाता, उसी प्रकार रावणका बुरा अभिप्राय जानकर भी बालिने उधर ध्यान न दिया। वह चिन्तित न हुआ ॥ १५ ॥ बालिने सोचा, यह बुरे अभिप्रायसे मुझे पकड़ने आ रहा है, इसको बगलमें दबाकर मैं तीनों समुद्रोंमें जाऊँगा। उसके हाथ-पैर और वस्त्र लटकते रहेंगे, गरुड़के पंजेमें सर्पके समान दसग्रीव मेरे बगलमें लटकेगा और उसको लोग इस दशामें देखेंगे। ऐसा सोचकर बालि चुपचाप मौन ही रहा। वैदिक मन्त्रोंको जपता रहा और पर्वतराजके समान निश्चल बैठा रहा ॥ १६ ॥ १८ ॥ वानरराज और राक्षसराज दोनों, दोनोंको पकड़ना चाहते थे। बलके घमंडसे दोनों ही इसके लिये प्रयत्न करते थे ॥ १९ ॥ पैरोंकी आहटसे रावणने समझा कि अब मैं हाथ बढ़ाकर इसे पकड़ सकता हूँ। बालिने दूसरी ओर मुँह किये ही सर्पको गरुड़के समान, रावणको पकड़ लिया ॥ २० ॥ पकड़नेकी इच्छा रखनेवाले राक्षसराजको वानरने पकड़ लिया और उसे बगलमें दबाकर वह आकाशमें कूदा ॥ २१ ॥ वह रावणको दबाता था, नखोंसे खरोंचता था। जिस प्रकार वायु मेघको उड़ा ले जाती है उसी प्रकार रावणको लेकर बालि चला ॥ २२ ॥ रावणके हरे जानेपर उसके मन्त्री, उसे छुड़ानेके लिए चिल्लाते हुए बालिके पीछे दौड़े ॥ २३ ॥ आकाशके मध्यमें बाली जा रहा था, उसके पीछे वे राक्षस जा रहे थे, उस समय वह आकाश रथ, सूर्यके समान मालूम पड़ता था जिसके पीछे मेघ जा रहे हों ॥ २४ ॥ वे राक्षस बालिको नहीं पा सके, उसके हाथ पैरोंके वेगसे थककर वे बैठ गये ॥ २५ ॥ बड़े-बड़े पर्वत भी जिस समय बालि चलता था उसके मार्गसे हट जाया करते थे, फिर माँस-खूनका मनुष्य अपना जीवन चाहनेवाला कैसे उसके सामने ठहर सकता था ॥ २६ ॥

अपक्षिगणसंपातान्वानरेन्द्रो महाजवः । क्रमशः सागरान्सर्वान्संध्याकालमवन्दत ॥२७॥
संपूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तमः । पश्चिमं सागरं वाली आजगाम सरावणः ॥२८॥
तस्मिन्संध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः । उत्तरं सागरं प्रायाद्वहमानो दशाननम् ॥२९॥
बहुयोजनसाहस्रं वहमानो महाहरिः । वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ॥३०॥
उत्तरे सागरे संध्यामुपासित्वा दशाननम् । वहमानोऽगमद्वाली पूर्वं वै स महोदधिम् ॥३१॥
तत्रापि संध्यामन्वास्य वासविः सहरीश्वरः । किष्किन्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥३२॥
चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः । रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्धोपवनेऽपतत् ॥३३॥
रावणं तु मुमोचाथ स्वकक्षात्कपिसत्तमः । कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन्रावणं मुहुः ॥३४॥
विस्मयं तु महद्गत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः । राक्षसेन्द्रो हरीन्द्रं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥३५॥
वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः । युद्धेप्सुरिह संप्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ॥३६॥
अहो बलमहो वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च । येनाहं पशुवद्गृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ॥३७॥
एवमश्रान्तवद्वीर शीघ्रमेव च वानर । मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीर भविष्यति ॥३८॥
त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवंगम । मनोनिलसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ॥३९॥
सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुंगव । त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥४०॥
दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् । सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥४१॥

महा वेगवान् वानरेन्द्र पक्षियोंके पहुँचनेसे भी पहले चारों समुद्रोंमें पहुँचकर सन्ध्यावन्दन किया ॥ २७ ॥ आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ बालि आकाशचारियों द्वारा अभिनन्दित होकर रावणके साथ पश्चिम समुद्रपर आया ॥ २८ ॥ वहाँ स्नान, सन्ध्या और जप करके बालि रावणको लेकर उत्तर समुद्रपर आया ॥ २९ ॥ वह वानर वायु और मनके वेगसे शत्रु रावणके कई हजार योजन गया ॥ ३० ॥ उत्तर समुद्रपर सन्ध्या करके बालि रावणको लेकर पूर्व समुद्रपर गया ॥ ३१ ॥ इन्द्रपुत्र वानरराज वहाँ भी सन्ध्या करके रावण को पकड़े हुए किष्किन्धाकी ओर आया ॥ ३२ ॥ वानरने चारों समुद्रोंमें सन्ध्याकी, रावणके ढोनेसे थक-कर वह किष्किन्धाके उपवनमें गिर पड़ा ॥ ३३ ॥ वानराजने रावणको अपने बगलसे छोड़ दिया और वह हँसकर पूछने लगा, तुम कहाँसे आये ॥ ३४ ॥ थकावटसे रावणकी आँखें चंचल होगयी थीं वह विस्मित होकर वानरराज बालिसे इस प्रकार बोला ॥ ३५ ॥ इन्द्रतुल्य वानरराज, मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ, युद्धके लिए मैं यहाँ आया था, वह युद्ध तुमसे मिल गया ॥ ३६ ॥ कैसा बल है, कैसा पराक्रम है और कैसी गम्भीरता है, आपने मुझे पशुके समान पकड़कर चारों समुद्रोंतक घुमाया ॥ ३७ ॥ बिना थके हुए बड़े वेगसे आपने मुझे घुमाया । वीर, मुझको ढोनेवाला दूसरा कौन हो सकता है ॥३८॥ इस प्रकारका वेग मन, वायु और गरुड़ इन तीनमें ही है और चौथे तुम्हारा है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ वानरराज, मैंने तुम्हारा बल देख लिया, मैं अग्निको साक्षि देकर तुम्हारे साथ स्नेह-पूर्ण मैत्री सदाके लिए चाहता हूँ ॥ ४० ॥ वानरराज, स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र, भोजन यह सब हम दोनोंका एक ही होगा, इनमें कोई विभाग न होगा ॥ ४१ ॥ अनन्तर वे दोनों वानर और राक्षसने आग जलाकर भ्रातृत्व स्थापित

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ । भ्रातृत्वमुपसंपन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥४२॥
अन्योन्यं लम्बितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ । किष्किन्धां विशतु हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥४३॥
स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः । अमात्यैरागतैर्नीतस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥४४॥
एवमेतत्पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो । धर्षितश्च कृतश्चापि भ्राता पावकसंनिधौ ॥४५॥
बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम् । सोऽपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयं मुनिम् । प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोऽर्थवत् ॥ १ ॥
अतुलं बलमेतद्वै वालिनो रावणस्य च । न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥ २ ॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् । विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् । समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४ ॥
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा । दृष्टासंभाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥ ५ ॥
सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः । एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥ ६ ॥
भूयो बन्धाद्विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् । लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥

किया और दोनोंने परस्पर आलिङ्गन किया ॥ ४२ ॥ ये दोनों परस्पर हाथ पकड़कर प्रसन्नता पूर्वक किष्किन्धामें गये, मानों दो सिंह गुहामें प्रवेश कर रहे हों ॥ ४३ ॥ रावण सुग्रीवके समान एक महीना तक वहाँ रहा । पुनः त्रिलोकको उजाड़नेकी इच्छा रखनेवाले मन्त्री आकर उसे ले गये ॥ ४४ ॥ प्रभो, यह बात पहले हुई थी । बालिने रावणको इस प्रकार पराजित किया पुनः वे दोनों भाई बनें ॥ ४५ ॥ राम, बालिका बल अप्रतिम था, उसके समान कोई बली न था । उसको भी तुमने जला दिया, जिस प्रकार आग पतंगको जला देती है ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौतीसवाँ सर्ग समाप्तः ॥३४॥

इसके पश्चात् दक्षिण दिशामें रहनेवाले अगस्त्य मुनिसे रामने पूछा, वे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर अर्थ युक्त यह वचन बोले ॥ १ ॥ बालि और रावण दोनोंका अतुलनीय बल था । पर इनका बल हनुमानके बलके समान नहीं है ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २ ॥ शूरता, निपुणता, बल, धीरता, बुद्धि, नीति, विक्रम, और प्रभाव इनका हनुमानमें निवास है ॥ ३ ॥ समुद्रको देखकर कपिसेना घबड़ा गयी, काँपने लगी, महाबाहु हनुमानने उसे आश्वासन दिया और ये सौ योजन कूद गये ॥ ४ ॥ लंकापुरीमें इन्होंने प्रवेश किया उसे उजाड़ा, रावणका महल देखा, सीताको देखा, बातें कीं और उसे समझाया ॥ ५ ॥ इस हनुमानने अकेले सेनाके आगे चलनेवाले वीरों, मन्त्रिपुत्रों वनरक्षकों और रावण पुत्रको मारा ॥ ६ ॥ कठोर बन्धनसे छूटकर हनुमानने रावणसे बातें कीं और लंका जलायी मानों अग्निदेव पृथिवीको जला

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च । कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥ ८ ॥
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः । प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥ ९ ॥
हनूमान्यदि मे न स्याद्वानराधिपतेः सखा । प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान्भवेत् ॥१०॥
किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया । तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा ॥११॥
नहि वेदितवान्मन्ये हनूमानात्मनो बलम् । यद्दृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम् ॥१२॥
एतन्मे भगवन्सर्वं हनूमति महामुने । विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥१३॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्ततः । हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥
सत्यमेतद्रघुश्रेष्ठ यद्ब्रवीषि हनूमति । न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥१५॥
अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा । न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन ॥१६॥
बाल्येऽप्येतेन यत्कर्म कृतं राम महाबल । तन्न वर्णयितुं शक्यमिति बाल्यतयास्य ते ॥१७॥
यदि वास्ति त्वभिप्रायः संश्रोतुं तव राघव । समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥१८॥
सूर्यदत्तवरः स्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः । यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥१९॥
तस्य भार्या बभूवेष्टा ह्यञ्जनेति परिश्रुता । जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥२०॥
शालिशूकनिभाभासं प्रासूतेमं तदाञ्जना । फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहने वरा ॥२१॥

रहे हों ॥ ७ ॥ यमराज, इन्द्र, विष्णु और कुबेरकी युद्धमें वैसी वीरता नहीं सुनी जाती जैसी हनुमानकी है ॥ ८ ॥ इसीके बाहुबलसे मैंने लंका, सीता लक्ष्मण, विजय, राज्य, मित्र और बान्धवोंको पाया है ॥९॥ वानरराज सुग्रीवका मित्र हनुमान यदि मुझे न मिलता तो जानकीका पता भी कौन लगा सकता ॥ १० ॥ उस समय जब सुग्रीव और बालिमें विरोध हुआ था, सुग्रीवका हित करनेके लिए इसने तृणके समान बालिको क्यों नहीं जला दिया, शायद उस समय हनुमानको अपने बलका ज्ञान न था मैं बालिको मार सकता हूँ यह बात यह नहीं जानता था इसीसे प्राणोंके समान प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते हनुमानने देखा ॥ ११,१२ ॥ भगवन् महामुने, हनुमानके विषयमें, मैं यही सब जानना चाहता हूँ आप विस्तार-पूर्वक जो जैसा है वह सब कहें ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके हेतुयुत वचन सुनकर, हनुमानके सामने महर्षि उनसे बोले ॥ १४ ॥ रघुश्रेष्ठ, हनुमानके विषयमें जो तुम कहते हो वह सच है । बल, वेग और बुद्धिमें इसके तुल्य दूसरा नहीं है ॥ शत्रुसूदन, पहले मुनियोंने इन्हें शाप दिया है कि ये बली होकर भी अपनेको बली न समझ सकेंगे, इन्हें अपने बलका ज्ञान न होगा । उन मुनियोंका शाप निष्फल नहीं होता ॥ १६ ॥ बाल्यावस्थामें बिना जाने ही बालक होनेके कारण इसने जो काम किया है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १७ ॥ राघव, तुम उसको सुनना चाहो तो सुनो मैं कहता हूँ ॥ १८ ॥ सुवर्णका मेरु नामका एक पर्वत है, जिसे सूर्यने वर दिया है, जहाँ इस हनुमानका पिता राज्य शासन करता है ॥ १९ अंजना नामसे प्रसिद्ध उसकी प्रिय स्त्री थी, जिसमें वायुने श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया ॥ २० ॥ अञ्जनाने हनुमानको उत्पन्न किया, इनका रंग धानकी बालके तृणके समान था, इसके पश्चात् फल लानेके लिए वह वनमें चली गयी ॥ २१ ॥ ये बालक थे, माता थी नहीं भूखसे व्याकुल होकर ये बहुत रोने

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशार्दितः। रुरोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरवणे यथा ॥२२॥
तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम्। ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति ॥२३॥
बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान्। ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः ॥२४॥
एतस्मिन्प्लवमाने तु शिशुभावे हनूमति। देवदानवयक्षाणां विस्मयः सुमहानभूत् ॥२५॥
नाप्येवं वेगवान्वायुर्गरुडो न मनस्तथा। यथायं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम् ॥२६॥
यदि तावच्छिशोरस्य ईदृशो गतिविक्रमः। यौवनं बलमासाद्य कथंवेगो भविष्यति ॥२७॥
तमनुप्लवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मनः। सूर्यदाहभयाद्रक्षंस्तुषारचयशीतलः ॥२८॥
बहुयोजनसाहस्रं क्रामन्नेव गतोऽम्बरम्। पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः ॥२९॥
शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः। कार्यं चास्मिन्समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥३०॥
यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः। तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥३१॥
अनेन च परामृष्टो राहुः सूर्यरथोपरि। अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥३२॥
इन्द्रस्य भवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः। अब्रवीद्भ्रुकुटिं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम् ॥३३॥
बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्रार्कौ मम वासव। किमिदं तत्त्वया दत्तमन्यस्य बलवृत्रहन् ॥३४॥
अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः। अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥३५॥

लगे, जिस प्रकार शरवणमें कुमार कार्तिकेय अकेले पड़े बाल्यकालमें रोते थे ॥ २२ ॥ उस समय सूर्योदय हो रहा था, भूखे हनुमानने जपा पुष्पके समान सूर्यबिम्बको देखा और उसे फल समझकर वे उसकी ओर लपके ॥ २३ ॥ मूर्तिमान् बालसूर्यके तुल्य बालक हनुमान बालसूर्यको पकड़नेके लिए आकाशके मध्य बालसूर्यकी ओर चले ॥ २४ ॥ बाल्यावस्थामें हनुमान जब सूर्यकी ओर कूदे उस समय देवता, दानव और यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २५ ॥ जिस वेगसे यह वायुपुत्र आकाशमें जा रहा है, उस वेगसे वायु, गरुड़ तथा मन भी नहीं चलता ॥२६॥ यदि इस बालककी ऐसी तेजी है, ऐसा वेग है, तो जब यह युवा होगा तब इसका वेग कैसा होगा ॥ २७ ॥ आकाशमें वायुदेव भी अपने पुत्रके पीछे-पीछे जा रहा था, सूर्यतेजसे उसकी रक्षा करनेके लिए बर्फके समान शीतल बह रहा था ॥ २८ ॥ इस प्रकार कई हजार योजन चलकर वह बालक अपने तथा पिताके बलसे सूर्यके पास पहुँचा ॥ २९ ॥ यह बालक है, अज्ञान है, और इसके द्वारा आगे देवताओंके अनेक कार्य सिद्ध होते हैं यही समझकर सूर्यने इसे नहीं जलाया ॥ ३० ॥ जिस दिन हनुमान सूर्यको पकड़नेके लिए चले थे, वह दिन सूर्यको राहुके पकड़नेका था। अर्थात् उसी दिन राहु सूर्यको पकड़ता था ॥ ३१ ॥ राहु सूर्यके रथपर था, हनुमान उससे टकराये, इससे सूर्य-चन्द्रको पीड़ा देनेवाला राहु भयभीत होकर वहाँसे हट गया ॥ ३२ ॥ क्रोध करके राहु इन्द्रके यहाँ गया और आँखें टेढ़ी करके देवताओं साथके बैठे हुए इन्द्रसे बोला ॥ ३३ ॥ वासव, मेरे भोजनके लिए आपने चन्द्र और सूर्यको दिया है, अब आपने वह दूसरेको क्यों दिया, क्या आपने यह उचित किया ॥ ३४ ॥ आज अमावस्याको मैं सूर्यको पकड़नेके लिए पहुँचा, उस समय दूसरे राहुने आकर सूर्यको पकड़ लिया ॥ ३५ ॥ राहुके वचन सुनकर इन्द्र घबड़ा गये, मालाको धारण करनेवाले इन्द्र

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः संभ्रमान्वितः । उत्पपातासनं हित्वा उद्वहन्काञ्चनीं स्रजम् ॥३६॥
ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्रवम् । शृङ्गारधारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाट्टहासिनम् ॥३७॥
इन्द्रः करीन्द्रमारुह्य राहुं कृत्वा पुरःसरम् । प्रायाद्यत्राभवत्सूर्यः सहानेन हनूमता ॥३८॥
अथातिरभसेनागाद्राहुरुत्सृज्य वासवम् । अनेन च स वै दृष्टः प्रधावञ्शैलकूटवत् ॥३९॥
ततः सूर्यं समुत्सृज्य राहुं फलमवेक्ष्य च । उत्पपात पुनर्व्योम ग्रहीतुं सिंहिकासुतम् ॥४०॥
उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं प्लवंगमम् । अवेक्ष्यैवं परावृत्तो मुखशेषः पराङ्मुखः ॥४१॥
इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः । इन्द्र इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥४२॥
राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितं स्वरम् । श्रुत्वेन्द्रोवाच मा भैषीरहमेनं निषूदये ॥४३॥
ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महत्तदिदमित्यपि । फलन्तं हस्तिराजानमभिदुद्राव मारुतिः ॥४४॥
तथास्य धावतो रूपमैरावतजिघृक्षया । मुहूर्तमभवद्घोरमिन्द्राग्न्युपरि भास्वरम् ॥४५॥
एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः । हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत् ॥४६॥
ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः । पतमानस्य चैतस्य वामा हनुरभज्यत ॥४७॥
तस्मिंस्तु पतिते चापि वज्रताडनविह्वले । चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः ॥४८॥
प्रचारं स तु संगृह्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः । गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः ॥४९॥

आसन छोड़कर उठ खड़े हुए ॥ ३६ ॥ कैलास शिखरके समान ऊँची, मदस्रावी, ऐरावत हाथीपर चढ़कर और राहुको आगे करके इन्द्र उस स्थानपर आये जहाँ हनुमानके साथ सूर्य थे। इन्द्रके हाथीका शृंगार किया हुआ था, उसपर सोनेका घंटा बँधा था। जो बोल रहा था ॥ ३७, ३८ ॥ इन्द्र बड़े वेगसे चले, जिससे राहु पीछे छूट गया। उन्होंने पर्वतशिखरके समान विशाल हनुमानको दौड़ते देखा ॥ ३९ ॥ सूर्यको छोड़कर हनुमान फल समझकर राहुको पकड़नेके लिए आकाशमें पुनः कूदे ॥ ४० ॥ सूर्यको छोड़कर हनुमान दौड़े आरहे हैं यह देखकर मुखशेष (जिसका मुँह ही वर्तमान है) राहु लौट गया ॥ ४१ ॥ राहु इन्द्रको अपना रक्षक समझकर भयभीत होकर इन्द्र, इन्द्र, पुकारने लगा ॥ ४२ ॥ राहुके चिल्लानेका स्वर पहचानकर इन्द्र बोले, डरो मत, मैं इसको मारता हूँ ॥ ४३ ॥ हनुमानने ऐरावतको देखा, इसे भी बड़ाभारी फल उन्होंने समझा और वे इसकी ओर दौड़े ॥ ४४ ॥ हनुमान जब ऐरावतको पकड़नेके लिए दौड़े उस समय वे इन्द्र आदिसे भी अधिक प्रकाशमान होगये अतएव थोड़ी देरके लिए उनका रूप बड़ा भयंकर हो गया ॥ ४५ ॥ इन्द्रने थोड़ा क्रोध करके वज्र चलाकर दौड़ते हुए हनुमानको मारा ॥ ४६ ॥ वज्रसे घायल होकर हनुमान पर्वतपर गिर पड़े, गिरनेके कारण बायीं ओरकी ठुड्डी टेढ़ी हो गयी ॥ ४७ ॥ वज्रप्रहारसे विह्वल होकर जब हनुमान गिर पड़े तब वायुने प्रजाका अकल्याण करनेवाले इन्द्रपर क्रोध किया। हनुमानके मारनेसे प्रजाका अकल्याण होगा। यह समझकर उन्होंने इन्द्रपर क्रोध किया ॥ ४८ ॥ वायुका प्रचार समस्त प्रजाके शरीरमें है, उस प्रचारको उन्होंने समेट लिया और वे अपने पुत्र हनुमानको लेकर गुहामें चले गये ॥४९॥ इससे प्रजाका पेशाब और पाखाना बन्द होगया उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। इस प्रकार वायुने समस्त वायुको

विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत् । रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥५०॥
वायुप्रकोपाद्भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः । संधिभिर्भिद्यमानैश्च काष्ठभूतानि जज्ञिरे ॥५१॥
निःस्वाध्यायवषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम् । वायुकोपात्त्रैलोक्यं निरयस्थमिवाभवत् ॥५२॥
ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमानुषाः । प्रजापतिं समाधावन्दुःखिताश्च सुखेच्छया ॥५३॥
ऊचुः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः । त्वया तु भगवन्सृष्टाः प्रजा नाथ चतुर्विधाः ॥५४॥
त्वया दत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः । सोऽस्मान्प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सत्तम ॥५५॥
रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः । तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता वयम् ॥५६॥
वायुसंरोधजं दुःखमिदं नो नुद दुःखहन् । एतत्प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ॥५७॥
कारणादिति चोक्त्वासौ प्रजाः पुनरभाषत । यस्मिंश्च कारणे वायुश्चुक्रोध च रुरोध च ॥५८॥
प्रजाः शृणुध्वं तत्सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम् । पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ॥५९॥
राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः । अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥६०॥
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः । वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥६१॥
वायुना संपरित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् । अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ॥६२॥
अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः । तद्यामस्तत्र यत्रास्ते मारुतो रुक्प्रदो हि नः ।
मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुतम् ॥६३॥

कामके अयोग्य बना दिया, जिस प्रकार इन्द्र वृष्टिको रोक देते हैं । ५० ॥ वायुके प्रकोपसे लोगोंका साँस लेना बन्द हो गया, उनके शरीरके जोड़ टूटने लगे वे लकड़ीके समान हो गये ॥ ५१ ॥ वेदाध्यन, यज्ञ आदि सभी बन्द हो गये, समस्त त्रिलोक धर्महीन और क्रियाहीन हो गया । त्रिलोक नरकके समान हो गया ॥ ५२ ॥ तब देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व आदि सभी प्रजा दुःखीत होकर सुखकी इच्छासे ब्रह्माके पास दौड़े ॥ ५३ ॥ हाथ जोड़कर देवता बोले, देवताओंका पेट बहुत बड़ा हो गया था । भगवन्, आपने चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की है ॥ ५४ ॥ आपने हमलोगोंकी आयुका स्वामी पवनदेवको बनाया है, हमलोगों के प्राणपति होकर भी वे हमें दुःख दे रहे हैं और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके समान हमलोगोंको रोक रखा है, इसप्रकार वायुके द्वारा पीड़ित होकर हमलोग आपकी शरण आये हैं ॥ ५५, ५६ ॥ आप दुःख दूर करनेवाले हैं । वायुके अवरोधका यह दुःख आप दूर करें । प्रजाकी प्रार्थना सुनकर प्रजानाथ ब्रह्मा किस कारणसे ऐसा हुआ है यह पूछकर पुनः बोले । जिस कारणसे वायुने क्रोध किया है और अवरोध किया है वह कारण सुनने और क्षमा करनेके योग्य है, अर्थात् वायुका क्रोध निष्कारण नहीं है अतएव वह क्षमाके योग्य है । देवराज इन्द्रने उसके पुत्रको आज गिरा दिया है, सो भी राहुके कहनेसे । अतएव वायुने क्रोध किया है । वायु शरीरधारी नहीं है, पर वह शरीरधारियोंमें रहता है और उनका पालन करता है ॥ ५७, ६० ॥ वायुके बिना यह शरीर लकड़ीके समान हो जाता है । वायु प्राण है, सुख है, समस्त संसार वायुमय है ॥ ६१ ॥ वायुके छोड़ देनेपर संसारवासियोंको सुख नहीं मिलता, वायुके छोड़ते ही समस्त संसारकी आयु समाप्त हो गयी ॥ ६२ ॥ आज ही ये प्राणहीन होकर लकड़ी और

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः सदेवगन्धर्वभुजंगगुह्यकैः ।
जगाम यत्रास्यति तत्र मारुतः सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः ॥६४॥
ततोऽर्कवैश्वानरकाञ्चनप्रभं सुतं तदोत्सङ्गतं सदागतेः ।
चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्सदेवगन्धर्वऋषियक्षराक्षसैः ॥६५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः । शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥
चलकुण्डलमौलिस्रक्तपनीयविभूषणः । पादयोन्यपतद्वायुस्त्रिरुपस्थाय वेधसे ॥ २ ॥
तं तु वेदविदा तेन लम्बाभरणशोभिना । वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥
स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलीलं पद्मजन्मना । जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान् ॥ ४ ॥
प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा । चचार सर्वभूतेषु संनिरुद्धं यथापुरा ॥ ५ ॥
मरुद्रोधाद्विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिताभवन् । शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥ ६ ॥
ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुत्त्रिधामा त्रिदशार्चितः । उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥

दीवारके समान हो गये हैं । अतएव हमलोग चलें जहाँ हमें दुख देनेवाला वायु है । अदितिके पुत्रको प्रसन्न न कर सकें तो हमारा नाश हो जायगा ॥६३॥ इन्द्रके द्वारा घायल पुत्रको लेकर जहाँ वायुदेव थे, ब्रह्मा, वहाँ देवता, गन्धर्व आदिको लेकर गये ॥ ६४ ॥ सूर्य, अग्नि तथा सुवर्णके समान दीप्तिमान पुत्रको गोदमें लेकर वायु बैठा था, ब्रह्माने उसे देखा, और देवता, गन्धर्व, ऋषि यक्ष तथा राक्षसोंके साथ उसपर कृपा की ॥ ६५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

पुत्रके घायल होनेसे वायु बहुत दुःखी था । ब्रह्माको देखकर वह पुत्रको लेकर खड़ा हुआ ॥ १ ॥ उसने ब्रह्माका उपस्थान करके तीनवार प्रणाम किया । उस समय वायुके कुण्डल, मुकुट, माला तथा सुवर्ण आभूषण हिल रहे थे ॥ २ ॥ वेदवेत्ता ब्रह्माने अपनी आभरणयुक्त लम्बी भुजाओंसे वायुको उठाकर उसके पुत्रके शरीरपर हाथ फेरा ॥ ३ ॥ पद्मयोनि ब्रह्माके स्पर्श होते ही वह बालक पुनः जीवित हो गया जिस प्रकार जल पड़नेसे खेती लहलहा जाती है ॥ ४ ॥ हनुमानको जीवित देखकर संसारका प्राण, पवन प्रसन्नता पूर्वक पहलेके समान सब प्राणियोंमें संचार करने लगा ॥ ५ ॥ वायुके अवरोधके छूट जानेसे वे प्रजाएँ भी प्रसन्न हुईं, तुषार और हवाके बाधासे विनिर्मुक्त कमलिनीके समान ॥ ६ ॥ यशवीर्य, ऐश्वर्य लक्ष्मी और ज्ञानवैराग्य इन तीन युगलोंके स्वामी, त्रिभूतियोंमें मुख्य, तीनों लोकोंमें जानेकी शक्ति रखनेवाले और देवताओंके आदरणीय ब्रह्मा वायुका हितकरनेके लिए देवताओंसे बोले ॥७॥ हे, इन्द्र, अग्नि

भो महेन्द्राग्निवरुणा महेश्वरधनेश्वराः । जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥ ८ ॥
अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति । तद्ददध्वं वरान्सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥ ९ ॥
ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः । कुशेशयमयीं मालामुत्क्षिप्येदं वचोऽब्रवीत् ॥१०॥
मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः । नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥११॥
अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् । इतःप्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥१२॥
मार्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः । तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥१३॥
यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति । तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ॥१४॥
वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति । वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥१५॥
यमो दण्डादवध्यत्वमरोगत्वं च दत्तवान् । वरं ददामि संतुष्ट अविषादं च संयुगे ॥१६॥
गदेयं मामिका नैनं संयुगेषु वधिष्यति । इत्येवं धनदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः ॥१७॥
मत्तो मदायुधानां च अवध्योऽयं भविष्यति । इत्येवं शंकरेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः ॥१८॥
विश्वकर्मा च दृष्ट्वेमं बालं प्रति महारथः । मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च ।
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति ॥१९॥
दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद्वचः । सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यत्वं भविष्यति ॥२०॥
ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलंकृतम् । चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरुः ॥२१॥

वरुण, शिव और कुवेर, आपलोग जानते हैं तथापि मैं आपलोगोंका हित कहता हूँ आपलोग सुनें ॥ ८ ॥ इस बालकके द्वारा आपलोगोंके कार्य सिद्ध होंगे अतएव इस वायुकी प्रसन्नताके लिए इस बालकको आप वर दें ॥ ९ ॥ प्रसन्न होकर, प्रसन्न मुख इन्द्र, सुवर्ण कमलकी माला देकर बोले ॥ १० ॥ मेरे वज्रसे इसकी ठुड्ढी टेढ़ी हो गयी है, अतएव यह वानरसिंह हनुमान नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ११ ॥ मैं और भी अद्भुत वर इसे देता हूँ, अबसे यह मेरे वज्रके द्वारा अवध्य होगा ॥ १२ ॥ अन्धकार दूर करनेवाले भगवान् सूर्य बोले, मैं अपने तेजका सौवाँ भाग इसे देता हूँ ॥ १३ ॥ जब इसे पढ़नेकी शक्ति होगी, अर्थात् पढ़नेके योग्य होगा उस समय मैं इसे शास्त्रोंका ज्ञान दूँगा इससे यह वाग्मीवक्ता होगा ॥ १४ ॥ वरुणने कहा—मेरे पाशसे और जलसे हजार वर्षकी आयु बीतनेपर भी इसकी मृत्यु न होगी ॥ १५ ॥ यमराजने कालदण्डसे अवध्य होने तथा नीरोग रहनेका वर दिया । कुवेरने युद्धमें दुःखी न होनेका वर दिया और मेरी यह गदा युद्धमें इसका वध न करेगी, एकाक्षि पिङ्गल कुवेरने यह बात कही ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ मेरा और मेरे अस्त्रोंका यह अवध्य होगा यह श्रेष्ठ वर महादेवने उसको दिया ॥ १८ ॥ इस बालकको देखकर महारथ विश्वकर्माने कहा—मेरे बनाये जितने अस्त्र हैं उनसे यह अवध्य होगा और चिरजीवी होगा ॥ १९ ॥ ब्रह्माने कहा—यह दीर्घायु होगा, महात्मा होगा, और यह समस्त ब्रह्मदण्डोंका अवध्य होगा ॥ २० ॥ इस प्रकार देवताओंसे हनुमानके वर पानेपर जगद्गुरु ब्रह्मा प्रसन्न हुए और वे वायुसे बोले ॥ २१ ॥ मरुत, तुम्हारा यह पुत्र, शत्रुओंको भय देनेवाला मित्रोंको निर्भय करनेवाला

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः। अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥२२॥
कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः। भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥२३॥
रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च। रोमहर्षकराण्येव कर्ता कर्माणि संयुगे ॥२४॥
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं त्वमरैः सह। यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥२५॥
सोऽपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत्। अञ्जनायास्तमाख्याय वरदत्तं विनिर्गतः ॥२६॥
प्राप्य राम वरानेष वरदानबलान्वितः। जवेनात्मनि संस्थेन सोऽसौ पूर्ण इवार्णवः ॥२७॥
तरसा पूर्यमाणोऽपि तदा वानरपुंगवः। आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥२८॥
स्रुग्भाण्डान्यग्निहोत्राणि वल्कलानां च संचयान्। भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान्संशान्तानां करोत्ययम् ॥२९॥
एवंविधानि कर्माणि प्रावर्तत महाबलः। सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यः शंभुना कृतः ॥३०॥
जानन्त ऋषयः सर्वे सहन्ते तस्य शक्तितः। तथा केसरिणा त्वेष वायुना सोऽञ्जनीसुतः ॥३१॥
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः। ततो महर्षयः क्रुद्धा भृग्वङ्गिरसवंशजाः ॥३२॥
शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः। बाधसे यत्समाश्रित्य बलमस्मान्प्लवंगम ॥३३॥
तद्दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः। यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम् ॥३४॥
ततस्तु हृततेजौजा महर्षिवचनौजसा। एषोऽश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोऽचरत् ॥३५॥

और अजेय होगा ॥ २२ ॥ इच्छानुसार यह रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा जा सकेगा, इसकी गति कहीं रुकेगी नहीं और यह कीर्तिमान होगा ॥ २३ ॥ रावणका नाश करनेवाले रामचन्द्रको प्रसन्न करनेवाले, अत्यन्त अद्भुत काम, यह युद्ध क्षेत्रमें करेगा ॥ २४ ॥ इस प्रकार हनुमानको वर देकर तथा वायुसे पूछकर ब्रह्मा आदि देवता अपने-अपने लोकमें गये ॥ २५ ॥ वायु भी पुत्रको लेकर घर आया और जो वर मिले थे उनका वृत्तान्त अञ्जनासे कहकर वह चला गया ॥ २६ ॥ राम, इस प्रकार वरोंको पाकर यह अत्यन्त बली हो गया, यह अपने निजी वेगसे समुद्रके समान पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥ यह वानरश्रेष्ठ वेगसे पूर्ण था तथापि निर्भय होकर महर्षियोंका अपराध करता था ॥ २८ ॥ शान्त मुनियोंके स्रुवा, पात्र, अग्निहोत्रकी सामग्रियाँ और वल्कल वस्त्रोंको यह तोड़ देता, फाड़ देता और फेंक देता था ॥ २९ ॥ महादेवने समस्त ब्रह्मदण्डोंसे इसे अवध्य कर दिया था यह महाबली हो गया था, यह ऐसे काम करने लगा था ॥ ३० ॥ हनुमान यह सब करता है इस बातको ऋषि जानते थे पर इसके पराक्रमसे डरकर सब सहते थे। केसरी और वायुने भी इसको रोका, ऐसा काम न करनेके लिए कहा, फिर भी यह मानता न था, महर्षियोंका अपमान करता ही था। इससे भृगु और अङ्गिरा वंशी मुनियोंने इसपर क्रोध किया ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ वे महर्षि क्रोधी थे पर इसको बालक समझकर उन लोगोंने थोड़ा क्रोध करके शाप दिया, वानर, जिस बलके घमण्डमें आकर तुम हमलोगोंको पीड़ा देते हो वह बल हमलोगोंके शापके कारण बहुत देर तक तुम्हें स्मरण न होगा, तुम अपना बल भूल जाओगे। जब कोई तुम्हें अपने बलकी याद करावेगा तब तुम्हारा बल बढ़ेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ महर्षियोंके वचनके प्रभावसे हनुमानका तेज और ओज घट गया। इनका औद्धत्य जाता रहा, ये कोमल होकर उन्हीं आश्रमोंमें रहने लगे ॥ ३५ ॥

अथर्क्षरजसो नाम वालिसुग्रीवयोः पिता। सर्ववानरराजासीत्तेजसा इव भास्करः ॥३६॥
स तु राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां महेश्वरः। ततस्त्वृक्षरजा नाम कालधर्मेण योजितः ॥३७॥
तस्मिन्नस्तमिते चाथ मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः। पित्र्ये पदे कृतो वाली सुग्रीवो वालिनः पदे ॥३८॥
सुग्रीवेण समं त्वस्य अद्वैधं छिद्रवर्जितम्। आबाल्यं सख्यमभवदनिलस्याग्निना यथा ॥३९॥
एष शापवशादेव न वेद बलमात्मनः। वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥४०॥
न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोऽपि वालिना। देव जानाति न ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥४१॥
ऋषिशापाहृतबलस्तदैव कपिसत्तमः। सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे ॥४२॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापसौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥४३॥
असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥४४॥
ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः।
न ह्यस्य कश्चित्सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥४५॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।

ऋक्ष रजस नामका एक वानरराज था, वह सूर्यके समान तेजस्वी और बालि तथा सुग्रीवका पिता था ॥ ३६ ॥ वानरोंका राजा बहुत दिनोंतक राज्य करके वह मर गया ॥ ३७ ॥ उसके मरनेपर मन्त्रज्ञ मन्त्रियोंने पिताके स्थानपर बालिको और बालिके स्थानपर सुग्रीवको बैठाया, अर्थात् बालिको राजा बनाया और सुग्रीवको युवराज ॥ ३८ ॥ सुग्रीव और हनुमानमें कोई भेद न था, कोई मनोमालिन्य न था, बाल्यावस्थासे ही ये दोनों अग्नि और वायुके समान मित्र थे ॥ ३९ ॥ राम, बालि और सुग्रीवका जब परस्पर बैर उत्पन्न हुआ तब हनुमानको शापके कारण ही अपने बलका स्मरण नहीं हुआ ॥ ४० ॥ बालिके द्वारा पीड़ित होनेपर, उसके द्वारा भटकाये जानेपर, सुग्रीवको भी हनुमानके बलका स्मरण न हुआ और हनुमानको तो अपने बलका ज्ञान था ही नहीं, ॥ ४१ ॥ ऋषियोंके शापसे अपने बलका ज्ञान न रहनेके कारण हनुमान युद्धमें सुग्रीवके साथ रहकर भी उन्हें कोई सहायता न दे सके। वे हाथीसे घिरे सिंहके समान हो गये थे ॥ ४२ ॥ पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, कोमलता, न्यायनयका ज्ञान, गम्भीरता, चतुरता, बल और धैर्यमें हनुमानसे अधिक त्रिलोकमें कौन है ? ॥ ४३ । अद्भुत शक्तिवाले ये हनुमान् व्याकरणके महान् ग्रन्थका अध्ययन करनेके लिए सूर्यके आगे-आगे उदयपर्वतसे अस्तपर्वत तक जाते थे जिससे ये सूर्यसे पूछ सकें ॥ ४४ ॥ सूत्र, वृत्ति, वार्तिक महाभाष्य तथा संग्रहका अध्ययन ये करते थे, अन्य शास्त्रों तथा छन्दः शास्त्रकी निपुणतामें इनके समान कोई न था ॥ ४५ ॥ सब विद्याओं तथा तपस्यामें ये देवताओंके गुरु बृहस्पतिसे समता करते थे, ये विष्णुके समान समुद्रमें प्रवेश करनेवाले हैं, अग्निके समान लोकोंको जलानेवाले हैं और प्रलयकालके यमराजके समान इस हनुमानके सामने युद्धमें कौन ठहर सकता है ? ॥ ४६ ॥ रामचन्द्र, हनुमानके समान अन्य वानरोंको भी देवताओंने तुम्हारे लिए

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य लोकान्दिधक्षोरिव पावकस्य ।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥४६॥
एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ।
सतारतारेयनलाः सरम्भास्त्वत्कारणाद्राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥४७॥
गजो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रो मैन्दः प्रभोज्योऽतिमुखो नलश्च ।
एते च ऋक्षाः सह वानरेन्द्रैस्त्वत्कारणाद्राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥४८॥
तदेतत्कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । हनूमतो बालभावे कर्मैतत्कथितं मया ॥४९॥
श्रुत्वागस्त्यस्य कथितं रामः सौमित्रिरेव च । विस्मयं परमं जग्मुर्वानरा राक्षसैः सह ॥५०॥
अगस्त्यस्त्वब्रवीद्रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया । दृष्टः संभाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥५१॥
श्रुत्वैतद्राघवो वाक्यमगस्त्यस्योग्रतेजसः । प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिमिदमब्रवीत् ॥५२॥
अद्य मे देवतास्तुष्टाः पितरः प्रपितामहाः । युष्माकं दर्शनादेव नित्यं तुष्टाः सबान्धवाः ॥५३॥
विज्ञाप्यं तु ममैतद्धि यद्वदाम्यागतस्पृहः । तद्भवद्भिर्मम कृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥५४॥
पौरजानपदान्स्थाप्य स्वकार्येष्वहमागतः । क्रतूनहं करिष्यामि प्रभावाद्भवतां सताम् ॥५५॥
सदस्या मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तु । भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥५६॥
अहं युष्मान्समाश्रित्य तपोनिर्धूतकल्मषान् । अनुगृहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्वृतः ॥५७॥
तदागन्तव्यमनिशं भवद्भिरिह संगतैः । अगस्त्याद्यास्तु तच्छ्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः ॥५८॥
एवमस्त्विति तं प्रोच्य प्रयातुमुपचक्रमुः । एवमुक्त्वा गताः सर्वे ऋषयस्ते यथागतम् ॥५९॥

उत्पन्न किया था। सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय, नल, और रम्भ ये सब आपके कारणसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४७ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, मैन्द, प्रभ, ज्योतिमुख, नल इन ऋक्षोंको वानरोंके साथ देवताओंने हे राम, तुम्हारे लिए बनाया था ॥ ४८ ॥

राम, आपने जो मुझसे पूछा था वह सब मैंने कहा, हनुमानकी बाल्यावस्थाके कर्म भी मैंने बतलाये ॥ ४९ ॥ अगस्त्यसे ये बातें सुनकर राम, लक्ष्मण, वानर और राक्षस बड़े विस्मित हुए ॥ ५० ॥ अगस्त्यने रामचन्द्रसे कहा, राम, तुमने ये सब बातें सुन लीं, तुमको हमलोगोंने देखा भी, बातें भी कीं अब हम जाते हैं ॥ ५१ ॥ उग्र तेजस्वी अगस्त्यके ये वचन सुनकर हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक वे महर्षिसे बोले ॥ ५२ ॥ आज हमपर देवता, पितर, प्रपितामह आदि प्रसन्न हैं। आपलोगोंके दर्शनसे ही हम बान्धवोंमें सन्तुष्ट हुए, प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ मेरे मनमें जो लालसा है वह मैं निवेदन करता हूँ। मुझपर कृपा करके आपलोग उसे पूर्ण कीजिए ॥ ५४ ॥ पुरवासियों और नगरवासियोंको मैंने अपने-अपने कार्यमें लगा दिया है, मुझे अवकाश है, आपलोगोंकी कृपासे अब मैं यज्ञ करूँगा ॥ ५५ ॥ मुझपर कृपा करनेवाले पराक्रमी आपलोग मेरे यज्ञके नियमित सदस्य बनें ॥ ५६ ॥ निष्पाप आपलोगोंके आश्रमसे मैं पितरोंकी प्रसन्नता पाऊँगा और निमन्त्रित हो जाऊँगा ॥ ५७ ॥ अतएव इस यज्ञमें आप सब लोगोंको निरन्तर उपस्थित रहना चाहिए। यह सुनकर व्रतधारी अगस्त्य आदि ऋषियोंने कहा, अच्छा। पुनः वे सब ऋषि

राघवश्च तमेवार्थं चिन्तयामास विस्मितः । ततोऽस्तं भास्करे याते विसृज्य नृप वानरान् ॥६०॥
संध्यामुपास्य विधिवत्तदा नरवरोत्तमः । प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोऽन्तःपुरचरोऽभवत् ॥६१॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

अभिषेक्ते तु काकुत्स्थ धर्मेण विदितात्मनि । व्यतीताया निशा पूर्वा पौराणां हर्षवर्धिनी ॥ १ ॥
तस्यां रजन्यां व्युष्टायां प्रातर्नृपतिबोधकाः । बन्दिनः समुपातिष्ठन्सौम्या नृपतिवेश्मनि ॥ २ ॥
ते रक्तकण्ठिनः सर्वे किंनरा इव शिक्षिताः । तुष्टुवुर्नृपतिं वीरं यथा वत्सं महर्षिणः ॥ ३ ॥
वीर सौम्य प्रबुध्यस्व कौसल्याप्रीतिवर्धन । जगद्धि सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते नराधिप ॥ ४ ॥
विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्विनोरिव । बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ ५ ॥
क्षमा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः । वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव ॥ ६ ॥
अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्चन्द्रे सौम्यत्वमीदृशम् । नेदृशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप ॥ ७ ॥
यथा त्वमसि दुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः । न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥
श्रीश्च ध र्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ । एताश्चान्याश्च मधुरा बन्दिभिः परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥
सूताश्च संस्तवैर्दिव्यैर्बोधयन्ति स्म राघवम् । स्तुतिभिः स्तूयमानाभिः प्रत्यबुध्यत राघवः ॥१०॥

ऐसा कहकर अपने अपने स्थानपर गये ॥ ५८, ५९ ॥ सन्ध्या होनेपर राजाओं और वानरोंको छुट्टी देकर रामचन्द्र उन्हीं बातोंको विस्मित होकर सोचते रहे ॥ ६० ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र, सन्ध्या करके रात होनेपर महलमें गये ॥ ६१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

आत्मज्ञानी रामचन्द्रके धर्मपूर्वक अभिषेक हो जानेपर पहली रात पुरवासियोंने हर्षपूर्वक बितायी, उस रातके बीत जानेपर रातको जगानेवाले बन्दी प्रातःकाल राजमहलमें उपस्थित हुए ॥ १ ॥ २ ॥ उनका गला मधुर था, वे किन्नरके समान गान-विद्यामें शिक्षा पाये हुए थे । वे प्रसन्न होकर वीर राजाकी यथार्थ स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ हे कौसल्याको प्रसन्न करनेवाले सौम्य वीर, उठिए । राजन्, आपके सोनेसे समस्त जगत् सो जाता है ॥ ४ ॥ आपका पराक्रम विष्णुके तुल्य है, रूप अश्विनोंके समान है । बृहस्पतिके समान आपकी बुद्धि है, और आप ब्रह्माके समान प्रजापालन करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ आपकी क्षमा पृथिवीके समान, तेज सूर्यके समान, वेग वायुके समान और गम्भीरता समुद्रके समान है ॥ ६ ॥ आप शिवके समान युद्धमें अप्रकम्प्य हैं, कोई आपको विचलित नहीं कर सकता, आपकीसी सौम्यता चन्द्रमामें नहीं है, नराधिप, आपके समान राजा पहले नहीं हुए, आगे भी नहीं होंगे ॥ ७ ॥ आप युद्धमें अपराजेय हैं, धर्मयुक्त होकर सदा प्रजाका हित करते हैं, पुरुषश्रेष्ठ, अतएव आपकी कीर्ति और लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती ॥ ८ ॥ काकुत्स्थ, श्री और धर्म आपमें सदा वर्तमान रहते हैं । ये तथा इसी प्रकारकी और मधुर बातें बन्दियोंने कहीं ॥ ९ ॥ इस प्रकार बन्दियोंने दिव्य और परिचित रामचन्द्रके गुणोंका

स तद्विहाय शयनं पाण्डुराच्छादनास्तृतम् । उत्तस्थौ नागशयनाद्धरिर्नारायणो यथा ॥११॥
तमुत्थितं महात्मानं प्रह्वाः प्राञ्जलयो नराः । सलिलं भाजनैः शुभ्रैरुपतस्थुः सहस्रशः ॥१२॥
कृतोदकः शुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः । देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम् ॥१३॥
तत्र देवान्पितॄन्विप्रानर्चयित्वा यथाविधि । बाह्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम जनैर्वृतः ॥१४॥
उपतस्थुर्महात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिताः । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे दीप्यमाना इवाग्नयः ॥१५॥
क्षत्रियाश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः । रामस्योपाविशन्पार्श्वे शक्रस्येव यथामराः ॥१६॥
भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशाः । उपासांचक्रिरे हृष्टा वेदास्त्रय इवाध्वरम् ॥१७॥
याताः प्राञ्जलयो भूत्वा किंकरा मुदिताननाः । मुदिता नाम पार्श्वस्था बहवः समुपाविशन् ॥१८॥
वानराश्च महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः । सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः ॥१९॥
विभीषणश्च रक्षोभिश्चतुर्भिः परिवारितः । उपासते महात्मानं धनेशमिव गुह्यकः ॥२०॥
तथा निगमवृद्धाश्च कुलीना ये च मानवाः । शिरसा वन्द्य राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥२१॥
तथा परिवृतो राजा श्रीमद्भिरृषिभिर्वरैः । राजभिश्च महावीर्यैर्वानरैश्च सराक्षसैः ॥२२॥
यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभिः समुपास्यते । अधिकस्तेन रूपेण सहस्राक्षाद्विरोचते ॥२३॥
तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः । कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥

वर्णन करके उन्हें जगाया और रामचन्द्र इन स्तुतियोंसे जागे ॥ १० ॥ रामचन्द्र पलँग छोड़कर उठे जिस-पर सफेद चाँदनी बिछी थी जिसप्रकार नारायण हरि नाग-शय्या छोड़कर उठते हैं ॥ ११ ॥ महाराजके उठनेपर उनके भृत्य हाथ जोड़कर उनके पास गये और स्वच्छ लोटा, घड़ा आदि उन लोगोंने उपस्थित किये ॥ १२ ॥ जल-कृत्य करके समयपर हवन करके राजा देवमन्दिरमें गये जो पवित्र राजा इक्ष्वाकुका था ॥ १३ ॥ वहाँ देवता, पितर और ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करके वे वहाँसे मनुष्योंके साथ बाहर गये ॥ १४ ॥ वसिष्ठ आदि पुरोहित तथा मन्त्री आदि महाराजके सामने उपस्थित हुए, जो अग्निके समान प्रकाशमान थे ॥ १५ ॥ भिन्न-भिन्न देशोंके क्षत्रिय राजा भी उपस्थित हुए और वे रामचन्द्रके पास बैठे, जैसे इन्द्रके पास देवता बैठते हैं ॥ १६ ॥ यशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न रामचन्द्रकी सेवा करते, जिस प्रकार तीनों वेदयज्ञ की उपासना करते हैं ॥ १७ ॥ प्रसन्न मुख किन्नर भी हाथ जोड़े वहाँ आये और आकर वे प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रके बगलमें बैठ गये ॥ १८ ॥ महाबली और कामरूपी सुग्रीव आदि बीस वानर भी ओजस्वी रामचन्द्रकी सेवा करने लगे ॥ १९ ॥ विभीषण भी चार राक्षसोंके साथ महात्मा रामचन्द्रकी सेवा करने लगे जिस प्रकार यक्ष कुबेरकी सेवा करते हैं ॥ २० ॥ जो कुलीन मनुष्य वेदज्ञानमें निष्णात थे, विचक्षण थे, वे भी सिरसे रामचन्द्रको प्रणाम करके उनकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ २१ ॥ ऋषियों, राजाओं महाबली वानरों और राक्षसोंके साथ बैठे श्रीरामचन्द्र, ऋषियोंके द्वारा नित्य सेवित देवराज इन्द्र-से भी अधिक शोभित हुए ॥ २२ ॥ २३ ॥ इन सबके यथास्थान सुखपूर्वक बैठ जानेपर पुराणज्ञ महात्मा धर्मयुक्त कथा कहने लगे ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः ३८

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः । प्रशासत्सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥
ततः कतिपयाहःसु वैदेहं मिथिलाधिपम् । राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥
भवान्हि गतिरव्यग्रा भवता पलिता वयम् । भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां मैथिलानां च सर्वशः । अतुलाः प्रीतयो राजन्संबन्धकपुरोगमाः ॥ ४ ॥
तद्भवान्स्वपुरं यातु रत्नान्यादाय पार्थिव । भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतश्चानुयास्यति ॥ ५ ॥
स तथेति ततः कृत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् । प्रीतोऽस्मि भवतो राजन्दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥
यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै । दुहित्रोस्तान्यहं राजन्सर्वाण्येव ददामि वै ॥ ७ ॥
ततः प्रयाते जनके केययं मातुलं प्रभुम् । राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयाद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
इदं राज्यमहं चैव भरतश्च सलक्ष्मणः । आयत्तास्त्वं हि नो राजन्गतिश्च पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥
राजा हि वृद्धः संतापं त्वदर्थमुपयास्यति । तस्माद्गमनमद्यैव रोचते तव पार्थिव ॥१०॥
लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोऽनुगमिष्यते । धनमादाय बहुलं रत्नानि विविधानि च ॥११॥
युधाजित्तु तथेत्याह गमनं प्रति राघव । रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्विति ॥१२॥
प्रदक्षिणं च राजानं कृत्वा केकयवर्धनः । रामेण च कृतः पूर्वमभिवाद्य प्रदक्षिणम् ॥१३॥
लक्ष्मणेन सहायेन प्रयातः केकयेश्वरः । हतेऽसुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह वासवः ॥१४॥

महाबाहु रामचन्द्र इसप्रकार नगर और राज्यके कार्योंका प्रतिदिन शासनकार्य चलाने लगे ॥ १ ॥ कतिपय दिनोंके पश्चात् रामचन्द्र मिथिलाधिपति विदेहसे हाथ जोड़कर यह बोले ॥ २ ॥ आप हमारे निश्चल रक्षक हैं । आपने हमारा पालन किया है । आपके ही उग्र तेजसे हमने रावणका वध किया है ॥ ३ ॥ राजन्, इक्ष्वाकुओं और मैथिलोंमें सदासे सम्बन्धका अतुल प्रेम रहा है ॥ ४ ॥ हमलोगोंके द्वारा दिया गया, रत्न आदि वस्तुओंको भेटमें लेकर आप अपनी राजधानी जाँय और आपकी सहायताके लिए भरत आपके साथ जाँय ॥ ५ ॥ राजा वैदेहने रामचन्द्रकी बातें स्वीकार कीं और वे बोले, राजन्, आपके दर्शनसे तथा आपके व्यवहारसे मैं सन्तुष्ट हूँ ॥ ६ ॥ राजन्, आपने मुझे देनेके लिए जो ये रत्न एकत्र कर रखे हैं वे सब रत्न मैं अपनी कन्याको देता हूँ ॥ ७ ॥ राजाजनकके जानेपर रामचन्द्र केकयदेशके मामासे हाथजोड़कर विनयपूर्वक यह बोले ॥ ८ ॥ यह राज्य, मैं, भरत, लक्ष्मण आदि सभी आपके हैं, पुरुषश्रेष्ठ, आप हम लोगोंके रक्षक हैं ॥ ९ ॥ बूढ़े राजा आपके बिना घबड़ा रहे होंगे । अतएव आपका आज ही जाना मुझे अच्छा लगता है ॥१०॥ इस यात्रामें लक्ष्मण आपके साथ जाँय, बहुतसा धन तथा अनेक रत्न लेकर आप जाँय ॥ ११ ॥ युधाजित्‌ने जानेके विषयमें रामचन्द्रकी बात स्वीकारकी और वे बोले, धन और रत्न आपकेही यहाँ रहें और बढ़ें ॥ १२ ॥ रामचन्द्रने उन्हें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की तब केकयराजकुमारने, राजा रामकी प्रदक्षिणाकी ॥ १३ ॥ केकयराज लक्ष्मणके साथ प्रस्थित हुए, जिसप्रकार वृत्रासुरके मारेजानेपर इन्द्रके साथ विष्णु गये थे ॥ १४ ॥ केकयराजको बिदा करके अपने

तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम्। प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥१५॥
दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम्। उद्योगश्च त्वया राजन्भरतेन कृतः सह ॥१६॥
तद्भवानद्य काशेय पुरीं वाराणसीं व्रज। रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम् ॥१७॥
एतावदुक्त्वा चोत्थाय काकुत्स्थः परमासनात्। पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम् ॥१८॥
विसर्जयामास तदा कौसल्याप्रीतिवर्धनः। राघवेण कृतानुज्ञः काशेयो ह्यकुतोभयः ॥१९॥
वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः। विसृज्य तं काशिपतिं त्रिशतं पृथिवीपतीन् ॥२०॥
प्रहसन्राघवो वाक्यमुवाच मधुराक्षरम्। भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता ॥२१॥
धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा। युष्माकं चानुभावेन तेजसा च महात्मनाम् ॥२२॥
हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधमः। हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः ॥२३॥
रावणः सगणो युद्धे सपुत्रामात्यबान्धवः। भवन्तश्च स मानीता भरतेन महात्मना ॥२४॥
श्रुत्वा जनकराजस्य काननात्तनयां हृताम्। उद्युक्तानां च सर्वेषां पार्थिवानां महात्मनाम् ॥२५॥
कालोऽप्यतीतः सुमहान्गमनं रोचयाम्यतः। प्रत्यूचुस्तं च राजानो हर्षेण महता वृताः ॥२६॥
दिष्ट्या त्वं विजयी राम राज्यं चापि प्रतिष्ठितम्।
दिष्ट्या प्रत्याहृता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः ॥२७॥

मित्र और निर्भय, काशिराज प्रतर्दनका आलिङ्गन करके रामचन्द्र उनसे बोले ॥ १५ ॥ राजन्, आपने मेरी सहायताके लिए भरतके साथ उद्योग किया है, आपने बड़ी प्रीति दिखायी है। आपने मित्रताका धर्म पालन किया है ॥ १६ ॥ अब काशिराज, अब आप अपनी रमणीय नगरी काशीपुरीमें जांय, जिसकी आप रक्षा करते हैं। जो चारों ओर चारदीवारीसे घिरी है तथा जिसका तोरण सुन्दर है ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्र सिंहासनसे उठे और उन्होंने काशीपतिको छातीसे सटाकर उनका आलिङ्गन किया ॥ १८ ॥ अनन्तर कौसल्या पुत्र रामचन्द्रने उनको विदा किया। रामचन्द्रसे विदा होकर काशीराज शीघ्र ही वहाँसे काशीके लिए चले। काशीराजको विदाकरके रामचन्द्र तीन सौ राजाओंसे हँसते हुए मधुर वचन बोले। आप लोगोंकी निश्चल प्रीतिकी रक्षा आपके तेजने ही की है अर्थात आप लोगोंके ही तेजसे मैं वनवाससे लौटकर आप लोगोंसे मिल सका हूँ ॥ १९ ॥ २१ ॥ अतएव आप लोगोंने अपने धर्म और सत्यकी सदा रक्षाकी, उसे सदा बनाये रखा। आप लोगोंके प्रभाव तथा महात्माओंके तेजसे ही मैंने दुर्बुद्धि दुरात्मा राक्षसाधम रावणको मारा है। मैं उसमें केवल निमित्त था, आप लोगोंके ही तेजसे रावण, पुत्र, मन्त्री, बान्धव तथा अपने साथियोंके साथ मारा गया है। महात्मा भरतने आप लोगोंको हमसे मिलाया है ॥ २२ ॥ २४ ॥ आप सब महात्मा राजाओंने वनसे जनकराजकी कन्याका हरण होना सुनकर उद्योग प्रारम्भ कर दिया था उसी समयसे आपलोग हमारी सहायता कर रहे हैं, आप लोगोंको बहुत समय बीत गया है, अतएव आपलोग घर जाँय यह मैं चाहता हूँ। वे राजा भी बहुत प्रसन्न होकर रामचन्द्रसे बोले ॥ २५ ॥ २६ ॥ हम लोगोंके भाग्यसे आप विजयी हुए हैं, राज्य आपने पाया है, सीता पायी और शत्रुको पराजित किया ॥ २७ ॥ राम, यह हम लोगोंका सबसे बड़ा मनोरथ है, सबसे बड़ी प्रसन्नता है जो हम

एष नः परमः काम एषा नः प्रीतिरुत्तमा । यत्त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम् ॥२८॥
एतत्त्वय्युपपन्नं च यदस्मांस्त्वं प्रशंससे । प्रशंसार्हं न जानीमः प्रशंसां वक्तुमीदृशीम् ॥२९॥
आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः सदा भवान् । वर्तामहे महाबाहो प्रीत्यात्र महता वृताः ॥३०॥
भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा । बाढमित्येव राजानो हर्षेण परमान्विताः ॥३१॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राघवं गमनोत्सुकाः । पूजितास्ते च रामेण जग्मुर्देशान्स्वकान्स्वकान् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डेऽष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवास्ते प्रहृष्टवत् । गजवाजिसहस्रौघैः कम्पयन्तो वसुंधराम् ॥ १ ॥
अक्षौहिण्यो हि तत्रासन्राघवार्थे समुद्यताः । भरतस्याज्ञयानेकाः प्रहृष्टबलवाहनाः ॥ २ ॥
ऊचुस्ते च महीपाला बलदर्पसमन्विताः । न राम रावणं युद्धे पश्यामः पुरतः स्थितम् ॥ ३ ॥
भरतेन वयं पश्चात्समानीता निरर्थकम् । हता हि राक्षसाः क्षिप्रं पार्थिवैः स्युर्न संशयः ॥ ४ ॥
रामस्य बाहुवीर्येण रक्षिता लक्ष्मणस्य च । सुखं पारे समुद्रस्य युध्येम विगतज्वराः ॥ ५ ॥
एताश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः । कथयन्तः स्वराज्यानि जग्मुर्हर्षसमन्विताः ॥ ६ ॥
स्वानि राज्यानि मुख्यानि ऋद्धानि मुदितानि च । समृद्धधनधान्यानि पूर्णानि वसुमन्ति च ॥ ७ ॥

समस्त शत्रुओंका नाश करके विजयी आपको देख रहे हैं ॥ २८ ॥ यह भी आपकेही योग्य है जो आप हम लोगोंकी प्रशंसा कर रहे हैं । पर हे प्रशंसाके योग्य, हमलोग ऐसी प्रशंसा करना नहीं जानते ॥ २९ ॥ हमलोग जानेकी आज्ञा चाहते हैं । आपका स्मरण हमारे हृदयमें सदा वर्तमान रहेगा । हमारा आपके प्रति बड़ा प्रेम है । महाराज, हमारा स्मरण भी आपको रहे ऐसी प्रीति आप प्रकट करें । रामचन्द्रने "अच्छा" कहकर उनकी बातें स्वीकार कीं, इससे राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वे जानेके समय हाथ जोड़कर रामचन्द्रसे इस प्रकार बोले, रामचन्द्रने उनका सत्कार किया और वे अपने-अपने देशको गये ।३२।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

वे महात्मा राजा प्रसन्न होकर चले उनके हजारों हाथी, घोड़ोंसे पृथिवी काँप गयी ॥ १ ॥ भरतकी आज्ञासे रामचन्द्रकी सहायताकेलिए अनेक अक्षौहिणी सेना तयार थी, उसमेंके सब सैनिक प्रसन्न थे, हाथी घोड़े मजबूत थे ॥ २ ॥ वे मार्गमें इस सम्बन्धमें बातें करने लगे, वे राजा बली और अहंकारी थे । हमलोगोंने तो राम-रावणका युद्ध देखा ही नहीं । निरर्थक ही युद्ध हो जानेपर भरतने हम लोगोंको भेजा । यदि हमलोग पहले पहुँचते तो अवश्य ही हमारे द्वारा राक्षस मारे जाते इसमें सन्देह नहीं । राम और लक्ष्मणके पराक्रमसे रक्षित होकर समुद्र पार निर्भय होकर हम युद्ध करते ॥ ३ ॥ ५ ॥ इसप्रकार की अनेक बातें कहते तथा प्रसन्न होते राजा अपने-अपने राज्यमें गये ॥ ६ ॥ वे राजा अपनी सुख-समृद्ध

यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधान्यथ । रामस्य प्रियकामार्थमुपहारं नृपा ददुः ॥ ८ ॥
अश्वान्यानानि रत्नानि हस्तिनश्च मदोत्कटान् । चन्दनानि च मुख्यानि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
मणिमुक्ताप्रवालांस्तु दास्यो रूपसमन्विताः । अजाविकं च विविधं तथांस्तु विविधान्बहून् ॥१०॥
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः । आदाय तानि रत्नानि स्वांपुरीं पुनरागताः ॥११॥
आगम्य च पुरीं रम्यामयोध्यां पुरुषर्षभाः । तानि रत्नानि चित्राणि रामाय समुपानयन् ॥१२॥
प्रतिगृह्य च तत्सर्वं रामः प्रीतिसमन्वितः । सुग्रीवाय ददौ राज्ञे महात्मा कृतकर्मणे ॥१३॥
विभीषणाय च ददौ तथान्येभ्योऽपि राघवः । राक्षसेभ्यः कपिभ्यश्च यैर्वृतो जयमाप्तवान् ॥१४॥
ते सर्वे रामदत्तानि रत्नानि कपिराक्षसाः । शिरोभिर्धारयामासुर्भुजेषु च महाबलाः ॥१५॥
हनूमन्तं च नृपतिरिक्ष्वाकूणां महारथः । अङ्गदं च महाबाहुमङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥१६॥
रामः कमलपत्राक्षः सुग्रीवमिदमब्रवीत् । अङ्गदस्ते सुपुत्रोऽयं मन्त्री चाप्यनिलात्मजः ॥१७॥
सुग्रीवमंत्रिते युक्तौ मम चापि हिते रतौ । अर्हतो विविधां पूजां त्वत्कृते वै हरीश्वर ॥१८॥
इत्युक्त्वा व्यपमुच्याङ्गाद्भूषणानि महायशाः । स बबन्ध महार्हाणि तदाङ्गदहनूमतोः ॥१९॥
आभाष्य च महावीर्यान्राघवो यूथपर्षभान् । नीलं नलं केसरिणं कुमुदं गन्धमादनम् ॥२०॥
सुषेणं पनसं वीरं मैन्दं द्विविदमेव च । जाम्बवन्तं गवाक्षं च विनतं धूम्रमेव च ॥२१॥
वलीमुखं प्रजङ्घं च संनादं च महाबलम् । दरीमुखं दधिमुखमिन्द्रजानुं च यूथपम् ॥२२॥

और प्रसन्न राजधानीमें गये, जो धनधान्यसे पूर्ण थी ॥ ७ ॥ पहलेके समान सकुशल वहाँ जाकर राजाओं ने रामचन्द्रकी प्रसन्नताके लिए अनेक रत्न उपहारमें दिये ॥ ८ ॥ घोड़े, रथ, रत्न, मतवालेहाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभरण, मणि, मुक्ता, मूँगा, सुन्दरीदासियाँ, बकरी, भेंड़, तथा बहुतसे रथ उनलोगोंने दिये ॥ ९ ॥ १० ॥ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भेंटके उन रत्न आदिको लेकर अपनी राजधानीमें लौट आये ॥ ११ ॥ वे पुरुषश्रेष्ठ रमणीय अयोध्या नगरीमें आकर वे सब रत्न आदि उन्होंने रामचन्द्रके सामने रखे ॥ १२ ॥ वे सब रत्न आदि लेकर महात्मा रामचन्द्रने सुग्रीवको दे दिये, जिन्होंने रामचन्द्रकी बड़ी सहायता की है ॥ १३ ॥ विभीषणको, राक्षसोंको तथा अन्य वानरोंको भी उन्होंने वे रत्नादि दिये जिनके साथ रहकर उन्होंने विजय पायी थी ॥ १४ ॥ रामचन्द्रके दिये रत्नोंको वानरों तथा राक्षसोंने सिरपर तथा बाहुपर धारण किया ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुओंमें महारथ बली कमलनेत्र रामचन्द्रने हनुमान और अंगदको गोदमें लेकर सुग्रीवसे बोले, यह अंगद तुम्हारा सुपुत्र है और वायुपुत्र हनुमान तुम्हारा मन्त्री है ॥ १६, १७ ॥ सुग्रीवकी सलाहसे ये चलनेवाले हैं और हमारे हितमें सदा तत्पर रहते हैं इस कारण इनका विशिष्ट सत्कार होना चाहिये । विशेषकर तुम्हारा सम्बन्ध होनेसे ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर यशस्वी रामचन्द्रने अपने शरीरसे गहने उतारे और हनुमान तथा अंगदको वे दामी गहने उन्होंने पहना दिये ॥ १९ ॥ नल-नील केसरि, कुमुद, गन्धमादन, सुषेण, पनस, मैन्द, द्विविद, जाम्बवन्त, गवाक्ष, विनत, धूम्र, वलीमुख, प्रजङ्घ, संवाद, दरीमुख, दधिमुख, इन्द्रजानु आदि बली सेनापतियोंको सम्बोधित करके रामचन्द्र मधुर और कोमल शब्दोंमें बोले, वे प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें तृप्त कर रहे थे । आपलोग

मधुरं श्लक्ष्णया वाचा नेत्राभ्यामापिबन्निव । सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा ॥२३॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात्काननौकसः । धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः ॥२४॥
एवमुक्त्वा ददौ तेभ्यो भूषणानि यथार्हतः । वज्राणि च महार्हाणि सस्वजे च नरर्षभः ॥२५॥
ते पिबन्तः सुगन्धीनि मधूनि मधुपिंगलाः । मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च ॥२६॥
एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा । मुहूर्तमिव ते सर्वे रामभक्त्या च मेनिरे ॥२७॥
रामोऽपि रेमे तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः । राक्षसैश्च महावीर्यैर्ऋक्षैश्चैव महाबलैः ॥२८॥
एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शिशिरः सुखम् । वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानां च सर्वशः ॥२९॥
इक्ष्वाकुनगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम् । रामस्य प्रीतिकरणैः कालस्तेषां सुखं ययौ ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्ड एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्ग ४०

तथा स्म तेषां वसतामृक्षवानरराक्षसाम् । राघवस्तु महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गम्यतां सौम्य किष्किन्धां दुराधर्षां सुरासुरैः । पालयस्व सहामात्यै राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥
अङ्गदं च महाबाहो प्रीत्या परमया युतः । पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥ ३ ॥
सुषेणं श्वशुरं वीरं तारं च बलिनां वरम् । कुमुदं चैव दुर्धर्षं नीलं चैव महाबलम् ॥ ४ ॥

मेरे मित्र हैं, शरीर हैं, भाई हैं । वनवासी आप लोगोंने मुझे दुःखसे उबारा है, राजासुग्रीव धन्य हैं, उनके मित्र आपलोग धन्य हैं ॥ २०, २४ ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रने उन्हें यथायोग्य भूषण दिये । हीरा तथा बहुमूल्य गहने दिये और उनका उन्होंने आलिङ्गन किया ॥ २५ ॥ मधुके समान पिंगल वर्णके वानर सुगन्धित मधु पीते थे, बढ़िया माँस मूल और फल खाते थे, इसप्रकार वहाँ रहते उन्हें एक महीनासे अधिक बीत गया । पर उनलोगोंने इस समयको रामचन्द्रके प्रेमके कारण एक मुहूर्तके समान समझा ॥ २६, २७ ॥ रामचंद्र भी कामरूपी वानरों, महा पराक्रमी राक्षसों और बली ऋक्षोंके साथ बड़े प्रसन्न रहते थे ॥ २८ ॥ इसप्रकार प्रसन्न वानरों और राक्षसोंका, शिशिरका दूसरा (माघ या फाल्गुन) महीना भी बीत गया ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकी राजधानीमें प्रेमपूर्वक रहते हुए उनके समय सुखसे बीते । रामचन्द्रके सत्कारसे उनका समय बड़े सुखसे बीतता था ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

वानर, राक्षस और भालु जिससमय रामचन्द्रके यहाँ सुखपूर्वक निवास कर रहे थे उस समय तेजस्वी रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले ॥ १ ॥ देवता और असुरोंके द्वारा अजेय किष्किन्धा नगरीमें जाओ । मन्त्रियोंके साथ शत्रुहीन राज्यका पालन करो ॥ २ ॥ महाबाहो, अंगदपर प्रेम रखो, हनुमान, महाबली नल, अपने श्वसुर सुषेण, महाबलीतार, अजेयकुमुद, बली नील, वीरशतबाले, मैन्द, द्विविद

वीरं शतबलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च। गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ॥ ५ ॥
ऋक्षराजं च दुर्धर्षं जाम्बवन्तं महाबलम्। पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमादनमेव च ॥ ६ ॥
ऋषभं च सुविक्रान्तं प्लवंगं च सुपाटलम्। केसरिं शरभं शुम्भं शङ्खचूडं महाबलम् ॥ ७ ॥
ये ये मे सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः। पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥ ८ ॥
एवमुक्त्वा च सुग्रीवमाश्लिष्य च पुनः पुनः। विभीषणमुवाचाथ रामो मधुरया गिरा ॥ ९ ॥
लङ्कां प्रशाधि धर्मेण धर्मज्ञस्त्वं मतो मम। पुरस्य राक्षसानां च भ्रातुर्वैश्रवणस्य च ॥१०॥
मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन्कथंचन। बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवमश्नन्ति मेदिनीम् ॥११॥
अहं च नित्यशो राजन्सुग्रीवसहितस्त्वया। स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वर ॥१२॥
रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋक्षवानरराक्षसाः। साधुसाध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥१३॥
तव बुद्धिर्महाबाहो वीर्यमद्भुतमेव च। माधुर्यं परमं राम स्वयंभोरिव नित्यदा ॥१४॥
तेषामेवंब्रुवाणानां वानराणां च रक्षसाम्। हनूमान्प्रणतो भूत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥
स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा। भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥१६॥
यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले। तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥१७॥
यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन। तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ ॥१८॥
तच्छ्रुत्वाहं ततो वीर तव चर्यामृतं प्रभो। उत्कण्ठां तां हरिष्यामि मेघलेखामिवानिलः ॥१९॥
एवंब्रुवाणं रामस्तु हनूमन्तं वरासनात्। उत्थाय सस्वजे स्नेहाद्वाक्यमेतदुवाच ह ॥२०॥

गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, अजेयऋक्षराज जाम्बवान् और गन्धमादनपर प्रेम रखना ॥ ३ ॥ ६ ॥ पराक्रमी ऋषभ, वानरपाटल, केसरि, शरभ, शुम्भ महाबली शंखचूड़, तथा अन्य महात्मा जिन्होंने मेरे लिए अपना जीवन दान दिया है उनपर तुम प्रेम रखना, उनके विरोधाचरण न करना ॥ ७ ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रने बार-बार सुग्रीवका आलिङ्गन किया। पुनः वे विभीषणसे मधुर स्वरसे बोले ॥ ९ ॥ मैं, नगरवासी राक्षस तथा तुम्हारे भाई कुबेर, तुमको धर्मात्मा समझते हैं, तुम धर्मपूर्वक लंकाका शासन करो ॥ १० ॥ राजन्, तुम अधर्ममें बुद्धि कभी न करना, बुद्धिमान् राजा पृथिवीका भोग बहुत दिनों तक करते हैं ॥ ११ ॥ राजन्, सुग्रीवके साथ मुझे प्रतिदिन प्रेमपूर्वक स्मरण करना। निश्चिन्त होकर जाओ ॥१२॥ रामचन्द्रकी बात सुनकर भालु, वानर और राक्षसोंने उन्हें साधुवाद दिया और बार-बार उनकी प्रशंसा की ॥ १३ ॥ महाबाहो, आपकी बुद्धि और पराक्रम अद्भुत है। स्वयंभु ब्रह्माके समान आपमें सदा मधुरता वर्तमान रहती है ॥ १४ ॥ वानर, राक्षस आदि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय नम्र होकर हनुमान रामचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ राजन्, मेरा स्नेह सदा आपमें बना रहे, आपमें मेरी भक्ति सदा दृढ़ रहे, वह किसी दूसरेमें न हो ॥ १६ ॥ वीर, जबतक पृथिवीपर रामकथा होती रहेगी तब मेरे प्राण इस शरीरमें रहेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १७ ॥ नरश्रेष्ठ, आपके दिव्य चरित्रकी जो कथा है वह मुझे अप्सराऐं सुनावेंगी ॥ १८ ॥ वीर, तुम्हारे उस चरितामृतको श्रवण करके मैं तुम्हारे वियोगकी उत्कण्ठाको दूर करूँगा, जिसप्रकार वायु मेघमालाको दूर करता है ॥ १९ ॥ हनुमान इसप्रकार कह रहे थे उसी समय सिंहासन

एवमेतत्कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः । चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥२१॥
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा ।लोका हि यावत्स्थास्यन्ति यावत्स्थास्यन्तिमेकथाः।२२।
एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे । शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥२३॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे । नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥२४॥
ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात्स राघवः । वैदूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः ॥२५॥
तेनोरसि निबद्धेन हारेण महता कपिः । रराज हेमशैलेन्द्रश्चन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः ॥२६॥
श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वानराः । प्रणम्य शिरसा पादौ निर्जग्मुस्ते महाबलाः ॥२७॥
सुग्रीवः स च रामेण निरन्तरमुरोगतः । विभीषणश्च धर्मात्मा सर्वे ते बाष्पविक्लवाः ॥२८॥
सर्वे च ते बाष्पकलाः साश्रुनेत्रा विचेतसः । संमूढा इव दुःखेन त्यजन्तो राघवं तदा ॥२९॥
कृतप्रासादास्तेनैवं राघवेण महात्मना । जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे देही देहमिव त्यजन् ॥३०॥

ततस्तु ते राक्षसऋक्षवानराः प्रणम्य रामं रघुवंशवर्धनम् ।
वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाः प्रतिप्रयातास्तु यथा निवासिनः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य उत्तरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

से उठकर रामचन्द्रने उनका आलिङ्गन किया और वे स्नेहपूर्वक उनसे बोले ॥ २० ॥ कपिश्रेष्ठ, तुम जैसा कहते हो वैसा ही होगा इसमें संदेह नहीं । यह मेरी कथा जबतक संसारमें रहेगी तबतक तुम्हारी कीर्ति संसारमें रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण रहेंगे । जबतक यह संसार रहेगा तबतक मेरी कथा भी रहेगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ वानर, तुम्हारे एक-एक उपकारके लिए मैं अपने प्राण दे सकता हूँ और बाकी उपकारोंके लिए हम सब तुम्हारे ऋणी रहेंगे ॥ २३ ॥ तुमने जो उपकार किये हैं वे मेरे शरीरमें ही पच जाँय । क्योंकि प्रत्युपकारका समय है उपकारीका विपत्ति ग्रस्त होना ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रने अपने गलेसे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार, जिसमें वैदूर्यमणि चमक रहा था, निकालकर हनुमानके गलेमें बाँध दिया ॥ २५ ॥ उस हारके गलेमें पानेसे वानर हनुमान ऐसा मालूम पड़ते थे मानों सुवर्णपर्वतके मस्तकपर चन्द्रमा रख दिया गया हो ॥ २६ ॥

रामचन्द्रके विदा-वचन सुनकर महाबली वानरोंने उठ-उठकर उन्हें सिरसे प्रणाम किया और वे चले गये ॥ २७ ॥ रामचन्द्रने सुग्रीव और विभीषणका गाढ़ आलिङ्गन किया, उस समय सभोकी आँखें आँसूसे भर गयीं थीं ॥ २८ ॥ रामचन्द्रको छोड़नेके समय वे सभी दुःखसे व्याकुल थे, किसीकी आवाज नहीं निकलती थी । उनकी आँखें आँसूसे भरी थीं, वे बेहोश थे ॥ २९ ॥ महात्मा रामचन्द्रके प्रसन्नता-पूर्वक आज्ञा देनेपर वे सभी अपने-अपने घर गये जिसप्रकार आत्मा शरीरको छोड़कर जाता है ॥ ३० ॥ रघुवंश-वर्धन रामचन्द्रको प्रणाम करके वानर, भालु और राक्षस, जिनके नेत्र वियोगकी आँसूसे भरे थे वहाँसे चले, जैसे कोई घरका आदमी जाता हो ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

विसृज्य च महाबाहुर्ऋक्षवानरराक्षसान् । भ्रातृभिः सहितो रामः प्रमुमोद सुखं सुखी ॥ १ ॥
अथापराह्णसमये भ्रातृभिः सह राघवः । शुश्राव मधुरां वाणीमन्तरिक्षान्महाप्रभुः ॥ २ ॥
सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वदनेनमाम् । कुबेरभवनात्प्राप्तं विद्धि मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥
तव शासनमाज्ञाय गतोऽस्मि भवनं प्रति । उपस्थातुं नरश्रेष्ठ स च मां प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥
निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना । निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥
ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन्दुरात्मनि । रावणे सगणे चैव सपुत्रे सहबान्धवे ॥ ६ ॥
स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना । वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥ ७ ॥
परमो ह्येष मे कामो यत्त्वं राघवनन्दनम् । वहेर्लोकस्य संयानं गच्छस्व विगतज्वरः ॥ ८ ॥
सोऽहं शासनमाज्ञाय धनदस्य महात्मनः । त्वत्सकाशमनुप्राप्तो निर्विशङ्कः प्रतीच्छ माम् ॥ ९ ॥
अधृष्यः सर्वभूतानां सर्वेषां धनदाज्ञया । चराम्यहं प्रभावेण तवाज्ञां परिपालयन् ॥१०॥
एवमुक्तस्तदा रामः पुष्पकेण महाबलः । उवाच पुष्पकं दृष्ट्वा विमानं पुनरागतम् ॥११॥
यद्येवं स्वागतं तेऽस्तु विमानवर पुष्पक । आनुकूल्याद्धनेशस्य वृत्तदोषो न नो भवेत् ॥१२॥
लाजैश्चैव तथा पुष्पैर्धूपैश्चैव सुगन्धिभिः । पूजयित्वा महाबाहू राघवः पुष्पकं तदा ॥१३॥
गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा । सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विषादेन योजय ॥१४॥

सुखी रामचन्द्र वानर, भालु आदिको विदा करके भाइयोंके साथ बहुत ही मुदित हुए ॥ १ ॥ एक दिन दोपहरके बाद भाइयोंके साथ रामचन्द्रने आकाशसे मधुरवाणी सुनी ॥ २ ॥ सौम्यराम, प्रसन्न होकर तुम मेरी ओर देखो, प्रभो, कुबेरके यहाँसे लौटकर आया मैं पुष्पक विमान हूँ ॥ ३ ॥ नरश्रेष्ठ, आपकी आज्ञासे मैं उनके यहाँ उनकी सेवा करनेके लिए गया था, पर उन्होंने मुझसे कहा ॥ ४ ॥ महात्मा राजा रामचन्द्रने अजेय राक्षसराज रावणको युद्धमें मारकर तुम्हें जीता है ॥ ५ ॥ पुत्र, मन्त्री, बान्धव तथा साथियोंके साथ उस दुरात्मा रावणके मारे जानेसे मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ६ ॥ इसप्रकार परमात्मा रामचन्द्रने तुम्हें लंकामें जीता है अतएव तुम उन्हींकी सवारीमें रहो तुमको मैं यह आज्ञा देता हूँ ॥ ७ ॥ मेरी यह परम इच्छा है कि तुम रामचन्द्रकी सवारीमें रहो, क्योंकि वे समस्त लोकोंके आश्रय हैं अतएव निर्भय होकर तुम जाओ ॥ ८ ॥ मैं महात्मा कुबेरकी आज्ञा पाकर आपके पास आया हूँ आप निःशङ्क होकर मुझे ग्रहण करें ॥ ९ ॥ मैं अपने प्रभावसे अजेय हूँ । कुबेरकी आज्ञासे मैं आपकी इच्छाके अनुसार सब लोकोंमें विचरण करूँगा ॥ १० ॥ पुष्पकके ऐसा कहनेपर महाबली रामचन्द्र पुनः लौटकर आये पुष्पक विमानसे बोले ॥ ११ ॥ विमानश्रेष्ठ, यदि ऐसी बात है तो तुम्हारा स्वागत है । जब कुबेर ही कृपा करते हैं तब हमपर मर्यादा भंग करनेका दोष न होगा ॥ १२ ॥ अनन्तर रामचन्द्रने लावा, पुष्प धूप, आदिसे उस पुष्पकविमान की पूजा की ॥१३॥ इससमय जाओ जब मैं स्मरण करूँ तब आना । सिद्धोंके मार्ग-में अर्थात् आकाशमार्गमें अपनेको संकटमें न डालना । अर्थात् उनका अपमान न करना, जिससे क्रोध करके वे शाप दे दें, और तुम्हें संकटमें पड़ना पड़े ॥ १४ ॥ इच्छानुसार इधर-उधर जानेके समय कहीं

प्रतिघातश्च ते मा भूद्यथेष्टं गच्छतो दिशः । एवमस्त्विति रामेण पूजयित्वा विसर्जितम् ॥१५॥
अभिप्रेतां दिशं तस्मात्प्रायात्तत्पुष्पकं तदा । एवमन्तर्हिते तस्मिन्पुष्पके सुकृतात्मनि ॥१६॥
भरतः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् । विबुधात्मनि दृश्यन्ते त्वयि वीर प्रशासति ॥१७॥
अमानुषाणि सत्त्वानि व्याहृतानि मुहुर्मुहुः । अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम् ॥१८॥
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव । अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः ॥१९॥
हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिनः । काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः ॥२०॥
वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ताः सुखाः शिवाः । ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वरः ॥२१॥
कथयन्ति पुरे राजन्पौरजानपदास्तथा । एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ।
श्रुत्वा रामो मुदा युक्तो बभूव नृपसत्तमः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम् । प्रविवेश महाबाहुरशोकवनिकां तदा ॥ १ ॥
चन्दनागुरुचूतैश्च तुंगकालेयकैरपि । देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥
चम्पकागुरुपुंनागमधूकपनसासनैः । शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्वलनप्रभैः ॥ ३ ॥
लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः सप्तपर्णातिमुक्तकैः । मन्दारकदलीगुल्मलताजालसमावृताम् ॥ ४ ॥

टकरा न जाना, ऐसा कहकर रामचन्द्रने उसे विदा किया । उसने भी रामचन्द्रकी आज्ञा मानली और वह पुष्पकविमान अपनी अभीष्ट दिशाकी ओर चला । बहुत सुन्दर बने हुए उस पुष्पकविमानके चले जानेपर भरत हाथ जोड़कर रामचन्द्रसे बोले । वीर, देवस्वरूप आपके शासन करनेके समय जो मनुष्य नहीं हैं वे भी बार-बार बोलते देखे जाते हैं । अभी आपके राज्याभिषेक हुए एक महीनासे अधिक समय नहीं बीता, सभी मृत्युलोकवासी नीरोग हो गये हैं, बूढ़ोंकी भी मृत्यु नहीं होती, स्त्रियाँ बिना कष्टके प्रसव करती हैं । मनुष्य हृष्ट-पुष्ट हैं ॥ १६ ॥ १९ ॥ राजन्, पुरवासी भी बहुत प्रसन्न हैं । मेघ समयपर अमृतमय जलकी वर्षा करते हैं ॥ २० ॥ वायु भी शीतल, सुखकारी और हितकारी बहती है । राजन् नगरवासी तथा राज्यवासी कहते हैं कि ऐसा ही हम लोगोंका राजा सदा हो । भरतकी ये मधुर बातें सुनकर राजश्रेष्ठ रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

महाबाहु रामचन्द्र सुवर्णभूषित पुष्पकविमानको विदा करके अशोकवाटिकामें गये ॥ १ ॥ वह अशोकवाटिका चन्दन, अगुरु, आम, ऊँचे कालेयक और देवदारु वनसे चारों ओरसे भूषित थी ॥ २ ॥ चम्पक, अगुरु पुँनाग, महुआ, कटहल, असन, और धूमहीन अग्निके समान प्रकाशमान पारिजातसे वह वाटिका शोभित थी ॥ ३ ॥ लोध, कदंब, अर्जुन नागकेसर, सप्तपर्ण अतिमुक्तक, मन्दार, केला तथा अन्य

प्रियङ्गुभिः कदम्बैश्च तथा च बकुलैरपि । जम्बूभिर्दाडिमैश्चैव कोविदारैश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥
सर्वदा कुसुमै रम्यैः फलवद्भिर्मनोरमैः । दिव्यगन्धरसोपेतैस्तरुणाङ्कुरपल्लवैः ॥ ६ ॥
तथैव तरुभिर्दिव्यैः शिल्पिभिः परिकल्पितैः । चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसंकुलैः ॥ ७ ॥
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः । शोभितां शतशश्चित्रां चूतवृक्षावतंसकैः ॥ ८ ॥
शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः । नीलाञ्जननिभाश्चान्ये भान्ति तत्र स्म पादपाः ॥ ९ ॥
सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च । दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ॥१०॥
माणिक्यकृतसोपानाः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः । फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥११॥
दात्यूहशुकसंघुष्टा हंससारसनादिताः । तरुभिः पुष्पशबलैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥१२॥
प्राकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः । तत्रैव च वनोद्देशे वैदूर्यमणिसंनिभैः ॥१३॥
शाद्वलैः परमोपेतां पुष्पितद्रुमकाननाम् । तत्र संघर्षजातानां वृक्षाणां पुष्पशालिनाम् ॥१४॥
प्रस्तराः पुष्पशबला नभस्तारागणैरिव । नन्दनं हि यथेन्द्रस्य ब्राह्मं चैत्ररथं यथा ॥१५॥
तथाभूतं हि रामस्य काननं संनिवेशनम् । बह्वासनगृहोपेतां लतासनसमावृताम् ॥१६॥
अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः । आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते ॥१७॥
कुशास्तरणसंस्तीर्णे रामः संनिषसाद ह । सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि ॥१८॥

गुल्मों और लताओंसे वह वाटिका ढँकी हुई थी ॥ ४ ॥ प्रियंगु, कदंब, बकुल, जम्बू, दाड़िम तथा कोविदार से वह शोभित थी ॥ ५ ॥ वह सदा रमणीय पुष्पों, दिव्यगन्ध और रसयुक्त मनोहर फलों तृणाँकुर और पल्लवोंसे वह वाटिका शोभित थी ॥ ६ ॥ इसी प्रकार दिव्य शिल्पियोंके बनाये वृक्षोंसे वह वाटिका शोभित थी, जिन वृक्षोंमें सुन्दर पत्ते और पुष्प थे तथा मतवाले भौंरे उनके पास चक्कर काट रहे थे ॥ ७ ॥ आमवृक्षके ऊपर बैठे हुए कोकिल, भृगराज, आदि अनेक प्रकारके सैकड़ों पक्षियोंसे वह वाटिका शोभित हो रही थी ॥ ८ ॥ वहाँके कोई वृक्ष सुवर्णके समान थे, कोई अग्निशिखाके समान थे और कोई काले अग्निके समान थे तथा वे शोभित हो रहे थे ॥ ९ ॥ वहाँ सुगन्धित पुष्प तथा पुष्पोंके गुच्छे थे, छोटी बड़ी अनेक बावलियाँ थीं, जो जलसे भरी हुई थीं ॥१०॥ उनमें मानिककी सीढ़ियाँ बनी थीं। बीच-बीचमें स्फटिकके चौतरे बने थे, और विकसित कमल वन था, जो चक्रवाकसे शोभित था ॥ ११ ॥ दात्यूह और शुक बोल रहे थे, हँस और सारसका नाद हो रहा था, फूलोंसे लदे तीरके वृक्षोंसे वे बावलियाँ शोभित हो रही थीं ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारकी दीवारों तथा पत्थरोंसे वह वाटिका शोभित थी। वहाँ वैदूर्यमणिके रंग की घास थी, पुष्पित वृक्षोंका वन था। विकसित पुष्पोंके टकरानेसे वहाँके पत्थर फूलोंसे भर गये थे। वो वृक्षोंके रगड़से फूल झरकर गिरे थे, जिससे तारका खचित आकाशके समान वहाँकी शोभा हो गयी थी। जिस प्रकार इन्द्रका नन्दन वन है, ब्रह्माका बनाया कुबेरका चैत्ररथ वन है उसी प्रकार रामचन्द्रका यह वन है, जिसमें सुन्दर स्थान बने हुए हैं। जिसमें बहुत आदमियोंके बैठने लायक घर हैं, तथा कई लतागृह हैं ॥ १३, १६ ॥ उस विशाल अशोकवाटिकामें जाकर सुन्दर आसनपर बैठे। उसपर फूल बिछे हुए थे और कुशाका आसन बिछा हुआ था। रामचन्द्रने शुद्ध मैरेय नामका मद्य सीताको अपने हाथसे पिलाया,

पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरंदरः । मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च ॥१९॥
रामस्याभ्यवहारार्थं किंकरास्तूर्णमाहरन् । उपानृत्यंश्च राजानं नृत्यगीतविशारदाः ॥२०॥
अप्सरोरगसङ्घाश्च किन्नरीपरिवारिताः । दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशं गताः ॥२१॥
उपानृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः । मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः ॥२२॥
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः । स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह ॥२३॥
अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा । एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ॥२४॥
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् । तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम् ॥२५॥
अत्यक्रामच्छुभः कालः शैशिरो भोगदः सदा । प्राप्तयोर्विविधान्भोगानतीतः शिशिरागमः ॥२६॥
पूर्वाह्णे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् । शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥२७॥
सीतापि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै । श्वश्रूणामकरोत्पूजां सर्वासामविशेषतः ॥२८॥
अभ्यगच्छत्ततो रामं विचित्राभरणाम्बरा । त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥२९॥
दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् । प्रहर्षमतुलं लेभे साधुसाध्विति चाब्रवीत् ॥३०॥
अब्रवीच्च वरारोहां सीतां सुरसुतोपमाम् । अपत्यलाभो वैदेहि त्वय्ययं समुपस्थितः ॥३१॥
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव । स्मितं कृत्वा तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ॥३२॥
तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव । गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥३३॥

जिस प्रकार इन्द्र इन्द्राणीको पिलाते हैं । वहाँ भृत्य, उत्तम मांस तथा अनेक प्रकारके फल रामचन्द्रके भोजनके लिए ले आए । नृत्य और गीत विद्यामें दक्ष, राजाके सामने नाचने लगे ॥ १९, २० ॥ किन्नरियोंके साथ अप्सराएँ नागकन्याएँ तथा दक्षिण देशकी सुन्दरी स्त्रियाँ मद्यपानसे मतवाली होकर रामचन्द्रके सामने नाचने लगीं । ये सभी नृत्यगीतमें निपुण थीं । सीताके साथ बैठे हुए धर्मात्मा रामचन्द्रने मनको मोहित करनेवाली सब तरहसे सजी हुई उन स्त्रियोंको क्रीड़ा करनेकी आज्ञा दी ॥ २१, २३ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र अरुन्धतीके साथ बैठे वसिष्ठके समान तेजस्वी मालूम पड़ते थे । इस प्रकार प्रसन्न चित्त रामचन्द्र देवकन्याके तुल्य सीताको प्रतिदिन रमण कराते थे मानो देवता रमण कराते हों । इस प्रकार सीता और रामके विहार करते हुए शिशिरका भोग योग्य सुन्दर समय बीत गया । उन दोनोंने अनेक प्रकारके भोग किये और शिशिर ऋतु बीत गयी ॥ २४,२६ ॥

धर्मज्ञ रामचन्द्र पूर्वाह्णमें धर्म कृत्य करते थे और बाकी दिन महलमें बिताते थे ॥ २७ ॥ सीता भी पूर्वाह्णमें देवकार्योंको करती थीं, और बिना भेदके अपनी सब सासोंकी पूजा करती थीं ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् सीता सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहनकर रामचन्द्रके पास जाती थीं । जिस प्रकार स्वर्गमें बैठे इन्द्रके पास शची जाती है ॥ २९ ॥ रामचन्द्रने पत्नी सीताको कल्याणमय गर्भके चिन्होंसे युक्त देखा । वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने साधुवाद दिया ॥ ३० ॥ देवकन्याके समान सुन्दरी सीतासे वे बोले—देवि, तुम्हारा पुत्र पानेका समय आ रहा है ॥ ३१ ॥ सुन्दरि, तुम क्या चाहती हो, तुम्हारा कौन मनोरथ पूरा करूँ । सीता हँसकर रामचंद्रसे बोली ॥ ३२ ॥ रामचन्द्र, गङ्गा तीरपर रहनेवाले उग्रतपस्वी ऋषियोंके पवित्र

फलमूलाशिनां देव पादमूलेषु वर्तितुम् । एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम् ॥३४॥
अप्येकरात्रिं काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने । तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥
विश्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥३५॥
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् । मध्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम सुहृद्वृतः ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः । कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥ १ ॥
विजयो मधुमत्तश्च काश्यपो मङ्गलः कुलः । सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्त्रः सुमागधः ॥ २ ॥
एते कथा बहुविधाः परिहाससमन्विताः । कथयन्ति स्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
ततः कथायां कस्यांचिद्राघवः समभाषत । काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥ ४ ॥
मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदा जनाः । किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं च लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥
किं नु शत्रुघ्नमुद्दिश्य कैकेयीं किं नु मातरम् । वक्तव्यतां च राजानो वने राज्ये व्रजन्ति च ॥ ६ ॥
एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् । स्थिताः शुभाः कथा राजन्वर्तन्ते पुरवासिनाम् ॥ ७ ॥
अयं तु विजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् । भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् । कथयस्व यथातत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ॥ ९ ॥

तपोवन में देखना चाहती हूँ ॥ ३३ ॥ फल-मूल भोगी ऋषियोंके पास में रहना चाहती हूँ । यह मेरी बड़ी इच्छा है कि फल-मूल भोगी ऋषियोंके तपोवनमें कम-से-कम एक रात भी मैं निवास करूँ । पुण्यात्मा रामचंद्रने वैसा करनेकी प्रतिज्ञा की । वैदहि, निश्चिंत रहो, कल अवश्य तुम जाओगी ॥ ३४,३५ ॥ जनक पुत्री सीतासे ऐसा कहकर रामचंद्र महलके बिचले खण्डमें मित्रोंके साथ गये ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

राजा रामचंद्रके वहाँ आनेपर बहुतसे, विजय मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध आदि निपुण मनुष्य रामचंद्रकी सेवामें उपस्थित हुए, जो अनेक कथाएँ कहकर रामचंद्रको हँसाते थे ॥ १,२ ॥ ये प्रसन्न होकर अनेक प्रकारकी हँसीवाली कथाएँ रामचंद्रसे कहते थे ॥ ३ ॥ किसी कथा प्रसङ्गमें रामचंद्रने कहा, भद्र, आजकल नगरमें तथा राज्यमें कौनसी बात हो रही है ॥ ४ ॥ मेरे विषयमें, सीताके विषयमें तथा भरत और लक्ष्मणके विषयमें नगर और राज्यवासी क्या कहते हैं । हम लोगोंके लिए उनका कैसा मत है ॥ ५ ॥ शत्रुघ्न तथा माता कैकेयीके विषयमें उनकी क्या राय है, क्योंकि वनवासी तथा राज्यवासी राजाओंकी निन्दा होती ही है ॥ ६ ॥ रामचन्द्रके पूछनेपर भद्र हाथ जोड़कर बोला, राजन्, पुरवासियोंकी बातें शुभ हैं अर्थात् कोई आपकी निन्दा नहीं करता ॥ ७ ॥ पुरुष श्रेष्ठ, यह दसाननके बधसे मिली विजय नगरवासियोंके द्वारा अधिकतासे गायी जाती है ॥ ८ ॥ भद्रके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र पुनः बोले । जो कुछ बातें हों वह ठीक-ठीक सब कहो ॥ ९ ॥ अच्छी या

शुभाशुभानि वाक्यानि कान्याहुः पुरवासिनः। श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानि च ॥१०॥
कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयं विगतज्वरः। कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥११॥
राघवेणैवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः। प्रत्युवाच महाबाहुं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥१२॥
शृणु राजन्यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम्। चत्वरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु च ॥१३॥
दुष्करं कृतवान्रामः समुद्रे सेतुबन्धनम्। अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद्देवैरपि सदानवैः ॥१४॥
रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः। वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥१५॥
हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः। अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरायत् ॥१६॥
कीदृशं हृदये तस्य सीतासंभोगजं सुखम्। अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ॥१७॥
लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम्। रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्स्यति ॥१८॥
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति। यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥१९॥
एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः। नगरेषु च सर्वेषु राजञ्जनपदेषु च ॥२०॥
तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत्। उवाच सुहृदः सर्वान्कथमेतद्वदन्तु माम् ॥२१॥
सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च। प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतन्न संशयः ॥२२॥

बुरी जो बात नगरवासी कहते हों वह कहो, मैं अच्छी बातें करूँगा और बुरी बातें छोड़ दूँगा। जिसे वे अच्छी समझेंगे उन्हें मैं करूँगा और जिसे बुरी समझेंगे उन्हें छोड़ दूँगा ॥ १० ॥ तुम विश्वासपूर्वक निर्भय और निश्चिन्त होकर कहो ॥ पुरवासी तथा राज्यवासी जो बुरी बात कहते हों वह कहो। वे हमारी जो निन्दा करते हों वह कहो ॥११॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर सावधान होकर हाथ जोड़कर भद्र मधुर स्वरमें बोला ॥१२॥ राजन्, सुनिए, नगरवासी चौपालमें, बाजारमें गलियोंमें, वनमें, उपवनमें जो अच्छी-बुरी बातें कहते हैं वह सुनिए ॥ १३ ॥ रामचन्द्रने समुद्रमें सेतु बाँधकर अद्भुत किया, पहलेके देवता तथा दानवोंने भी ऐसी बात न सुनी होगी ॥ १४ ॥ अजेय रावणको सेना और वाहनके साथ मारा। वानरों, भालुओं और राक्षसोंको वश किया ॥ १५ ॥ युद्धमें रावणको मारकर रामचन्द्र सीताको ले आये और क्रोध न करके उन्होंने उसे घरमें रख लिया ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके हृदयमें सीताके सम्भोगका सुख कैसा बद्धमूल हुआ है। जिसे गोदमें उठाकर रावण बलपूर्वक ले गया, जो लंकामें गयी और अशोकवाटिकामें राक्षसोंके अधीन होकर रही उसको रामचन्द्रने निन्दित नहीं समझा। उसका त्याग नहीं किया। १७,१८ ॥ अब हम लोगोंकी स्त्रियोंके सम्बन्धकी भी ऐसी बातें सह्य होंगी, वे बुरी नहीं समझी जायँगी, क्योंकि राजा जो करता है प्रजा उसीका अनुकरण करती है ॥ १९ ॥ राजन्, समस्त नगर तथा राज्यमें इसी प्रकारकी अनेक बातें लोग कहते हैं ॥ २० ॥ भद्रकी बातें सुनकर रामचन्द्र बहुत ही दुःखी होकर मित्रोंसे बोले—इसकी बातें कैसी हैं सत्य हैं या असत्य, आप लोग कहें ॥ २१ ॥ उन सभीने भूमिपर सिर रखकर रामचन्द्रको प्रणाम किया और वे बड़ी दीनतासे बोले, यह ऐसा ही है, यह जो कह रहा है वे ही बातें

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् । विसर्जयामास तदा वयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्य उत्तरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

विसृज्य तु सुहृद्वर्गं बुद्ध्या निश्चित्य राघवः । समीपे द्वाःस्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । भरतं च महाभागं शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । लक्ष्मणस्य गृहं गत्वा प्रविवेशानिवारितः ॥ ३ ॥
उवाच सुमहात्मानं वर्धयित्वा कृताञ्जलिः । द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥
बाढमित्येव सौमित्रिः कृत्वा राघवशासनम् । प्राद्रवद्रथमारुह्य राघवस्य निवेशनम् ॥ ५ ॥
प्रयान्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा द्वाःस्थो भरतमन्तिकात् । उवाच भरतं तत्र वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
विनयावनतो भूत्वा राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति । भरतस्तु वचः श्रुत्वा द्वास्थाद्रामसमीरितम् ॥ ७ ॥
उत्पपातासनात्तूर्णं पद्भ्यामेव महाबलः । दृष्ट्वा प्रयान्तं भरतं त्वरमाणः कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥
शत्रुघ्नभवनं गत्वा ततो वाक्यमुवाच ह । एह्यागच्छ रघुश्रेष्ठ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥
गतो हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महायशाः । श्रुत्वा तु वचनं तस्य शत्रुघ्नः परमासनात् ॥१०॥
शिरसा वन्द्य धरणीं प्रययौ यत्र राघवः । द्वाःस्थस्त्वागम्य रामाय सर्वानेव कृताञ्जलिः ॥११॥

नगरमें कही जाती हैं ॥ २२ ॥ रामचन्द्रने सबकी कही बातें सुनीं, और उन्होंने उन सबको जानेकी छुट्टी दी ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

मित्रोंको विदा करके रामचन्द्रने विचार करके कर्तव्य निश्चित किया और वे बैठे हुए द्वारपालसे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ शीघ्र ही सुमित्रापुत्र शुभलक्षण लक्ष्मणको महाभाग भरतको और अपराजित शत्रुघ्नको ले आओ ॥ २ ॥ द्वारपालने हाथजोड़कर रामचन्द्रकी आज्ञा सुनी और वह लक्ष्मणके घरमें बिना रुकावटके चला गया ॥ ३ ॥ हाथजोड़कर तथा उनका जयजयकार करके वह बोला, राजा आपको देखना चाहते हैं शीघ्र ही बिना विलम्ब किये जाइए ॥ ४ ॥ लक्ष्मणने "अच्छा" कहकर रामचन्द्रकी आज्ञा मान ली और वे रथपर बैठकर शीघ्र ही रामचन्द्रके घरकी ओर दौड़े ॥ ५ ॥ लक्ष्मणको जाते देखकर द्वारपाल भरतके पास गया। हाथजोड़कर जयजयकार करके नम्रतापूर्वक वह उनसे बोला, आपको राजा देखना चाहते हैं। द्वारपालके मुँहसे रामचन्द्रकी आज्ञा सुनकर भरत आसनसे शीघ्र ही उठे और वे पैदल ही चले ॥ भरतको जाते देखकर वह हाथ जोड़े शीघ्रतापूर्वक शत्रुघ्नके पास गया और बोला, रघुश्रेष्ठ आइए, आपको राजा देखना चाहते हैं ॥ ६,९ ॥ लक्ष्मण और यशस्वी भरत पहले ही जा चुके थे। द्वारपालके वचन सुनते ही शत्रुघ्न आसनसे उठे, सिर झुकाकर पृथिवीको प्रणाम कर वे रामचन्द्रके पास चले ॥ द्वारपालने हाथ जोड़कर कहा कि महाराज, आपके सभी भाई उपस्थित हो गये।

निवेदयामास तथा भ्रातॄन्स्वान्समुपस्थितान् । कुमारानागतान्छ्रुत्वा चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥१२॥
अवाङ्मुखो दीनमना द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् । प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं त्वरान्वितः ॥१३॥
एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणाः प्रिया मम । आज्ञप्तास्तु नरेन्द्रेण कुमाराः शुक्लवाससः ॥१४॥
प्रह्वाः प्राञ्जलयो भूत्वा विविशुस्ते समाहिताः । ते तु दृष्ट्वा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ॥१५॥
संध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम् । बाष्पपूर्णे च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्य ते ॥१६॥
ततोऽभिवाद्य त्वरिताः पादौ रामस्य मूर्धभिः । तस्थुः समाहिताः सर्वे रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत् ॥१७॥
तान्परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महाबलः । आसनेष्वासतेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह ॥१८॥
भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम । भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥१९॥
भवन्तः कृतशास्त्रार्था बुद्ध्या च परिनिष्ठिताः । संभूय च मदर्थोऽयमन्वेष्टव्यो नरेश्वराः ॥२०॥
तथा वदति काकुत्स्थे अवधानपरायणाः । उद्विग्नमनसः सर्वे किं नु राजाभिधास्यति ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्ग ४५

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् । उवाच वाक्यं काकुत्स्थो मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

रामचन्द्र चिन्तासे व्याकुल थे । कुमार आगये हैं यह सुनकर सिर नीचे किये हो दीनतापूर्वक वे द्वारपालसे बोले । मेरे पास शीघ्र ही कुमारोंको ले आओ ॥ १० ॥ १३ ॥ इन्हींके अधीन मेरा जीवन है, ये ही मेरे प्रिय प्राण हैं । आज्ञा पानेपर शुक्लवस्त्र धारण किये हुए वे कुमार विनयपूर्वक हाथजोड़कर सावधानीसे रामचन्द्रके पास गये । उन लोगोंने देखा कि रामचन्द्रका मुँह ग्रह-गृहीत चन्द्रमाके समान, सन्ध्याकालीन सूर्यके समान प्रभाहीन हो गया है । बुद्धिमान रामचन्द्रकी आँखें आँसूसे भर गयी हैं, शोभाहीन कमलके समान रामचन्द्रका मुख उन लोगोंने देखा ॥ १४ ॥ १६ ॥ उन लोगोंने शीघ्रतापूर्वक रामचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम किया और वे सावधानीसे खड़े हो गये । रामचन्द्र केवल आँसू बरसाते रहे ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने उनका आलिङ्गन किया और बाहुसे उन लोगोंको उठाकर कहा, आसनोंपर बैठो । वे पुनः उनसे बोले ॥१८॥ आपलोग मेरे सर्वस्व हैं, जीवन हैं । आप हो लोगोंके दिये राज्यका मैं पालन करता हूँ ॥ १९ ॥ आप लोगोंने शास्त्रोंका अनुशीलन किया है । आपकी बुद्धि प्रामाणिक है । अतएव आप लोगोंको मेरी बात माननी चाहिए, जो मैं कहूँ उसका समर्थन करना चाहिए ॥ २० ॥ रामचन्द्रकी बातें वे सावधान होकर सुन रहे थे, पर उनका मन इस कारण उद्विग्न था कि न मालूम राजा क्या कहें ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

वे यथास्थान बैठ गये, वे दुःखी थे, रामचन्द्र उनसे बोले, इनका भी मुँह म्लान होगया था ॥१॥ आपका कल्याण हो । आपलोग मेरी बात सुनें, मन इधर उधर न ले जाँय, अथवा मेरे विरुद्ध कोई बात

सर्वे शृणुत भद्रं वो मा कुरुध्वं मनोऽन्यथा । पौराणां मम सीतायां यादृशी वर्तते कथा ॥ २ ॥
पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च । वर्तते मयि बीभत्सा सा मे मर्माणि कृन्तति ॥ ३ ॥
अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् । सीतापि सत्कुले जाता जनकानां महात्मनाम् ॥ ४ ॥
जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने । रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितो मया ॥ ५ ॥
तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति । अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम् ॥ ६ ॥
प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा । प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ॥ ७ ॥
अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः । चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां संनिधौ पुरा ॥ ८ ॥
ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम् । एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसंनिधौ ॥ ९ ॥
लङ्काद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेदिता । अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ॥१०॥
ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः । अयं तु मे महान्वादः शोकश्च हृदि वर्तते ॥११॥
पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च । अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ॥१२॥
पतत्येवाधमाँल्लोकान्यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते । अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ॥१३॥
कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् । अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान्वा पुरुषर्षभाः ॥१४॥
अपवादभयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् । तस्माद्भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोकसागरे ॥१५॥

न सोचें । सीताके सम्बन्धमें पुरवासियोंमें जो बात फैली हुई है वह आपलोग मुझसे सुनें ॥ २ ॥ पुरवासियों और राज्यवासियोंमें मेरा बड़ा अपवाद फैला हुआ है । मेरी बड़ी निन्दा हो रही है जिससे मेरा कलेजा कटा जा रहा है ॥ ३ ॥ ॥ मैं महात्मा इक्ष्वाकुओंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ । सीता भी महात्मा जनकके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है ॥ ४ ॥ वत्स, तुम जानते हो सीताको निर्जन दण्डक वनसे रावण हर ले गया और मैंने रावणका नाश किया ॥ ५ ॥ वहाँ लंकामें मैंने सीताके सम्बन्धमें सोचा कि यह इतने दिनोंतक यहाँ लंकामें रही है इसको राजधानीमें कैसे ले जाऊँ ॥ ६ ॥ उस समय अपनी शुद्धिका विश्वास दिलानेके लिए सीताने अग्निमें प्रवेश-लक्ष्मण, तुम्हारे और देवताओंके सामने अग्निने सीताको निष्पाप कहा है, आकाशचारी वायुने भी इसे निष्पाप कहा है । देवता और ऋषियोंके सामने चन्द्रमा और सूर्यने भी इसे निष्पाप कहा है । इस प्रकार शुद्ध आचरणवाली सीताको इन्द्रने देवता और गन्धर्वोंके सामने लंका द्वीपमें मुझे सौंपा । मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीताको शुद्ध समझती है ॥ ७, १० ॥ इसीसे सीताको लेकर मैं अयोध्या आया । पर यह निन्दा बहुत बड़ी है, इससे मुझे दुःख भी है ॥ ११ ॥ पुरवासियों तथा राज्यवासियोंमें फैली यह निन्दा बड़ी भयंकर है । जिस किसी भी प्राणीकी निन्दा संसारमें होती है, किसीका अपवाद फैलता है वह तबतक निन्दित लोकोंमें रहता है जबतक उसकी निन्दा होती रहती है । भले आदमी उन कीर्तिकी निन्दा करते हैं और कीर्तिकी प्रशंसा करते हैं ॥ १२, १३ ॥ अतएव महाप्राण मनुष्य कीर्तिके लिए उद्योग करते हैं । पुरुषश्रेष्ठो, मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ आप लोगोंको छोड़ सकता हूँ केवल अपवादके भयसे डरकर फिर सीताका छोड़ना कौन बड़ी बात है । अब इस प्रकार मैं शोकसमुद्रमें पड़ा हूँ आपलोग मुझे देखें, मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ १५ ॥ इससे अधिक कोई

नहि पश्याम्यहं भूतं किंचिद्दुःखमतोऽधिकम् । श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ॥१६॥
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज । गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ॥१७॥
आश्रमो दिव्यसंकाशस्तमसातीरमाश्रितः । तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ॥१८॥
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम । न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथंचन ॥१९॥
तस्मात्त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा । अप्रीतिर्हि परा मह्यं त्वयैतत्प्रतिवारिते ॥२०॥
शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च । ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन ।
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् ॥२१॥
मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः । इतोऽद्य नीयतां सीता कुरुष्व वचनं मम ॥२२॥
पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरेऽहमाश्रमान् । पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण पिहितेक्षणः । सविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ।
शोकसंविग्नहृदयो निशश्वास यथा द्विपः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः । सुमन्त्रमब्रवीद्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥
सारथे तुरगाञ्शीघ्रान्योजयस्व रथोत्तमे । स्वास्तीर्णं राजवचनात्सीतायाश्चासनं शुभम् ॥ २ ॥

दुःख मुझे हुआ था यह मैं नहीं जानता । अतएव लक्ष्मण, कल सुमन्तके रथपर सवार होकर तथा सीता-को उसपर बैठाकर अपने राज्यके बाहर जाकर छोड़ आओ । गङ्गाके उसपार तमसा तीरपर महात्मा वाल्मीकिका आश्रम है ॥ वहीं निर्जनस्थानमें इसे छोड़ आओ ॥१६,१८ ॥ लक्ष्मण, वहाँ जाकर शीघ्र लौट आओ, मेरी आज्ञा मानो । लक्ष्मण, सीताके सम्बन्धमें तुम मुझसे कुछ भी न कहो ॥ १९ ॥ अब तुम जाओ, इस विषयमें सोच-विचार मत करो । मेरे कहनेके विरुद्ध यदि तुम कुछ कहोगे तो इससे मैं बहुत अप्रसन्न हूँगा ॥ २० ॥ मैं आप लोगोंको अपने चरणोंकी तथा जीवनकी शपथ देता हूँ, मेरे इस वचनके विरोधमें आप कुछ भी न कहें, मुझे कुछ भी न समझावें । यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मेरा शत्रु होगा क्योंकि उसने मेरे अभीष्टका नाश किया है ॥ २१ ॥ यदि आपलोग मेरा शासन मानते हों तो मेरा कहना करें । यहाँसे सीताको लेजाकर मेरी आज्ञाका पालन करो ॥ २२ ॥ सीताने भी पहले मुझसे कहा है कि गङ्गातीरके आश्रमोंको मैं देखना चाहती हूँ, अतएव उसका यह मनोरथ पूरा करो ॥ २३ ॥ रामचन्द्रने ऐसा कहा । उनकी आँखें आँसूसे भर गयीं । महात्मा रामचन्द्र अपने भाइयोंके साथ अपने महलमें गये और शोकसे व्यथित हृदय होकर हाथीके समान लम्बी साँस लेने लगे ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

उस रातके बीतनेपर दुःखी और म्लान मुख लक्ष्मण सुमंत्रसे बोले ॥ १ ॥ राजाकी आज्ञासे तेज चलनेवाले घोड़े रथमें जोतो और उसपर सीताके लिए उत्तम आसन बिछा दो ॥ २ ॥ राजाकी

सीता हि राजवचनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम् । मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥ ३ ॥
सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः । रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशय्यया ॥ ४ ॥
आनीयोवाच सौमित्रिं मित्राणां मानवर्धनम् । रथोऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥ ५ ॥
एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेश्मनि लक्ष्मणः । प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार नरर्षभः ॥ ६ ॥
त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः । नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥ ७ ॥
गङ्गातीरे मया देवि ऋषीणामाश्रमाञ्शुभान् । शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥ ८ ॥
अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अवनेया भविष्यसि । एवमुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ९ ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत् । वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥१०॥
गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे । इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम् ॥११॥
वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च । सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ॥१२॥
प्रययौ शीघ्रतुरगं रामस्याज्ञामनुस्मरन् । अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥१३॥
अशुभानि बहून्येव पश्यामि रघुनन्दन । नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ॥१४॥
हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये । औत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ॥१५॥
शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन । अपि स्वस्ति भवेत्तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल ॥१६॥
श्वश्रूणां चैव मे वीर सर्वासामविशेषतः । पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ॥१७॥

आज्ञासे मैं सीताको पुण्यात्मा महर्षियोंके आश्रममें ले जाऊँगा । शीघ्र रथ लाओ ॥ ३ ॥ लक्ष्मणके कहनेसे सुमन्त्र रथ ले आये, उसमें तेज घोड़े जुते थे, सुन्दर और सुखकारी आसन बिछा था । रथ लाकर सुमंत्र मित्रोंका मान बढ़ानेवाले लक्ष्मणसे बोले, प्रभो यह रथ आ गया जो काम हो वह कीजिए ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण राजमहलमें गये और वे सीतासे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥ तुमने राजासे आश्रममें जानेकी प्रार्थनाकी थी, राजाने तुम्हें आश्रममें भेजनेकी प्रतिज्ञाकी थी उन्होंने तुमको आश्रममें ले जानेकी मुझे आज्ञा दी है ॥७॥ राजाकी आज्ञासे गङ्गा तीरवासी मुनियोंके आश्रममें मैं तुमको पहुँचाऊँगा । महात्मा लक्ष्मणकी बातसे सीता बहुत प्रसन्न हुई उन्होंने जानेकी इच्छा प्रकट की । वस्त्र तथा अनेक प्रकारके बहुमूल्य रत्न लेकर वे जानेके लिए तयार हुईं । ये सब वस्त्र तथा बहुमूल्य विविध-रत्न मैं मुनिस्त्रियोंको दूँगी । लक्ष्मणने 'अच्छा' कहकर सीताको रथपर बैठाया ॥८, १२॥ रामकी आज्ञा-का स्मरण करते हुए लक्ष्मण शीघ्रगामी घोड़ोंके रथपर चढ़कर चले । सीता लक्ष्मणसे बोलीं ॥ १३ ॥ रघुनन्दन बहुतसे अशकुन हो रहे हैं, मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है, कलेजा हिलता है ॥ १४ ॥ सौमित्रे, मेरा हृदय अस्वस्थ हो रहा है, मन घबड़ा रहा है । मुनियोंके आश्रम देखनेकी उत्कण्ठा बढ़ रही है, बड़ी अधीरता मालूम हो रही है, । पथुलोचन, मैं समूची पृथिवीको सूनी देख रही हूँ । भ्रातृवत्सल, तुम्हारे भाईका कल्याण हो ॥ १५, १६ ॥ वीर, मेरी सब सासोंका कल्याण हो, नगर तथा राज्यके प्राणियों-का कल्याण हो ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके सीताने हाथ जोड़कर देवताओंसे निवेदन किया । सीताकी बातोंका मतलब समझकर लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया । उनका हृदय सूख गया था,

इत्यञ्जलिकृता सीता देवता अभ्ययाचत । लक्ष्मणोऽर्थं ततः श्रुत्वा शिरसा वन्द्य मैथिलीम् ॥१८॥
शिवमित्यब्रवीद्धृष्टो हृदयेन विशुष्यता । ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ॥१९॥
प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् । योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ॥२०॥
शिरसा धारयिष्यामि त्रियम्बक इवौजसा । सोऽश्वान्विचारयित्वा तु रथे युक्तान्मनोजवान् ॥२१॥
आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् । सा तु सूतस्य वचनादारुरोह रथोत्तमम् ॥२२॥
सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमंत्रेण च धीमता । आससाद विशालाक्षी गङ्गां पापविनाशिनीम् ॥२३॥
अथार्धदिवसं गत्वा भागीरथ्या जलाशयम् । निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनः ॥२४॥
सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् । उवाच वाक्यं धर्मज्ञा किमिदं रुद्यते त्वया ॥२५॥
जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम । हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥२६॥
नित्यं त्वं रामपार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ । कच्चिद्विनाकृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥२७॥
ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण । न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥२८॥
तारयस्व च मां गंगां दर्शयस्व च तापसान् । ततो मुनिभ्यो वासांसि दास्याम्याभरणानि च ॥२९॥
ततः कृत्वा महर्षीणां यथार्हमभिवादनम् । तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥३०॥
ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् । त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् ॥३१॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे । नाविकानाह्वयामास लक्ष्मणः परवीरहा ।

पर वे प्रसन्नता प्रकट करके बोले-कल्याण हो । पुनः गोमती तीरपर आकर उन लोगोंने विश्राम किया, वहीं रात बितायी ॥ १८, १९ ॥ प्रातःकाल उठकर लक्ष्मणने सारथिसे कहा शीघ्र रथ जोतो, आज गङ्गाका जल मैं सिरपर चढ़ाऊँगा, जिस प्रकार पराक्रमसे शिवने गङ्गाको मस्तकपर धारण किया था । सारथिने मनके समान वेगवान् घोड़ोंको टहलाकर रथमें जोता ॥ २० ॥ २१ ॥ हाथ जोड़कर सारथिने सीतासे कहा, सवार हूजिए । सारथिके कहनेसे सीता रथपर बैठीं ॥ २२ ॥ लक्ष्मण बुद्धिमान सुमंत्रके साथ विशालाक्षी सीता, पापविनाशिनी गङ्गाके तीरपर पहुँचीं ॥ २३ ॥ दो पहरके समय लक्ष्मण गङ्गाके तीरपर पहुँचे । गङ्गाको देखकर दुःखी लक्ष्मण जोरसे रोने लगे ॥ २४ ॥ लक्ष्मणको व्याकुल देखकर सीता बोलीं, सीता सावधान थीं, उन्हें किसी प्रकारकी घबड़ाहट न थी । उन्होंने कहा–इस समय तुम रोने क्यों लगे ॥ २५ ॥ बहुत दिनोंसे मैं गङ्गाके तीरपर आना चाहती थी, यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिलाषा थी । लक्ष्मण, इस हर्षके समयमें तुम मुझे दुःखिनी क्यों बनाना चाहते हो ॥ २६ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, तुम तो रामचन्द्रके पास सदा रहते हो, क्या दो ही रात उनके बिना रहनेसे तुम दुःखी हो गये हो ॥ २७ ॥ लक्ष्मण, रामचन्द्र मुझे भी अपने जीवनसे भी अधिक प्रिय हैं । पर मैं तो शोक नहीं कर रही हूँ तुम पागल मत बनो ॥ २८ । मुझे गङ्गाके पार ले चलो, मुनियोंका दर्शन कराओ । मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी ॥ २९ ॥ वहाँ यथोचित महर्षियोंका अभिवादन करूँगी और एकरात वहाँ रहकर अपनी नगरीमें आऊँगी ॥ ३० ॥ मेरा मन भी सिंहविशाल रक्षा, कृशोदर रामचन्द्रको देखनेके लिए उत्कण्ठित हो रहा है ॥ ३१ ॥ सीताके ये वचन सुनकर लक्ष्मणने अपनी आँखें पोछीं और मल्लाहोंको बुलाया,

इयं च सज्जा नौश्चेति दाशाः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥३२॥
तितीर्षुर्लक्ष्मणो गंगां शुभां नावमुपारुहत् । गंगां संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः ॥३३॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

अथ नावं सुविस्तीर्णां नैषादीं राघवानुजः । आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥ १ ॥
सुमन्त्रं चैव सरथं स्थीयतामिति लक्ष्मणः । उवाच शोकसंतप्तः प्रयाहीति च नाविकम् ॥ २ ॥
ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः । उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंवृतः ॥ ३ ॥
हृद्गतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता । अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥ ४ ॥
श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् । न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥ ५ ॥
प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने । इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥ ६ ॥
रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः । मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण । पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥ ८ ॥
शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत्त्वं संतापमागतः । तद्ब्रूयाः संनिधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते ॥ ९ ॥
वैदेह्या चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः । अवाङ्मुखो बाष्पगलो वाक्यमेतदुवाच ह ॥१०॥

मल्लाहोंने हाथजोड़कर कहा कि महाराज, यह नाव तयार है ॥ ३२ ॥ गङ्गापार करनेके लिए लक्ष्मण नावपर बैठे। सावधानीसे उन्होंने सीताको भी पार उतारा ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छियालीसवां सर्ग समाप्त ॥४६॥

अनन्तर मल्लाहकी लायी हुई लम्बी-चौड़ी सजी हुई नावपर लक्ष्मण पहले सीताको बैठाकर बैठे ॥ १ ॥ लक्ष्मणने सुमन्त्रको रथ लेकर ठहरनेके लिए कहा और शोकविह्वल होकर उन्होंने मल्लाहको उसपार चलनेके लिए कहा ॥ २ ॥ गङ्गाके पार आकर लक्ष्मण हाथजोड़कर सीतासे बोले, लक्ष्मणकी आँखें आँसूसे भर गयी थीं । ३ ॥ वैदेहि, जिस कामके करनेसे लोकमें मेरी निन्दा होगी बुद्धिमान होकर भी आर्य रामचन्द्रने मुझे वही काम सौंपा । यह मेरे हृदयका बहुत बड़ा काँटा हुआ है ॥ ४ ॥ मेरा मरना ही अच्छा है । मृत्युसे भी बढ़कर यदि कुछ हो तो वह भी अच्छा है, पर ऐसे लोकनिन्दित कार्यकी जिम्मेदारी अच्छी नहीं ॥ ५ ॥ शोभने, आप प्रसन्न हों, मुझे दोष न दें, ऐसा कहकर और हाथ जोड़कर लक्ष्मण पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ६ ॥ हाथ जोड़कर रो रहे हैं और अपनी मृत्यु चाहते हैं, लक्ष्मणको इस अवस्थामें देखकर सीता बहुत व्याकुल हुईं और वे बोलीं ॥ ७ ॥ यह क्या बात है मैं समझ नहीं रही हूँ, सब बातें ठीक-ठीक कहो । मैं तुमको स्वस्थ नहीं देख रही हूँ । राजा तो कुशलसे हैं ? ॥ ८ ॥ मैं तुमको राजाकी शपथ देती हूँ, जिस कारण तुम्हें कष्ट हो रहा है वह सब ठीक-ठीक मुझसे कहो, मैं तुमको यह आज्ञा देती हूँ ॥ ९ ॥ सीताके प्रेरित करनेपर लक्ष्मण बोले, उनका गला भर आया था, उनका उत्साह

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम् । पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे ॥११॥
रामः संतप्तहृदयो मा निवेद्य गृहं गतः । न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ॥१२॥
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात्पृष्ठतः कृतः । सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम संनिधौ ॥१३॥
पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा । आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ॥१४॥
राज्ञः शासनमादाय तथैव किल दौर्हृदम् । तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ॥१५॥
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे । राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः ॥१६॥
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः । पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥१७॥
पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि । श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा । परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥ १ ॥
सा मुहूर्तमिवासंज्ञा बाष्पपर्याकुलेक्षणा । लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥ २ ॥
मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण । धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ ३ ॥

जाता रहा था । सिर झुकाकर वे बोले ॥१०॥ तुम्हारे सम्बन्धका भयंकर जनापवाद जो नगर और राज्यमें फैला है वह रामचन्द्रने सभामें सुना ॥ ११ ॥ इससे रामचन्द्रका हृदय संतप्त हो गया और यह खबर हम लोगोंको सुनाकर वे घरमें चले गये । देवि, जिन बातोंको राजाने दुःखमिश्रित क्रोधके कारण अपने हृदयमें छिपा रखा है वे कलङ्ककी बातें तुम्हारे सामने कहने योग्य नहीं हैं । तुम निर्दोष हो, मेरे सामने ही तुम्हारी निर्दोषिता प्रमाणित हुई है, पर राजाने तुम्हारा त्याग किया है ॥ १२, १३ ॥ क्योंकि वे जनापवादसे डरते हैं । देवि, तुम कुछ और न समझना, मुझे अपराधी न समझना । आश्रमके समीप ले जाकर मैं तुम्हें छोड़ दूँगा ॥ १४ ॥ राजाकी आज्ञा तथा तुम्हारी इच्छासे मैं ऐसा करूँगा । यही गङ्गाके तीरपर महर्षियोंका आश्रम है । वह पवित्र और रमणीय है । शुभे, तुम दुःख मत करो । यशस्वी मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि मेरे पिता राजा दसरथके बड़े मित्र हैं । उन्ही महात्माके आश्रममें जाकर सुखपूर्वक रहो । जनकपुत्रि उपवास करके अकेली रहो ॥ १५, १७ ॥ पतिव्रत्यका पालन करो, रामचन्द्रको सदा हृदयमें रखो, देवि, इस प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १८ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्गसमाप्त ॥४७॥

लक्ष्मणके कठोर वचन सुनकर सीताको बड़ा दुःख हुआ और वे पृथिवीपर गिर पड़ीं ॥ १ ॥ एक क्षणके लिए बेहोश हो गयीं और आँसूसे उनकी आँखें भर आयी । वे बहुत ही दीन स्वरमे लक्ष्मणसे बोलीं ॥ लक्ष्मण, निश्चय ही ब्रह्माने दुःख सहनेके लिए ही मेरा यह शरीर बनाया है, अतएव मैं आज-

किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः । याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥ ४ ॥
पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी । अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥ ५ ॥
सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता । आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥ ६ ॥
किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो । कस्मिन्वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥ ७ ॥
न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले । त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥ ८ ॥
यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् । निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥
श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिमग्रहेण च । शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ॥१०॥
शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण । वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः ॥११॥
जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव । भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥१२॥
अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने । यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥१३॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः । वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥१४॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा । परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥१५॥
यत्तु पौरजने राजन्धर्मेण समवाप्नुयात् । अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥१६॥
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन । पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥१७॥

दुःखमयी मूर्ति देख रही हूँ ॥ ३ ॥ मैंने पूर्व जन्ममें कौन पाप किया है, किसको स्त्री-वियोग कराया है, जिससे शुद्ध-आचरणवाली सती मुझको राजाने छोड़ा है । मेरा त्याग किया है ॥ ४ ॥ लक्ष्मण, पहले मैंने रामचन्द्रके साथ आश्रममें निवास किया था, वहाँके दुःखोंमें रहकर भी मैंने पुनः आश्रममें रहनेका उनसे अनुरोध किया था ॥ ५ ॥ सौम्य, वह मैं निर्जन आश्रममें कैसे रहूँगी, दुःखिनी मैं अपने दुःख किससे कहूँगी ॥ ६ ॥ "किस कारणसे महात्मा रामचन्द्रने तुम्हारा त्याग किया है, तुमने कौन बुरा कर्म किया है", मुनियोंके इस प्रश्नका मैं क्या उत्तर दूँगी ॥ ७ ॥ लक्ष्मण इस समय गङ्गाके जलमें मैं अपने प्राण भी नहीं छोड़ सकती, क्योंकि मेरे पतिका राजवंश नष्ट हो जायगा ॥ ८ ॥ लक्ष्मण, जैसी आज्ञा हो वैसा करो, मुझ दुःखिनीको छोड़ दो, राजाकी आज्ञाका पालन करो, मेरा यह बात सुनो ॥ ९ ॥ बिना भेदके सब सासोंको मेरी ओरसे हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम करना और राजाको भी प्रणाम करके कुशल कहना ॥ १० ॥ मस्तक नवाकर और लोगोंसे भी मेरा कुशल कहना । धर्ममें सावधान रहनेवाले राजासे भी कहना ॥११॥ राघव, आप जानते हैं कि सीता यथार्थतः शुद्ध है, आपमें भक्ति रखनेवाली और सदा आपका हित चाहनेवाली है ॥ १२ ॥ वीर, अपयशसे डरकर ही आपने मेरा त्याग किया है । आपकी जो निन्दा, जो अपवाद हो रहा है, उसको मैं दूर करूँगी, क्योंकि आप मेरे आश्रय हैं । धर्ममें जाग्रत रहनेवाले राजासे तुम कहना कि आप अपने भाइयोंके ऐसा पुरवासियोंसे व्यवहार करें । यह श्रेष्ठ धर्म है, इससे उत्तमकीर्ति प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ १५ ॥ पुरवासियोंके प्रति धर्मानुकूल आचरणसे जो प्राप्त होता है, वह परम धर्म है । नरश्रेष्ठ, मैं अपने शरीरके विषयमें कुछ भी नहीं सोचती । मेरे विषयमें पुरवासियोंका जैसा अपवाद है वह बना रहे इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं । क्योंकि पति ही स्त्रियोंका देवता है, गुरु है, बन्धु है ॥ १६, १७ ॥

प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः । इति मद्वचनाद्रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥१८॥
निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् । एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥१९॥
शिरसा वन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक ह । प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः ॥२०॥
ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वक्ष्यसि शोभने । दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ॥२१॥
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने । इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य पुनर्नावमुपारुहत् ॥२२॥
आरुरोह पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् । स गत्वा चोत्तरं तीरं शोकभारसमन्वितः ॥२३॥
संमूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद्द्रुतम् । मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ॥२४॥
चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ । दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।
निरीक्षमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ॥२५॥
सा दुःखभारावनता यशस्विनी यशोधरा नाथमपश्यती सती ।
रुरोद सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

सीतां तु रुदतीं दृष्ट्वा ते तत्र मुनिदारकाः । प्राद्रवन्यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः ॥ १ ॥
अभिवाद्य मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये । सर्वं निवेदयामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥

अतएव प्राणोंसे भी पतिका प्रिय करना चाहिए, अतएव शरीरके अपवादका मुझे कष्ट नहीं है, त्यागका भी कष्ट नहीं है क्योंकि इससे आपके यशकी रक्षा होती है । मेरी ओरसे ये ही बातें रामचन्द्रसे कहना । १८॥ तुम मुझे देखकर जाओ, मेरा ऋतु समय टल गया है, मैं गर्भवती हूँ। सीताके ऐसा कहनेपर दुःखी लक्ष्मण ने पृथवीपर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। पर वे बोल न सके । जोरसे रोते-रोते उन्होंने सीताकी प्रदक्षिणा की ॥ १९ ॥ २० ॥ एक क्षण विचार करके वे सीतासे बोले, शोभने, मुझे आप क्या कहती हैं । निष्पापे, मैंने आपके रूप आजतक नहीं देखे हैं, केवल चरण ही देखे हैं । अतएव इस समय रामके बिना मैं तुमको कैसे देख सकूँगा । ऐसा उनसे कहकर तथा प्रणामकर लक्ष्मण पुनः नावपर बैठे ॥ २१, २२ ॥ नावपर बैठकर उन्होंने मल्लाहको नाव चलानेकी आज्ञा दी, शोकभार पीड़ित लक्ष्मण गङ्गाके इसपार आये ॥ २३ ॥ दुःख मूढ लक्ष्मण शीघ्र रथपर बैठे और वे बार-बार घूमकर अनाथ सीताको देखने लगे । २४। गंगाके उसपार अनाथके समान बिलखती सीताको लक्ष्मण देखते हुए चले । रथ और लक्ष्मणको दूर गया देखकर सीता उद्विग्न हुई और उन्हें शोक सताने लगा ॥ २५ ॥ दुःखिनी सीता दुःख भारसे झुक गयी थीं यशस्विनी सती सीता पतिको पास न देखकर मयूर-ध्वनिसे प्रतिध्वनित वनमें जोरसे रोने लगीं ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

सीताको रोती देखकर मुनिकुमार, तीक्ष्णबुद्धि भगवान् वाल्मीकिके पास गये ॥ १ ॥ मुनिके

अदृष्टपूर्वा भगवन्कस्याप्येषा महात्मनः। पत्नी श्रीरिव संमोहाद्विरौति विकृतानना ॥ ३ ॥
भगवन्साधु पश्येस्त्वं देवतामिव खाच्च्युताम्। नद्यास्तु तीरे भगवन्वरस्त्री कापि दुःखिता ॥ ४ ॥
दृष्टास्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा। अनर्हा दुःखशोकाभ्यामेका दीना अनाथवत् ॥ ५ ॥
तां सीतां शोकभारार्तां वाल्मीकिर्मुनिपुंगवः। उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥ ६ ॥
स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया। जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥ ७ ॥
आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना। कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥ ८ ॥
तव चैव महाभागे विदितं मम तत्त्वतः। सर्वं च विदितं मह्यं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ ९ ॥
अपापां वेद्मि सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा। विस्रब्धा भव वैदेहि सांप्रतं मयि वर्तसे ॥१०॥
आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः। तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः॥११॥
इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा। यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥१२॥
श्रुत्वा तु भाषितं सीता मुनेः परममद्भुतम्। शिरसा वन्द्य चरणौ तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥१३॥
तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात्। तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्या मुनिपत्नयः।
उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥१४॥
स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं च ते। अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे ॥१५॥

चरणोंमें नमस्कार करके उन मुनि कुमारोंने महर्षिसे सीताके रोनेकी सब बातें कहीं ॥ २ ॥ भगवन् किसी महात्माकी स्त्री जो-लक्ष्मीके समान है और जिसे हम लोगोंने पहले नहीं देखा है वह दुःखसे मुँह टेढ़ाकर के रो रही है ॥ ३ ॥ भगवन्, वह स्त्री आकाशसे आये देवताके समान है। आप उसे ठीक-ठीक पहचान सकेंगे। भगवन्, नदीके तीरपर एक दुःखिनी स्त्री हम लोगोंने देखी है, वह रो रही है, निश्चय उसे कोई दुःख है। वह बेचारी शोक, दुःख सहनेके योग्य नहीं है। वह इस समय अकेली है, अनाथ है ॥ ४ ॥ शोकपीड़ित सीताके पास जाकर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि मधुर स्वरमें बोले, मानों वे अपने तेजसे उसे ह्लादित कर रहे हों ॥ ६ ॥ तुम दसरथकी पुत्रवधू और महराज रामकी प्रिय महारानी हो और राजा जनककी कन्या हो, पतिव्रते, तुम्हारा स्वागत ॥७॥ जिस समय तुम यहाँ आ रही थी उसी समय धार्मिक निष्ठाके कारण जान लिया था और इसका कारण भी मैंने अपने-ही-अपने जान लिया है ॥८ ॥ महाभागे तुम्हारे सम्बन्धकी जितनी बातें हैं वे सब ठीक-ठीक मुझे मालूम हैं। त्रिलोकमें जो कुछ है और होता है, वह मुझे मालूम है ॥ ९ ॥ सीते, तुम निष्पाप हो, यह मैं तपस्याके द्वारा प्राप्त ज्ञानसे जानता हूँ, वैदेहि, तुम निश्चिन्त हो जाओ, क्योंकि अब तुम मेरे पास हो, अर्थात् यहाँ तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट न होगा ॥ १० ॥ यहाँ आश्रमके पास ही तपस्विनियाँ तपस्या करती हैं, वे सब बच्चेके समान तुम्हारा पालन करेंगी ॥ ११ ॥ यह अर्घ्य ग्रहण करो, तुम निर्भय और निश्चिन्त हो जाओ। तुम अपने घर आयी हो दुःख न करो ॥ १२ ॥ मुनिके अद्भुत वचन सुनकर सीताने सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और हाथजोड़कर उनकी आज्ञा स्वीकार की ॥ १३ ॥ मुनि आश्रमकी ओर चले। सीता हाथजोड़कर उनके पीछे-पीछे चलीं। मुनिके साथ सीताको आती देखकर मुनिस्त्रियाँ उनके पास आयीं और वे प्रसन्नता

तासां तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् । सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥१६॥
स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती । अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥१७॥
इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि । गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥१८॥
मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं परिदाय महायशाः । स्वमाश्रमं शिष्यवृतः पुनरायान्महातपाः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे संप्रवेशिताम् । संतापमगमद्घोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥
अब्रवीच्च महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रसारथिम् । सीतासंतापजं दुःखं पश्य रामस्य सारथे ॥ २ ॥
ततो दुःखतरं किं नु राघवस्य भविष्यति । पत्नीं शुद्धसमाचारां विसृज्य जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥
व्यक्तं दैवादहं मन्ये राघवस्य विनाभवम् । वैदेह्या सारथे नित्यं दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ ४ ॥
यो हि देवान्सगन्धर्वानसुरान्सह राक्षसैः । निहन्याद्राघवः क्रुद्धः स दैवं पर्युपासते ॥ ५ ॥
पुरा रामः पितुर्वाक्याद्दण्डके विजने वने । उषित्वा नव वर्षाणि पञ्च चैव महावने ॥ ६ ॥

पूर्वक बोलीं ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ, आपका स्वागत, बहुत दिनोंपर आपका आना हुआ है, हम सब आपको प्रणाम करती हैं, आज्ञा कीजिए हम क्या करें ॥ १५ ॥ उनके वचन सुनकर वाल्मीकि बोले, रामचन्द्रकी महारानी यह सीता आयी है ॥ १६ ॥ यह राजा दशरथकी पुत्रबधू और महाराज जनककी कन्या है, यह निष्पाप है, पर पतिने इसका त्याग किया है, मुझे इसका सदा पालन करना है ॥ १७ ॥ इसको आपलोग स्नेहसे देखो, यह बड़े कुलकी है तथा स्वयं भी बड़ी है, इससे तथा मेरे कहनेसे यह आप लोगोंकी विशेष आदरणीया है ॥ १८ ॥ इस प्रकार बार-बार कहकर मुनिने मुनि पत्नियोंको सीता सौंपी और वे महातपस्वी शिष्योंके साथ अपने आश्रममें गये ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

दुःखी लक्ष्मणने देखा कि वाल्मीकि मुनि सीताको आश्रममें ले गये यह देखकर उन्हें बहुत ही दुःख हुआ ॥ १ ॥ तेजस्वी लक्ष्मण सुमन्त्रसे बोले, जो मन्त्री भी थे और सारथि भी थे। सारथि, रामचन्द्रको सीताके वियोगका कितना बड़ा दुःख हुआ है, इसका विचार करो ॥ २ ॥ इससे अधिक उन्हें दुःख क्या होगा कि शुद्ध आचारवाली सीताका उन्हें त्याग करना पड़ा है ॥ ३ ॥ सारथि, रामचन्द्रको यह सीताका वियोग पूर्वजन्मके किसी कर्मसे हुआ है। यह निश्चित है। भाग्यका अतिक्रम तो नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥ जो रामचन्द्र देवताओं, गन्धर्वों, असुरों और राक्षसोंको युद्धमें क्रोधकरके मार सकते हैं उनको भी भाग्यके आधीन होना पड़ा है ॥ ५ ॥ पहले रामचन्द्रने पिताके कहनेसे निर्जन दण्डकवनमें नव और पाँच चौदह वर्षोंतक निवास किया था ॥ ६ ॥ उसके बाद सीताका निर्वासन हुआ यह नितान्त

ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम् । पौराणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥
को नु धर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन्यशोहरे । मैथिलीं समनुप्राप्तः पौरैर्हीनार्थवादिभिः ॥ ८ ॥
एता वाचो बहुविधाः श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिताः । सुमन्त्रः श्रद्धया प्राज्ञो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥
न संतापस्त्वया कार्यः सौमित्रे मैथिलीं प्रति । दृष्टमेतत्पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥१०॥
भविष्यति दृढं रामो दुःखप्रायो विसौख्यभाक् । प्राप्स्यते च महाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैर्द्रुतम् ॥११॥
त्वां चैव मैथिलीं चैव शत्रुघ्नभरतौ तथा । स त्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता महान् ॥१२॥
इदं त्वयि न वक्तव्यं सौमित्रे भरतेऽपि वा । राज्ञा वो व्याहृतं वाक्यं दुर्वासा यदुवाच ह ॥१३॥
महाजनसमीपे च मम चैव नरर्षभ । ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य चसंनिधौ ॥१४॥
ऋषेस्तु वचनं श्रुत्वा मामाह पुरुषर्षभः । सूत न क्वचिदेवं ते वक्तव्यं जनसंनिधौ ॥१५॥
तस्याहं लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहितः । नैव जात्वनृतं कुर्यामिति मे सौम्य दर्शनम् ॥१६॥
सर्वथैव न वक्तव्यं मया सौम्य तवाग्रतः । यदि ते श्रवणे श्रद्धा श्रूयतां रघुनन्दन ॥१७॥
यद्यप्यहं नरेन्द्रेण रहस्यं श्रावितं पुरा । तथाप्युदाहरिष्यामि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥१८॥
येनेदमीदृशं प्राप्तं दुःखं शोकसमन्वितम् । न त्वया भरतस्याग्रे शत्रुघ्नस्यापि संनिधौ ॥१९॥

दुःखकी बात है, पुरवासियोंके कहनेसे जो रामचन्द्रने सीताका निर्वासन किया है, मुझे उनका यह कार्य बड़ा ही क्रूर मालूम पड़ता है ॥ ७ ॥ न्याय-विरुद्ध बोलनेवाले पुरवासियोंके कारण जो सीताका त्याग किया है, उनका यह काम अवश्य ही यशको नष्ट करनेवाला है। साध्वी स्त्रीको त्याग करनेसे प्रशंसा नहीं होती और यह काम करके उन्होंने कौनसा धर्म पा लिया है ॥ ८ ॥ ये तथा इसी प्रकारकी और लक्ष्मण की बातें सुनकर बुद्धिमान सुमन्त्र श्रद्धासे बोले ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, सीताके लिए तुम दुःख मत करो, बहुत पहले तुम्हारे पिताके सामने ही ब्राह्मणोंने यह बात जान ली थी। सीताका निर्वासन होगा यह बात उन लोगोंने कह दी थी ॥ १० ॥ रामचन्द्रका जीवन दुःखमय होगा, सुखहीन होगा, यह बात उनलोगोंने पहले ही कह दी थी, अपने प्रियजनोंका वियोग रामचन्द्रको अभी और होगा तथा वह शीघ्र होगा, यह निश्चित है ॥११॥ तुमको, सीताको और भरत-शत्रुघ्नको धर्मात्मा रामचन्द्र सदाके लिए त्याग देंगे ॥१२॥ उस समय तुम्हारे पिता दसरथने मुझे दुर्वासाकी कही यह बात तुमसे तथा भरतसे कहनेके लिए मना किया था ॥ १३ ॥ अनेक प्रतिष्ठित मनुष्यों, मेरे तथा महर्षि वसिष्ठके सामने दुर्वासाने यह बात कही थी ॥१४॥ मुनिके वचन सुनकर पुरुषश्रेष्ठ दसरथने मुझसे कहा, सूत ये बातें और लोगोंसे न कहना ॥१५॥ उन लोकपाल समान राजाके उस वचनको सावधान होकर सत्य रखूँगा, उसको असत्य न बनाऊँगा, यह मेरा संकल्प है ॥ १६ ॥ सौम्य, यह बात तुम्हारे सामने भी कहने लायक नहीं है, फिर भी रघुनन्दन, आपकी इच्छा सुननेकी हो तो सुनिए ॥ १७ ॥ यद्यपि राजाने पहले यह रहस्य मुझसे कहा था, यह गुप्त तथा गुप्त रखनेकी बात उन्होंने कही थी, फिर भी मैं कहूँगा, क्योंकि भाग्य पलटा नहीं जा सकता ॥ १८ ॥ उसी भाग्यके कारण आज ऐसा शोक, दुःख भोगना पड़ा है। पर भरत और शत्रुघ्नसे तुम ये

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरार्थपदं महत् । तथ्यं ब्रूहीति सौमित्रिः सूतं तं वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

तथा संचोदितः सूतो लक्ष्मणेन महात्मना । तद्वाक्यमृषिणा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
पुरा नाम्ना हि दुर्वासा अत्रेः पुत्रो महामुनिः । वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये वार्षिक्यं समुवास ह ॥ २ ॥
तमाश्रमं महातेजाः पिता ते सुमहायशाः । पुरोहितं महात्मानं दिदृक्षुरगमत्स्वयम् ॥ ३ ॥
स दृष्ट्वा सूर्यसंकाशं ज्वलन्तमिव तेजसा । उपविष्टं वसिष्ठस्य सव्यपार्श्वे महामुनिम् ॥ ४ ॥
तौ मुनी तापसश्रेष्ठौ विनीतावभ्यवादयत् । स ताभ्यां पूजितो राजा स्वागतेनासनेन च ।
पाद्येन फलमूलैश्च उवास मुनिभिः सह ॥ ५ ॥
तेषां तत्रोपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः । बभूवुः परमर्षीणां मध्यादित्यगतेऽहनि ॥ ६ ॥
ततः कथायां कस्यांचित्प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः । उवाच तं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ॥ ७ ॥
भगवन्किंप्रमाणेन मम वंशो भविष्यति । किमायुश्च हि मे रामः पुत्राश्चान्ये किमायुषः ॥ ८ ॥
रामस्य च सुता ये स्युस्तेषामायुः कियद्भवेत् । काम्यया भगवन्ब्रूहि वंशस्यास्य गतिं मम ॥ ९ ॥
तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं राज्ञो दशरथस्य तु । दुर्वासाः सुमहातेजा व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१०॥
शृणु राजन्पुरा वृत्तं तदा देवासुरे युधि । दैत्याः सुरैर्भर्त्स्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः ।
तया दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्नभयास्तदा ॥११॥

बातें न कहना ॥ १९ ॥ सुमन्त्रके गम्भीर अर्थ और शब्दवाले ये वचन सुनकर लक्ष्मण बोले, सुमन्त्र, जो सच्ची बात हो वह कहो ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

महात्मा लक्ष्मणके द्वारा प्रेरित होकर सुमन्त्र ऋषिकी कही वह बात कहनेके लिए तयार हुये ॥ १ ॥ पहले अत्रिपुत्र महामुनि दुर्वासाने वसिष्ठके, पवित्र आश्रममें चार महीनोंके लिए निवास किया था ॥ २ ॥ उस आश्रममें यशस्वी और तेजस्वी तुम्हारे पिता अपने पुरोहित महात्मा वसिष्ठको देखनेके लिए स्वयं गये ॥ ३ ॥ सूर्य सदृश तेजसे प्रकाशमान वसिष्ठके दाहिनी ओर बैठे महामुनि दुर्वासाको उन्होंने देखा ॥ ४ ॥ राजाने उन दोनों मुनियोंको प्रणाम किया । उन लोगोंने राजाका सत्कार किया, स्वागत किया किया और आसन दिया । पाद्य और फल-मूल आदि दिये । राजा वहाँ रहने लगे ॥ ५ ॥ वहाँ दोपहरके समय जब सब ऋषि एकत्र होते थे, उस समय अनेक मधुर कथाएँ होती थीं ॥ ६ ॥ उसी कथा प्रसंगमें एक दिन हाथ जोड़कर विनय पूर्वक राजा अत्रिपुत्र तपस्वी दुर्वासासे बोले ॥ ७ ॥ भगवन् मेरा वंश कितने समय तक चलेगा, मेरे रामकी कितनी आयु होगी, तथा मेरे अन्य पुत्रोंकी आयु कितनी होगी ॥८॥ रामके जो लड़के होंगे उनकी आयु कितनी होगी । मैं अपने वंशकी बातें जानना चाहता हूँ, कहिए ॥ ९ ॥ राजा दसरथके ये वचन सुनकर तेजस्वी दुर्वासा कहने लगे ॥ १० ॥ राजन्, सुनिए, जो बात पहले देवासुर

तथा परिगृहीतांस्तान्दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरेश्वरः। चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ॥१२॥
ततस्तां निहतां दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्वहः। शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं रिपुकुलार्दनम् ॥१३॥
यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः। तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ॥१४॥
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्। शापाभिहतचेतास्तु स्वात्मना भावितोऽभवत् ॥१५॥
अर्चयामास तं देवं भृगुः शापेन पीडितः। तपसाराधितो देवो ह्यब्रवीद्भक्तवत्सलः ॥१६॥
लोकानां संप्रियार्थं तु तं शापं ग्राह्यमुक्तवान्। इति शप्तो महातेजा भृगुणा पूर्वजन्मनि ॥१७॥
इहागतो हि पुत्रत्वं तव पार्थिवसत्तम। राम इत्यभिविख्यातस्त्रिषु लोकेषु मानद ॥१८॥
तत्फलं प्राप्स्यते चापि भृगुशापकृतं महत्। अयोध्याः पतिरामो दीर्घकालं भविष्यति ॥१९॥
सुखिनश्च समृद्धाश्च भविष्यन्त्यस्य येऽनुगाः। दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२०॥
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति। समृद्धैश्चाश्वमेधैश्च इष्ट्वा परमदुर्जयः ॥२१॥
राजवंशांश्च बहुशो बहून्संस्थापयिष्यति। द्वौ पुत्रौ तु भविष्येते सीतायां राघवस्य तु ॥२२॥
स सर्वमखिलं राज्ञो वंशस्याह गतागतम्। आख्याय सुमहातेजास्तूष्णीमासीन्महामुनिः ॥२३॥
तूष्णीं भूते तदा तस्मिन्राजा दशरथो मुनौ। अभिवाद्य महात्मानौ पुनरगयात्पुरोत्तमम् ॥२४॥
एतद्वचो मया तत्र मुनिना व्याहृतं पुरा। श्रुतं हृदि च निक्षिप्तं नान्यथा तद्भविष्यति ॥२५॥

संग्राममें हुई थी। देवताओंके द्वारा पीड़ित होकर दैत्य, भृगुपत्नीकी शरण गये और उनसे अभय पाकर वे वहीं रहने लगे ॥ ११ ॥ भृगुपत्नीने दैत्योंको आश्रय दिया है यह देखकर देवराज विष्णुने क्रोध किया और उन्होंने तीखे चक्रसे भृगुपत्नीका सर काट लिया ॥ १२ ॥ अपनी पत्नीका वध देखकर भृगुकुल-श्रेष्ठ भृगुने क्रोध किया और उन्होंने क्रोधपूर्वक शत्रुकुल नाशक विष्णुको शाप दिया ॥ १३ ॥ तुमने क्रोध-से मेरी अवध्य पत्नीका वध किया है, अतएव, जनार्दन, तुमको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा ॥ १४ ॥ और वहाँ बहुत वर्षोंतक स्त्रीका वियोग सहना पड़ेगा। इस शापसे उनका चित व्याकुल हुआ और वे सोचमें पड़ गये ॥ १५ ॥ शापसे पीड़ित होकर वे भृगु भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे, क्योंकि भगवान् अपनी शक्तिसे मेरा शाप असत्य न बना दें ॥ १६ ॥ तपस्यासे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् उनसे बोले, "संसारके कल्याणके लिए मैं आपके शापको स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार तेजस्वी विष्णुको पूर्वजन्ममें भृगुने शाप दिया था ॥ १७ ॥ राजश्रेष्ठ, इसी लिए विष्णुने तुम्हारे पुत्र होकर जन्म धारण किया है और राम नामसे वे प्रसिद्ध हुए हैं ॥ १८ ॥ रामचन्द्र अयोध्यामें बहुत दिनोंतक राज्य करेंगे और भृगुके शापका फल भोगेंगे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके अनुयायी सुखी और समृद्ध होंगे। दसहजार और दस सौ वर्षोंतक यहाँ राज्य करके रामचन्द्र ब्रह्मलोकमें जाँयगे और अश्वमेध यज्ञ करेंगे जिसमें अधिक धन खर्च होगा ॥ २०, २१ ॥ ये अनेक राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। कई नए राज्य स्थापित करेंगे। सीताके गर्भसे इनके दो पुत्र होंगे ॥२२॥ इस प्रकार उन्होंने समान राजवंशका उत्पत्ति और विनाश कहा। पुनः तेजस्वी महामुनि चुप हो गये ॥२३॥ मुनिके चुप हो जानेपर महाराज दशरथ दोनों मुनियोंको प्रणाम करके अपनी राजधानीमें आये ॥ २४ ॥ मुनिकी कही यह बात मैंने उस समय सुनी थी और वह मनमें

सीतायाश्च ततः पुत्रावभिषेक्ष्यति राघवः। अन्यत्र न त्वयोध्यायां मुनेस्तु वचनं यथा ॥२६॥
एवं गते न संतापं कर्तुमर्हसि राघव। सीतार्थे राघवार्थे वा दृढो भव नरोत्तम ॥२७॥
श्रुत्वा तु व्याहृतं वाक्यं सूतस्य परमाद्भुतम्। प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥२८॥
ततः संवदतोरेवं सूतलक्ष्मणयोः पथि। अस्तमर्के गते वासं केशिन्यां तावथोषतुः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

तत्र तां रजनीमुष्य केशिन्यां रघुनन्दनः। प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥ १ ॥
ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः। अयोध्यां रत्नसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनावृताम् ॥ २ ॥
सौमित्रिस्तु परं दैन्यं जगाम सुमहामतिः। रामपादौ समासाद्य वक्ष्यामि किमहं गतः ॥ ३ ॥
तस्यैवं चिन्तयानस्य भवनं शशिसंनिभम्। रामस्य परमोदारं पुरस्तात्समदृश्यत ॥ ४ ॥
राज्ञस्तु भवनद्वारि सोऽवतीर्य नरोत्तमः। अवाङ्मुखो दीनमनाः प्रविवेशानिवारितः ॥ ५ ॥
स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ॥ ६ ॥
जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतनः। उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ ७ ॥
आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य विसृज्य जनकात्मजाम्। गङ्गातीरे यथोद्दिष्टे वाल्मीकेराश्रमे शुभे ॥ ८ ॥

रख ली थी, किसीसे कही नहीं थी, पर क्या वह असत्य हो सकता है ॥ २५ ॥ रामचन्द्र सीताके दोनों पुत्रोंका अभिषेक करेंगे, पर अयोध्याके राज्यपर नहीं कहीं अन्यत्र, ऐसा ही मुनिने कहा है ॥ २६ ॥ यही वास्तुस्थिति है, अतएव इस विषयमें तुम्हें शोक न करना चाहिए। सीता और रामके विषयमें तुम निश्चिन्त हो जाओ, क्योंकि ऐसा ही यह होनेवाला था ॥ २७ ॥ सारथिका कहा अद्भुत वचन सुनकर लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सारथिको साधुवाद दिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार रात्रिमें उन दोनोंके बातचीत करते करते सूर्यास्त हो गया और उनदोनोंने केशिनी नदीके तीरपर निवास किया ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

रातभर केशिनी नदीके तीरपर निवास करके प्रातःकाल होनेपर लक्ष्मण चले ॥ १ ॥ दो पहर होनेपर महारथ लक्ष्मण अयोध्या पहुँचे। जो नगरी रत्नोंसे भरी हुई हैं तथा जहाँके निवासी सुखी और भली हैं ॥ २ ॥ वहाँ पहुँचकर बुद्धिमान् लक्ष्मण बड़े दुःखी हुए, वे सोचने लगे कि रामचन्द्रके पास जाकर मैं क्या कहूँगा ॥३॥ वे सोच ही रहे थे इतनेमें चन्द्रमाके समान श्वेत और विशाल रामचन्द्रका भवन आ गया ॥ ४ ॥ राजभवनके द्वारपर रथसे उतरकर सिर झुकाएँ तथा दुखित मन लक्ष्मणने बिना रुकावटके प्रवेश किया ॥ ५ ॥ लक्ष्मणने दुःखी रामचन्द्रको, जिनकी आँखें भरी थीं, सिंहासनपर बैठे देखा ॥ ६ ॥ दुःखी लक्ष्मणने उनके चरण छुए, और हाथ जोड़कर दीनता पूर्वक सावधान होकर उनसे बोले ॥ ७ ॥ आर्यकी आज्ञासे जनकपुत्री सीताको गंगातीरके वाल्मीकि मुनिके आश्रममें मैं छोड़ आया हूँ ॥ ८ ॥

तत्र तां च शुभाचारामाश्रमान्ते यशस्विनीम् । पुनरप्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥ ९ ॥
मा शुचः पुरुषव्याघ्र कालस्य गतिरीदृशी । त्वद्विधा नहि शोचन्ति बुद्धिमन्तो मनस्विनः ॥१०॥
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥११॥
तस्मात्पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च । नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥१२॥
शक्तस्त्वमात्मनात्मानं विनेतुं मनसा मनः । लोकान्सर्वांश्च काकुत्स्थ किं पुनः शोकमात्मनः ॥१३॥
नेदृशेषु विमुह्यन्ति त्वद्विधाः पुरुषर्षभाः । अपवादः स किल ते पुनरेष्यति राघव ॥१४॥
यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवादभयान्नृप । सोऽपवादः पुरे राजन्भविष्यति न संशयः ॥१५॥
सत्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः । त्यजेमां दुर्बलां बुद्धिं संतापं मा कुरुष्व ह ॥१६॥
एवमुक्तः स काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना । उवाच परया प्रीत्या सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥१७॥
एवमेतन्नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण । परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ॥१८॥
निर्वृत्तिश्चागता सौम्य संतापश्च निराकृतः । भवद्वाक्यैः सुरुचिरैरनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

उस आश्रमके पास यशस्विनी शुद्ध आचरणवाली सीताको छोड़कर पुनः आपकी चरण सेवा करनेके लिए आया हूँ ॥ ९ ॥ पुरुषसिंह, आप शोक न करें, कालकी यही गति है, आपके समान बुद्धिमान और मनस्वी मनुष्य शोक नहीं किया करते ॥ १० ॥ संसारके ऐश्वर्योंका अन्त क्षय है अर्थात वे विनाशी हैं, उन्नतिका अन्त पतन है, संयोगकी समाप्ति वियोगमें और जीवनकी समाप्ति मरणमें होती है ॥ ११ ॥ अतएव पुत्र, स्त्री, मित्र, धन आदिसे बहुत प्रेम नहीं करना चाहिए इनमें विशेष आसक्त नहीं होना चाहिए क्योंकि इनका वियोग अनिवार्य है, निश्चित है ॥१२॥ रामचन्द्र, आप अपनी आत्मासे अपने अन्तःकरण-को मनसे मनको, तथा समस्त लोकोंको शिक्षा दे सकते हैं उन्हें धैर्य रखनेके लिए तयार कर सकते हैं, फिर अपने शोकको रोकना आपके लिए कौन बड़ी बात है ॥ १३ ॥ ऐसे समयोंमें आपके समान श्रेष्ठ पुरुष घबड़ाते नहीं हैं । राघव, वह अपवाद आपको पुनः लगेगा । जिस अपवादके भयसे आपने सीताका त्याग किया है वह अपवाद अब नगरमें फैलेगा, लोग कहेंगे कि दूसरेके घरमें रही सीताके लिए रामचन्द्र शोक करते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ अतएव पुरुषसिंह, आप सावधान हो जांय, धैर्यधारण करें, इस दुर्बलता का त्याग करें सन्ताप करना छोड़ें ॥ १६ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर मित्रवत्सल रामचन्द्र बड़े प्रेमसे उनसे बोले ॥ १७ ॥ नरश्रेष्ठ, ठीक है, तुम जो कहते हो वह ठीक है, अतएव मुझे अपने शासनकार्यमें लगे रहकर ही सन्तोष करना चाहिए ॥ १८ ॥ लक्ष्मण, तुम्हारे सुन्दर वाक्योंसे मेरी आँख खुल गयीं, दुःख जाता रहा, सन्ताप निवृत्त हुआ ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बावनवां सर्ग समाप्त ॥५२॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं निशम्य परमाद्भुतम् । सुप्रीतश्चाभवद्रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
दुर्लभस्त्वीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः । यादृशस्त्वं महाबुद्धिर्मम सौम्य मनोऽनुगः ॥ २ ॥
यच्च मे हृदये किंचिद्वर्तते शुभलक्षण । तन्निशामय च श्रुत्वा कुरुष्व वचनं मम ॥ ३ ॥
चत्वारो दिवसाः सौम्य कार्यं पौरजनस्य च । अकुर्वाणस्य सौमित्रे तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ ४ ॥
आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा । कार्यार्थिनश्च पुरुषाः स्त्रियो वा पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥
पौरकार्याणि यो राजा न करोति दिने दिने । संवृते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः ॥ ६ ॥
श्रूयते हि पुरा राजा नृगो नाम महायशाः । बभूव पृथिवीपालो ब्रह्मण्यः सत्यवाक्शुचिः ॥ ७ ॥
स कदाचिद्गवां कोटीः सवत्साः स्वर्णभूषिताः । नृदेवो भूमिदेवेभ्यः पुष्करेषु ददौ नृपः ॥ ८ ॥
ततः सङ्गाद्गता धेनुः सवत्सा स्पर्शितानघ । ब्राह्मणस्याहिताग्नेस्तु दरिद्रस्योञ्छवर्तिनः ॥ ९ ॥
स नष्टां गां क्षुधार्तो वै अन्विषंस्तत्र तत्र ह । नापश्यत्सर्वराष्ट्रेषु संवत्सरगणान्बहून् ॥१०॥
ततः कनखलं गत्वा जीर्णवत्सां निरामयाम् । ददर्श गां स्वकां धेनुं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११॥
अथ तां नामधेयेन स्वकेनोवाच ब्राह्मणः । आगच्छ शबलेत्येवं सा तु शुश्राव गोः स्वरम् ॥१२॥
तस्य तं स्वरमाज्ञाय क्षुधार्तस्य द्विजस्य वै । अन्वगात्पृष्ठतः सा गौर्गच्छन्तं पावकोपमम् ॥१३॥
योऽपि पालयते विप्रः सोऽपि गामन्वगाद्द्रुतम् । गत्वा च तमृषिं चष्टे मम गौरिति सत्वरम् ॥१४॥
स्पर्शिता राजसिंहेन मम दत्ता नृगेण ह । तयोर्ब्राह्मणयोर्वादो महानासीद्विपश्चितोः ॥१५॥

लक्ष्मणके वे अद्भुत वचन सुनकर रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और वे बोले ॥ १ ॥ तुम्हारे समान भाई दुर्लभ हैं, विशेषकर ऐसे समयमें। क्योंकि तुम बुद्धिमान हो और मेरे मनके भावोंको समझनेवाले हो ॥ २ ॥ शुभलक्षण मेरे हृदयमें जो है उसे सुनो और वैसा करो ॥ ३ ॥ चार दिनोंसे मैंने पुरवासियों-का कोई काम नहीं किया है, इससे मेरे मनमें बड़ा कष्ट हो रहा है ॥ ४ ॥ अतएव प्रजाओं, पुरोहितों, मन्त्रियों तथा वादी-प्रतिवादियोंको, जो स्त्री हों या पुरुष, बुलाओ ॥ ५ ॥ जो राजा प्रतिदिन नगरवासियों-का कार्य नहीं करता वह मरनेपर घोर नरकमें जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ सुना जाता है कि पहले यशस्वी राजा नृग थे, वे ब्राह्मणोंके भक्त, सत्यवादी और पवित्र थे ॥ ७ ॥ उन्होंने एक करोड़ गौ, जो बच्छेवाली थीं और सुवर्ण भूषित थीं, पुष्करक्षेत्रमें ब्राह्मणोंको दीं ॥ ८ ॥ उन गौओंमें दरिद्र उञ्छसे जीनेवाले अग्निहोत्री ब्राह्मणकी एक गौ चली गयी, जो दान पहले दी गयी थी ॥ ९ ॥ वह भूखा ब्राह्मण अपनी बच्छेवाली गौको चारोंओर राज्यमें कई वर्षोंतक ढूँढ़ता रहा पर उसे वह मिली नहीं ॥ १० ॥ पुनः वह कनखल गया और वहाँ उसने अपनी गौ एक ब्राह्मणके घरमें देखी। वह गौ भली-चंगी थी और उसका बच्छा बड़ा हो गया था ॥११॥ ब्राह्मणने अपने रखे हुए "सबला" नामसे अपनी गौ को बुलाया। उस गौने अपने पुराने स्वामीका शब्द सुना ॥१२॥ स्वर पहचानकर अग्निके समान तेजस्वी उस भूखे ब्राह्मण-के पीछे-पीछे वह चली ॥१३॥ जिस ब्राह्मणने उसे पाल रखा था वह भी उसके पीछे-पीछे चला और शीघ्र ब्राह्मणके पास पहुँचकर वह बोला, यह गौ हमारी है ॥१४॥ राजा नृगने दान करके यह गौ दी है,

विवदन्तौ ततोऽन्योन्यं दातारमभिजग्मतुः । तौ राजभवनद्वारि न प्राप्तौ नृगशासनम् ॥१६॥
अहोरात्राण्यनेकानि वसन्तौ क्रोधमीयतुः । ऊचतुश्च महात्मानौ तावुभौ द्विजसत्तमौ ।
क्रुद्धौ परमसंप्राप्तौ वाक्यं घोराभिसंहितम् ॥१७॥
अर्थिनां कार्यसिद्ध्यर्थं यस्मात् नैषि दर्शनम् । अदृश्यः सर्वभूतानां कृकलासो भविष्यसि ॥१८॥
बहुवर्षसहस्राणि बहुवर्षशतानि च । श्वभ्रे त्वं कृकलीभूतो दीर्घकालं निवत्स्यसि ॥१९॥
उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन्यदूनां कीर्तिवर्धनः । वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रह ॥२०॥
स ते मोक्षयिता शापाद्राजंस्तस्माद्भविष्यसि । कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥२१॥
भारावतरणार्थं हि नारनारायणावुभौ । उत्पत्स्येते महावीर्यौ कलौ युग उपस्थिते ॥२२॥
एवं तौ शापमुत्सृज्य ब्राह्मणौ विगतज्वरौ । तां गां हि दुर्बलां वृद्धां ददतुर्ब्राह्मणाय वै ॥२३॥
एवं स राजा तं शापमुपभुङ्क्ते सुदारुणम् । कार्यार्थिनां विमर्दो हि राज्ञां दोषाय कल्पते ॥२४॥
तच्छीघ्रं दर्शनं मह्यमभिवर्तन्तु कार्यिणः । सुकृतस्य हि कार्यस्य फलं नावैति पार्थिवः ।
तस्माद्गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्यवाञ्जनः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार उन विद्वान् ब्राह्मणोंका विवाद बढ़ गया ॥ १५ ॥ वे दोनों दाता राजाके पास गये, पर भीतर जानेकी राजाकी आज्ञा उन्हें नहीं मिली ॥ १६ ॥ कई दिन-रात वे वहाँ ठहरे रहे इससे उन दोनों महात्मा ब्राह्मणोंको क्रोध आया और उन लोगोंने राजाके लिए बड़े कठोर वचन कहे ॥ १७ ॥ अर्थियों, वादी और प्रतिवादी की कार्य सिद्धिके लिए तुम दर्शन नहीं देते हो, अतएव तुम प्राणियोंके अदृश्य होकर गिरगिट हो जाओगे ॥ १८ ॥ कई हजार और कई सौ वर्षोंतक गिरगिट होकर गढ़ेमें रहोगे ॥ १९ ॥ मनुष्य शरीरधारी विष्णु, वासुदेवके नामसे यदुवंशमें उत्पन्न होंगे जिससे उस वंशकी कीर्ति बढ़ेगी ॥२०॥ राजन्, इस शापसे वे ही तुम्हारा उद्धार करेंगे । इतने लम्बे समयमें तुम्हारे पापका प्रायश्चित हो जायगा ॥ २१ ॥ कलियुगके प्रारम्भमें पृथिवीका भार उतारनेके लिए वे दोनों महाबली नर और नारायण अवतार लेंगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार शाप देकर वे दोनों ब्राह्मण निश्चिन्त हो गये । उनका क्रोध जाता रहा । उन दोनोंने वह बूढ़ी और दुबली गौ ब्राह्मणको दे दी ॥ २३ ॥ इस प्रकार वे राजा उस शापका भयंकर फल भोग रहे हैं । कार्यार्थियोंकी उपेक्षा करनेसे राजाको ऐसे कष्ट भोगने पड़ते हैं ॥ २४ ॥ अतएव कार्यार्थी लोग मेरा दर्शन करें मेरे पास आवें । अच्छी तरह सोचकर राजा जो काम करता है, जो निर्णय करता है उसका फल नहीं पाता है, अतएव तुम जाओ और कार्यार्थियोंको परखो ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तीरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परमार्थवित् । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
अल्पापराधे काकुत्स्थ द्विजाभ्यां शाप ईदृशः । महान्नृगस्य राजर्षेर्यमदण्ड इवापरः ॥ २ ॥
श्रुत्वा तु पापसंयुक्तमात्मानं पुरुषर्षभ । किमुवाच नृगो राजा द्विजौ क्रोधसमन्वितौ ॥ ३ ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राघवः पुनरब्रवीत् । शृणु सौम्य यथा पूर्वं स राजा शापविक्षतः ॥ ४ ॥
अथाध्वनि गतौ विप्रौ विज्ञाय स नृपस्तदा । आहूय मन्त्रिणः सर्वान्नैगमान्सपुरोधसः ॥ ५ ॥
तानुवाच नृगो राजा सर्वांश्च प्रकृतीस्तथा । दुःखेन सुसमाविष्टः श्रूयतां मे समाहिताः ॥ ६ ॥
नारदः पर्वतश्चैव मम दत्वा महद्भयम् । गतौ त्रिभुवनं भद्रौ वायुभूतावनिन्दितौ ॥ ७ ॥
कुमारोऽयं वसुर्नाम स चेहाद्याभिषिच्यताम् । श्वभ्रं च यत्सुखस्पर्शं क्रियतां शिल्पिभिर्मम ॥ ८ ॥
यत्राहं संक्षयिष्यामि शापं ब्राह्मणनिःसृतम् । वर्षघ्नमेकं श्वभ्रं तु हिमघ्नमपरं तथा ॥ ९ ॥
ग्रीष्मघ्नं तु सुखस्पर्शमेकं कुर्वन्तु शिल्पिनः । फलवन्तश्च ये वृक्षाः पुष्पवत्यश्च या लताः ॥१०॥
विरोप्यन्तां बहुविधाश्छायावन्तश्च गुल्मिनः । क्रियतां रमणीयं च श्वभ्राणां सर्वतोदिशम् ॥११॥
सुखमत्र वसिष्यामि यावत्कालस्य पर्ययः । पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्तां तेषु नित्यशः ॥१२॥
परिवार्य यथा मे स्युरध्यर्धं योजनं तथा । एवं कृत्वा विधानं स संनिवेश्य वसुं तदा ॥१३॥
धर्मनित्यः प्रजाः पुत्र क्षत्रधर्मेण पालय । प्रत्यक्षं ते यथा शापो द्विजाभ्यां मयि पातितः ॥१४॥

रामचन्द्रकी बातें सुनकर परमार्थक लक्ष्मण हाथ जोड़कर तेजस्वी रामसे बोले ॥१। इस थोड़े अपराधके लिए ब्राह्मणोंने राजा नृगको दूसरे काल दण्डके समान भयंकर इतना बड़ा शाप दिया ॥ २ ॥ राजा नृगने अपनेको शापित सुना तब वे उन क्रोधी ब्राह्मणोंसे क्या बोले ॥ ३ ॥ रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले, सौम्य सुनो, शापपीड़ित राजाने पहले जो किया था ॥ ४ ॥ जब राजाने यह जाना कि वे दोनों ब्राह्मण आकाश मार्गसे चले गये तब उन्होंने समस्त मन्त्रियों, वेदज्ञों और पुरोहितोंको बुलाया, उन्होंने प्रजाको भी बुलाया । दुःखी होकर राजाने उन लोगोंसे कहा—आपलोग सावधान होकर सुनें ॥ ५,६ ॥ नारद और पर्वत दोनों ऋषियोंने बड़े भयकी बात मुझको सुनाकर वायु रूपसे वे त्रिभुवनमें विचरने चले गये ॥ ७ ॥ इस वसुनामके कुमारको इस राज्यपर आपलोग अभिषेक करें और शिल्पियोंसे मेरे लिये कोमल गढा बनवा दो, जहाँ रहकर ऋषियोंके शापके दिन मैं बिताऊँ। एक गढा वर्षाके लिए जहाँ रहनेसे वर्षासे रक्षा हो सके, एक गढ़ा सर्दीसे रक्षा करनेवाला होना चाहिए, एक गर्मीके दिनोंका होना चाहिए जहाँ गरमी न लगे, इनकी जमीन कोमल होना चाहिए जो गड़े नहीं। ऐसे गढ़े शिल्पियोंसे बनवाओ। फलवाले वृक्ष, पुष्पवाली लताएँ, छायावाले गुल्म उन गढ़ोंके चारोंओर रोपवा दो और इस प्रकार वहाँके स्थान रमणीय बनवा दो ॥८, ११॥ जबतक समय पलटा खाय तबतक मैं यही रहूँगा। उन गढ़ोंके पास फूल भी लगवा दो जो आधा योजनतक फैलें यह सब मेरे लिए करो। इस प्रकार व्यवस्था करके और अपने पुत्रको राज्यपर बैठाकर राजा बोले, पुत्र सदा धर्ममें दृढ़ रहो, धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो। तुमने प्रत्यक्ष ही देखा है कि दो ब्राह्मणोंने मुझे शाप दिया है। मेरे उस छोटे अपराधके लिए भी उन लोगोंने इतना

नरश्रेष्ठ सरोषाभ्यामपराधेऽपि तादृशे । मा कृथास्त्वनुसंतापं मत्कृते हि नरर्षभ ॥१५॥
कृतान्तः कुशलः पुत्र येनास्मि व्यसनीकृतः । प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति गन्तव्यान्येव गच्छति ॥१६॥
लब्धव्यान्येव लभते दुःखानि च सुखानि च । पूर्वे जात्यन्तरे वत्स मा विषादं कुरुष्व ह ॥१७॥
एवमुक्त्वा नृपस्तत्र सुतं राजा महायशाः । श्वभ्रं जगाम सुकृतं वासाय पुरुषर्षभ ॥१८॥
एवं प्रविश्यैव नृपस्तदानीं श्वभ्रं महद्रत्नविभूषितं तत् ।
संपादयामास तदा महात्मा शापं द्विजाभ्यां हि रुषा विमुक्तम् ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

एष ते नृगशापस्य विस्तरोऽभिहितो मया । यद्यस्ति श्रवणे श्रद्धा शृणुष्वेहापरां कथाम् ॥ १ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण सौमित्रिः पुनरब्रवीत् । तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे नृप ॥ २ ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राम इक्ष्वाकुनन्दनः । कथां परमधर्मिष्ठां व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥
आसीद्राजा निमिर्नाम इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् । पुत्रो द्वादशमो वीर्ये धर्मे च परिनिष्ठितः ॥ ४ ॥
स राजा वीर्यसंपन्नः पुरं देवपुरोपमम् । निवेशयामास तदा अभ्याशे गौतमस्य तु ॥ ५ ॥
पुरस्य सुकृतं नाम वैजयन्तमिति श्रुतम् । निवेशं यत्र राजर्षिर्निमिश्चक्रे महायशाः ॥ ६ ॥
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य सुमहापुरम् । यजेयं दीर्घसत्रेण पितुः प्रह्लादयन्मनः ॥ ७ ॥

बड़ा दण्ड दिया है इसलिए तुम दुःख मत करो ॥ १२,१५ ॥ पूर्व जन्मका किया हुआ कर्म फल देनेमें बड़ा ही निपुण है उसीने मुझे यह दुःख दिया है । मनुष्यको जो पाना होता है वही पाता है, जहाँ जाना होता है वहीं जाता है, यह सब पूर्वजन्मके कर्मोंसे ही होता है ॥ १६ ॥ पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण जो सुख-दुःख मनुष्यको मिलनेवाले होते हैं वे ही मिलते हैं । बेटा, इसके लिए दुःख न करो ॥ १७ ॥ पुत्रसे ऐसा कहकर यशस्वी राजा कर्मफल भोगनेके लिये गढ़ेमें रहने चले गये ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे बने उस गढ़ेमें जाकर राजा उन ब्राह्मणोंके द्वारा क्रोधसे दिये शापका फल भोगने लगे ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्तः ॥ ५४ ॥

राजा नृगकी कथा विस्तार-पूर्वक कहकर रामचन्द्र बोले, यदि श्रद्धा हो तो और कथा सुनो ॥ १ ॥ रामके कहनेपर लक्ष्मण बोले, इन आश्चर्यमय कथाओंसे तृप्ति नहीं होती ॥२॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर इक्ष्वाकुनन्दन राम, परमधर्मिष्ठ कथा कहने लगे ॥ ३ ॥

निमि नामके एक राजा थे, जो इक्ष्वाकुकी बारहवीं पीढ़ीमें थे, वे पराक्रमी और धर्मात्मा थे ॥४॥ उस पराक्रमी राजाने गौतमके आश्रमके पास देवनगरके समान नगर बसाया ॥ ५ ॥ यशस्वी राजर्षि निमिने जहाँ निवास किया उस नगरका नाम उन्होंने "वैजयन्त" रखा ॥६॥ उस विशाल नगरको स्थापित करके राजाकी इच्छा हुई कि बहुत दिनोंतक होनेवाला, एक यज्ञ करूँ जिससे पिताको प्रसन्नता हो ॥७॥

ततः पितरमामन्त्र्य इक्ष्वाकुं हि मनोः सुतम् । वसिष्ठं वरयामास पूर्वं ब्रह्मर्षिसत्तमम् ॥ ८ ॥
अनन्तरं स राजर्षिर्निमिरिक्ष्वाकुनन्दनः । अत्रिमङ्गिरसं चैव भृगुं चैव तपोनिधिम् ॥ ९ ॥
तमुवाच वसिष्ठस्तु निमिं राजर्षिसत्तमम् । वृतोऽहं पूर्वमिन्द्रेण अनन्तरं प्रतिपालय ॥१०॥
अनन्तरं महाविप्रो गौतमः प्रत्यपूरयत् । वसिष्ठोऽपि महातेजा इन्द्रयज्ञमथाकरोत् ॥११॥
निमिस्तु राजा विप्रांस्तान्समानीय नराधिपः । अयजद्धिमवत्पार्श्वे स्वपुरस्य समीपतः ॥१२॥
पञ्चवर्षसहस्राणि राजा दीक्षामथाकरोत् । इन्द्रयज्ञावसाने तु वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१३॥
सकाशमागतो राज्ञो हौत्रं कर्तुमनिन्दितः । तदन्तरमथापश्यद्गौतमेनाभिपूरितम् ॥१४॥
कोपेन महताविष्टो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः । स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी मुहूर्तं समुपाविशत् ।
तस्मिन्नहनि राजर्षिर्निद्रयापाहृतो भृशम् ॥१५॥
ततो मन्युर्वसिष्ठस्य प्रादुरासीन्महात्मनः । अदर्शनेन राजर्षेर्व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१६॥
यस्मात्त्वमन्यं वृतवान्मामवज्ञाय पार्थिव । चेतनेन विनाभूतो देहस्ते पार्थिवैष्यति ॥१७॥
ततः प्रबुद्धो राजा तु श्रुत्वा शापमुदाहृतम् । ब्रह्मयोनिमथोवाच स राजा क्रोधमूर्च्छितः ॥१८॥
अजानतः शयानस्य क्रोधेन कलुषीकृतः । उक्तवान्मम शापाग्निं यमदण्डमिवापरम् ॥१९॥
तस्मात्तवापि ब्रह्मर्षे चेतनेन विनाकृतः । देहः स सुचिरप्रख्यो भविष्यति न संशयः ॥२०॥

ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ वसिष्ठको उन्होंने यज्ञके लिये पहले वरण किया पुनः मनुपुत्र इक्ष्वाकुको उन्होंने निमन्त्रित किया जो उनके पिता थे ॥ ८ ॥ इसके पश्चात् राजर्षि निमिने अत्रि, अङ्गिरा तथा तपस्वी भृगुको निमन्त्रित किया ॥९॥ वसिष्ठने राजर्षि निमिसे कहा, मुझे इन्द्रने अपने यज्ञमें वरण किया है, अतएव तबतक तुम ठहरो जबतक मैं वहाँसे लौट आऊँ ॥ १० ॥ इस अड़चनको गौतमने मिटाया, उन्होंने यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया और तेजस्वी वसिष्ठ, इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये ॥ ११ ॥ अपने नगरके पास हिमवान पर्वतकी तराईमें उन ब्राह्मणोंको एकत्र करके राजा निमि यज्ञ करने लगे ॥ १२ ॥ पाँच हजार वर्ष तक राजाने यज्ञ किया । इन्द्रके यज्ञ समाप्त होनेपर भगवान् वसिष्ठ ऋषि राजा निमिके पास होताका काम करनेके लिये आये । वहाँ उन्होंने देखा कि गौतमने वह स्थान ले लिया है ॥ १३, १४ ॥ इससे ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठको बड़ा क्रोध आया वे राजासे मिलनेके लिये थोड़ी देर वहाँ ठहरे, पर उसदिन वे राजा गाढ़ी नींदमें थे ॥ १५ ॥ राजाका दर्शन न मिलनेसे वसिष्ठको बड़ाक्रोध आया और वे बोलने लगे । अर्थात् शाप देने लगे ॥१६॥ मेरा अपमान करके तुमने मेरी जगह दूसरेका वरण किया है, अतएव राजन्, तुम्हारा शरीर चेतनाहीन हो जायगा ॥१७॥ नींदसे जागनेपर राजाने मुनिका दिया शाप सुना, बड़े क्रोधसे वे वसिष्ठसे बोले ॥१८॥ मैं सो रहा था, मुझे कुछ मालूम न था, पर क्रोधसे भ्रष्टबुद्धि होकर तुमने मुझपर दूसरे यमदण्डके समान शापाग्नि छोड़ी है । अतएव ब्रह्मर्षे, तुम्हारा यह सुन्दर शरीर भी चेतनाहीन हो जायगा, वह मृतक समान हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ १९, २० ॥ राजा और ऋषि दोनोंने क्रोध करके दोनोंको

इति रोषवशादुभौ तदानीमन्योन्यं शपितौ नृपद्विजेन्द्रौ ।
सहसैव बभूवतुर्विदेहौ तत्तुल्याधिगतप्रभाववन्तौ ॥ ॥२१॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
निक्षिप्य देहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ । पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसंमतौ ॥ २ ॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राम इक्ष्वाकुनन्दनः । प्रत्युवाच महातेजा लक्ष्मणं पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
तौ परस्परशापेन देहमुत्सृज्य धार्मिकौ । अभूतां नृपविप्रर्षी वायुभूतौ तपोधनौ ॥ ४ ॥
अशरीरः शरीरस्य कृतेऽन्यस्य महामुनिः । वसिष्ठस्तु महातेजा जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ५ ॥
सोऽभिवाद्य ततः पादौ देवदेवस्य धर्मवित् । पितामहमथोवाच वायुभूत इदं वचः ॥ ६ ॥
भगवन्निमिशापेन विदेहत्वमुपागमम् । देवदेव महादेव वायुभूतोऽहमण्डज ॥ ७ ॥
सर्वेषां देहहीनानां महद्दुःखं भविष्यति । लुप्यन्ते सर्वकार्याणि हीनदेहस्य वै प्रभो ॥ ८ ॥
देहस्यान्यस्य सद्भावे प्रसादं कर्तुमर्हसि । तमुवाच ततो ब्रह्मा स्वयंभूरमितप्रभः ॥ ९ ॥
मित्रावरुणजं तेज आविश त्वं महायशः । अयोनिजस्त्वं भविता तत्रापि द्विजसत्तम ।
धर्मेण महता युक्तः पुनरेष्यसि मे वशम् ॥१०॥
एवमुक्तस्तु देवेन अभिवाद्य प्रदक्षिणम् । कृत्वा पितामहं तूर्णं प्रययौ वरुणालयम् ॥११॥

शाप दिया, दोनों ही समान प्रभाव वाले थे । वे दोनों सहसा विदेह हो गये ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥
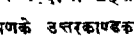
लक्ष्मणने तेजस्वी रामके वचन सुने और वे हाथ जोड़कर उनसे बोले ॥ १ ॥ देव सम्मानित वे राजा और ब्राह्मण दोनों शरीर त्याग कर चुके थे । पुनः उन दोनोंका शरीरसे सम्बन्ध कैसे हुआ ॥ २ ॥ लक्ष्मणके ऐसा पूछनेपर तेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रने इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ३ ॥ परस्परके शापसे उन दोनोंने शरीर त्याग किया । राजा और ब्रह्मर्षि दोनों ही वायुरूपी हो गये ॥ ४ ॥ शरीरहीन होकर तेजस्वी वशिष्ठ दूसरे शरीरके लिए अपने पिता (ब्रह्मा) के पास गये ॥ ५ ॥ देव-देव ब्रह्माके चरणवन्दन करके धर्मवेत्ता वायुरूप वशिष्ठ उनसे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥ भगवन् निमिके शापसे मैं वायुरूप हो गया हूँ ॥ ७ ॥ जिनके शरीर नहीं है उन्हें बड़ा दुःख होता है उनके समस्त कार्य लुप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ मुझे दूसरी देह मिले इसके लिए कृपा कीजिए । तब अमित प्रभस्वयम्भु ब्रह्मा उनसे बोले ॥ ९ ॥ यशस्विन तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश करो, वहाँ प्रवेश करनेपर भी तुम अयोनिज ही उत्पन्न होओगे । पुनः धर्म-युक्त होकर तुम मेरे पुत्र बनोगे, अर्थात् मेरे पुत्र बनकर पुनः प्रजापति हो सकोगे ॥ १० ॥

ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वायुभूत वशिष्ठने उनको प्रणाम किया उनको प्रदक्षिणा की और वहाँसे वे

तमेव कालं मित्रोऽपि वरुणत्वमकारयत् । क्षीरोदेन सहोपेतः पूज्यमानः सुरेश्वरैः ॥१२॥
एतस्मिन्नेव काले तु उर्वशी परमाप्सरा । यदृच्छया तमुद्देशमागता सखिभिर्वृता ॥१३॥
तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नां क्रीडन्तीं वरुणालये । तदाविशत्परो हर्षो वरुणं चोर्वशीकृते ॥१४॥
स तां पद्मपलाशाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । वरुणो वरयामास मैथुनायाप्सरोवराम् ॥१५॥
प्रत्युवाच ततः सा तु वरुणं प्राञ्जलिः स्थिता । मित्रेणाहं वृता साक्षात्पूर्वमेव सुरेश्वर ॥१६॥
वरुणस्त्वब्रवीद्वाक्यं कंदर्पशरपीडितः । इदं तेजः समुत्स्रक्ष्ये कुम्भेऽस्मिन्देवनिर्मिते ॥१७॥
एवमुत्सृज्य सुश्रोणि त्वय्यहं वरवर्णिनि । कृतकामो भविष्यामि यदि नेच्छसि संगमम् ॥१८॥
तस्य तल्लोकनाथस्य वरुणस्य सुभाषितम् । उर्वशी परमप्रीता श्रुत्वा वाक्यमुवाच ह ॥१९॥
काममेतद्भवत्वेवं हृदयं मे त्वयि स्थितम् । भावश्चाप्यधिकं तुभ्यं देहो मित्रस्य तु प्रभो ॥२०॥
उर्वश्या एवमुक्तस्तु रेतस्तन्महदद्भुतम् । ज्वलदग्निसमप्रख्यं तस्मिन्कुम्भे न्यपद्यत असृजत् ॥२१॥
उर्वशी त्वगमत्तत्र मित्रो वै यत्र देवता । तां तु मित्रः सुसंक्रुद्ध उर्वशीमिदमब्रवीत् ॥२२॥
मयाभिमन्त्रिता पूर्वं कस्मात्त्वमवसर्जिता । पतिमन्यं वृतवती किमर्थं दुष्टचारिणि ॥२३॥
अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता । मनुष्यलोकमास्थाय कंचित्कालं निवत्स्यसि ॥२४॥
बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशिराजः पुरूरवाः । तमभ्यागच्छ दुर्बुद्धे स ते भर्ता भविष्यति ॥२५॥
ततः सा शापदोषेण पुरूरवसमभ्यगात् । प्रतिष्ठाने पुरुरवं बुधस्यात्मजमौरसम् ॥२६॥

शीघ्र ही वरुणलोकमें समुद्रमें चले गये ॥ ११ ॥ उस समय देवताओंके द्वारा सत्कृत मित्र क्षीरसमुद्ररूपी वरुणसे मिलकर वरुणका काम करते थे । उस समय वरुणका अधिकार भी मित्र (सूर्य) को ही था ॥ १२ ॥ इसी समय श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी अपनी सखियोंके साथ उस स्थानपर आयी ॥ १३ ॥ रूपवती उर्वशी समुद्रमें क्रीड़ा करने लगी, उसको देखकर वरुणके मनमें बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ वरुणने कमलनेत्रा चन्द्रानना उर्वशीको सम्भोग चुना ॥ १५ ॥ वह हाथ जोड़कर वरुणसे बोली, देवराज मित्रने पहले ही मुझे इस कामके लिये चुन लिया है ॥१६॥ कामपीड़ित वरुण बोले, मैं अपना यह तेज देवनिर्मित इस घड़ेमें रखता हूँ ॥ १७ ॥ यदि तुम मुझसे सम्भोग करना नहीं चाहती हो तो न सही, मैं यहीं तुम्हारे सामने अपना तेज छोड़ता हूँ, जिससे मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा ॥ १८ ॥ लोकपाल वरुणके वे वचन सुनकर उर्वशी बहुत प्रसन्न हुई और वह उनसे बोली ॥१९॥ ठीक है, ऐसा ही हो, पर मेरा हृदय तो आप-में ही लगा है । मेरा भाव आपमें अधिक है पर यह शरीर मित्रका है । हृदयसे मेरा आपके साथ संगम हुआ और शरीरसे मित्रके साथ होगा ॥ २० ॥ ऊर्वशीके यह कहनेपर वह अद्भुत अग्निके अंगारेके समान धधकतावीर्य उन्होंने उस घड़ेमें गिरा दिया ॥ २१ ॥

उर्वशी मित्र देवताके पास गयी, मित्र बड़े क्रोधसे उससे बोले ॥ २२ ॥ मैंने तुम्हें पहले निमन्त्रित किया था, पहले बुलाया था, तुमने मेरा त्याग क्यों किया, दुराचारिणी,तुमने दूसरा पति क्यों चुना ॥२३॥ इस पापके कारण मेरे क्रोधमें पड़कर मनुष्यलोकमें कुछ दिनोंतक निवास करना पड़ेगा ॥ २४ ॥ बुधके पुत्र काशिराज पुरूरवा एक राजा हैं । दुर्बुद्धि, तुम उनके पास जाओ, वे तुम्हारे पति होंगे ॥ २५ ॥ अन-

तस्य जज्ञे ततः श्रीमानायुः पुत्रो महाबलः । नहुषो यस्य पुत्रस्तु बभूवेन्द्रसमद्युतिः ॥२७॥
वज्रमुत्सृज्य वृत्राय श्रान्तेऽथ त्रिदिवेश्वरे । शतं वर्षसहस्राणि येनेन्द्रत्वं प्रशासितम् ॥२८॥
सा तेन शापेन जगाम भूमिं तदोर्वशी चारुदती सुनेत्रा ।
बहूनि वर्षाण्यवसच्च सुभ्रूः शापक्षयादिन्द्रसदो ययौ च ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

तां श्रुत्वा दिव्यसंकाशां कथामद्भुतदर्शनाम् । लक्ष्मणः परमप्रीतो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
निक्षिप्तदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ । पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसंमतौ ॥ २ ॥
तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः । तां कथां कथयामास वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
यः स कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजःपूर्णो महात्मनोः । तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ संभूतावृषिसत्तमौ ॥ ४ ॥
पूर्वं समभवत्तत्र अगस्त्यो भगवानृषिः । नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्रं तस्मादपाक्रमत् ॥ ५ ॥
तद्धि तेजस्तु मित्रस्य उर्वश्या पूर्वमाहितम् । तस्मिन्समभवत्कुम्भे तत्तेजो यत्र वारुणम् ॥ ६ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य मित्रावरुणसंभवः । वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम् ॥ ७ ॥
तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम् । वव्रे पुरोधसं सौम्य वंशस्यास्य हिताय नः ॥ ८ ॥

न्तर शापके कारण वह बुधके और सपुत्र पुरूरवाके पास वह प्रतिष्ठानपुरमें आयी ॥ २६ ॥ उसके आयु नामका महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र इन्द्रके समान तेजस्वी नहुष था ॥ २७ ॥ वृत्रासुरको वज्र देकर इन्द्र जब थक गये, दुखी हो गये, उस समय सौ हजार वर्षोंतक जिसने इन्द्र पदका शासन किया था ॥२८॥ उत्तम दाँत और नेत्रवाली उर्वशी उस शापसे पृथिवीपर आयी, बहुत वर्षोंतक वह यहाँ रही, और शापकी अवधि बीतनेपर इन्द्रकी सभामें गयी ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

वह दिव्य और अद्भुत कथा सुनकर लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए और वे रामचन्द्रसे बोले ॥१॥ देवताओंके माननीय वे ब्राह्मण और राजाने शरीर त्याग करके पुनः शरीर कैसे पाये ॥ २ ॥ लक्ष्मणकी बात सुनकर सत्य पराक्रम रामने महात्मा वसिष्ठ की कथा कही ॥३॥ महात्मा मित्र और वरुणके तेजसे जो घड़ा भरा था उससे दो ब्राह्मण उत्पन्न हुए जो श्रेष्ठ ऋषि थे ॥ ४ ॥ उस घड़ेसे पहले भगवान् आपरूप ऋषि उत्पन्न हुए । उन्होंने मित्रसे कहा कि मैं आपका पुत्र नहीं हूँ और ऐसा कहकर वे वहाँसे चले गये ॥५॥ मित्रका वह तेज वरुणके तेज रखनेके पहले ही उस घड़ेमें उर्वशीके सामने रखा गया था, वरुण का तेज पीछे रखा गया ॥६॥ कुछ दिनोंके बाद मित्रावरुणके तेजसे वसिष्ठ उत्पन्न हुए वे बड़े तेजस्वी हुए और इक्ष्वाकुके पुरोहित हुए ॥७॥ तेजस्वी शुद्ध वसिष्ठके उत्पन्न होते ही, अपने वंशके कल्याणके लिए वसिष्ठने उन्हें अपना पुरोहित बनाया इस प्रकार महात्मा वसिष्ठके नया शरीर धारण करके निकलनेकी बात कही जाती है, अब राजा निमिका

एवं त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मनः। कथितो निर्गमः सौम्य निमेः शृणु यथाभवत् ॥९॥
दृष्ट्वा विदेहं राजानमृषयः सर्व एव ते। तं च ते याजयामासुर्यज्ञदीक्षा मनीषिणः ॥१०॥
तं च देहं नरेन्द्रस्य रक्षन्ति स्म द्विजोत्तमाः। गन्धैर्माल्यैश्च वस्त्रैश्च पौरभृत्यसमन्विताः ॥११॥
ततो यज्ञे समाप्ते तु भृगुस्तत्रेदमब्रवीत्। आनयिष्यामि ते चेतस्तुष्टोऽस्मि तव पार्थिव ॥१२॥
सुप्रीताश्च सुराः सर्वे निमेश्चेतस्तदाब्रुवन्। वरं वरय राजर्षे क्व ते चेतो निरूप्यताम् ॥१३॥
एवमुक्तः सुरैः सर्वैर्निमेश्चेतस्तदाब्रवीत्। नेत्रेषु सर्वभूतानां वसेयं सुरसत्तमाः ॥१४॥
बाढमित्येव विबुधा निमेश्चेतस्तदाब्रुवन्। नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चरिष्यसि ॥१५॥
त्वत्कृते च निमिष्यन्ति चक्षूंषि पृथिवीपते। वायुभूतेन चरता विश्रामार्थं मुहुर्मुहुः ॥१६॥
एवमुक्त्वा तु विबुधाः सर्वे जग्मुर्यथागतम्। ऋषयोऽपि महात्मानो निमेर्देहं समाहरन् ॥१७॥
अरणिं तत्र निक्षिप्य मथनं चक्रुरोजसा। मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेस्तदा ॥१८॥
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महातपाः। मथनान्मिथिरित्याहुर्जननाज्जनकोऽभवत् ॥१९॥
यस्माद्विदेहात्संभूतो वैदेहस्तु ततः स्मृतः। एवं विदेहराजश्च जनकः पूर्वकोऽभवत्।
मिथिर्नाम महातेजास्तेनायं मैथिलोऽभवत् ॥२०॥
इति सर्वमशेषतो मया कथितं संभवकारणं तु सौम्य।
नृपपुंगव शापजं द्विजस्य द्विजशापाच्च यदद्भुतं नृपस्य। ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

क्या हुआ वह सुनो ॥९॥ यज्ञमें दीक्षित ऋषियोंने निमिको शरीर रहित देखा तथापि वे उनका यज्ञ कराने लगे ॥१०॥ ब्राह्मण राजाके उस शरीरकी रक्षा करने लगे। गन्ध, माल्य वस्त्र आदि द्वारा उसकी रक्षा करते थे, पुरवासी तथा भृत्योंके साथ वे ब्राह्मण उस शरीरकी रखवाली करने लगे ॥११॥ यज्ञके समाप्त होनेपर महर्षि भृगु राजासे बोले, राजन्, मैं आपपर प्रसन्न हूँ मैं आपको सचेतन बनाता हूँ ॥ १२ ॥ देवता भी प्रसन्न होकर निमीसे बोले, राजन्, मैं आपको सचेतन बनाता हूँ, राजन्, आप वर माँगिए, बतलाइए, आपकी चेतना कहाँ रखी जाय ॥ १३ ॥ देवताओंके वरके लिए कहनेपर निमीकी चेतना बोली, देवताओं, मैं सब प्राणियोंके नेत्रपर रहना चाहती हूँ ॥ १४ ॥ देवताओंने निमीकी चेतनाकी बात मान ली, और वे उससे बोले, सब प्राणियोंके नेत्रोंपर वायुरूपसे तुम रहोगी ॥ १५ ॥ राजन्, तुम वायुरूपसे सब प्राणियोंके नेत्रोंपर विचरण करोगे और तुम्हारे विश्रामके लिये मनुष्य निमेष लेंगे अर्थात् आखें बन्द करेंगे ॥१६॥ निमिकी चेतनासे ऐसा कहकर देवता अपने स्थानपर गये और महात्मा ऋषि निमिके शरीरको यज्ञस्थानमें उठा लाये ॥१७॥ निमिके पुत्र होनेके लिये पुत्रीय मन्त्रोंसे होम करके वे अरणीसे उनके शरीरका मन्थन करने लगे ॥ १८ ॥ अरणीसे मन्थन करनेपर उस शरीरसे तपस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। मथनसे वह उत्पन्न हुआ इस कारण उसका नाम मिथि हुआ और उसकी जनन-उत्पत्ति हुई इस कारण उसका नाम जनक पड़ा ॥१९॥ विदेहसे वह उत्पन्न हुआ इस कारण उनका नाम वैदेह पड़ा, इस प्रकार विदेह राजाजनक पहले उत्पन्न हुये थे। इन तेजस्वीका नाम मिथिला इस कारण ये मैथिल भी कहे जाते हैं ॥२०॥ राजाके शापसे ब्राह्मणकी

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

एवं ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणः परवीरहा । प्रत्युवाच महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ १ ॥
महदद्भुतमाश्चर्यं विदेहस्य पुरातनम् । निर्वृत्तं राजशार्दूल वसिष्ठस्य मुनेश्च ह ॥ २ ॥
निमिस्तु क्षत्रियः शूरो विशेषेण च दीक्षित । न क्षमं कृतवान्राजा वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
एवमुक्तस्तु तेनायं रामः क्षत्रियपुंगवः । उवाच लक्ष्मणं वाक्यं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ४ ॥
रामो रमयतां श्रेष्ठो भ्रातरं दीप्ततेजसम् । न सर्वत्र क्षमा वीर पुरुषेषु प्रदृश्यते ॥ ५ ॥
सौमित्रे दुःसहो रोषो यथा क्षान्तो ययातिना । सत्त्वानुगं पुरस्कृत्य तन्निबोध समाहितः ॥ ६ ॥
नहुषस्य सुतो राजा ययातिः पौरवर्धनः । तस्य भार्याद्वयं सौम्य रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ ७ ॥
एका तु तस्य राजर्षेर्नाहुषस्य पुरस्कृता । शर्मिष्ठा नाम दैतेयी दुहिता वृषपर्वणः ॥ ८ ॥
अन्या तूशनसः पत्नी ययातेः पुरुषर्षभ । न तु सा दयिता राज्ञो देवयानी सुमध्यमा ॥ ९ ॥
तयोः पुत्रौ तु संभूतौ रूपवन्तौ समाहितौ । शर्मिष्ठाजनयत्पूरुं देवयानी यदुं तदा ॥१०॥
पूरुस्तु दयितो राज्ञो गुणैर्मातृकृतेन च । ततो दुःखसमाविष्टो यदुर्मातरमब्रवीत् ॥११॥
भार्गवस्य कुले जाता देवस्याक्लिष्टकर्मणः । सहसे हृद्गतं दुःखमवमानं च दुःसहम् ॥१२॥
आवां च सहितौ देवि प्रविशाव हुताशनम् । राजा तु रमतां सार्धं दैत्यपुत्र्या बहुक्षपाः ॥१३॥

और ब्राह्मणके शापसे राजाकी जो दशा हुई और जिस प्रकार उनका पुनर्जन्म हुआ वह सब मैंने तुमसे कहा ॥ २१ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सत्तावनवां सर्ग समाप्त ॥५७॥

रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण उनसे बोले जो महात्मा तेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥१॥ राजन् राजा विदेह और वशिष्ठ मुनिका पूर्व वृत्तान्त अद्भुत है, आश्चर्य है ॥ २ ॥ निमि वीर क्षत्रिय थे विशेषकर यज्ञमें दीक्षित थे, उन्होंने महात्मा वशिष्ठको क्षमा नहीं किया ॥ ३ ॥ क्षत्रिय श्रेष्ठ राम, शास्त्रज्ञ लक्ष्मणके कहनेपर इस प्रकार बोले ॥ ४ ॥ तेजस्वी भाईसे रामचन्द्र इस प्रकार बोले, वीर, सर्वत्र क्षमा नहीं दीख पड़ती है ॥ ५ ॥ इस दुःसह क्रोधको राजा ययातिने सात्त्विक मार्गपर चलकर रोका था, वह सावधान होकर समझो ॥ ६ ॥ राजानहुषके पुत्र राजाययाति थे वे पुरवासियोंके कल्याण करनेवाले थे, उनकी दो स्त्रियाँ थीं जो संसारमें सबसे सुन्दरी थीं ॥ ७ ॥ उनमें एक राजा ययातिकी प्रिया थी, उसका नाम शर्मिष्ठा था और वह दैत्यराज वृषपर्वाकी कन्या थी । दूसरी शुक्राचार्यकी कन्या थी, उसका नाम देवयानी था पर वह राजाको प्रिय न थी ॥ ८ ९ ॥ उन दोनोंके पुत्र हुए, वे रूपवान और योग्य थे । शर्मिष्ठाने पुरुको उत्पन्न किया और देवयानीने यदुको ॥ १० ॥ अपनी प्रियाका पुत्र होनेके कारण पुरु राजाको प्रिय था, इससे यदुको दुःख हुआ और वह मातासे बोला ॥ ११ ॥ पुण्यात्मा भार्गवके कुलमें तुम उत्पन्न हुई हो और असह्य दुःख और अपमान तुम चुप चाप सह रही हो ॥ १२ ॥ देखो हम दोनों अग्निप्रवेश करें और राजा दैत्यपुत्रीके साथ रमण करें ॥ १३ ॥ यदि तुम इस दुःखको सह सकती हो, तो मुझेही आज्ञा

यदि वा सहनीयं ते मामनुज्ञातुमर्हसि। क्षम त्वं न क्षमिष्येऽहं मरिष्यामि न संशयः ॥१४॥
पुत्रस्य भाषितं श्रुत्वा परमार्तस्य रोदतः। देवयानी तु संक्रुद्धा सस्मार पितरं तदा ॥१५॥
इङ्गितं तदभिज्ञाय दुहितुर्भार्गवस्तदा। आगतस्त्वरितं तत्र देवयानी स्म यत्र सा ॥१६॥
दृष्ट्वा चाप्रकृतिस्थां तामप्रहृष्टामचेतनाम्। पिता दुहितरं वाक्यं किमेतदिति चाब्रवीत् ॥१७॥
पृच्छन्तमसकृत्तं वै भार्गवं दीप्तचेतसम्। देवयानी तु संक्रुद्धा पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥
अहमग्निं विषं तीक्ष्णमपो वा मुनिसत्तम। भक्षयिष्ये प्रवेक्ष्ये वा न तु शक्ष्यामि जीवितुम् ॥१९॥
न मां त्वमवजानीषे दुःखितामवमानिताम्। वृक्षस्यावज्ञया ब्रह्मंश्छिद्यन्ते वृक्षजीविनः ॥२०॥
अवज्ञया च राजर्षिः परिभूय च भार्गव। मय्यवज्ञां प्रयुङ्क्ते हि न च मां बहु मन्यते ॥२१॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कोपेनाभिपरीवृतः। व्याहर्तुमुपचक्राम भार्गवो नहुषात्मजम् ॥२२॥
यस्मान्मामवजानीषे नाहुष त्वं दुरात्मवान्। वयसा जरया जीर्णः शैथिल्यमुपयास्यसि ॥२३॥
एवमुक्त्वा दुहितरं समाश्वास्य स भार्गवः। पुनर्जगाम ब्रह्मर्षिर्भवनं स्वं महायशाः ॥२४॥

स एवमुक्त्वा द्विजपुंगवाग्र्यः सुतां समाश्वास्य च देवयानीम्।
पुनर्ययौ सूर्यसमानतेजा दत्त्वा च शापं नहुषात्मजाय ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदि काव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

दो, तुम क्षमा कर सकती हो मैं क्षमा न करूँगा मैं अवश्य मरूँगा ॥ १४ ॥ बहुत दुःखी और रोते पुत्रकी बात सुनकर देवयानीने क्रोध किया और अपने पिताका स्मरण किया ॥ १५ ॥ कन्याका अभिप्राय समझकर भार्गव शीघ्र ही जहाँ देवयानी थी वहाँ आये ॥ १६ ॥ पिताने कन्याको देखा कि उसका चित्त क्षुब्ध हो रहा है, वह उदास है, रोगिणीसी हो रही है। वे उससे बोले, यह क्या है, इसका कारण क्या है ॥१७॥ क्रोधी भार्गवने कन्यासे बारबार पूछा। देवयानी क्रोध करके पितासे बोली ॥ १८ ॥ मुनिश्रेष्ठ, मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी, अथवा तीक्ष्ण विष खालूँगी पर अब जीना नहीं चाहती ॥ १९ ॥ मैं अपमानित हो रही हूँ दुःखित हूँ और तुम उधर ध्यान नहीं देते। ब्रह्मन्, वृक्षके अपमानसे उसके तोड़े काटे जानेमें वृक्षके आमन्त्रित भी अपमानित होते हैं वे भी टूटते हैं, कटते हैं ॥२०॥ भार्गव, राजर्षि ययाति मेरा अपमान करता है, क्योंकि तुममें उसकी सम्मान्य बुद्धि नहीं है। अतएव वह मेरा भी सम्मान नहीं करता ॥ २१ ॥ देवयानीके वचन सुनकर भार्गव शुक्राचार्यने बड़ा क्रोध किया और वे नहुषपुत्र ययातिको शाप देनेके लिये उद्यत हुये ॥ २२ ॥ पापी नहुषपुत्र, तुम मेरा अपमान करते हो इस कारण तुम बूढ़े शिथिलेन्द्रिय हो जाओगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार राजाको शाप और कन्याको धैर्य देकर ब्रह्मर्षि शुक अपने घर चले गये ॥२४॥ अपनी कन्या देवयानीको इस प्रकार समझाकर और राजा ययातिको शाप देकर सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्र अपने घर गये ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५६

श्रुत्वा तूशनसं क्रुद्धं तदार्तो नहुषात्मजः । जरां परमिकां प्राप्य यदुं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
यदो त्वमसि धर्मज्ञो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् । जरां परमिकां पुत्र भोगै रंस्ये महायशः ॥ २ ॥
न तावत्कृतकृत्योऽस्मि विषयेषु नरर्षभ । अनुभूय तदा कामं ततः प्राप्स्याम्यहं जराम् ॥ ३ ॥
यदुस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच नरर्षभम् । पुत्रस्ते दयितः पूरुः प्रतिगृह्णातु वै जराम् ॥ ४ ॥
बहिष्कृतोऽहमर्थेषु संनिकर्षाच्च पार्थिव । प्रतिगृह्णातु वै राजन्यैः सहाश्नासि भोजनम् ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पूरुमथाब्रवीत् । इयं जरा महाबाहो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६ ॥
नाहुषेणैवमुक्तस्तु पूरुः प्राञ्जलिरब्रवीत् । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि शासनेस्मि तव स्थितः ॥ ७ ॥
पूरोर्वचनमाज्ञाय नाहुषः परया मुदा । प्रहर्षमतुलं लेभे जरां संक्रामयच्च ताम् ॥ ८ ॥
ततः स राजा तरुणः प्राप्य यज्ञान्सहस्रशः । बहुवर्षसहस्राणि पालयामास मेदिनीम् ॥ ६ ॥
अथ दीर्घस्य कालस्य राजा पूरुमथाब्रवीत् । आनयस्व जरां पुत्र न्यासं निर्यातयस्व मे ॥१०॥
न्यासभूता मया पुत्र त्वयि संक्रामिता जरा । तस्मात्प्रतिग्रहीष्यामि तां जरां मा व्यथां कृथाः ॥११॥
प्रीतश्चास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् । त्वां चाहमभिषेक्ष्यामि प्रीतियुक्तो नराधिपम् ॥१२॥
एवमुक्त्वा सुतं पूरुं ययातिर्नहुषात्मजः । देवयानीसुतं क्रुद्धो राजा वाक्यमुवाच ह ॥१३॥
राक्षसस्त्वं मया जातः क्षत्ररूपो दुरासदः । प्रतिहंसि ममाज्ञां त्वं प्रजार्थे विफलो भव ॥१४॥

राजा ययातिने सुना कि शुक्राचार्य क्रुद्ध हुए हैं और उन्होंने देखा कि वे स्वयं बहुत बूढ़े हो गये हैं, वे अपने पुत्र यदुसे बोले । यदु, तुम धर्मात्मा हो, मेरे लिए मेरी बुढ़ाई तुम ले लो मैं अभी भोग करना चाहता हूँ ॥ २ ॥ विषयभोगसे अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है अतएव मैं काम भोग करके बुढ़ाई भोगना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ यदुने उत्तर दिया, पुरु तुम्हारा प्यारा पुत्र है, वही तुम्हारा बुढ़ापा ले ॥ ४ ॥ तुमने तो मुझे अपनेसे अलग कर दिया है, पास तक आने नहीं देते हो, तुम उन्हें ही बुढ़ापा दो जिनके साथ भोजन करते हो ॥ ५ ॥ यदुसे उत्तर पाकर राजाने पुरुसे कहा, पुत्र, यह वृद्धावस्था है, तुम इसे मेरे लिए ग्रहण करो ॥ ६ ॥ राजा ययातिके ऐसा कहनेपर पुरु हाथ जोड़कर बोला, मैं धन्य हूँ, आपने मुझपर कृपा की, मैं आपकी आज्ञा माननेके लिए तयार हूँ ॥ ७ ॥ बड़ी प्रसन्नतासे उन्होंने पुरुके वचन सुने उन्हें बड़ा आनन्द आया और उन्होंने अपनी वृद्धावस्था पुरुको दे दी ॥८॥ राजा ययाति जवान हो गये, उन्होंने हजारों यज्ञ किये और हजारों वर्ष पृथिवीका पालन किया ॥ ९ ॥ बहुत दिनोंके बाद राजाने पुरुसे कहा, बेटा, मेरी वृद्धावस्था ले आओ, मेरी थाती मुझे लौटा दो ॥ १० ॥ मैंने थातीके रूपमें तुम्हें वृद्धावस्था दी थी, अतएव मैं उसे पुनः ले लेता हूँ, तुम दुःख न करो ॥ ११ ॥ तुमने मेरी आज्ञा मानी इससे मैं प्रसन्न हूँ और प्रसन्न होकर मैं तुम्हें ही राजा बनाऊँगा ॥ १२ ॥ नहुषपुत्र राजा ययाति अपने पुत्र पुरुसे ऐसा कहकर पुनः देवयानीके पुत्रसे क्रोध करके बोले ॥ १३ ॥ तुम क्षत्रियके रूपमें मुझसे राक्षस पैदा हुए हो, तुम किसीके नहीं हो, तुम मेरी आज्ञा नहीं मानते, अतएव तुम प्रजाके किसी कामके नहीं, तुम्हें राज्य नहीं मिलेगा ॥ १४ ॥ मैं तुम्हारा पिता हूँ, गुरु हूँ, तुम मेरा अपमान करते हो अतएव तुम्हारे वंशज क्रूर

पितरं गुरुभूतं मां यस्मात्त्वमवमन्यसे । राक्षसान्यातुधानांस्त्वं जनयिष्यसि दारुणान् ॥१५॥
न तु सोमकुलोत्पन्ने वंशे स्थास्यति दुर्मते । वंशोऽपि भवतस्तुल्यो दुर्विनीतो भविष्यति ॥१६॥
तमेवमुक्त्वा राजर्षिः पूरुं राज्यविवर्धनम् । अभिषेकेण संपूज्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥१७॥
ततः कालेन महता दिष्टान्तमुपजग्मिवान् । त्रिदिवं स गतो राजा ययातिर्नहुषात्मजः ॥१८॥
पूरुश्चकार तद्राज्यं धर्मेण महता वृतः । प्रतिष्ठाने पुरवरे काशिराज्ये महायशाः ॥१९॥
यदुस्तु जनयामास यातुधानान्सहस्रशः । पुरे क्रौञ्चवने दुर्गे राजवंशबहिष्कृते ॥२०॥
एष तूशनसा मुक्तः शापोत्सर्गो ययातिना । धारितः क्षत्रधर्मेण यं निमिश्चक्षमे न च ॥२१॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं दर्शनं सर्वकारिणाम् । अनुवर्तामहे सौम्य दोषो न स्याद्यथा नृगे ॥२२॥

इति कथयति रामे चन्द्रतुल्याननेन प्रविरलतरतारं व्योम जज्ञे तदानीम् ।
अरुणकिरणरक्ता दिग्बभौ चैव पूर्वा कुसुमरसविमुक्तं वस्त्रमागुण्ठितेव ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०

तयोः संवदतोरेवं रामलक्ष्मणयो स्तदा । वासन्तिकी निशा प्राप्ता न शीता न च घर्मदा ॥ १ ॥
ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्णिकक्रियः । अभिचक्राम काकुत्स्थो दर्शनं पौरकार्यवित् ॥ २ ॥
ततः सुमन्त्रस्त्वागम्य राघवं वाक्यमब्रवीत् । एते प्रतिहता राजन्द्वारि तिष्ठन्ति तापसाः ॥ ३ ॥

राक्षस होंगे ॥ १५ ॥ बुद्धिहीन, तुम चन्द्रवंशके राजाओंमें नहीं समझे जाओगे, तुम्हारे वंशज भी तुम्हारे ही समान दुर्विनीत होंगे ॥ १६ ॥ यदुको इस प्रकार शाप देकर राजाने पुरुका राज्याभिषेक किया और वे आश्रममें गये ॥ १७ ॥ इसके बहुत दिनोंके बाद राजाके प्रारब्ध भोगका अन्त हुआ अर्थात् उनकी मृत्यु हुई और वे स्वर्ग गये ॥ १८ ॥ प्रतिष्ठान पुरमें रहकर पुरु बड़े धर्मसे उस काशीराज्यका पालन करने लगे ॥ १९ ॥ यदुने हजारों राक्षसोंको उत्पन्न किया, वे क्रौञ्च वनके किलेमें रहते थे जिसका राजवंशसे कोई सम्बन्ध न था ॥ २० ॥ शुक्राचार्यके दिये शापको राजा ययातिने वीरतापूर्वक भोगा, पर निमि क्षमा न कर सके ॥ २१ ॥ यह सब बातें मैंने तुमसे कहीं । हमको कार्यके लिए आनेवाले सब लोगोंसे मिलना चाहिए, जिससे राजानृगकी दशा न होने पावे ॥२२॥ इस प्रकार राम, लक्ष्मणके बातें करते-करते प्रातःकाल हो गया। आकाशमें तारायें कम हो गयीं । पूर्व दिशा अरुणकिरणसे लाल हो गयी। मानो उसने लाल वस्त्र धारण किया हो ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार राम और लक्ष्मणका समय धर्मसंवाद करते बीतता था । वसन्तकाल आया, जिसकी रातमें न गर्मी होती है और न सर्दी ॥ १ ॥ सुन्दर प्रातःकालमें प्रातःकालका कार्य समाप्त करके रामचन्द्र पुरवासियोंके कार्य करनेके लिए बाहर आये ॥ २ ॥ रामचन्द्रके बाहर आनेपर सुमन्त्र उनके सामने आये

भार्गवं च्यवनं चैव पुरस्कृत्य महर्षयः । दर्शनं ते महाराज चोदयन्ति कृतत्वराः ॥ ४ ॥
प्रीयमाणा नरव्याघ्र यमुनातीरवासिनः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामः प्रोवाच धर्मवित् ॥ ५ ॥
प्रवेश्यन्तां महाभाग भार्गवप्रमुखा द्विजाः । राज्ञस्त्वाज्ञां पुरस्कृत्य द्वास्थो मूर्ध्ना कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
प्रवेशयामास तदा तापसान्सुदुरासदान् । शतं समधिकं तत्र दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ७ ॥
प्रविष्टं राजभवनं तापसानां महात्मनाम् । ते द्विजाः पूर्णकलशैः सर्वतीर्थाम्बुसत्कृतैः ॥ ८ ॥
गृहीत्वा फलमूलं च रामस्याभ्याहरन्बहु । प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं रामः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ ९ ॥
तीर्थोदकानि सर्वाणि फलानि विविधानि च । उवाच च महाबाहुः सर्वानेव महामुनीन् ॥१०॥
इमान्यासनमुख्यानि यथार्हमुपविश्यताम् । रामस्य भाषितं श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ॥११॥
बृसीषु रुचिराख्यासु निषेदुः काञ्चनीषु ते । उपविष्टानृषींस्तत्र दृष्ट्वा परपुरंजयः ।
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥
किमागमनकार्यं वः किं करोमि समाहितः । आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वकामकरः सुखम् ॥१३॥
इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम् । सर्वमेतद्द्विजार्थं मे सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥१४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साधुकारो महानभूत् । ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ॥१५॥
ऊचुश्चैव महात्मानो हर्षेण महता वृताः । उपपन्नं नरश्रेष्ठ तवैव भुवि नान्यतः ॥१६॥
बहवः पार्थिवा राजन्नतिक्रान्ता महाबलाः । कार्यस्य गौरवं मत्वा प्रतिज्ञां नाऽभ्यरोचयन् ॥१७॥
त्वया पुनर्ब्राह्मणगौरवादियं कृता प्रतिज्ञा ह्यनवेक्ष्य कारणम् ।
ततश्च कर्ता ह्यसि नात्र संशयो महाभयात्त्रातुमृषींस्त्वमर्हसि ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

और बोले । राजन्, द्वारपर तपस्वी खड़े हैं ॥ ३ ॥ भार्गव च्यवनके साथ महर्षि आये हैं । वे यमुना तीर वासी मुनि आपके दर्शनकी शीघ्रता कर रहे हैं । धर्मात्मा रामचन्द्र बोले ॥ ४ ॥ ५ ॥ भार्गव आदि ब्राह्मणोंको ले आओ । द्वारपालने हाथ जोड़कर राजाकी आज्ञा स्वीकार की और वह उन महर्षियोंको राजभवनमें ले गया, वे सौ से कुछ अधिक थे और अपने प्रकाशसे प्रकाशमान थे । उन ब्राह्मणोंने समस्त तीर्थोंके जलसे भरे घड़े तथा फलमूल रामचन्द्रको उपहार दिये । रामचन्द्रने प्रेमपूर्वक उन तीर्थ जलों और फलमूल आदि ग्रहण किये तथा वे उन समस्त महामुनियोंसे बोले ॥ ६ ॥ १० ॥ ये आसन हैं, आपलोग बैठें, रामचन्द्रके कहनेसे वे ऋषिगण सोनेके बने सुन्दर आसनोंपर बैठे । उनके बैठ जानेपर रामचन्द्र हाथ जोड़कर बोले ॥ ११ ॥ १२ ॥ आप लोगोंके आनेका क्या कारण है । मैं सावधान हूँ, किस आज्ञाका पालन करूँ । आपलोग सुखपूर्वक आज्ञा दें । मैं आपकी सब आज्ञाओंका पालन करूँगा ॥ १३ ॥ मेरा राज्य तथा मेरा जीवन यह सब ब्राह्मणोंके लिए है, यह मैं आप लोगोंसे सत्य कहता हूँ ॥१४॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर यमुनातीरवासी उग्र तपस्वी ऋषि साधु-साधु कहने लगे ॥ १५ ॥ वे बोले, राजन्, ये बातें आपमें ही सम्भव हैं, दूसरेमें नहीं ॥ १६ ॥ राजन्, अनेक राजा हैं, जो बली तथा पराक्रमी हैं, वे प्रतिज्ञा करते हैं पर कार्यको कठिन समझकर उससे हट जाते हैं ॥ १७ ॥ आपने बिना कारण जाने ही केवल ब्राह्मणोंमें

एकषष्टितमः सर्गः ६१

ब्रुवद्भिरेवमृषिभिः काकुत्स्थो वाक्यमब्रवीत् । किं कार्यं ब्रूत मुनयो भयं तावदपैतु वः ॥ १ ॥
तथा ब्रुवति काकुत्स्थे भार्गवो वाक्यमब्रवीत् । भयानां शृणु यन्मूलं देशस्य च नरेश्वर ॥ २ ॥
पूर्वं कृतयुगे राजन्दैतेयः सुमहामतिः । लोलापुत्रोऽभवज्ज्येष्ठो मधुर्नाम महासुरः ॥ ३ ॥
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः । सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुलाभवत् ॥ ४ ॥
स मधुर्वीर्यसंपन्नो धर्मे च सुसमाहितः । बहुमानाच्च रुद्रेण दत्तस्तस्याद्भुतो वरः ॥ ५ ॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य महावीर्यं महाप्रभम् । ददौ महात्मा सुप्रीतो वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ६ ॥
त्वयायमतुलो धर्मो मत्प्रसादकरः शुभः । प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम् ॥ ७ ॥
यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरुध्येर्महासुर । तावच्छूलं तवेदं स्यादन्यथा नाशमेष्यति ॥ ८ ॥
यश्च मामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः । तं शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम् ॥ ९ ॥
एवं रुद्राद्वरं लब्ध्वा भूय एव महासुरः । प्रणिपत्य महादेवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥१०॥
भगवन्मम वंशस्य शूलमेतदनुत्तमम् । भवेत्तु सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥११॥
तं ब्रुवाणं मधुं देवः सर्वभूतपतिः शिवः । प्रत्युवाच महादेवो नैतदेवं भविष्यति ॥१२॥
मा भूत्ते विफला वाणी मत्प्रसादकृता शुभा । भवतः पुत्रमेकं तु शूलमेतद्भविष्यति ॥१३॥

आदरके कारण ही यह प्रतिज्ञा की है, अतएव आपसे हमारा मनोरथ सिद्ध होगा । आप महाभयसे हम लोगों का उद्धार करेंगे ।। १८ ।।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ।। ६० ।।

रामचन्द्र बोले, ऋषियों, क्या काम है। आपलोग कहें, निर्भय हो जाँय ।।१।। भृगुवंशी च्यवन बोले, देश और हम लोगोंके भयका जो कारण है वह आप सुनें ।। २ ।। राजन्, पहले सत्ययुगमें बुद्धिमान एक दैत्य था उसकी माताका नाम लोला और उसका नाम मधु था ।। ३ ।। ब्राह्मणभक्त शरणागत रक्षक तथा वह बुद्धिमान था, उदार देवताओंसे उसकी मैत्री थी ।। ४ ।। पराक्रमी मधु बड़ा धर्मात्मा था, उसने शिवकी बड़ी पूजा की थी। इससे शिवने उसे अद्भुत वर दिया था ।। ५ ।। चमकीला तथा प्रभावशाली शूल प्रसन्न होकर महात्मा शिवने उसे दिया और वे उससे बोले ।। ६ ।। तुमने यह अतुलनीय धर्मपालन किया है, इससे मैं प्रसन्न हूँ और प्रसन्न होकर उत्तम अस्त्र तुम्हें देता हूँ ।। ७ ।। असुर, जबतक तुम देवताओं और ब्राह्मणोंसे विरोध न करोगे तबतक यह शूल तुम्हारा रहेगा, यदि ऐसा न करोगे तो इसका नाश हो जायगा, इसकी शक्ति जाती रहेगी ।। ८ ।। जो मनुष्य निर्भय होकर तुमसे युद्ध करने आवेगा, उसका नाश करके यह शूल पुनः तुम्हारे हाथमें आ जायगा ।। ९ ।। महादेवसे इस प्रकारका वर पाकर वह असुर प्रणाम करके बोला ।। १० ।। यह शूल मेरे वंशवालोंके लिए भी रहे, वे भी इसका उपयोग कर सकें, क्योंकि आप महेश्वर हैं, देवताओंके स्वामी हैं ।। ११ ।। भूतपति शिव, मधुसे बोले ऐसा नहीं हो सकता ।। १२ ।। मुझे प्रसन्न जानकर तुमने जो वर माँगा है वह व्यर्थ न हो इसलिए यह शूल तुम्हारे एक पुत्रके पास रहेगा

यावत्करस्थः शूलोऽयं भविष्यति सुतस्य ते । अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥१४॥
एवं मधुर्वरं लब्ध्वा देवात्सुमहदद्भुतम् । भवनं सोऽसुरश्रेष्ठः कारयामास सुप्रभम् ॥१५॥
तस्य पत्नी महाभागा प्रिया कुम्भीनसीति या । विश्वावसोरपत्यं साप्यनलायां महाप्रभा ॥१६॥
तस्याः पुत्रो महावीर्यो लवणो नाम दारुणः । बाल्यात्प्रभृति दुष्टात्मा पापान्येव समाचरत् ॥१७॥
तं पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । मधुः स शोकमापेदे न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥१८॥
स विहाय इमं लोकं प्रविष्टो वरुणालयम् । शूलं निवेश्य लवणे वरं तस्मै न्यवेदयत् ॥१९॥
स प्रभावेण शूलस्य दौरात्म्येनात्मनस्तथा । संतापयति लोकांस्त्रीन्विशेषेण च तापसान् ॥२०॥
एवंप्रभावो लवणः शूलं चैवं तथाविधम् । श्रुत्वा प्रमाणं काकुत्स्थ त्वं हि नः परमा गतिः ॥२१॥
बहवः पार्थिवा राम भयार्तैर्ऋषिभिः पुरा । अभयं याचिता वीर त्रातारं न च विद्महे ॥२२॥
ते वयं रावणं श्रुत्वा हतं सबलवाहनम् । त्रातारं विद्महे तात नान्यं भुवि नराधिपम् ।
तत्परित्रातुमिच्छामो लवणाद्भयपीडितान् । ॥२३॥
इति राम निवेदितं तु ते भयजं कारणमुत्थितं च यत् ।
विनिवारयितुं भवान्क्षमः कुरु तं काममहीनविक्रम । ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थात् वह इसका उपयोग कर सकेगा ॥ १३ ॥ जबतक यह शूल तुम्हारे पुत्रके हाथमें रहेगा, तबतक कोई उसे मार न सकेगा ॥ १४ ॥ इस प्रकार महादेवसे अद्भुत वर पाकर उस असुरराजने एक बड़ा सुन्दर महल बनवाया ॥ १५ ॥ उसकी स्त्रीका नाम कुम्भीनसी था, वह विश्वावसुके वंशमें अनलाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी ॥१६॥ उसका पुत्र लवण नामका है, बड़ा पराक्रमी है और क्रूर है, बाल्यावस्थासे ही वह दुष्ट पाप करता आ रहा है ॥ १७ ॥ पुत्रके बुरे आचरण देखकर मधुने क्रोध किया बहुत दुःखी हुआ, पर उससे कुछ बोला नहीं ॥ १८ ॥ वह यहाँ रहना छोड़कर समुद्रमें रहनेके लिए चला गया । शूल लवणको दिया और बाकी बात भी उससे उसने कही ॥ १९ ॥ वह शूलके प्रभावसे तथा अपनी दुर्जनतासे त्रिलोकको दुःख देता है, विशेषकर तपस्वियोंको ॥ २० ॥ लवणका ऐसा प्रभाव है उसके पास ऐसा शूल है । आप जो उचित समझें करें, आप ही हम लोगोंके रक्षक हैं ॥ २१ ॥ वीर, भयभीत होकर ऋषियोंने अनेक राजाओंसे अभयदान माँगा, अपनी रक्षाकी प्रार्थना की, पर कोई रक्षक न मिला ॥२२॥ बल वाहनके साथ रावणका वध सुनकर हम आपके पास आये हैं । इस संसारमें दूसरा राजा हम लोगोंका रक्षक नहीं है । अतएव हमलोग चाहते हैं कि लवणके भयसे पीड़ित हम लोगोंकी आप रक्षा करें ॥२३॥ रामचन्द्र, भयका जो कारण उपस्थित हुआ है वह मैंने बतलाया, आप ही इस भयको दूर कर सकते हैं, हे परमपराक्रमी, आप हम लोगोंके इस भयको दूर करें ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

तथोक्ते तानृषीन्रामः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः । किमाहारः किमाचारो लवणः क्व वर्तते ॥ १ ॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते । ततो निवेदयामासुर्लवणो ववृधे यथा ॥ २ ॥
आहारः सर्वसत्त्वानि विशेषेण च तापसाः । आचारो रौद्रता नित्यं वासो मधुवने तथा ॥ ३ ॥
हत्वा बहुसहस्राणि सिंहव्याघ्रमृगाण्डजान् । मानुषांश्चैव कुरुते नित्यमाहारमाह्निकम् ॥ ४ ॥
ततोऽन्तराणि सत्त्वानि खादते स महाबलः । संहारे समनुप्राप्ते व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५ ॥
तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यमुवाच स महामुनीन् । घातयिष्यामि तद्रक्षो व्यपगच्छतु वो भयम् ॥ ६ ॥
प्रतिज्ञाय तदा तेषां मुनीनामुग्रतेजसाम् । स भ्रातॄन्सहितान्सर्वानुवाच रघुनन्दनः ॥ ७ ॥
को हन्ता लवणं वीरः कस्यांशः स विधीयताम् । भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमतः ॥ ८ ॥
राघवेणैवमुक्तस्तु भरतो वाक्यमब्रवीत् । अहमेनं वधिष्यामि ममांशः स विधीयताम् ॥ ९ ॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा धैर्यशौर्यसमन्वितम् । लक्ष्मणावरजस्तस्थौ हित्वा सौवर्णमासनम् ॥१०॥
शत्रुघ्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं प्रणिपत्य नराधिपम् । कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुनन्दन ॥११॥
आर्येण हि पुरा शून्या त्वयोध्या परिपालिता । संतापं हृदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति ॥१२॥
दुःखानि च बहूनीह अनुभूतानि पार्थिव । शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामे महायशाः ॥१३॥
फलमूलाशनो भूत्वा जटी चीरधरस्तथा । अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः ॥१४॥
प्रेष्ये मयि स्थिते राजन्न भूयः क्लेशमाप्नुयात् । तथा ब्रुवति शत्रुघ्ने राघवः पुनरब्रवीत् ॥१५॥

ऋषियोंकी बातें सुनकर रामचन्द्र हाथ जोड़कर उनसे बोले। वह क्या खाता है। किस प्रकार रहता है और कहाँ रहता है ॥ १ ॥ उन सब ऋषियोंने लवणासुरके बढ़नेकी बात रामचन्द्रसे कह सुनायी ॥२॥ वह प्राणियोंको विशेषकर, तपस्वियोंको खाता है। उसका व्यवहार बड़ा ही क्रूर है और वह मधुवनमें रहता है ॥ ३ ॥ कई हजार सिंह, बाघ, मृग, पक्षी और मनुष्योंको मारकर वह नित्यका दैनिक आहार करता है ॥ ४ ॥ प्रलयकालके अन्तके समान मुँह बाकर वह महाबली बीचमें अन्य प्राणियोंको भी खालिया करता है ॥ ५ ॥ रामचन्द्रने मुनियोंसे कहा, मैं उस राक्षसको मारूँगा, आपलोग निर्भय हो जाँय ॥ ६ ॥ उग्र तेजस्वी मुनियोंसे ऐसी प्रतिज्ञा करके रामचन्द्र अपने भाइयोंसे बोले, जो वहीं एकत्र थे ॥ ७ ॥ तुममेंसे कौन वीर लवणको मारेगा। भरत या शत्रुघ्न, इनमेंसे किसके हिस्से उसके मारनेका काम सौंपा जाय ॥ ८ ॥ रामचन्द्रके पूछनेपर भरत बोले, मैं उसे मारूँगा, मेरे जिम्मे यह काम सौंपा जाय ॥ ९ ॥ धैर्य और शौर्य युक्त भरतके वचन सुनकर लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न सुवर्ण आसन छोड़कर उठे ॥१०॥ और रामचन्द्र-को प्रणाम करके बोले। रघुनन्दन मझले भाई भरतने बहुत काम किया है, ये अपने हिस्सेका कामकर चुके हैं, जब आप अयोध्यामें नहीं थे उस समय इन्होंने अयोध्याका पालन किया था और आपके आने-तकके वियोगका कष्ट भी इन्होंने उठाया था ॥ ११ १२ ॥ इस प्रकार इन्होंने अनेक कष्ट उठाये हैं, नन्दीग्राम में ये दुःखमयी शय्यापर सोते रहे हैं, फलमूल खाते रहे हैं, जटा और चीर धारण किया है इन्होंने इस प्रकारके अनेक कष्ट सहे हैं ॥ १३, १४ ॥ मैं काम करनेवाला हे ही हूँ, अतएव अब इन्हें कष्ट न दिया

एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम् । राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे ॥१६॥
निवेशय महाबाहो भरतं यद्यवेक्षसे । शूरस्त्वं कृतविद्यश्च समर्थश्च निवेशने ॥१७॥
नगरं यमुनाजुष्टं तथा जनपदाञ्शुभान् । यो हि वंशं समुत्पाद्य पार्थिवस्य निवेशने ॥१८॥
न विधत्ते नृपं तत्र नरकं स हि गच्छति । स त्वं हत्वा मधुसुतं लवणं पापनिश्चयम् ॥१९॥
राज्यं प्रशाधि धर्मेण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे । उत्तरं च न वक्तव्यं शूर वाक्यान्तरे मम ॥२०॥
बालेन पूर्वजस्याज्ञा कर्तव्या नात्र संशयः । अभिषेकं च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्व ममोद्यतं ।
वसिष्ठप्रमुखैर्विप्रैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

एवमुक्तस्तु रामेण परां व्रीडामुपागमत् । शत्रुघ्नो वीर्यसंपन्नो मन्दं मन्दमुवाच ह ॥ १ ॥
अधर्मं विद्म काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरेश्वर । कथं तिष्ठत्सु ज्येष्ठेषु कनीयानभिषिच्यते ॥ २ ॥
अवश्यं करणीयं च शासनं पुरुषर्षभ । तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥
त्वत्तो मया श्रुतं वीर श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम् । नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति ॥ ४ ॥
व्याहृतं दुर्वचो घोरं हन्तास्मि लवणं मृधे । तस्यैवं मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥

जाय । इस प्रकार शत्रुघ्नके कहनेपर रामचन्द्र पुनः बोले ॥१५॥ अच्छी बात है, तुम मेरी आज्ञाका पालन करो । मैं मधुके राज्यपर तुम्हारा अभिषेक करूँगा अर्थात् वह राज्य तुम्हें दूँगा ॥ १६ ॥ यदि तुम ऐसा समझते हो तो भरतको यहीं रहने दो, इनको विश्राम करने दो, तुम वीर हो, विद्वान हो और इनको विश्राम देनेमें समर्थ हो ॥१६॥ वह नगर यमुनाके पास है । वहाँके राज्यके गाँव भी सुन्दर हैं । जो राजा एक राजवंशको राज्यसे हटादेता है और उस स्थानपर दूसरे राजाका अभिषेक नहीं करता है, वह राजा नरकमें जाता है । अतएव तुम पापी मधुपुत्र लवणको मारकर धर्मपूर्वक वहाँका राज्य शासन करो । यदि तुम मेरी बात मानो तो वीर, मेरे वचनोंके विरोधी उत्तर न देना ॥ १८, २० ॥ बालकको अपने बड़ोंकी आज्ञा बिना सन्देहके माननी चाहिये । वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंके द्वारा विधिपूर्वक मन्त्रोंके साथ होनेवाले अभिषेककी तुम प्रतीक्षा करो, ऐसी मेरी आज्ञा है ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बासठवां सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

रामचन्द्रकी बातोंसे पराक्रमी शत्रुघ्न बड़े लज्जित हुए । वे धीरे-धीरे बोले, महाराज, इस विषयमें मैं अधर्म देखता हूँ । बड़ोंके रहते हुए छोटेका अभिषेक कैसे होगा ॥ १ ॥ २ ॥ महाभाग, आपकी आज्ञाका भी मुझे पालन करना है, क्योंकि आपकी आज्ञा टाली नहीं जा सकती ॥ ३ ॥ वीर, आपसे तथा श्रुतियोंसे मैंने सुना है । मझले भाई भरतकी प्रतिज्ञा करनेपर मुझे प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए ॥ ४ ॥ क्रूर लवणको मैं मारूँगा । यह जो मैंने कहा है यह अच्छा नहीं कहा है । पुरुषश्रेष्ठ, उसी अनुचित बातके कहनेका यह फल मुझे मिल रहा है ॥ ५ ॥ बड़ेके उत्तर देनेपर भी मैंने जो उत्तर दिया है वह धर्म-

उत्तरं नहि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः। अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥ ६ ॥
सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामीति चोत्तरम्। मा द्वितीयेन दण्डो वै निपतेन्मयि मानद ॥ ७ ॥
कामकारो ह्यहं राजंस्तवास्य पुरुषर्षभ। अधर्मं जहि काकुत्स्थ मत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥
एवमुक्ते तु शूरेण शत्रुघ्नेन महात्मना। उवाच रामः संहृष्टो भरतं लक्ष्मणं तथा ॥ ९ ॥
संभारानभिषेकस्य आनयध्वं समाहिताः। अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि राघवम् ॥१०॥
पुरोधसं च काकुत्स्थ नैगमानृत्विजस्तथा। मन्त्रिणश्चैव तान्सर्वानानयध्वं ममाज्ञया ॥११॥
राज्ञः शासनमाज्ञाय तथाकुर्वन्महारथाः। अभिषेकसमारम्भं पुरस्कृत्य पुरोधसम् ॥१२॥
प्रविष्टा राजभवनं राजानो ब्राह्मणास्तथा। ततोऽभिषेको ववृधे शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥१३॥
संप्रहर्षकरः श्रीमान्राघवस्य पुरस्य च। अभिषिक्तस्तु काकुत्स्थो बभौ चादित्यसंनिभः॥१४॥
अभिषिक्तः पुरा स्कन्दः सेन्द्रैरिव दिवौकसैः। अभिषिक्ते तु शत्रुघ्ने रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१५॥
पौराः प्रमुदिताश्चासन्ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः। कौसल्या च सुमित्रा च मङ्गलं केकयी तथा ॥१६॥
चक्रुस्ता राजभवने याश्चान्या राजयोषितः। ऋषयश्च महात्मानो यमुनातीरवासिनः ॥१७॥
हतं लवणमाशंसुः शत्रुघ्नस्याभिषेचनात्। ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः।
उवाच मधुरां वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन् ॥१८॥
अयं शरस्त्वमोघस्ते दिव्यः परपुरंजयः। अनेन लवणं सौम्य हन्तासि रघुनन्दन ॥१९॥

हीन है, परलोक निश्चित है, मुझे वह उत्तर नहीं देना चाहिए था ॥ ६ ॥ राजन्, मैं आपकी बातका उत्तर नहीं देता, क्योंकि वैसा करनेसे मुझे दण्डित होना पड़ेगा। अर्थात् भरतके कहनेपर मैंने कहा उसका दण्ड मुझे दिया जानेवाला है। अब यदि आपकी बातका उत्तर दूँ तो और दण्ड भोगना पड़ेगा ॥ ७ ॥ मैं आपका तथा इनका आज्ञाकारी हूँ। अतएव रघुनन्दन, मेरे अधर्मका आप नाश करें, अर्थात् बड़ेके रहते जो मेरे अभिषेक होनेकी आपने आज्ञा दी है, उसे रोकें ॥ ८ ॥ वीर महात्मा शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और वे भरत तथा लक्ष्मणसे बोले ॥ ९ ॥ इसी समय अभिषेककी सामग्रियां आपलोग एकत्र करें मैं आज ही इनका अभिषेक करूँगा ॥१०॥ पुरोहित, वैदिक, ऋत्विक, और मन्त्रीको मेरी आज्ञासे बुलवाओ ॥ ११ ॥ महाभारत लक्ष्मण और भरत राजाकी आज्ञासे अभिषेकी सामग्री, पुरोहित, ब्राह्मण तथा राजाओंके साथ राजभवनमें आये और जहाँ महात्मा शत्रुघ्नका राज्याभिषेक हुआ ॥ १२, १३ ॥ इससे रामचन्द्रको तथा नगरवासियोंको आनन्द हुआ। अभिषेक होनेपर शत्रुघ्न सूर्यके समान शोभित हुए ॥ १४ ॥ पुण्यात्मा रामचन्द्रके द्वारा अभिषिक्त होनेपर शत्रुघ्न स्कन्द-कार्तिकेयके समान शोभित हुए, जिनका अभिषेक इन्द्र आदि देवताओंने किया था ॥ १५ ॥ पुरवासी तथा विद्वान् ब्राह्मण इससे प्रसन्न हुए। कौसल्या, सुमित्रा, केकयी तथा राजभवनकी अन्य स्त्रियोंने मङ्गल कृत्य किये। शत्रुघ्नके राज्याभिषेकसे यमुना तीरवासी मुनियोंने समझा कि लवण मारा गया। इसके पश्चात् शत्रुघ्नको गोदमें लेकर रामचन्द्र उनका उत्साह बढ़ाते हुए बोले ॥ १६ ॥ १८ ॥ शत्रुविजयी, यह दिव्यशर अमोघ है, यह व्यर्थ नहीं जाता, सौम्य, तुम इससे लवणको मारोगे ॥ १९ ॥ स्वयम्भु अजेय, सब

सृष्टः शरोऽयं काकुत्स्थ यदा शेते महार्णवे । स्वयंभूरजितो दिव्यो यं नापश्यन्सुरासुराः ॥२०॥
अदृश्यः सर्वभूतानां तेनायं हि शरोत्तमः । सृष्टः क्रोधाभिभूतेन विनाशार्थं दुरात्मनोः ॥२१॥
मधुकैटभयोर्वीर विघाते सर्वरक्षसाम् । स्रष्टुकामेन लोकांस्त्रींस्तौ चानेन हतौ युधि ॥२२॥
तौ हत्वा जनभोगार्थे कैटभं तु मधुं तथा । अनेन शरमुख्येन ततो लोकांश्चकार सः ॥२३॥
नायं मया शरः पूर्वं रावणस्य वधार्थिना । मुक्तः शत्रुघ्न भूतानां महान्त्रासो भवेदिति ॥२४॥
यच्च तस्य महच्छूलं त्र्यम्बकेण महात्मना । दत्तं शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥२५॥
तत्संनिक्षिप्य भवने पूज्यमानं पुनः पुनः । दिशः सर्वाः समासाद्य प्राप्नोत्याहारमुत्तमम् ॥२६॥
यदा तु युद्धमाकाङ्क्षन्यदि कश्चित्समाह्वयेत् । तदा शूलं गृहीत्वा तु भस्म रक्षः करोति हि ॥२७॥
स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधविनाकृतम् । अप्रविष्टं पुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुधः ॥२८॥
अप्रविष्टं च भवनं युद्धाय पुरुषर्षभ । आह्वयेथा महाबाहो ततो हन्तासि राक्षसम् ॥२९॥
अन्यथा क्रियमाणे तु अवध्यः स भविष्यति । यदि त्वेवं कृतं वीर विनाशमुपयास्यति ॥३०॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं शूलस्य च विपर्ययः । श्रीमतः शितिकण्ठस्य कृत्यं हि दुरतिक्रमम् ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

प्राणियोंके अदृश्य विष्णु जब समुद्रमें सोते हैं, जब उनको देवता और असुर भी नहीं देख सकते थे वहीं उन्होंने क्रोध करके इस बाणकी सृष्टि की । क्योंकि विष्णु त्रिलोककी सृष्टि करना चाहते थे, और राक्षस तथा मधु-कैटभ इसमें विघ्न डालते थे । विष्णुने इसी शरसे मधु और कैटभको मारा था ॥ २० ॥ २२ ॥ मधु और कैटभ दोनोंको इस शरसे मारकर विष्णुने मनुष्योंके भोगके लिए लोकोंकी सृष्टि की ॥ २३ ॥ शत्रुघ्न, रावणके वधके लिए मैंने यह बाण नहीं छोड़ा था, क्योंकि इससे प्राणियोंका बड़ा नाश होता ॥ २४ ॥ मधुके पास भी एक उत्तम अस्त्र शूल है । महात्मा शिवने शत्रुनाशके लिए उसे दिया है ॥ २५ ॥ वह अस्त्र वह घरमें रखता है और उसकी पूजा करता है । आहारके लिए बिना अस्त्रके ही वह चारों ओर जाता है ॥ २६ ॥ जब कोई युद्धार्थी उसे युद्धके लिए बुलाता है तब वह शूल लेकर निकलता है और उसे भस्म कर देता है ॥ २६ ॥ अतएव जब वह आहार ढूँढ़नेके लिए नगरके बाहर जाय उस समय नगरद्वारपर अस्त्रोंसे सज्जित होकर तुम उसकी प्रतीक्षा करो । वह नगरमें पहुँचने न पावे, उस समय वह बिना अस्त्रके रहेगा ॥ २८ ॥ वह घर पहुँचने न पावे उसी समय उसे युद्धके लिए बुलाओ । इस प्रकार तुम उस राक्षसको मार सकोगे ॥ २९ ॥ यदि तुम इसके विपरीत करोगे तो वह अवध्य हो जायगा । उसके विनाशका यही उपाय है ॥ ३० ॥ शिवके कार्यको कोई पलट नहीं सकता, अतएव मैंने तुम्हें शूलसे बचनेका उपाय बतला दिया ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

चतुष्षष्टितमः सर्गः ६४

एवमुक्त्वा च काकुत्स्थं प्रशस्य च पुनः पुनः । पुनरेवापरं वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ १ ॥
इमान्यश्वसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभ । रथानां द्वे सहस्रे च गजानां शतमुत्तमम् ॥ २ ॥
अन्तरापणवीथ्यश्च नानापण्योपशोभिताः । अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं तथैव नटनर्तकाः ॥ ३ ॥
हिरण्यस्य सुवर्णस्य नियतं पुरुषर्षभ । आदाय गच्छ शत्रुघ्न पर्याप्तधनवाहनः ॥ ४ ॥
बलं च सुभृतं वीर हृष्टतुष्टमनुद्धतम् । संभाषासंप्रदानेन रञ्जयस्व नरोत्तम ॥ ५ ॥
नह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवः । सुप्रीतो भृत्यवर्गस्तु यत्र तिष्ठति राघव ॥ ६ ॥
अतो हृष्टजनाकीर्णां प्रस्थाप्य महतीं चमूम् । एक एव धनुष्पाणिर्गच्छ त्वं मधुनो वनम् ॥ ७ ॥
यथा त्वां न प्रजानाति गच्छन्तं युद्धकाङ्क्षिणम् । लवणस्तु मधोः पुत्रस्तथा गच्छेरशङ्कितम् ॥ ८ ॥
न तस्य मृत्युरन्योऽस्ति कश्चिद्धि पुरुषर्षभ । दर्शनं योऽभिगच्छेत स वध्यो लवणेन हि ॥ ९ ॥
स ग्रीष्मे अपयाते तु वर्षारात्र उपागते । हन्यास्त्वं लवणं सौम्य स हि कालोऽस्य दुर्मतेः ॥१०॥
महर्षींस्तु पुरस्कृत्य प्रयान्तु तव सैनिकाः । यथा ग्रीष्मावशेषेण तरेयुर्जाह्नवीजलम् ॥११॥
तत्र स्थाप्य बलं सर्वं नदीतीरे समाहितः । अग्रतो धनुषा सार्धं गच्छ त्वं लघुविक्रम ॥१२॥
एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुघ्नस्तान्महाबलान् । सेनामुख्यान्समानीय ततो वाक्यमुवाच ह ॥१३॥
एते वो गणिता वासा यत्र तत्र निवत्स्यथ । स्थातव्यं चाविरोधेन यथा बाधा न कस्यचित् ॥१४॥

इस प्रकार उन्हें समझाकर तथा बार-बार उनकी प्रशंसा करके रामचन्द्र पुनः उनसे बोले ॥ १ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, ये उत्तम चार हजार घोड़े, दो हजार रथ तथा सौ हाथी तुम्हारे साथ जाँय ॥ २ ॥ रास्तेके निवास स्थानपर तरह-तरहकी चीजोंके बाजार बसानेवाले तथा सड़क बनानेवाले तुम्हारे साथ जाँय, और नट तथा नर्तक भी जाँय ॥ ३ ॥ एक लाख सोनेका सिक्का लेकर जाओ, इस प्रकार पर्याप्त धन और सवारी तुम्हारे साथ जाय ॥ ४ ॥ यह सेना अच्छा वेतन पाती है, यह हृष्ट और सन्तुष्ट है, अतएव मधुर वचन तथा दानसे उसे प्रसन्न रखना ॥ ५ ॥ वहाँ युद्धक्षेत्रमें न धन रहता है न स्त्री रहती है और न बान्धव। अतएव भृत्योंको प्रसन्न रखना चाहिए, क्योंकि युद्ध क्षेत्रमें वे ही साथ रहते हैं ॥ ६ ॥ अतः प्रसन्न मनुष्योंकी इस विशाल सेनाको पहले भेज दो। पुनः अकेले तुम मधुवनमें धनुष हाथमें लेकर जाओ ॥ ७ ॥ तुम इस प्रकार जाना जिससे मधुके पुत्र लवणके मनमें यह सन्देह न हो कि यह युद्ध करनेके लिए आये हैं ॥ ८ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, उसकी मृत्युका कोई उपाय नहीं है, जो युद्धके लिए इसके सामने जायगा वह अवश्य ही लवणके हाथों मारा जायगा ॥ ९ ॥ ग्रीष्मके बीतनेपर वर्षा कालके आनेपर तुम लवणका वध करना, क्योंकि वह उसके वधका समय है ॥ १० ॥ तुम्हारे सैनिक महर्षियोंके साथ जांय, जिससे ग्रीष्मके अन्तमें वे गंगापार कर सकें ॥ ११ ॥ वहीं नदी तीरपर सावधानीसे अपनी सेना ठहराकर धनुष लेकर तुम आगे अकेले जाओ ॥ १२ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने अपने प्रधान सेनापतियोंको बुलाया और उनसे कहा ॥ १३ ॥ रात्रिमें जहाँ आपलोग ठहरेंगे वे जाने हुए हैं, वहीं आपलोग ठहरिएगा, आपसमें मेलसे रहिएगा, जिसमें किसीको कष्ट न हो ॥ १४ ॥ इस प्रकार समझाकर उन्होंने अपनी बड़ी

तथा तांस्तु समाज्ञाप्य प्रस्थाप्य च महद्बलम्। कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं चाभ्यवादयत् ॥१५॥
रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिरसाभिप्रणम्य च। लक्ष्मणं भरतं चैव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥१६॥
पुरोहितं वसिष्ठं च शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान्। रामेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।
प्रदक्षिणमथो कृत्वा निर्जगाम महाबलः ॥१७॥
निर्याप्य सेनामथ सोऽग्रतस्तदा गजेन्द्रवाजिप्रवरौघसंकुलाम्।
उपास्यमानः स नरेन्द्रपार्श्वतः प्रतिप्रयातो रघुवंशवर्धनः ॥ ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुष्षष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

प्रस्थाप्य च बलं सर्वं मासमात्रोषितः पथि। एक एवाशु शत्रुघ्नो जगाम त्वरितं तदा ॥ १ ॥
द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनन्दनः। वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद्वासमुत्तमम् ॥ २ ॥
सोऽभिवाद्य महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम्। कृताञ्जलिरथो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥
भगवन्वस्तुमिच्छामि गुरोः कृत्यादिहागतः। श्वः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीचीं वारुणीं दिशम् ॥ ४ ॥
शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः। प्रत्युवाच महात्मानं स्वागतं ते महायशः ॥ ५ ॥
स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणां कुलस्य वै। आसनं पाद्यमर्घ्यं च निर्विशङ्कः प्रतीच्छ मे ॥ ६ ॥
प्रतिगृह्य तदा पूजां फलमूलं च भोजनम्। भक्षयामास काकुत्स्थस्तृप्तिं च परमां गतः ॥ ७ ॥
स भुक्त्वा फलमूलं च महर्षिं तमुवाच ह। पूर्वा यज्ञविभूतीयं कस्याश्रमसमीपतः ॥ ८ ॥

सेना भेज दी। पुनः उन्होंने माता कौसल्या, सुमित्रा और केकयीको प्रणाम किया। सिर झुकाकर रामको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की, लक्ष्मण भरत तथा पुरोहित वसिष्ठको उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। रामकी आज्ञासे शत्रुतापी शत्रुघ्न रामकी प्रदक्षिणा करके प्रस्थित हुए ॥ १५, १७ ॥ हाथी-घोड़ेसे युक्त सेनाको पहले भेजकर पीछेसे वे रामचन्द्रके पाससे चले ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौसठवां सर्ग समाप्त ॥६४॥
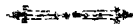
सेनाको भेजकर शत्रुघ्न एक महीने तक अयोध्यामें रहे, पुनः वे अकेले ही शीघ्रतापूर्वक चले, मार्गमें उनका साथी दूसरा नहीं था ॥ १ ॥ रास्तेमें दो रात ठहरकर शत्रुघ्न वाल्मीकिके पवित्र आश्रममें गये, जो सुखकर निवास स्थान है ॥ २ ॥ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वाल्मीकिको उन्होंने प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले ॥ ३ ॥ भगवन्, आज मैं यहाँ रहना चाहता हूँ, रामचन्द्रके कामसे यहाँ आया हूँ। कल प्रातःकाल पश्चिम दिशामें जाऊँगा ॥ ४ ॥ महात्मा वाल्मीकिने हँसकर उनका स्वागत किया और वे उनसे बोले ॥ ५ ॥ यह आश्रम रघुवंशियोंका अपना ही है, तुम निःशङ्क होकर मेरी ओरसे आसन पद्य और अर्घ्य ग्रहण करो ॥ ६ ॥ इस प्रकार सत्कार ग्रहण करके शत्रुघ्नने फल-मूल आदि भोजन किया और वे तृप्त हुए ॥ ७ ॥ भोजन करनेके पश्चात शत्रुघ्न मुनिसे बोले। महाराज आपके आश्रमके पास

तत्तस्य भाषितं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् । शत्रुघ्न शृणु यस्येदं बभूवायतनं पुरा ॥ ९ ॥
युष्माकं पूर्वको राजा सौदासस्तस्य भूपतेः । पुत्रो वीर्यसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिकः ॥१०॥
स बाल एव सौदासो मृगयामुपचक्रमे । चञ्चूर्यमाणं ददृशे स शूरो राक्षसद्वयम् ॥११॥
शार्दूलरूपिणौ घोरौ मृगान्बहुसहस्रशः । भक्षमाणावसंतुष्टौ पर्याप्तिं नैव जग्मतुः ॥१२॥
स तु तौ राक्षसौ दृष्ट्वा निर्मृगं च वनं कृतम् । क्रोधेन महताविष्टो जघानैकं महेषुणा ॥१३॥
विनिपात्य तमेकं तु सौदासः पुरुषर्षभः । विज्वरो विगतामर्षो हतं रक्षो ह्युदैक्षत ॥१४॥
निरीक्षमाणं तं दृष्ट्वा सहायं तस्य रक्षसः । संतापमकरोद्घोरं सौदासं चेदमब्रवीत् ॥१५॥
यस्मादनपराधं तं सहायं मम जघ्निवान् । तस्मात्तवापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिक्रियाम् ॥१६॥
एवमुक्त्वा तु तद्रक्षस्तत्रैवान्तरधीयत । कालपर्याययोगेन राजा मित्रसहोऽभवत् ॥१७॥
राजापि यजते यज्ञमस्याश्रमसमीपतः । अश्वमेधं महायज्ञं तं वसिष्ठोऽप्यपालयत् ॥१८॥
तत्र यज्ञो महानासीद्बहुवर्षगणायुतः । समृद्धः परया लक्ष्म्या देवयज्ञसमोऽभवत् ॥१९॥
अथावसाने यज्ञस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् । वसिष्ठरूपी राजानमिति होवाच राक्षसः ॥२०॥
अद्य यज्ञावसानान्ते सामिषं भोजनं मम । दीयतामतिशीघ्रं वै नात्र कार्या विचारणा ॥२१॥
तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं रक्षसा ब्रह्मरूपिणा । सूदान्संस्कारकुशलानुवाच पृथिवीपतिः ॥२२॥
हविष्यं सामिषं स्वादु यथा भवति भोजनम् । तथा कुरुत शीघ्रं वै परितुष्येद्यथा गुरुः ॥२३॥

यह किसके यज्ञकी समृद्धि है, अर्थात् यहाँ किसने यज्ञ किया था ॥ ८ ॥ वाल्मीकिने कहा, शत्रुघ्न सुनो, यहाँ जिसने पहले यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ आप लोगोंके पूर्वज सौदास नामके राजा थे, उनका पुत्र वीर्यसह था, जो बली और धार्मिक था ॥ १० ॥ बालक सौदास शिकारके लिए निकला। उस वीरने दो राक्षसोंको भ्रमण करते देखा ॥ ११ ॥ वे दोनों भयंकर राक्षस बाघके रूपमें थे और हजारों पशुओंको खाकर भी सन्तुष्ट नहीं हुए थे ॥ १२ ॥ उन्होंने उन राक्षसोंको देखा तथा मृगहीन वन देखा, इससे उन्होंने बड़ा क्रोध किया और उनमेंके एक राक्षसको मार डाला ॥१३॥ उनमेंके एक राक्षसको मारकर सौदास निश्चिन्त हो गये, उनका क्रोध जाता रहा, वे मरे राक्षसको देखने लगे ॥ १४ ॥ दूसरा राक्षस मृत सहायकको देखते राजाको देखकर बड़ा दुःखी हुआ और वह सौदाससे बोला ॥१५॥ तुमने बिना अपराधके मेरे सहायकको मारा है, अतएव पापी, मैं तुमको भी इसका बदला दूँगा ॥१६॥ ऐसा कहकर वह राक्षस वहीं अन्तर्धान हो गया, छिप गया। इसके बहुत दिनोंके बाद मित्र सह (वीर्यसहका ही य दूसरा नाम है) राजा हुए ॥१७॥ वे राजा इसी आश्रमके पास अश्वमेध यज्ञ करने लगे और महर्षि वशिष्ठ उस यज्ञकी रक्षा करते थे। १८। वह यज्ञ बहुत बड़ा था, कई हजार वर्षों तक होता रहा, उसमें बहुत धन लगा। वह यज्ञ देवयज्ञके समान था ॥ १९ ॥ यज्ञकी समाप्तिमें पूर्व वैरका स्मरण करके वह राक्षस वशिष्ठके रूपमें आकर राजासे बोला, ऐसा कहा जाता है ॥ २० ॥ आज यज्ञकी समाप्तिपर मुझे मांसका भोजन दो, सोचो-विचारो मत, शीघ्रता करो ॥ २१ ॥ ब्राह्मणरूपी राक्षसके वचन सुनकर राजा निपुण रसोई बनाने वालोंसे बोले ॥ २२ ॥ मांसके साथ हविष्य बनाओ जो स्वादिष्ठ हो, शीघ्रता करो जिससे गुरु सन्तुष्ट हों ॥ २३ ॥ राजाकी आज्ञासे

शासनात्पार्थिवेन्द्रस्य सूदः संभ्रान्तमानसः। तच्च रक्षः पुनस्तत्र सूदवेषमथाकरोत् ॥२४॥
स मानुषमथो मांसं पार्थिवाय न्यवेदयत्। इदं स्वादु हविष्यं च सामिषं चान्नमाहृतम् ॥२५॥
स भोजनं वसिष्ठाय पत्न्या सार्धमुपाहरत्। मदयन्त्या नरश्रेष्ठ सामिषं रक्षसा हृतम् ॥२६॥
ज्ञात्वा तदामिषं विप्रो मानुषं भोजनागतम्। क्रोधेन महताविष्टो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥२७॥
यस्मात्त्वं भोजनं राजन्ममैतद्दातुमिच्छसि। तस्माद्भोजनमेतत्ते भविष्यति न संशयः ॥२८॥
ततः क्रुद्धस्तु सौदासस्तोयं जग्राह पाणिना। वसिष्ठं शप्तुमारेभे भार्या चैनमवारयत् ॥२९॥
राजन्प्रभुर्यतोऽस्माकं वसिष्ठो भगवानृषिः। प्रतिशप्तुं न शक्तस्त्वं देवतुल्यं पुरोधसम् ॥३०॥
ततः क्रोधमयं तोयं तेजोबलसमन्वितम्। व्यसर्जयत धर्मात्मा ततः पादौ सिषेच च ॥३१॥
तेनास्य राज्ञस्तौ पादौ तदा कल्माषतां गतौ। तदाप्रभृति राजासौ सौदासः सुमहायशाः ॥३२॥
कल्माषपादः संवृत्तः ख्यातश्चैव तथा नृपः। स राजा सह पत्न्या वै प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
पुनर्वसिष्ठं प्रोवाच यदुक्तं ब्रह्मरूपिणा ॥३३॥
तच्छ्रुत्वा पार्थिवेन्द्रस्य रक्षसा विकृतं च तत्। पुनः प्रोवाच राजानं वसिष्ठः पुरुषर्षभम् ॥३४॥
मया रोषपरीतेन यदिदं व्याहृतं वचः। नैतच्छक्यं वृथा कर्तुं प्रदास्यामि च ते वरम् ॥३५॥
कालो द्वादशवर्षाणि शापस्यान्तो भविष्यति। मत्प्रसादाच्च राजेन्द्र अतीतं न स्मरिष्यसि ॥३६॥
एवं स राजा तं शापमुपभुज्यारिसूदनः। प्रतिलेभे पुना राज्यं प्रजाश्चैवान्वपालयत् ॥३७॥

रसोई बनानेवाला घबड़ा गया। इसके पश्चात् उस राक्षसने रसोई बनानेवालेका वेष बना लिया ॥ २४ ॥ उस राक्षसने मनुष्यका मांस राजाके सामने रखा और वह बोला, यह मांस रहित हविष्य स्वादिष्ठ है, यह आपके लिए लाया हूँ ॥ २५ ॥ राजाने वह भोजन वसिष्ठ और उनकी पत्नी मदयन्तिको दिया जो सामिष भोजन राक्षस ले आया था ॥ २६ ॥ भोजनके लिए आया वह मांस मनुष्यका है यह जानकर वसिष्ठ बड़े क्रोधसे राजाको शाप देने लगे ॥ २७ ॥ राजन्, तुम मुझको ऐसा भोजन दे रहे हो, इस कारण तुमको ऐसा ही भोजन करना पड़ेगा ॥ २८ ॥ सौदासने भी क्रोध करके हाथमें जल लिया और वसिष्ठको शाप देने लगे, पर उनकी स्त्रीने उन्हें रोका। २९। राजन्, भगवान् वसिष्ठ ऋषि हम लोगोंके स्वामी हैं, देवतुल्य पुरोहितको शापके बदलेमें शाप देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ॥ ३० ॥ तेज और बलयुक्त वह जल जो राजाने क्रोधसे लिया था उन्होंने अपने पैरों पर छोड़ दिया ॥ ३१ ॥ इससे राजाके दोनों पैर काले हो गये। तबसे यशस्वी राजा सौदास कल्माषपाद हो गये और वे इसी नामसे प्रसिद्ध भी हुए। अनन्तर राजाने अपनी स्त्रीके साथ ब्राह्मणरूपी वसिष्ठके पैरोंपर पड़कर क्षमा प्रार्थना की, और वसिष्ठरूपी राक्षसने कहा था वह भी उन्होंने उनसे कहा ॥ ३२,३३ ॥ राजाके वचन सुनकर वसिष्ठने समझा कि यह सब राक्षसने किया है, अतएव पुरुषश्रेष्ठ राजासे वसिष्ठ पुनः बोले ॥ ३४ ॥ राजन्, क्रोध करके मैंने जो शाप दिया है वह असत्य नहीं किया जा सकता है, पर मैं तुम्हें दूसरा वर देता हूँ ॥ ३५ ॥ इस शापकी अवधि बारह वर्ष होंगे। बारह वर्षोंके बाद यह शाप छूट जायगा, और मेरी कृपासे तुम्हें बीती बातोंका स्मरण न रहेगा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार राजाने वसिष्ठके दिये शापका फल भोगकर पुनः राज्य पाया और वे प्रजाका

तस्य कल्माषपादस्य यज्ञस्यायतनं शुभम् । आश्रमस्य समीपेऽस्मिन्यन्मां पृच्छसि राघव ॥३८॥
तस्य तां पार्थिवेन्द्रस्य कथां श्रुत्वा सुदारुणाम् । विवेश पर्णशालायां महर्षिमभिवाद्य च ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्ठितमः सर्गः ६६

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् । तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ १ ॥
ततोऽर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः । वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम्॥ २ ॥
भगवन्रामपत्नी सा प्रसूता दारकद्वयम् । ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम् ॥ ३ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा महर्षिः समुपागमत् । बालचन्द्रप्रतीकाशौ देवपुत्रौ महौजसौ ॥ ४ ॥
जगाम तत्र हृष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ । भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ॥ ५ ॥
कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः । वाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम्॥ ६ ॥
यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः । निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत् ॥ ७ ॥
यश्चावरोऽभवत्ताभ्यां लवेन सुसमाहितः । निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवेति च स नामतः ॥ ८ ॥
एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ । मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः॥ ९ ॥
तां रक्षां जगृहुस्तां च मुनिहस्तात्समाहिताः । अकुर्वंश्च ततो रक्षां तयोर्विगतकल्मषाः ॥१०॥

पालन करने लगे ॥ ३७ ॥ यह आश्रमके पास उसी राजा कल्माषपादका यज्ञ स्थान है, जिसके बारेमें तुमने मुझसे पूछा है ॥ ३८ ॥ राजा कल्माषपादकी भयंकर कथा सुनकर शत्रुघ्नने महर्षिको प्रणाम किया और वे पर्णशालामें चले गये ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

जिस रातको शत्रुघ्न वाल्मीकिके आश्रमकी पर्णशालामें गये उसी रातको सीताने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ आधी रातके समय मुनि कुमारोंने वाल्मीकि मुनिको सीताके पुत्र उत्पन्न होनेका शुभ-संवाद सुनाया ॥ २ ॥ भगवन्, रामकी स्त्रीने दो पुत्र उत्पन्न किये हैं। अतएव बालग्रहकी बाधा दूर करनेवाली रक्षा आप उनकी करें ॥ ३ ॥ ऋषि कुमारोंसे संवाद पाकर महर्षि वहाँ आये। वहाँ उन्होंने बालचन्द्र-तुल्य और देवकुमार-तुल्य दो बालक देखे, और बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बालग्रह आदिको नष्ट करनेवाली रक्षा विधि की ॥ ५ ॥ वाल्मीकिने कुश लेकर उन दोनों बालकोंकी भूतबाधासे रक्षा करनेवाली विधि की। उन्होंने कुशके दो टुकड़े किये, गड्डकी ओरसे एक बालकका मार्जन किया और आगेवाले हिस्सेसे जिसे लव कहते हैं दूसरे बालकका मार्जन किया ॥६॥ उन दोनों बालकोंमें जो बड़ा था उसका मार्जन समस्त कुशोंके द्वारा हुआ। अतएव उसका नाम कुश रखा गया ॥ ७ ॥ उनमें जो छोटा था उसका मार्जन लवसे (कुशके अग्र भागसे) हुआ इस कारण उसका नाम लव पड़ा ॥ ८ ॥ इस प्रकार वे दोनों यमज कुश-लव नामसे प्रसिद्ध हुए। ऋषिने कहा कि ये मेरे रखे इन नामोंसे ही प्रसिद्ध होंगे ॥ ९ ॥ वृद्ध स्त्रियोंने

तथा तां क्रियमाणां च वृद्धाभिर्गोत्र नाम च । संकीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ ॥११॥
अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत्प्रियम् । पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्टयेति चाब्रवीत् ॥१२॥
तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः । व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा ॥१३॥
प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् । मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः ॥१४॥
स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि । ऋषीणां पुण्यकीर्तीनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥१५॥
स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः । कथाभिरभिरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः ॥१६॥

स काञ्चनाद्यैर्मुनिभिः समेतै रघुप्रवीरो रजनीं तदानीम् ।
कथाप्रकारैर्बहुभिर्महात्मा विरामयामास नरेन्द्रसूनुः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

अथ रात्र्यां प्रवृत्तायां शत्रुघ्नो भृगुनन्दनम् । पप्रच्छ च्यवनं विप्रं लवणस्य यथाबलम् ॥ १ ॥
शूलस्य च बलं ब्रह्मन्के च पूर्वं विनाशिताः । अनेन शूलमुख्येन द्वन्द्वयुद्धमुपागताः ॥ २ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य महात्मनः । प्रत्युवाच महातेजाश्च्यवनो रघुनन्दनम् ॥ ३ ॥
असंख्येयानि कर्माणि यान्यस्य रघुनन्दन । इक्ष्वाकुवंशप्रभवे यद्वृत्तं तच्छृणुष्व मे ॥ ४ ॥

सावधान होकर मुनिके हाथसे वह रक्षा ग्रहण की, जो मुनिने अभ्यर्थमन्त्रित कुशोंके रूपमें दी और पापहीन उन स्त्रियोंने उसी प्रकार बालकोंकी रक्षा की ॥ १० ॥ सीताके उन दोनों बालकोंकी रक्षाके लिए उनके गोत्रनाम और सीता तथा रामका नाम लिया अर्थात् रक्षाके लिए नाम आदिका उच्चारण करके मुनिकी बतलायी विधि की ॥ ११ ॥ उनके द्वारा उच्चारित गोत्रनाम तथा राम सीताका वर्णन शत्रुघ्नने सुना, जिससे वे बड़े प्रसन्न हुए और सीताकी पर्णशालामें आकर वे बोले । माता, भाग्यकी बात है, मैं प्रसन्न हूँ ॥ १२ ॥ वह वर्षा कालके सावनकी छोटी रात बीत गयी, प्रसन्न महात्मा शत्रुघ्नको मालूम भी न हुआ ॥ १३ ॥ प्रातःकाल बली शत्रुघ्नने प्रातःकृत्य किया और मुनिकी आज्ञा लेकर वे आगे चले ॥ १४ ॥ मार्गमें सात रात निवास करके वे यमुनातीर पहुँचे और वहाँ उन्होंने पुण्यात्मा ऋषियोंके आश्रममें निवास किया ॥ १५ ॥ वहाँ उन्होंने भार्गव प्रमुख ऋषियोंके साथ सुन्दर और उचित कथाओंके कहते-सुनते निवास किया अर्थात् वहाँ समय बिताया । च्यवन आदि ऋषियोंके साथ अनेक प्रकारकी कथाएँ कहते-सुनते राजपुत्र महात्मा शत्रुघ्नने वह रात बितायी ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्ड का छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

रात होनेपर शत्रुघ्नने महर्षि च्यवनसे लवणका और शूलका बल पूछा । शूलके द्वारा किस-किससे उसने युद्ध किया है और किसका नाश किया है यह भी पूछा ॥ १,२ ॥ महात्मा शत्रुघ्नके वचन सुनकर तेजस्वी च्यवनने इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ३ ॥ इस असुरके असंख्य काम हैं । इक्ष्वाकुवंशी राजाके साथ

अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली। मांधाता इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ५ ॥
स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्नां शासने पृथिवीपतिः। सुरलोकमितो जेतुमुद्योगमकरोन्नृपः ॥ ६ ॥
इन्द्रस्य च भयं तीव्रं सुराणां च महात्मनाम्। माधांतरि कृतोद्योगे देवलोकजिगीषया ॥ ७ ॥
अर्धासनेन शक्रस्य राज्यार्धेन च पार्थिवः। वन्द्यमानः सुरगणैः प्रतिज्ञामध्यरोहत ॥ ८ ॥
तस्य पापमभिप्रायं विदित्वा पाकशासनः। सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच युवनाश्वजम् ॥ ९ ॥
राजा त्वं मानुषे लोके न तावत्पुरुषर्षभ। अकृत्वा पृथिवीं वश्यां देवराज्यमिहेच्छसि ॥१०॥
यदि वीर समग्रा ते मेदिनी निखिला वशे। देवराज्यं कुरुष्वेह सभृत्यबलवाहनः ॥११॥
इन्द्रमेवं ब्रुवाणं तं मांधाता वाक्यमब्रवीत्। क मे शक्र प्रतिहतं शासनं पृथिवीतले ॥१२॥
तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः। मधुपुत्रो मधुवने न तेऽज्ञां कुरुतेऽनघ ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा विप्रियं घोरं सहस्राक्षेण भाषितम्। व्रीडितोऽवाङ्मुखो राजा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥१४॥
आमन्त्र्य तु सहस्राक्षं प्रायात्किंचिदवाङ्मुखः। पुनरेवागमच्छ्रीमानिमं लोकं नरेश्वरः ॥१५॥
स कृत्वा हृदयेऽमर्षं सभृत्यबलवाहनः। आजगाम मधोः पुत्रं वशे कर्तुमरिंदमः ॥१६॥
स काङ्क्षमाणो लवणं युद्धाय पुरुषर्षभः। दूतं संप्रेषयामास सकाशं लवणस्य सः ॥१७॥
स गत्वा विप्रियाण्याह बहूनि मधुनः सुतम्। वदन्तमेवं तं दूतं भक्षयामास राक्षसः ॥१८॥
चिरायमाणे दूते तु राजा क्रोधसमन्वितः। अर्दयामास तद्रक्षः शरवृष्ट्या समन्ततः ॥१९॥

इसने जो किया है वह तुम मुझसे सुनो। पहले अयोध्यामें युवनाश्वके पुत्र मान्धाता नामके राजा थे, वे तीनों लोकोंके पराक्रमीके नामसे प्रसिद्ध थे ॥ ५ ॥ उन्होंने समूची पृथिवीको वशमें करके उसे अपने राज्यमें मिलाया, पुनः देवलोक जीतनेके लिए वे यहींसे उद्योग करने लगे ॥ ६ ॥ जब राजाने देवलोक जीतनेका उद्योग प्रारम्भ किया तब देवराज इन्द्र तथा देवता बड़े भयभीत हुए ॥ ७ ॥ देवता उस राजाको इन्द्रका आधा आसन और आधा राज्य दे रहे थे। तथापि उसने समूचा देवराज्य लेनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ८ ॥ इन्द्रने जब राजाका यह बुरा अभिप्राय जाना तब वे बड़े प्रेमसे उससे बोले ॥ ९ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, तुम अभी समूचे मर्त्यलोकके ही राजा नहीं हो, समूची पृथिवी तुम्हारे अधीन नहीं हुई। फिर पृथिवीको बिना वशमें किये तुम देवराज्यपर अधिकार क्यों चाहते हो ॥ १० ॥ वीर, यदि समूची पृथिवीपर तुम्हारा अधिकार हो जाय तो भृत्य, सेना, वाहनके साथ समस्त देवराज्यपर शासन करो। ११ ॥ इन्द्रके ऐसा कहनेपर मान्धाता बोले, इन्द्र, पृथिवीपर मेरा शासन कहाँ नहीं है ॥ १२ ॥ सहस्राक्ष इन्द्रने कहा, मधुका पुत्र लवण नामका राक्षस मधुवनमें रहता है, वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता ॥ १३ ॥ इन्द्रका कहा यह अप्रिय वचन सुनकर राजा लज्जित हुए उन्होंने सिर झुका लिया, वे कुछ उत्तर न दे सके ॥ १४ ॥ सिर झुकाए इन्द्रकी आज्ञा लेकर राजा पुनः इस मर्त्यलोकमें आये ॥ १५ ॥ क्रोध करके राजा सेना आदि लेकर मधुके पुत्रको अपने वशमें करनेके लिए आये ॥ १६ ॥ लवणसे युद्ध करनेकी इच्छासे राजाने उसके पास दूत भेजा ॥ १७ ॥ उसके पास जाकर दूत बहुत सी अप्रिय बातें कहने लगा, उस दूतको राक्षसने उसी समय खा लिया ॥ १८ ॥ दूतके लौटनेमें देर होनेसे राजाने क्रोध किया और बाणवृष्टिसे राक्षसको

ततः प्रहस्य तद्रक्षः शूलं जग्राह पाणिना । वधाय सानुबन्धस्य मुमोचायुधमुत्तमम् ॥२०॥
तच्छूलं दीप्यमानं तु सभृत्यबलवाहनम् । भस्मीकृत्वा नृपं भूमौ लवणस्यागमत्करम् ॥२१॥
एवं स राजा सुमहान्हतः सबलवाहनः । शूलस्य तु बलं सौम्य अप्रमेयमनुत्तमम् ॥२२॥
श्वः प्रभाते तु लवणं वधिष्यसि न संशयः । अगृहीतायुधं क्षिप्रं ध्रुवो हि विजयस्तव ॥२३॥
लोकानां स्वस्ति चैवं स्यात्कृते कर्मणि च त्वया । एतत्ते सर्वमाख्यातं लवणस्य दुरात्मनः ॥२४॥
शूलस्य च बलं घोरमप्रमेयं नरर्षभ । विनाशश्चैव मांधातुर्यत्नेनाभूच्च पार्थिव ॥२५॥
त्वं श्वः प्रभाते लवणं महात्मन्वधिष्यसे नात्र तु संशयो मे ।
शूलं विना निर्गतमामिषार्थे ध्रुवो जयस्ते भविता नरेन्द्र ॥ ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

कथां कथयतस्तेषां जयं चाकाङ्क्षतां शुभम् । व्यतीता रजनी शीघ्रं शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ १ ॥
ततः प्रभाते विमले तस्मिन्काले स राक्षसः । निर्गतस्तु पुराद्वीरो भक्ष्याहारप्रचोदितः ॥ २ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीर उत्तीर्य यमुनां नदीम् । तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत ॥ ३ ॥
ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते क्रूरकर्मा स राक्षसः । आगच्छद्बहुसाहस्रं प्राणिनां भारमुद्वहन् ॥ ४ ॥
ततो ददर्श शत्रुघ्नं स्थितं द्वारि धृतायुधम् । तमुवाच ततो रक्षः किमनेन करिष्यसि ॥ ५ ॥

पीड़ित किया ॥१९॥ अनन्तर राक्षसने हँसकर शूल उठाया और समस्त साथियोंके सहित राजाको मारनेके लिए उसने वह उत्तम अस्त्र छोड़ा ॥ २० ॥ प्रकाशमान उस शूलने राजा, भृत्य, सेना तथा वाहन सबको जला दिया और पुनः वह लवणके हाथमें आगया ॥ २१ ॥ इस प्रकार वे राजा अपने साथियोंके साथ मारे गये । सौम्य, इस शूलका बल अकथनीय है ॥ २२ ॥ कल प्रातःकाल वह राक्षस जबतक शूल न ले तभी तुम उसका वध करो, इस प्रकार निश्चित तुम्हारी विजय होगी ॥ २३ ॥ लवणका वध करनेपर समस्त संसारका कल्याण होगा । नरश्रेष्ठ, मैंने दुरात्मा लवणका बल तथा उसके शूलका बल मैंने तुम्हें बतलाया, और मान्धाताका जिस प्रकार नाश हुआ वह भी बतलाया ॥२४, २५॥ कल प्रातःकाल शूलके बिना जब वह भोजन लानेके लिए, निकले उसी समय तुम उसका वध करो । राजन्, इस प्रकार तुम्हारी विजय अवश्य होगी ॥२६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सड़सठवां सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

विजय चाहनेवाले उन लोगोंके इस प्रकार बातचीत करते रात बीत गयी, प्रातःकाल हो गया ॥१॥ सुन्दर प्रभातकालमें वह वीर राक्षस आहार लानेके लिए नगरसे बाहर निकला ॥ २ ॥ इसी अवसरमें वीर शत्रुघ्न यमुनापार करके मथुरा नगरीके तीरपर धनुष लेकर बैठ गये ॥ ३ ॥ दो पहरके समय वह क्रूर राक्षस कई हजार प्राणियोंका भार लेकर आया ॥ ४ ॥ अस्त्र लेकर द्वारपर बैठे शत्रुघ्नको देखकर वह बोला, इस अस्त्रसे क्या करोगे, नराधम, ऐसे हजारों अस्त्रोंको मैंने खा डाला है, मालूम होता है तुमपर काल

ईदृशानां सहस्राणि सायुधानां नराधम । भक्षितानि मया रोषात्कालेनानुगतो ह्यसि ॥ ६ ॥
आहारश्चाप्यसंपूर्णो ममायं पुरुषाधम । स्वयं प्रविष्टोऽद्य मुखं कथमासाद्य दुर्मते ॥ ७ ॥
तस्यैवं भाषमाणस्य हसतश्च मुहुर्मुहुः । शत्रुघ्नो वीर्यसंपन्नो रोषादश्रूण्यवासृजत् ॥ ८ ॥
तस्य रोषाभिभूतस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः । तेजोमया मरीच्यस्तु सर्वगात्रैर्विनिष्पतन् ॥ ९ ॥
उवाच च सुसंक्रुद्धः शत्रुघ्नः स निशाचरम् । योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह ॥१०॥
पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य धीमतः । शत्रुघ्नो नाम शत्रुघ्नो वधाकाङ्क्षी तवागतः ॥११॥
तस्य मे युद्धकामस्य द्वन्द्वयुद्धं प्रदीयताम् । शत्रुस्त्वं सर्वभूतानां न मे जीवन्गमिष्यसि ॥१२॥
तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु राक्षसः प्रहसन्निव । प्रत्युवाच नरश्रेष्ठं दिष्ट्या प्राप्तोऽसि दुर्मते ॥१३॥
मम मातृष्वसुर्भ्राता रावणो नाम राक्षसः । हतो रामेण दुर्बुद्धे स्त्रीहेतोः पुरुषाधम ॥१४॥
तच्च सर्वं मया क्षान्तं रावणस्य कुलक्षयम् । अवज्ञां पुरतः कृत्वा मया यूयं विशेषतः ॥१५॥
निहताश्च हि ते सर्वे परिभूतास्तृणं यथा । भूताश्चैव भविष्याश्च यूयं च पुरुषाधमाः ॥१६॥
तस्य ते युद्धकामस्य युद्धं दास्यामि दुर्मते । तिष्ठ त्वं च मुहूर्तं तु यावदायुधमानये ॥१७॥
ईप्सितं यादृशं तुभ्यं सज्जये यावदायुधम् । तमुवाचाशु शत्रुघ्नः क्व मे जीवन्गमिष्यसि ॥१८॥
स्वयमेवागतः शत्रुर्न मोक्तव्यः कृतात्मना । यो हि विक्लवया बुद्ध्या प्रसरं शत्रवे दिशेत् ।
स हतो मन्दबुद्धिः स्याद्यथा कापुरुषस्तथा ॥१९॥

चढ़ा है ॥ ५ ॥ ६ ॥ पुरुषाधम, आजका मेरा यह आहार भी थोड़ा था, अतएव तुम स्वयं आकर मेरे मुँहमें पड़ गये हो, अब यहाँसे कहाँ जाओगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस इस प्रकार कहता था और हँसता था, उसको देखकर क्रोधसे शत्रुघ्नकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे ॥ ८ ॥ महात्मा शत्रुघ्नके क्रोधवश होनेके कारण उनके समस्त शरीरसे प्रकाशमय किरणें निकलनें लगीं ॥ ९ ॥ शत्रुघ्न क्रोध करके उस राक्षससे बोले, मूर्ख, मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध करना चाहता हूँ ॥ १० ॥ मैं राजा दशरथका पुत्र और बुद्धिमान् राजा रामचन्द्रका भाई हूँ, मेरा नाम शत्रुघ्न है, मैं शत्रुओंको मारनेवाला हूँ, तुम्हें मारनेके लिए आया हूँ ॥११॥ मैं तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ, तुम मुझसे युद्ध करो, तुम सब प्राणियोंके शत्रु हो, मेरे सामनेसे तुम जीते नहीं लौट सकोगे ॥ १२ ॥ हँसकर राक्षसने उत्तर दिया, मूर्ख, भाग्यसे ही तुम मिल गये हो ॥ १३ ॥ मूर्ख पुरुषाधम, स्त्रीके लिए मेरे मौसेरे भाई रावणका वध रामने किया है। मैंने रावणके इस कुलक्षयको जाना है और क्षमाकर दिया है। जिन लोगोंने मेरे सामने ही मेरा अपमान किया है उनको भी क्षमा कर दिया है ॥ १४, १५ ॥ भूत, भविष्य तथा वर्तमान तुम्हारे समान अनेक पुरुषाधमोंको मैंने मारा है, तृणके समान उनका पराजय किया है ॥ १६ ॥ मूर्ख, तू मुझसे युद्ध चाहता है, ठहर, मैं तुझसे युद्ध करूँगा, मैं अस्त्र लाता हूँ ॥ १७ ॥ तुम जैसा अस्त्र चाहते हो वैसा अस्त्र मैं लाता हूँ। शत्रुघ्न बोले, यहाँसे मेरे सामनेसे तुम जीते लौट नहीं सकते ॥ १८ ॥ स्वयं सामने आये शत्रुको बुद्धिमान नहीं छोड़ते। जो बिना विचारे शत्रुको मौका देते हैं वह मन्दबुद्धि कायरके समान मारे जाते हैं ॥ १९ ॥ अतएव एकबार संसारको देख

तस्मात्सुदृष्टं कुरु जीवलोकं शरैः शितैस्त्वां विविधैर्नयामि ।
यमस्य गेहाभिमुखं हि पापं रिपुं त्रिलोकस्य च राघवस्य ॥ ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः । क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥
पाणौ पाणिं स निष्पिष्य दन्तान्कटकटाय्य च । लवणो रघुशार्दूलमाह्वयामास चासकृत् ॥ २ ॥
तं ब्रुवाणं तथा वाक्यं लवणं घोरदर्शनम् । शत्रुघ्नो देवशत्रुघ्न इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
शत्रुघ्नो न तदा जातो यदान्ये निर्जितास्त्वया । तदद्य बाणाभिहतो व्रज त्वं यमसादनम् ॥ ४ ॥
ऋषयोऽप्यद्य पापात्मन्मया त्वां निहतं रणे । पश्यन्तु विप्रा विद्वांसस्त्रिदशा इव रावणम् ॥ ५ ॥
त्वयि मद्बाणनिर्दग्धे पतितेऽद्य निशाचरे । पुरे जनपदे चापि क्षेममेव भविष्यति ॥ ६ ॥
अद्य मद्बाहुनिष्क्रान्तः शरो वज्रनिभाननः । प्रवेक्ष्यते ते हृदयं पद्ममंशुरिवार्कजः ॥ ७ ॥
एवमुक्तो महावृक्षं लवणः क्रोधमूर्छितः । शत्रुघ्नोरसि चिक्षेप स च तं शतधाच्छिनत् ॥ ८ ॥
तद्दृष्ट्वा विफलं कर्म राक्षसः पुनरेव तु । पादपान्सुबहून्गृह्य शत्रुघ्नायासृजद्बली ॥ ९ ॥
शत्रुघ्नश्चापि तेजस्वी वृक्षानापततो बहून् । त्रिभिश्चतुर्भिरेकैकं चिच्छेद नतपर्वभिः ॥१०॥
ततो बाणमयं वर्षं व्यसृजद्राक्षसोपरि । शत्रुघ्नो वीर्यसंपन्नो विव्यथे न स राक्षसः ॥११॥

लो, रामचन्द्रके तथा त्रिलोकके तुम शत्रु हो, पापी हो, अतएव मैं तुमको यमराजके घरमें भेजता हूँ ॥२०॥
आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

महात्मा शत्रुघ्नके वचन सुनकर राक्षसने बड़ा क्रोध किया और वह बोला, ठहर-ठहर ॥१॥ हाथसे हाथ मलकर तथा दाँत पीसकर वह राक्षस बार-बार शत्रुघ्नको बुलाने लगा ॥ २ ॥ उस भयंकर मुँहवाले लवणसे देवशत्रुओंको मारनेवाले शत्रुघ्न इस प्रकार बोले ॥ ३ ॥ उस समय शत्रुघ्न नहीं उत्पन्न हुआ था, इसीसे तुमने उन लोगोंको जीता है, आज मेरे बाणोंसे घायल होकर तुम यमपुर जाओ ॥ ४ ॥ पापात्मा, मैं तुमको मारता हूँ । ऋषि, विद्वान्, ब्राह्मण मेरे द्वारा हुआ तुम्हारा वध देखें, जिस प्रकार रावणका वध देवताओंने देखा है ॥ ५ ॥ राक्षस, मेरे बाणसे गलकर तुम्हारे गिरनेपर नगर और राष्ट्रका कल्याण हो होगा ॥६॥ आज मेरे हाथसे निकल, वज्र सदृश बाण तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करेगा, जिस प्रकार सूर्यकी किरणें कमलमें प्रवेश करती हैं ॥ ७ ॥ शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर राक्षसने क्रोधमूर्च्छित होकर उनपर बहुत बड़ा वृक्ष चलाया जिसे उन्होंने काट डाला, टुकड़े-टुकड़े कर डाला ॥८॥ अपनेको विफल देखकर बली राक्षसने शत्रुघ्नपर अनेक वृक्ष फेंके ॥ ९ ॥ तेजस्वी शत्रुघ्नने आते हुए उन वृक्षोंको एक-एक करके तीन या चार नतपर्व (जिन बाणोंमें छोटी गाँठे हों) बाणोंसे काट गिराया ॥ १० ॥ बली शत्रुघ्नने राक्षसपर बाणोंकी वर्षा की, पर उसका असर राक्षसपर कुछ हुआ नहीं ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् बली राक्षसने हँसकर शत्रुघ्न-

ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् । शिरस्यभ्यहनच्छूरं स्रस्ताङ्गः स मुमोह वै ॥१२॥
तस्मिन्निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत् । ऋषिणां देवसङ्घानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥१३॥
तमवज्ञाय तु हतं शत्रुघ्नं भुवि पातितम् । रक्षो लब्धान्तरमपि न विवेश स्वमालयम् ॥१४॥
नापि शूलं प्रजग्राह तं दृष्ट्वा भुवि पातितम् । ततो हत इति ज्ञात्वा तान्भक्षान्समुदावहत् ॥१५॥
मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु पुनस्तस्थौ धृतायुधः । शत्रुघ्नो वै पुरद्वारि ऋषिभिः संप्रपूजितः ॥१६॥
ततो दिव्यममोघं तं जग्राह शरमुत्तमम् । ज्वलन्तं तेजसा घोरं पूरयन्तं दिशो दश ॥१७॥
वज्राननं वज्रवेगं मेरुमन्दरसंनिभम् । नतं पर्वसु सर्वेषु संयुगेष्वपराजितम् ॥१८॥
असृक्चन्दनदिग्धाङ्गं चारुपत्रं पतत्रिणम् । दानवेन्द्राचलेन्द्राणामसुराणां च दारुणम् ॥१९॥
तं दीप्तमिव कालाग्निं युगान्ते समुपस्थितम् । दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि परित्रासमुपागमन् ॥२०॥
सदेवासुरगन्धर्वं मुनिभिः साप्सरोगणम् । जगद्धि सर्वमस्वस्थं पितामहमुपस्थितम् ॥२१॥
ऊचुश्च देवदेवेशं वरदं प्रपितामहम् । देवानां भयसंमोहो लोकानां संक्षयं प्रति ॥२२॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । भयकारणमाचष्ट देवानामभयंकरः ॥२३॥
उवाच मधुरां वाणीं शृणुध्वं सर्वदेवताः । वधाय लवणस्याजौ शरः शत्रुघ्न धारितः ॥२४॥
तेजसा तस्य संमूढाः सर्वे स्मः सुरसत्तमाः । एषो पूर्वस्य देवस्य लोककर्तुः सनातनः ॥२५॥

के सिरपर मारा जिससे उनका शरीर ढीला हो गया और वे बेहोश हो गये ॥ १२ ॥ शत्रुघ्नके बेहोश होकर गिरनेपर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ हाहाकार करने लगीं ॥ १३ ॥ शत्रुघ्न गिरे थे, बेहोश थे, राक्षसको यह मौका था शूल लानेका, पर वह शूल लाने घर नहीं गया । क्योंकि उसने शत्रुघ्नको मरा हुआ समझा, अतएव उनके लिए शूल लानेकी उसने आवश्यकता नहीं समझी ॥ १४ ॥ पृथिवीपर पड़े शत्रुघ्नको मृतक समझकर उसने शूल नहीं लिया और वह अपने भोजनकी सामग्री एकत्र करने लगा ॥ १५ ॥ थोड़ी देरमें होशमें आकर शत्रुघ्न धनुष लेकर पुनः खड़े हो गये, ऋषियोंने उनका अभिनन्दन किया ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नने दिव्य अमोघ अस्त्र उठाया, जिसका तेज चारों ओर फैल रहा था ॥ १७ ॥ वह शर वज्रमुख और वज्रके समान वेगवान था, मेरु और मन्दर पर्वतके समान भारी था। अथवा इन पर्वतोंके समान शत्रुनाशी था । उसमें छोटी-छोटी गाँठे थीं, युद्धमें कभी पराजित नहीं हुआ था । उसमें खून (शत्रुका) और चन्दन (पूजाका) लगा हुआ था । उसके पंख सुन्दर थे, दानवराज और राक्षसराजको नष्ट करनेवाला था । प्रलयकालके प्रदीप्त कालाग्निके समान उस बाणको उपस्थित देखकर सब प्राणी भयभीत हो गये ॥ १८, २० ॥ देवता, असुर, गन्धर्व आदि समस्त संसार इस शरके तेजसे व्याकुल हो गया और वह ब्रह्माके पास उपस्थित हुआ । देवताओंके भय तथा समस्त संसारकी व्याकुलताके सम्बन्धमें उन लोगोंने देव-देव वरद ब्रह्मासे निवेदन किया ॥ २२ ॥ देवताओंको निर्भय करनेवाले ब्रह्माने उन लोगोंकी बातें सुननेपर भयका कारण बतलाया ॥ २३ ॥

ब्रह्मा बोले, युद्धमें लवणासुरको मारनेके लिए शत्रुघ्नने शर धारण किया है । उठाया है ॥ २४ ॥ उसीके तेजसे हमसबलोग मोहित हो गये हैं । यह लोककर्ता विष्णुका सनातन तेजोमय शर है । जिससे

शरस्तेजोमयो वत्सा येन वै भयमागतम् । एष वै कैटभस्यार्थे मधुनश्च महाशरः ॥२६॥
सृष्टो महात्मना तेन वधार्थे दैत्ययोस्तयोः । एक एव प्रजानाति विष्णुस्तेजोमयं शरम् ॥२७॥
एषा एव तनुः पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मनः । इतो गच्छत पश्यध्वं वध्यमानं महात्मना ॥२८॥
रामानुजेन वीरेण लवणं राक्षसोत्तमम् । तस्य ते देवदेवस्य निशम्य वचनं सुराः ॥२९॥
आजग्मुर्यत्र युध्येते शत्रुघ्नलवणावुभौ । तं शरं दिव्यसंकाशं शत्रुघ्नकरधारितम् ॥३०॥
ददृशुः सर्वभूतानि युगान्ताग्निमिवोत्थितम् । आकाशमावृतं दृष्ट्वा देवैर्हि रघुनन्दनः ॥३१॥
सिंहनादं भृशं कृत्वा ददर्श लवणं पुनः । आहूतश्च पुनस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मना ॥३२॥
लवणः क्रोधसंयुक्तो युद्धाय समुपस्थितः । आकर्णात्स विकृष्याथ तद्धनुर्धन्विनां वरः ॥३३॥
स मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि । उरस्तस्य विदार्याशु प्रविवेश रसातलम् ॥३४॥
गत्वा रसातलं दिव्यः शरो विबुधपूजितः । पुनरेवागमत्तूर्णमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥३५॥
शत्रुघ्नशरनिर्भिन्नो लवणः स निशाचरः । पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥३६॥
तच्च शूलं महद्दिव्यं हते लवणराक्षसे । पश्यतां सर्वदेवानां रुद्रस्य वशमन्वगात् ॥३७॥

एकेषुपातेन भयं निपात्य लोकत्रयस्यास्य रघुप्रवीरः ।
विनिर्बभावुद्यतचापबाणस्तमः प्रणुद्येव सहस्ररश्मिः ॥३८॥
ततो हि देवा ऋषिपन्नगाश्च प्रपूजिरे ह्यप्सरसश्च सर्वाः ।
दिष्ट्या जयो दाशरथेरवाप्तस्त्यक्त्वा भयं सर्प इव प्रशान्तः ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सबलोग भयभीत हो गये हैं। मधु और कैटभ इन दोनों दैत्योंके वधके लिए उन्होंने इस बाणका निर्माण किया था। इस तेजोमय शरको केवल विष्णु ही जानते हैं ॥ २५, २७ ॥ यह शर महात्मा विष्णुका प्राचीन शरीर है। आपलोग यहाँसे जाँय और रामानुज वीर महात्मा शत्रुघ्नके द्वारा लवणका वध देखें। ब्रह्माके कहनेसे देवता वहाँ आये जहाँ लवण और शत्रुघ्न युद्ध करते थे। उस दिव्य शरको शत्रुघ्नके हाथमें सब लोगोंने देखा। युद्ध देखने आये देवताओंसे आकाश भर गया है। यह देखकर शत्रुघ्नने सिंहनाद किया और युद्धक्षेत्रमें आये लवणासुरको देखा। महात्मा शत्रुघ्नके युद्धके लिए ललकारनेपर वह क्रोध करके युद्धके लिए आया। श्रेष्ठ धनुर्धारी शत्रुघ्नने कानतक धनुष खींचकर लवणकी छातीमें वह बाण मारा। उसकी छाती फाड़कर वह बाण पातालमें चला गया ॥ २८, ३४ ॥ देवताओंके द्वारा अभिनन्दित वह दिव्य बाण पाताल जाकर शीघ्र ही रघुनन्दन शत्रुघ्नके पास चला आया ॥ ३५ ॥ शत्रुघ्नके बाणसे घायल होकर वह राक्षस लवण शीघ्र ही पृथिवीपर वज्राहत पर्वतके समान गिरा ॥ ३६ ॥ वह दिव्य लवणका शूल उसके मारे जानेपर समस्त देवताओंके देखते-देखते ही रुद्रके पास चला गया ॥ ३७ ॥ रघुवीर शत्रुघ्नने एक बाणमें त्रिलोकका भय नष्ट कर दिया और वे उत्तम धनुष तथा बाण धारण करनेवाले विजयी होकर शोभित हुए, जिस प्रकार अन्धकार दूर करके सूर्य शोभित होते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्यके समान लवणासुर

सप्ततितमः सर्गः ७०

हते तु लवणे देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः । ऊचुः सुमधुरां वाणीं शत्रुघ्नं शत्रुतापनम् ॥ १ ॥
दिष्ट्या ते विजयो वत्स दिष्ट्या लवणराक्षसः । हतः पुरुषशार्दूल वरं वरय सुव्रत ॥ २ ॥
वरदास्तु महाबाहो सर्वे एव समागताः । विजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघं दर्शनं हि नः ॥ ३ ॥
देवानां भाषितं श्रुत्वा शूरो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । प्रत्युवाच महाबाहुः शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥ ४ ॥
इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता । निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः ॥ ५ ॥
तं देवाः प्रीतमनसो बाढमित्येव राघवम् । भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः ॥ ६ ॥
ते तथोक्त्वा महात्मानो दिवमारुरुहुस्तदा । शत्रुघ्नोऽपि महातेजास्तां सेनां समुपानयत् ॥ ७ ॥
सा सेना शीघ्रमागच्छच्छ्रुत्वा शत्रुघ्नशासनम् । निवेशनं च शत्रुघ्नः श्रावणेन समारभत् ॥ ८ ॥
स पुरा दिव्यसंकाशो वर्षे द्वादशमे शुभे । निविष्टः शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः ॥ ९ ॥
क्षेत्राणि सस्ययुक्तानि काले वर्षति वासवः । अरोगवीरपुरुषा शत्रुघ्नभुजपालिता ॥१०॥
अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता । शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वरापणवीथिकैः ।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता ॥११॥
यच्च तेन पुरा शुभ्रं लवणेन कृतं महत् । तच्छोभयति शत्रुघ्नो नानावर्णोपशोभिताम् ॥१२॥

शान्त हुआ, शत्रुघ्नने विजय पायी, इससे निर्भय होकर देवताओं, ऋषियों, अप्सराओं आदिने शत्रुघ्नकी पूजा की, उनका अभिनन्दन किया ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६९ ॥

लवणासुरके मारे जानेपर अग्नि और इन्द्र आदि देवता वहाँ आये और वे शत्रुतापी शत्रुघ्नसे मधुर वचन बोले ॥ १ ॥ वत्स, प्रसन्नताकी बात है कि तुम विजयी हुए, और तुमने लवणासुरको मारा। सुव्रत, वर माँगो ॥ २ ॥ महाबाहो, तुम्हारी विजय चाहनेवाले और तुमको वर देनेवाले हम सबलोग यहाँ आये हैं, हम लोगोंका दर्शन निष्फल नहीं होता ॥३ ॥ देवताओंके वचन सुनकर वीर निर्लोभ शत्रुघ्न हाथ जोड़कर बोले ॥ ४ ॥ देवनिर्मित यह मधुकुटी रमणीय हो और इसमें मेरा शीघ्र प्रवेश हो यही मेरा वर है। ॥ ५ ॥ प्रसन्न होकर देवताओंने कहा "अच्छा," यह पुरी रमणीय होगी और इसमें रहनेवाली सेना शूर होगी ॥ ६ ॥ शत्रुघ्नसे ऐसा कहकर महात्मा देवता आकाशमें चले गये। तेजस्वी शत्रुघ्नने भी पीछे ठहरायी हुई अपनी सेना एकत्र की। उसे बुलाया ॥७॥ शत्रुघ्नकी आज्ञासे वह सेना शीघ्र ही वहाँ आयी। शत्रुघ्नने श्रावण मासमें उस नगरमें प्रवेश किया। ॥ ८ ॥ शत्रुघ्नने बारहवर्ष पहले उस नगरीमें प्रवेश किया था, वह शूर सेनोंका देश निर्भय हो गया, खेतोंमें अन्न भर गया, समयपर पानी बरसने लगा। वहाँके वासी निरोग और वीर हुए। शत्रुघ्न उस नगरीका पालन करने लगे ॥ १० ॥ यमुनाके तीरपर वह नगरी अर्ध-चन्द्राकर रूपमें बसी थी। सुन्दर भवनों, अड्डों, बाजारों और गलियोंसे वह शोभित थी। चतुर्वर्णके लोग वहाँ रहते थे, उनके व्यापार वहाँ होते थे ॥ ११ ॥ लवणने उस नगरीमें पहले जो भवन बनवाया था।

आरामैश्च विहारैश्च शोभमानं समन्ततः। शोभितां शोभनीयैश्च तथान्यैर्दैवमानुषैः ॥१३॥
तां पुरीं दिव्यसंकाशां नानापण्योपशोभिताम्। नानादेशगतैश्चापि वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥१४॥
तां समृद्धां समृद्धार्थः शत्रुघ्नो भरतानुजः। निरीक्ष्य परमप्रीतः परं हर्षमुपागमत् ॥१५॥
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम्। रामपादौ निरीक्षेऽहं वर्षे द्वादश आगते ॥१६॥
ततः सताममरपुरोपमां पुरीं निवेश्य वै विविधजनाभिसंवृताम्।
नराधिपो रघुपतिपाददर्शने दधे मतिं रघुकुलवंशवर्धनः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम्। अयोध्यां चक्रमे गन्तुमल्पभृत्यबलानुगः ॥ १ ॥
ततो मन्त्रिपुरोगांश्च बलमुख्यान्निवर्त्य च। जगाम हयमुख्येन रथानां च शतेन सः ॥ २ ॥
स गत्वा गणितान्वासान्सप्ताष्टौ रघुनन्दनः। वाल्मीकाश्रममागत्य वासं चक्रे महायशाः ॥ ३ ॥
सोऽभिवाद्य ततः पादौ वाल्मीकेः पुरुषर्षभः। पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं जग्राह मुनिहस्ततः ॥ ४ ॥
बहुरूपाः सुमधुराः कथास्तत्र सहस्रशः। कथयामास स मुनिः शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ५ ॥
उवाच च मुनिर्वाक्यं लवणस्य वधाश्रितम्। सुदुष्करं कृतं कर्म लवणं निघ्नता त्वया ॥ ६ ॥
बहवः पार्थिवाः सौम्य हताः सबलवाहनाः। लवणेन महाबाहो युध्यमाना महाबलाः ॥ ७ ॥

उसको शत्रुघ्न अनेक रंगोंसे सुन्दर बनवा कर शोभित करने लगे ॥ १२ ॥ उसमें जगह-जगह बाग विहार स्थान बने थे। सुन्दर देवता और मनुष्योंसे वह नगरी शोभित थी ॥ १३ ॥ देवनगरी तुल्य वह नगरी अनेक तरहकी बिकनेवाली वस्तुओंसे शोभित थी, अनेक देशोंके आये व्यापारी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १४ ॥ पूर्णमनोरथ भरतानुज शत्रुघ्न उस नगरीको समृद्धि पूर्ण देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥१५॥ मधुरा-पुरीमें निवास करनेके पश्चात् शत्रुघ्नने सोचा कि बारहवाँ वर्ष आगया, मैं रामचन्द्रके चरणोंका दर्शन करूँ ॥ १६ ॥ अनेक प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई देवनगरीके तुल्य उस नगरीमें निवास करके रघुकुलवर्धन राजा शत्रुघ्नने रामचन्द्रके दर्शन करनेकी इच्छा की ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

बारहवें वर्षमें थोड़े नौकर-चाकर लेकर शत्रुघ्नने रामपालित अयोध्या जानेकी इच्छा की ॥ १ ॥ प्रधान मन्त्रियों और सेना पतियोंको छोड़कर घोड़ेके सौ रथ लेकर वे चले ॥ २ ॥ रास्तेमें सात-आठ जगह ठहरकर शत्रुघ्नने वाल्मीकिके आश्रममें आकर निवास किया ॥ ३ ॥ मुनिको प्रणाम करके उनका दिया हुआ पाद्य अर्घ्य आदि उन्होंने स्वीकार किया ॥ ४ ॥ मुनिने शत्रुघ्नसे अनेक प्रकारकी मधुर अनेक कथाएँ कहीं ॥ ५ ॥ लवण वधके सम्बन्धमें मुनिने कहा—लवणासुरको मारकर तुमने बड़ा ही दुष्कर काम किया है ॥ ६ ॥ अनेक बली राजाओंको सेना आदिके साथ इस बली राक्षसने मारा था ॥ ७ ॥ वीर उस

स त्वया निहतः पापो लीलया पुरुषर्षभ । जगतश्च भयं तत्र प्रशान्तं तव तेजसा ॥ ८ ॥
रावणस्य वधो घोरो यत्नेन महता कृतः । इदं च सुमहत्कर्म त्वया कृतमयत्नतः ॥ ९ ॥
प्रीतिश्चास्मिन्परा जाता देवानां लवणे हते । भूतानां चैव सर्वेषां जगतश्च प्रियं कृतम् ॥१०॥
तच्च युद्धं मया दृष्टं यथावत्पुरुषर्षभ । सभायां वासवस्याथ उपविष्टेन राघव ॥११॥
ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते । उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गतिः ॥१२॥
इत्युक्त्वा मूर्ध्नि शत्रुघ्नमुपाघ्राय महामतिः । आतिथ्यमकरोत्तस्य ये च तस्य पदानुगाः ॥१३॥
स भुक्तवान्नरश्रेष्ठो गीतमाधुर्यमुत्तमम् । शुश्राव रामचरितं तस्मिन्काले यथा कृतम् ॥१४॥
तन्त्रीलयसमायुक्तं त्रिस्थानकरणान्वितम् । संस्कृतं लक्षणोपेतं समतालसमन्वितम् ॥१५॥
शुश्राव रामचरितं तस्मिन्काले पुरा कृतम् । तान्यक्षराणि सत्यानि यथावृत्तानि पूर्वशः ॥१६॥
श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोचनः । स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥१७॥
तस्मिन्गीते यथावृत्तं वर्तमानमिवाशृणोत् । पदानुगाश्च ये राज्ञस्तां श्रुत्वा गीतिसंपदम् ॥१८॥
अवाङ्मुखाश्च दीनाश्च ह्याश्चर्यमिति चाब्रुवन् । परस्परं च ये तत्र सैनिकाः संबभाषिरे ॥१९॥
किमिदं क्व च वर्तामः किमेतत्स्वप्नदर्शनम् । अर्थो यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदे पुनः ॥२०॥
शृणुमः किमिदं स्वप्ने गीतबन्धनमुत्तमम् । विस्मयं ते परं गत्वा शत्रुघ्नमिदमब्रुवन् ॥२१॥
साधु पृच्छ नरश्रेष्ठ वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् । शत्रुघ्नस्त्वब्रवीत्सर्वान्कौतूहलसमन्वितान् ॥२२॥

राक्षसको तुमने अनायास ही मार डाला, संसारका बड़ाभारी भय तुम्हारे पराक्रमसे मिट गया ॥ ८ ॥ रावणका वध भी बड़ा कठोर था पर उसके लिए प्रयत्न करना पड़ा, पर यह बहुत बड़ा काम तुमने अनायास ही कर डाला, इसके लिये कोई प्रयत्न न करना पड़ा ॥ ९ ॥ लवणके मारे जानेसे देवताओं तथा अन्य सब प्राणियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई है, तुमने संसारका बड़ा प्रिय काम किया है ॥ १० ॥ राघव, इन्द्रकी सभामें बैठकर मैंने यह युद्ध अच्छी तरह देखा है । शत्रुघ्न, उस युद्धके देखनेसे मेरे हृदयमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई है । मैं तुम्हारा मस्तक सूँघूगा, क्योंकि स्नेहका यही श्रेष्ठ चिन्ह है ॥ ११, १२, ॥ मुनिने उनका माथा सूँघा और उनका तथा उनके साथियोंका उन्होंने अतिथि-सत्कार किया ॥ १३ ॥ शत्रुघ्नने भोजन किया, मधुर गीत सुने और रामचरित सुनें, जो चरित रामचन्द्रने पहले किये थे वही काव्यरूपमें बना था ॥ १४ ॥ वह रामचरितका गान स्वरलय युक्त था, कोमल मध्य और उग्र था । व्याकरण गान नियमानुसार शुद्ध था, तथा सम-तालसे युक्त था ॥ १५ ॥ पहलेका बनाया रामचरित शत्रुघ्नने उस समय सुना । जो बातें पहले हुई थीं वे ही क्रमसे ठीक-ठीक राम चरितमें वर्णित थीं ॥ १६ ॥ रामचरित सुनकर शत्रुघ्न बेहोश हो गये, उनकी आँखें भर आयीं । थोड़ी देरतक बार-बार वे साँस लेते रहे ॥ १७ ॥ उस गानमें शत्रुघ्नने अतीत बातोंको वर्तमानके समान सुना । इस गानको शत्रुघ्नके साथियोंने भी सुना । वे सिर झुकाकर दुःखी हुए और आश्चर्य करने लगे । वे आपसमें कहने लगे ॥ १८,१९ ॥ यह क्या है, हमलोग कहाँ हैं, क्या स्वप्न देख रहे हैं । जो बात हम लोगोंने पहले देखी है वही इस समय इस आश्रममें सुन रहे हैं, क्या स्वप्नमें हमलोग यह गान सुन रहे हैं । वे बड़े विस्मित होकर शत्रुघ्नसे बोले ॥ २०,२१ ॥ अच्छा,

सैनिकानक्षमोऽस्माकं परिप्रष्टुमिहेदृशः। आश्चर्याणि बहूनीह भवन्त्यस्याश्रमे मुनेः॥२३॥
न तु कौतूहलाद्युक्तमन्वेष्टुं तं महामुनिम्। एवं तद्वाक्यमुक्त्वा तु सैनिकान्रघुनन्दनः।
अभिवाद्य महर्षिं तं स्वं निवेशं ययौ तदा। ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः॥ ७१॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

तं शयानं नरव्याघ्रं निद्रा नाभ्यागमत्तदा। चिन्तयानमनेकार्थं रामगीतमनुत्तमम्॥ १॥
तस्य शब्दं सुमधुरं तन्त्रीलयसमन्वितम्। श्रुत्वा रात्रिर्जगामाशु शत्रुघ्नस्य महात्मनः॥ २॥
तस्यां रजन्यां व्युष्टायां कृत्वा पौर्वाह्णिकक्रमम्। उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं शत्रुघ्नो मुनिपुंगवम्॥ ३॥
भगवन्द्रष्टुमिच्छामि राघवं रघुनन्दनम्। त्वयानुज्ञातमिच्छामि सहैभिः संशितव्रतैः॥ ४॥
इत्येवं वादिनं तं तु शत्रुघ्नं शत्रुसूदनम्। वाल्मीकिः संपरिष्वज्य विससर्ज स राघवम्॥ ५॥
सोऽभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं रथमारुह्य सुप्रभम्। अयोध्यामगमत्तूर्णं राघवोत्सुकदर्शनः॥ ६॥
स प्रविष्टः पुरीं रम्यां श्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः। प्रविवेश महाबाहुर्यत्र रामो महाद्युतिः॥ ७॥
स रामं मन्त्रिमध्यस्थं पूर्णचन्द्रनिभाननम्। पश्यन्नमरमध्यस्थं सहस्रनयनं यथा॥ ८॥
सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा रामं सत्यपराक्रमम्॥ ९॥

आप मुनिपुंगव, वाल्मीकिसे पूछें। शत्रुघ्न उन विस्मित सैनिकोंसे बोले॥ २२॥ सैनिकों, मुनिसे इस प्रकारकी बातें पूछना मेरे लिए सम्भव नहीं हैं, मुनिके इस आश्रममें अनेक प्रकारकी आश्चर्यमय बातें होती रहती हैं॥ २३॥ कौतूहल होनेके कारण मुनिसे ऐसी बातें पूछना उचित नहीं। सैनिकोंको इस प्रकार समझाकर महर्षिको प्रणाम करके शत्रुघ्न अपने सोनेके स्थानपर गये॥ २४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकहत्तरवां सर्ग समाप्त॥ ७१॥

रामचन्द्र सम्बन्धी गानको सोचनेके कारण उस रात शत्रुघ्नको नींद नहीं आयी। क्योंकि उन गीतोंके अनेक अर्थ हो सकते थे। अतएव निश्चित अर्थ न समझकर वे सोचमें पड़ गये थे॥ १॥ बड़ी राततक शत्रुघ्न ताल-स्वरयुक्त उस गानको सुनते रहे, बाकी रात शीघ्र ही बीत गयी॥ २॥ रात बीतनेपर प्रातः कृत्य करके शत्रुघ्न हाथ जोड़कर मुनिसे बोले॥ ३॥ भगवन्, मैं रामचन्द्रको देखना चाहता हूँ। अतएव आपकी आज्ञासे मैं अपने इन साथियोंके साथ जाना चाहता हूँ॥ ४॥ मुनिने उनका आलिङ्गन करके उन्हें बिदा किया॥ ५॥ मुनिको प्रणाम करके अपने साथियोंके साथ शत्रुघ्न शीघ्र अयोध्याके लिए प्रस्थित हुए, क्योंकि रामचन्द्रको देखनेके लिए उत्सुक थे॥ ६॥ शत्रुघ्न अयोध्यापुरीमें पहुँचकर रामचन्द्र-के भवनमें गये॥७॥ वहाँ उन्होंने मन्त्रियोंके बीचमें पूर्ण चन्द्रानन रामको देखा। जैसे देवताओंके बीचमें इन्द्र विराजमान हों॥ ८॥ तेजसे प्रकाशमान महात्मा रामचन्द्रको प्रणाम करके और हाथ जोड़कर वे उनसे बोले॥ ९॥ महाराज आपने जो आज्ञा दी थी, वह किया। लवणका बध किया और उसकी नगरी

यदाप्तं महाराज सर्वं त्वत्कृतवाहनम् । हतः स लवणः पापः पुरी चास्य निवेशिता ॥१०॥
द्वादशैतानि वर्षाणि त्वां विना रघुनन्दन । नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप ॥११॥
स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामितविक्रम । मातृहीनो यथा वत्सो न चिरं प्रवसाम्यहम् ॥१२॥
एवं ब्रुवा काकुत्स्थणः परिष्वज्येदमब्रवीत् । मा विषादं कृथाः शूर नैतत्क्षत्रियचेष्टितम् ॥१३॥
नावसीदन्ति राजानो विप्रवासेषु राघव । प्रजा हि परिपाल्या हि क्षत्रधर्मेण राघव ॥१४॥
काले काले तु मां वीर अयोध्यामवलोकितुम् । आगच्छ त्वं नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव ॥१५॥
ममापि त्वं सुदयितः प्राणैरपि न संशयः । अवश्यं करणीयं च राज्यस्य परिपालनम् ॥१६॥
तस्मात्वं वस काकुत्स्थ सप्तरात्रं मया सह । ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरां सभृत्यबलवाहनः ॥१७॥
रामस्यैतद्वचः श्रुत्वा धर्मयुक्तं मनोनुगम् । शत्रुघ्नो दीनया वाचा बाढमित्येव चाब्रवीत् ॥१८॥
सप्तरात्रं च काकुत्स्थो राघवस्य यथाज्ञया । उष्य तत्र महेष्वासो गमनायोपचक्रमे ॥१९॥
आमन्त्र्य तु महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । भरतं लक्ष्मणं चैव महारथमुपारुहत् ॥२०॥
दूरं पद्भ्यामनुगतो लक्ष्मणेन महात्मना । भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरीं तदा ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

प्रस्थाप्य तु स शत्रुघ्नं भ्रातृभ्यां सह राघवः । प्रमुमोद सुखी राज्यं धर्मेण परिपालयन् ॥ १ ॥

भी बसायी ॥ १० ॥ आपके बिना बारहवर्ष मैंने बिताये । अब मैं आपके बिना रह नहीं सकता था ॥११॥ अतएव अमितविक्रम काकुतस्थ, आप मुझपर कृपा करें, अर्थात् यहाँ रहनेकी आज्ञा दें । माताको छोड़कर, बच्छेके समान मैं बहुत दिनोंतक विदेशमें नहीं रह सकता ॥ १२ ॥ उनका आलिङ्गन करके रामचन्द्र बोले, वीर दुःख मत करो, दुःख करना क्षत्रियके लिए उचित नहीं है ॥ १३ ॥ राजा प्रवाससे दुःखी नहीं होते, प्रजाका पालन क्षात्रधर्मसे ही होता है ॥ १४ ॥ समय-समय मुझे देखनेके लिए अयोध्यामें आया करो । उसके बाद अपनी राजधानी चले जाया करो ॥ १५ ॥ तुम भी मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हो, तथापि राज्यका पालन तो करना ही होगा ॥ १६ ॥ अतएव सात दिनतक तुम मेरे साथ रहो, इसके बाद अपनी सेना, रथ आदिके साथ मधुरा चले जाओ ॥ १७ ॥ धर्मयुक्त अतएव मनके अनुकूल रामचन्द्रके वचन सुनकर शत्रुघ्नने दुःखी होकर अच्छा कहकर मान लिया ॥ १८ ॥ सात रात रामचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार वहाँ रहकर धनुर्धारी शत्रुघ्न वहाँसे जानेके लिए तैयार हुए ॥ १९ ॥ सत्य पराक्रम महात्मा राम, भरत तथा लक्ष्मणसे विदा होकर वे रथपर बैठे ॥ २० ॥ दूरतक महात्मा लक्ष्मण तथा भरत उनको पहुँचाने गये । पुनः वहाँसे शत्रुघ्न अपनी नगरीमें शीघ्र गये ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

शत्रुघ्नको विदा करके रामचन्द्र दोनों भाइयोंके साथ धर्मसे सुखपूर्वक राज्य पालन करते हुये

ततः कतिपयाहःसु वृद्धो जानपदो द्विजः । मृतं बालमुपादाय राजद्वारमुपागमत् ॥ २ ॥
किं नु मे दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् । रुदन्बहुविधा वाचः स्नेहदुःखसमन्वितः ।
असकृत्पुत्र पुत्रेति वाक्यमेतदुवाच ह । ॥ ३ ॥
किं नु मे दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् । यदहं पुत्रमेकं तु पश्यामि निधनं गतम् ॥ ४ ॥
अप्राप्तयौवनं बालं पञ्चवर्षसहस्रकम् । अकाले कालमापन्नं मम दुःखाय पुत्रक ॥ ५ ॥
अल्पैरहोभिर्निधनं गमिष्यामि न संशयः । अहं च जननी चैव तव शोकेन पुत्रक ॥ ६ ॥
न स्मराम्यनृतं ह्युक्तं न च हिंसां स्मराम्यहम् । सर्वेषां प्राणिनां पापं न स्मरामि कदाचन ॥ ७ ॥
केनाद्य दुष्कृतेनायं बाल एव ममात्मजः । अकृत्वा पितृकार्याणि गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ८ ॥
नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम् । मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य विषये ह्ययम् ॥ ९ ॥
रामस्य दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः । यथा हि विषयस्थानां बालानां मृत्युरागतः ॥१०॥
नह्यन्यविषयस्थानां बालानां मृत्युतो भयम् । स राजञ्जीवयस्वैनं बालं मृत्युवशं गतम् ॥११॥
राजद्वारि मरिष्यामि पत्न्या सार्धमनाथवत् । ब्रह्महत्यां ततो राम समुपेत्य सुखी भव ॥१२॥
भ्रातृभिः सहितो राजन्दीर्घमायुरवाप्स्यसि । उषिताः स्म सुखं राज्ये तवास्मिन्सुमहाबल ॥१३॥
इदं तु पतितं तस्मात्तव राम वशे स्थितान् । कालस्य वशमापन्नाः स्वल्पं हि नहि नः सुखम् ॥१४॥

आनन्दित हुए ।१।। इसके कई दिन बीतनेके पश्चात् राज्यका रहनेवाला एक वृद्ध ब्राह्मण एक मृत बालक लेकर राजद्वार पर आया ।। २ ।। वह दुःखी होकर रोता था, हाय मैंने पूर्वजन्ममें कौनसा पाप किया था आदि बहुतसी बातें कहता था और बार-बार पुत्र-पुत्र कहता था ।। ३ ।। मैंने पूर्वजन्ममें कौनसा पाप किया था कि मैं अपने एक ही पुत्रको मरा हुआ देखता हूँ ।। ४ ।। अभी तुम युवा भी नहीं हो पाये थे, बालक थे, सिर्फ पाँच हजार वर्षके थे (टीकाकारने वर्षका अर्थ दिन किया है । इस प्रकार उस बालककी उमर पन्द्रह सोलह वर्षके बीचकी होती है । यही ठीक भी है) मुझे दुःख देनेके लिये तुम अकालमें ही काल वश हुये ।।५। पुत्र, तुम्हारे शोकसे थोड़े ही दिनोंमें मैं और तुम्हारी माता दोनों मर जाँयगे । इसमें सन्देह नहीं ।।६।। मैंने किसीसे असत्य भाषण नहीं किया है, किसीकी हिंसा नहीं की है ।।७।। फिर किस पापसे मेरा यह पुत्र बाल्यावस्थामें ही पितृ कार्योंको बिना किये ही यमपुरमें चला गया ।। ८ ।। रामचन्द्रके राज्यमें इस प्रकार भयंकर अकालमृत्यु कभी न देखी गयी थी और न सुनी गयी थी ।।८।। अतएव रामचन्द्रका ही कोई बड़ा भारी पाप होगा, इसमें सन्देह नहीं । क्योंकि उनके राज्यके एक बालककी मृत्यु हुई है ।।१०।। दूसरे राजाके राज्यमें रहनेवाले बालकोंकी मृत्यु नहीं होती । अतएव, राजन्, इस मृत बालकको आप जीवित करें ।। ११ ।। नहीं तो इसी राजद्वारपर अनाथके समान बिना अन्न-जलके स्त्रीके साथ प्राण त्याग करूँगा, उस समय ब्रह्महत्या लेकर तुम सुखी होना ।।१२।। राजन् । भाइयोंके साथ तुम दीर्घ आयु पाओगे, महाबल, हम लोगोंने सुखपूर्वक तुम्हारे राज्यमें निवास किया है । अब यह विपत्ति पड़ी है । अब हम भी कालके वश हो गये । अतएव राम, अब तुम्हारे राज्यमें रहनेवाले हम लोगोंको तनिक भी सुख नहीं है ।। १३, १४ ।। महात्मा इक्ष्वाकुओंका राज्य इस समय अनाथ हो गया है, जहाँके राजा इस समय रामचन्द्र

संप्रत्यनाथो विषय इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् । रामं नाथमिहासाद्य बालान्तकरणं ध्रुवम् ॥१५॥
राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः । असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः ॥१६॥
यद्वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च । कुर्वते न च रक्षास्ति तदा कालकृतं भयम् ॥१७॥
सुव्यक्तं राजदोषो हि भविष्यति न संशयः । पुरे जनपदे चापि तथा बालवधो ह्ययम् ॥१८॥
एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपरुध्य मुहुर्मुहुः । राजानं दुःखसंतप्तः सुतं तमुपगूहति ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

तथा तु करुणं तस्य द्विजस्य परिवेदनम् । शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ १ ॥
स दुःखेन च संतप्तो मन्त्रिणस्तानुपाह्वयत् । वसिष्ठं वामदेवं च भ्रातॄंश्च सह नैगमान् ॥ २ ॥
ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः । राजानं देवसंकाशं वर्धस्वेति ततोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः । कात्यायनोऽथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥ ४ ॥
एते द्विजर्षभाः सर्वे आसनेषूपवेशिताः । महर्षीन्समनुप्राप्तानभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥
मन्त्रिणो नैगमाश्चैव यथार्हमनुकूलिताः । तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ॥ ६ ॥
राघवः सर्वमाचष्टे द्विजोऽयमुपरोधति । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञो दीनस्य नारदः ॥ ७ ॥
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमृषीणां संनिधौ स्वयम् । शृणु राजन्यथाऽकाले प्राप्तो बालस्य संक्षयः ॥ ८ ॥

हैं, जिनके राज्यमें बालकोंकी मृत्यु होती है ॥ १५ ॥ राजाके दोषसे विधिपूर्वक प्रजा पालन न होनेसे प्रजाका नाश हो जाता है, जहाँका राजा पापी हो जाता है, वहाँ अकाल मृत्यु होती है ॥१६॥ जब राजाके द्वारा रक्षा नहीं होती उस समय राज्यके लोग अनुचित काम करने लगते हैं और उसी समय अकाल मृत्यु होती है ॥ १७ ॥ अतएव यह निश्चित है कि नगरमें या राज्यमें । कहीं राजदोष हुआ है जरूर, राजाकी ओरसे कोई पाप हुआ है । जिसके फल स्वरूप इस बालककी मृत्यु हुई है ॥१८॥ इस प्रकार बार-बार अनेक वचनोंसे उसने राजाको अपना दुःख सुनाया और दुःखसे पीड़ित होकर वह अपने मृत पुत्रका आलिङ्गन करने लगा ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

उस ब्राह्मणका दुःखशोकयुक्त दयनीय विलाप रामचन्द्रने सुने ॥ १ ॥ इससे रामचन्द्र बहुत दुःखी हुए, वामदेव, भाइयों तथा वेदज्ञ ब्राह्मणोंको साथ लेकर वशिष्ठ गये । इन आठो मन्त्रियोंने देवतुल्य रामचन्द्रको आशीर्वाद दिया ॥२, ३॥ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम, नारद ये आठो ब्राह्मण, श्रेष्ठ आसनपर बैठाये गये । रामचन्द्रने हाथ जोड़कर इन्हें प्रणाम किया तथा यथायोग्य इनका सत्कार किया । यथास्थान इनके बैठ जानेपर रामचन्द्रने ब्राह्मणकी सब बातें कहकर कहा कि उसने द्वार रोका है । दुःखी राजा रामचन्द्रके कहनेपर ऋषियोंके सामने नारद ऋषिने उत्तर दिया ।

श्रुत्वा कर्तव्यतां राजन्कुरुष्व रघुनन्दन । पुरा कृतयुगे राजन्ब्राह्मणा वै तपस्विनः ॥ ९ ॥
अब्राह्मणस्तदा राजन्न तपस्वी कथंचन । तस्मिन्युगे प्रज्वलिते ब्रह्मभूते त्वनावृते ॥१०॥
अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे दीर्घदर्शिनः । ततस्त्रेतायुगं नाम मानवानां वपुष्मताम् ॥११॥
क्षत्रिया यत्र जायन्ते पूर्वेण तपसान्विताः । वीर्येण तपसा चैव तेऽधिकाः पूर्वजन्मनि ।
मानवा ये महात्मानस्तत्र त्रेतायुगे युगे ॥१२॥
ब्रह्म क्षत्रं च तत्सर्वं यत्पूर्वमवरं च यत् । युगयोरुभयोरासीत्समवीर्यसमन्वितम् ॥१३॥
अपश्यन्तस्तु ते सर्वे विशेषमधिकं ततः । स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य संमतम् ॥१४॥
तस्मिन्युगे प्रज्वलिते धर्मभूते ह्यनावृते । अधर्मः पादमेकं तु पातयत्पृथिवीतले ।
अधर्मेण हि संयुक्तस्तेजो मन्दं भविष्यति ॥१५॥
आमिषं यच्च पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम् । अनृतं नाम तद्भूतं क्षिप्तेन पृथिवीतले ॥१६॥
अनृतं पातयित्वा तु पादमेकमधर्मतः । ततः प्रादुष्कृतं पूर्वमायुषः परिनिष्ठितम् ॥१७॥
पातिते त्वनृते तस्मिन्नधर्मेण महीतले । शुभान्येवाचरँल्लोकः सत्यधर्मपरायणः ॥१८॥
त्रेतायुगे च वर्तन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ये । तपोऽतप्यन्त ते सर्वे शुश्रूषामपरे जनाः ॥१९॥

राजन्, जिस प्रकार इस बालककी अकाल मृत्यु हुई है वह सुनो ॥ ४, ८ ॥ रामचन्द्र सुनकर जैसा उचित हो वैसा करो । राजन्, पहले सत्ययुगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी हुआ करते थे । ब्राह्मणसे भिन्न कोई भी तपस्वी नहीं होता था । उस युगमें ब्राह्मणोंकी प्रधानता थी, अज्ञानका अभाव था और तपस्यासे वह प्रज्वलित था । उस युगमें किसीकी मृत्यु नहीं होती थी, सभी अतीत अनागत विषयोंको जान सकते थे । पुनः त्रेतायुग आया इसमें क्षत्रियोंकी प्रधानता हुई । इस युगमें क्षत्रिय भी वही तपस्या करने लगे, जो सत्ययुगमें ब्राह्मण करते थे । पर सत्ययुगके ब्राह्मण इनसे अधिक तपस्वी और अधिक पराक्रमी थे और त्रेतामें क्षत्रिय हुए ॥ ९, १२ ॥ पहले सत्ययुगमें ब्राह्मणश्रेष्ठ थे और क्षत्रिय निकृष्ट, पर त्रेतायुगमें दोनों समान हो गये, क्योंकि दोनों ही समान पराक्रमी और समान तपस्वी थे ॥ १३ ॥ उस समय इन दोनों वर्णोंमें कोई भेद नहीं देखा गया अतएव उस समयके धर्म प्रवर्तक मनु आदिने चातुर्वर्ण्यकी स्थापना की, जो चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था वेद सम्मत थी ॥ १४ ॥ इस युगमें धर्मप्रधान था, अज्ञानका अभाव था । इस युगमें अधर्मने पृथिवीपर अपना एक पैर रखा । अधर्मके कारण वर्णाश्रमियोंका तेज मन्द हो गया ॥ १५ ॥ सत्ययुगमें रजोगुण सम्बन्धी भोग-मलके समान त्याज्य था, वे बिना जोते-बोये अन्नसे गुजर करते थे । त्रेतायुगमें अधर्मके एक पैर रखनेपर वही अनृत ही प्रधान हुआ खेतीसे जीविकाको अनृत कहते हैं । अर्थात् त्रेतायुगमें खेतीसे लोगोंकी जीविका होने लगी ॥ १६ ॥ अधर्मने अनृत नामक अपना एक पैर पृथिवीपर रखा इससे मनुष्योंकी आयु क्षीण हुई । सत्ययुगमें जितनी आयु होती थी उससे कम होने लगी ॥ १७ ॥ अधर्मने पृथिवीपर अवतार लिया है यह जाननेवाले सत्यधर्म परायण मनुष्य सत्कर्म ही करते हैं, अनृतसे दूर रहते हैं ॥ १८ ॥ त्रेतायुगमें क्षत्रिय और ब्राह्मण ये ही दो तपस्या करते हैं, अन्य वर्णोंके लोग केवल सेवा करते हैं ॥ १९ ॥ वैश्य और शूद्रोंके लिए सेवा ही उनका

स्वधर्मः परमस्तेषां वैश्यशूद्रं तदागमत् । पूजां च सर्ववर्णानां शूद्राश्चक्रुर्विशेषतः ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे तेषामधर्मे चानृते च ह । ततः पूर्वे पुनर्ह्रासमगमन्नृपसत्तम ॥२१॥
ततः पादमधर्मस्य द्वितीयमवतारयत् । ततो द्वापरसंख्या सा युगस्य समजायत ॥२२॥
तस्मिन्द्वापरसंख्ये तु वर्तमाने युगक्षये । अधर्मश्चानृतं चैव ववृधे पुरुषर्षभ ॥२३॥
अस्मिन्द्वापरसंख्याने तपो वैश्यान्समाविशत् । त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान्क्रमाद्वै तप आविशत् ॥२४॥
त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन्वर्णान्धर्मश्च परिनिष्ठितः । न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ॥२५॥
हीनवर्णो नृपश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः । भविष्यच्छूद्रयोन्यां हि तपश्चर्या कलौ युगे ॥२६॥
अधर्मः परमो राजन्द्वापरे शूद्रजन्मनः । स वै विषयपर्यन्ते तव राजन्महातपाः ॥२७॥
अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधो ह्ययम् । यो ह्यधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य तु ॥२८॥
करोति चाश्रीमूलं तत्पुरे वा दुर्मतिर्नरः । क्षिप्रं च नरकं याति स च राजा न संशयः ॥२९॥
अधीतस्य च तप्तस्य कर्मणः सुकृतस्य च । षष्ठं भजति भागं तु प्रजा धर्मेण पालयन् ॥३०॥
षड्भागस्य च भोक्तासौ रक्षते न प्रजाः कथम् । स त्वं पुरुषशार्दूल मार्गस्व विषयं स्वकम् ॥३१॥
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर । एवं चेद्धर्मवृद्धिश्च नृणां चायुर्विवर्धनम् ॥३२॥
भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवितम् ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

श्रेष्ठ धर्म हुई । विशेषकर शूद्र सब वर्णोंकी सेवा करते थे ॥ २ ॥ पुनः त्रेतायुगके अन्तमें वे आयु क्षीण करनेवाले अधर्मके कार्य तथा अनृत-खेती आदिमें लगे इससे उनका ह्रास होने लगा । आयु भी क्षीण हुई और प्रभाव भी कम हुआ ॥ २१ ॥ इसी अवसरमें अधर्मने अपना दूसरा पैर भी पृथिवीपर रखा और वह युग द्वापरके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २२ ॥ इस द्वापर नामक युगमें अधर्मको आश्रय मिला और अधर्म तथा अनृत दोनों ही बढ़े ॥ २३ ॥ इस द्वापरयुगमें वैश्य भी तपस्या करने लगे, इस प्रकार तीनों युगोंमें तीनों वर्ण क्रममें तपस्यामें प्रवृत्त हुए ॥ २४ ॥ इन तीनों युगोंमें तीनों वर्णोंको क्रमसे धर्मका अधिकार मिला, ये तपस्याके अधिकारी हुए, पर शूद्रको किसी भी युगमें धर्मका अधिकार नहीं मिला था, वे तपस्या नहीं करते थे ॥ २५ ॥ राजन्, जब कलियुग आवेगा उस समय शूद्र भी कठोर तपस्या कर सकेंगे ॥२६॥ राजन्, द्वापरयुगमें भी शूद्रोंका तपस्या करना बड़ा अधर्म है । राजन्, वही शूद्र आज आपके राज्यमें मूर्खता वश कठोर तपस्या कर रहा है, जिससे इस बालककी मृत्यु हुई है । किसी राजाके राज्यमें जो मूर्ख मनुष्य अधर्म कर्म करता है, उसका वह कार्य राजाके अकल्याणका कारण होता है । वह राजा शीघ्र नरक-गामी होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २७,२९ ॥ जो राजा धर्मपूर्वक प्रजा पालन करता है वह वेदाध्ययन तपस्या तथा अन्य धर्म-कर्मोंका छठा भागका भोक्ता है ॥३०॥ राजा छठे भागका भोक्ता है, फिर वह प्रजाकी रक्षा क्यों न करेगा । अतएव आप अपने राज्यमें ढुँढ़वाइए, जहाँ पाप देखिए उसके लिए उद्योग कीजिए, उसे दूर कीजिए । इस प्रकार धर्मकी वृद्धि होगी, मनुष्योंकी आयु बढ़ेगी और यह बालक भी जी उठेगा ॥ ३१,३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमृतमयं यथा । प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं समाश्वासय सुव्रत । बालस्य च शरीरं तत्तैलद्रोण्यां निधापय ॥ २ ॥
गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्च सुसुगन्धिभिः । यथा न क्षीयते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥ ३ ॥
यथा शरीरो बालस्य गुप्तः सन्क्लिष्टकर्मणः । विपत्तिः परिभेदो वा न भवेच्च तथा कुरु ॥ ४ ॥
एवं संदिश्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः ॥ ५ ॥
इङ्गितं स तु विज्ञाय पुष्पको हेमभूषितः । आजगाम मुहूर्तेन समीपे राघवस्य वै ॥ ६ ॥
सोऽब्रवीत्प्रणतो भूत्वा अयमस्मि नराधिप । वश्यस्तव महाबाहो किंकरः समुपस्थितः ॥ ७ ॥
भाषितं रुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिपः । अभिवाद्य महर्षीन्स विमानं सोऽध्यरोहत ॥ ८ ॥
धनुर्गृहीत्वा तूणी च खड्गं च रुचिरप्रभम् । निक्षिप्य नगरे चैतौ सौमित्रिभरतावुभौ ॥ ९ ॥
प्रायात्प्रतीचीं हरितं विचिन्वंश्च ततस्ततः । उत्तरामगमच्छ्रीमान्दिशं हिमवतावृताम् ॥१०॥
अपश्यमानस्तत्रापि स्वल्पमप्यथ दुष्कृतम् । पूर्वामपि दिशं सर्वामथोऽपश्यन्नराधिपः ॥११॥
प्रविशुद्धसमाचारामादर्शतलनिर्मलाम् । पुष्पकस्थो महाबाहुस्तदापश्यन्नराधिपः ॥१२॥
दक्षिणां दिशमाक्रामत्ततो राजर्षिनन्दनः । शैवलस्योत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥१३॥
तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः । ददर्श राघवः श्रीमाल्लम्बमानमधोमुखम् ॥१४॥

नारदके अमृतमय वचन सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ सौम्य, जाओ, ब्राह्मणको समझाओ और बालकका शरीर तेलमें डुबाकर रखवाओ ।२॥ सुगन्धित तथा अधिक तेलमें उसे रखवाना जिससे उस शरीरका नाश न हो, कुछ बिगड़ने न पावे ॥ ३ ॥ उस सदाचारी बालकके शरीरकी रक्षा इस प्रकार करना जिससे उसका कोई अंग बिगड़ न जाय, कोई अंग कहींसे टूट न जाय ॥ ४ ॥ लक्ष्मणसे इस प्रकार कहकर यशस्वी रामचन्द्रने मन-ही-मन पुष्पकका ध्यान किया और उसे आनेके लिये कहा ॥ ५ ॥ रामचन्द्रका अभिप्राय समझकर सुवर्णभूषित वह पुष्पक शीघ्र ही एक ही क्षणमें रामचन्द्रके पास चला आया ॥ ६ ॥ वह नम्र होकर बोला, महाराज, आपका अधीन भृत्य मैं यह उपस्थित हूँ ॥ ७ ॥ पुष्पकके मनोहर वचन सुनकर और महर्षियोंको प्रणामकर रामचन्द्र विमानपर सवार हुये ॥ ८ ॥ उन्होंने धनुष बाण रखनेके दो तरकस, और चमकीली तलवार ली, भरत और लक्ष्मणको नगर-रक्षाके लिये नियत किया ॥ ९ ॥ पहले इधर-उधर ढूँढ़ते हुए वे पश्चिम दिशामें गये, वहाँसे उत्तर दिशामें गये जहाँ हिमवान् पर्वत फैला हुआ है ॥ १० ॥ इन दिशाओंमें उन्होंने थोड़ा भी पाप नहीं देखा, वहाँसे पूर्व दिशामें जाकर उसे भी देखा, वहाँ विशुद्ध सदाचारका पालन होता था । अतएव वह दिशा दर्पण तलके समान निर्मल थी । रामचन्द्रने उस दिशाको भी पुष्पकपर बैठे बैठे देखा ॥ ११, १२ ॥ वहाँसे वे दक्षिण दिशामें गये, वहाँ उन्होंने शैवलपर्वतके उत्तर ओर एक बड़ा तलाब देखा ॥ १३ ॥ उस तालाबके पास कठोर तपस्या करते हुए एक तपस्वीको उन्होंने देखा, वह नीचेकी ओर सिर करके लटक रहा था ॥ १४ ॥ कठोर तपस्या करनेवाले उस तपस्वीके पास जाकर रामचन्द्र बोले, तुम धन्य हो

राघवस्तमुपागम्य तप्यन्तं तप उत्तमम् । उवाच च नृपो वाक्यं धन्यस्त्वमसि सुव्रत ॥१५॥
कस्यां योन्यां तपोवृद्ध वर्तसे दृढविक्रम । कौतूहलात्त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ॥१६॥
कोऽर्थो मनीषितस्तुभ्यं स्वर्गलाभो परोऽथवा । वराश्रयो यदर्थं त्वं तपस्यन्यैः सुदुश्चरम् ॥१७॥
यमाश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस । ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वासि दुर्जयः ।
वैश्यस्तृतीयो वर्णो वा शूद्रो वा सत्यवाग्भव । ॥१८॥
इत्येवमुक्तः स नराधिपेन अवाक्शिरा दाशरथाय तस्मै ।
उवाच जातिं नृपपुंगवाय यत्कारणं चैव तपःप्रयत्नः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः । अवाक्शिरास्तथाभूतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः । देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥ २ ॥
न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया । शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नामतः ॥ ३ ॥
भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् । निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥ ४ ॥
तस्मिञ्शूद्रे हते देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः । साधु साध्विति काकुत्स्थं ते शशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्दिव्यानां सुसुगन्धिनाम् । पुष्पाणां वायुमुक्तानां सर्वतः प्रपपात ह ॥ ६ ॥
सुप्रीताश्चाब्रुवन्रामं देवाः सत्यपराक्रमम् । सुरकार्यमिदं देव सुकृतं ते महामते ॥ ७ ॥

दृढ़ विक्रम, तपो वृद्ध तुम किस वर्णके हो, कुतूहलसे मैं पूछता हूँ। मैं दसरथ पुत्र राम हूँ ॥ १५, १६ ॥ तुम किस मनोरथसे तपस्या कर रहे हो, स्वर्ग चाहते हो या और कुछ । जिसके लिये दूसरोंके द्वारा दुष्कर तपस्या कर रहे हो ॥ १७ ॥ जिसके लिये तुम तपस्या करते हो वह मैं जानना हूँ । ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय । वैश्य हो या शूद्र, जो कुछ हो सत्य-सत्य कहो ॥ १८ ॥ सिर नीचे करके तपस्या करनेवाले तपस्वीने रामचन्द्रके पूछनेपर अपनी जाति बतलाई और तपस्याका उद्देश्य बतलाया ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पचहत्तरवां सर्ग समाप्त ॥७५॥

पुण्यात्मा रामचन्द्रके वचन सुनकर अधोमुख तपस्या करनेवाला तपस्वी बोला ॥ १ ॥ मैं शूद्र हूँ उग्र तपस्या कर रहा हूँ । मैं इसी शरीरसे देवलोकमें जाना चाहता हूँ ॥ २ ॥ मैं आपसे झूठ नहीं बोलता । मैं देवलोक जीतनेके लिए तपस्या कर रहा हूँ । मैं शूद्र हूँ, मेरा नाम शम्बूक है ॥ ३ ॥ वह इस प्रकार कह रहा था । इसी समय रामचन्द्रने म्यानसे चमकीली तलवार निकालकर उसका सिर काट डाला ॥ ४ ॥ उस शूद्रके मारे जानेपर अग्नि आदि देवता रामचन्द्रको बार-बार साधुवाद देने लगे ॥ ५ ॥ वायुने सुगन्धित पुष्पोंकी बड़ी भारी वृष्टि की ॥६॥ प्रसन्न होकर देवता सत्य पराक्रम रामचन्द्रसे बोले, आपने यह देवताओं-का काम किया, अर्थात् आपके इस कामसे देवताओंको लाभ होगा ॥ ७ ॥ सौम्य, आपके कारणसे यह

गृहाण च वरं सौम्य यं त्वमिच्छस्यरिंदम । स्वर्गभाङ् नहि शूद्रोऽयं त्वत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥
देवानां भाषितं श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरंदरम् ॥ ९ ॥
यदि देवाः प्रसन्ना मे द्विजपुत्रः स जीवतु । दिशन्तु वरमेतं मे ईप्सितं परमं मम ॥१०॥
ममापचाराद्बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः । अप्राप्तकालः कालेन नीतो वैवस्वतक्षयम् ॥११॥
तं जीवयथ भद्रं वो नानृतं कर्तुमर्हथ । द्विजस्य संश्रुतोऽर्थो मे जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥१२॥
राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमाः । प्रत्यूचू राघवं प्रीता देवाः प्रीतिसमन्वितम् ॥१३॥
निर्वृतो भव काकुत्स्थ सोऽस्मिन्नहनि बालकः । जीवितं प्राप्तवान्भूयः समेतश्चापि बन्धुभिः ॥१४॥
यस्मिन्मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः । तस्मिन्मुहूर्ते बालोऽसौ जीवेन समयुज्यत ॥१५॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधु याम नरर्षभ । अगस्त्यस्याश्रमपदं द्रष्टुमिच्छाम राघव ॥१६॥
तस्य दीक्षा समाप्ता हि ब्रह्मर्षेः सुमहाद्युते । द्वादशं हि गतं वर्षं जलशय्यां समासतः ॥१७॥
काकुत्स्थ तद्गमिष्यामो मुनिं समभिनन्दितुम् । त्वं चापि गच्छ भद्रं ते द्रष्टुं तमृषिसत्तमम् ॥१८॥
स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः । आरुरोह विमानं तं पुष्पकं हेमभूषितम् ॥१९॥
ततो देवाः प्रयातास्ते विमानैर्बहुविस्तरैः । रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥२०॥
दृष्ट्वा तु देवान्संप्राप्तानगस्त्यस्तपसां निधिः । अर्चयामास धर्मात्मा सर्वांस्तानविशेषतः ॥२१॥
प्रतिगृह्य ततः पूजां संपूज्य च महामुनिम् । जग्मुस्ते त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगाः ॥२२॥

शूद्र इस शरीरसे स्वर्ग न जा सका । आप जो वर चाहें वह हम लोगोंसे लें ॥ ८ ॥ देवताओंके वचन सुनकर सत्य पराक्रम रामचन्द्र हाथ जोड़कर देवराज इन्द्रसे बोले ॥ ९ ॥ यदि देवता प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मण बालक जी उठे, यही मेरा अभीष्ट वर है, यही वर आपलोग मुझे दें ॥ १० ॥ मेरे ही अपराधसे वह अपने पिताका एक पुत्र अकालमें ही मर गया है ॥ ११ ॥ मैंने उसके पुत्रको जीवित करनेकी प्रतिज्ञा उस ब्राह्मणसे की है, आप मेरी प्रतिज्ञाको असत्य न होने दें उस ब्राह्मण बालकको जीवित कर दें ॥ १२ । रामचन्द्रकी ये बातें सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुये, और वे प्रेमपूर्वक उनसे बोले ॥ १३॥ रामचन्द्र, आप निश्चिन्त रहें । वह ब्राह्मण बालक जीवित हो गया और वह अपने बान्धवोंसे मिल भी चुका ॥१४॥ रामचन्द्र, जिस समय आपने इस शूद्रको मारा है, उसी समय वह ब्राह्मण बालक पुनः जीवित हो गया ॥ १५ ॥ स्वस्ति, आपका कल्याण हो, हमलोग जाते हैं । अगस्त्यका आश्रम हमलोग देखना चाहते हैं ॥ १६ ॥ उनकी दीक्षा समाप्त हो गयी, वे बारह वर्षों (दिनों) से जलमें निवास करते थे ॥१७॥ अतएव मुनिका अभिनन्दन करने हमलोग जाते हैं आप भी उन मुनिश्रेष्ठका दर्शन करने जाँय ॥ १८ ॥ देवताओंके कहनेके अनुसार करनेकी प्रतिज्ञा करके रामचन्द्र पुष्पक विमानपर बैठे ॥ १९ ॥ अपने-अपने विमानपर बैठकर देवता चले । रामचन्द्र जी अगस्त्यके आश्रममें जानेके लिये देवताओंके पीछे-पीछे चले ॥ २० ॥ आश्रमपर आये देवताओंकी तपोनिधि अगस्त्यने बिना भेदके पूजा की ॥ २१ ॥ अगस्त्यका सत्कार ग्रहण करके तथा उनका अभिनन्दन करके प्रसन्नचित्त देवता अपने साथियोंके साथ स्वर्ग गये

गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुष्पकादवरुह्य च । ततोऽभिवादयामास अगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥२३॥
सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा । आतिथ्यं परमं प्राप्य निषसाद नराधिपः ॥२४॥
तमुवाच महातेजाः कुम्भयोनिर्महातपाः । स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥२५॥
त्वं मे बहुमतो राम गुणैर्बहुभिरुत्तमैः । अतिथिः पूजनीयश्च मम राजन्हृदि स्थितः ॥२६॥
सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम् । ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापितः सुतः ॥२७॥
उष्यतां चेह रजनीं सकाशे मम राघव । त्वं हि नारायणः श्रीमांस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥२८॥
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां पुरुषस्त्वं सनातनः । प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्ता स्वपुरमेव हि ॥२९॥
इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं विश्वकर्मणा । दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥३०॥
प्रतिगृह्णीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं कुरु राघव । दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते ॥३१॥
भरणे हि भवाञ्शक्तः फलानां महतामपि । त्वं हि शक्तस्तारयितुं सेन्द्रानपि दिवौकसः ॥३२॥
तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्तत्प्रतीच्छ नराधिप । अथोवाच महात्मानमिक्ष्वाकूणां महारथः ॥३३॥
आगमं तस्य दीप्तस्य प्रष्टुमेवोपचक्रमे । अत्यद्भुतमिदं दिव्यं वपुषा युक्तमद्भुतम् ॥३४॥
कथं वा भवता प्राप्तं कुतो वा केन वा हृतम् । कौतूहलतया ब्रह्मन्पृच्छामि त्वां महायशः ॥३५॥
आश्चर्याणां बहूनां हि निधिः परमको भवान् । एवं ब्रुवति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ।
शृणु राम यथावृत्तं पुरा त्रेतायुगे युगे । ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

॥ २२ ॥ देवताओंके चले जानेपर पुष्पकसे उतरकर रामचन्द्रने अगस्त्य मुनिको प्रणाम किया ॥ २३ ॥ तेजसे प्रकाशमान महात्मा मुनिको प्रणाम करके तथा उनके द्वारा सत्कृत होकर वे वहाँ बैठे ॥ २४ ॥ कुम्भयोनि तेजस्वी और तपस्वी अगस्त्य बोले, महाराज आपका स्वागत्, आप बड़े भाग्यसे आये हैं ॥२५॥ राम अपने अनेक उत्तम गुणोंमें आप मेरे आदरणीय हैं, मेरे मनमें बसे हैं और मेरे आदरणीय अतिथि हैं ॥ २६ ॥ देवताओंने कहा है कि शूद्रका वध करके आप आरहे हैं, अपने धर्मसे आपने ब्राह्मणके पुत्रको जीवित कर दिया है ॥ २७ ॥ आप इस रातको यहाँ मेरे पास रहें । आप नारायण हैं । आपमें सब कुछ वर्तमान है ॥२८॥ आप सब देवताओंके स्वामी हैं, सनातन पुरुष हैं । कल प्रातःकाल पुष्पकसे आप अपने नगरको जाँय ॥ २९ ॥ सौम्य, यह आभरण विश्वकर्माका बनाया है । दिव्य है यह अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा है, आप इसे ग्रहण कर मेरा प्रिय कार्य करें मुझे प्रसन्न करें । दी हुई वस्तुके पुनःदान करनेसे बड़ा फल होता है ॥ ३०, ३१ ॥ आप उत्तम-से-उत्तम वस्तुओंके धारण करनेमें समर्थ हैं । अतएव आपही इस आभूषणके योग्य हैं । इन्द्र आदि देवताके तारनेकी भी आपमें शक्ति है । अतएव आपको मैं विधिवत यह आभूषण देता हूँ । आप इसे ग्रहण करें । महात्मा मुनिसे रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥३२,३३॥ यह दिव्य आभूषण बड़ा ही उत्तम है इसकी बनावट श्रेष्ठ है । यह प्रकाशमान आभरण आपको कहाँसे मिला ॥३४॥ आपने कैसे और किससे पाया, कौन ले आया । महात्मन् मैं यह केवल कुतूहलसे आपसे पूछता हूँ ॥३५॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

पुरा त्रेतायुगे राम बभूव बहुविस्तरम् । समन्ताद्योजनशतं विमृगं पक्षिवर्जितम् ॥ १ ॥
तस्मिन्निर्मानुषेऽरण्ये कुर्वाणस्तप उत्तमम् । अहमाक्रमितुं सौम्य तदारण्यमुपागमम् ॥ २ ॥
तस्य रूपमरण्यस्य निर्देष्टुं न शशाक ह । फलमूलैः सुखास्वादैर्बहुरूपैश्च काननैः ॥ ३ ॥
तस्यारण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् । हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ४ ॥
पद्मोत्पलसमाकीर्णं समतिक्रान्तशैवलम् । तदाश्चर्यमिवात्यर्थं सुखास्वादमनुत्तमम् ॥ ५ ॥
अरजस्कं तदाक्षोभ्यं श्रीमत्पक्षिगणायुतम् । तस्मिन्सरःसमीपे तु महदद्भुतमाश्रमम् ॥ ६ ॥
पुराणं पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम् । तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ ॥ ७ ॥
प्रभाते काल्यमुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे । अथापश्यं शवं तत्र सुपुष्टमरजः क्वचित् ॥ ८ ॥
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या तस्मिंस्तोयाशये नृप । तमर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तं तत्र राघव ॥ ९ ॥
विष्ठितोऽस्मि सरस्तीरे किन्विदं स्यादिति प्रभो । अथापश्यं मुहूर्तात्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥१०॥
विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् । अत्यर्थं स्वर्गिणं तत्र विमाने रघुनन्दन ॥११॥
उपास्तेऽप्सरसां वीर सहस्रं दिव्यभूषणम् । गायन्ति काश्चिद्रम्याणि वादयन्ति तथापराः ॥१२॥

महाराज आप अनेक प्रकारके आश्चर्योंके भण्डार हैं । रामचन्द्रके पूछनेपर मुनिने कहा, रामचन्द्र सुनो । पहले त्रेतायुगमें जो घटना हुई थी वह सुनो, उसीसे इस आभरणका सम्बन्ध है ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छिहत्तरवां सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

राम पहले त्रेतायुगमें बहुत बड़ा पशु-पक्षिहीन एकवन था जिसकी लम्बाई और चौड़ाई सौ योजनमें थी ॥१॥ उस मनुष्यहीन वनमें मैं तपस्या करता था, एक बार उस वनमें घूमनेके लिए निकला ॥ २ ॥ उसका सुन्दर रूप मैं बतला नहीं सकता । सुस्वादु फलमूल वहाँ काफी थे और वह वन विचित्र था ॥ ३ ॥ उस वनके बीचमें एक तालाब था जो एक योजन लम्बा था । हंस, सारस तथा चक्रवाकसे उसकी शोभा हो रही थी ॥ ४ ॥ कमल तथा रक्तकमल उसमें भरे थे, उसमें सेवार न था । उसका जल स्वादिष्ट था । वह तालाब अद्भुत था ॥ ५ ॥ निर्मल उसका जल था, वह अगाध था । वहाँ सुन्दर पक्षी रहते थे । उस तालाबके पास बड़ा ही अद्भुत आश्रम था ॥६॥ उस पुराने और पवित्र आश्रममें कोई मुनि नहीं थे । जाड़ेकी रात मैंने उसी आश्रममें बितायी ॥ ७ ॥ प्रातःकाल स्नान आदि करनेके लिए मैं तालाबपर गया, वहाँ मैंने एक मोटा-ताजा और निर्मल शव देखा । उस जलाशयमें वह शव बड़ा शोभित हो रहा था, मैं वहीं बैठकर थोड़ीदेर विचार करने लगा कि यह है क्या ? वहाँ थोड़े ही देरमें मैंने एक अद्भुत दिव्य विमान देखा, उसमें हंसका चित्र बना था तथा वह मनके समान तीव्रगामी था । उस विमानपर एक स्वर्गीय पुरुषको मैंने बैठे देखा ॥८,११॥ हजारों अप्सराएँ उस स्वर्गीय मनुष्यकी सेवा कर रही थीं, कोई रमणीय गान गा रही थीं दूसरी बाजा बजा रही थीं ॥१२॥ मृदङ्ग, प्रणय, वीणा आदि बजा रही थीं । अन्य अप्सराएँ चन्द्रकिरणों-

मृदङ्गवीणापणवान्नृत्यन्ति च तथापराः । अपराश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैर्महाधनैः ॥१३॥
दोधूयुर्वदनं तस्य पुण्डरीकनिभेक्षणाः । ततः सिंहासनं हित्वा मेरुकूटमिवांशुमान् ॥१४॥
पश्यतो मे तदा राम विमानादवरुह्य च । तं शवं भक्षयामास स स्वर्गी रघुनन्दन ॥१५॥
ततो भुक्त्वा यथाकामं मांसं बहु सुपीवरम् । अवतीर्य सरः स्वर्गी संस्प्रष्टुमुपचक्रमे ॥१६॥
उपस्पृश्य यथान्यायं स स्वर्गी रघुनन्दन । आरोढुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम् ॥१७॥
तमहं देवसंकाशमारोहन्तमुदीक्ष्य वै । अथाहमब्रुवं वाक्यं तमेव पुरुषर्षभ ॥१८॥
को भवान्देवसंकाश आहारश्च विगर्हितः । त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं वक्तुमर्हसि ॥१९॥
कस्य स्यादीदृशो भाव आहारो देवसंमत । आश्चर्यं वर्तते सौम्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ।
नाहमौपयिकं मन्ये तव भक्ष्यमिमं शवम् । ॥२०॥
इत्येवमुक्तः स नरेन्द्रनाकी कौतूहलात्सूनृतया गिरा च ।
श्रुत्वा च वाक्यं मम सर्वमेतत्सर्वं तथा चाकथयन्ममेति ॥ ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

श्रुत्वा तु भाषितं वाक्यं मम राम शुभाक्षरम् । प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेदं स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १ ॥
शृणु ब्रह्मन्पुरा वृत्तं ममैतत्सुखदुःखयोः । अनतिक्रमणीयं च यथा पृच्छसि मां द्विज ॥ २ ॥

के समान उज्ज्वल सुवर्ण डंडेवाले चवरसे उसपर हवाकर रही थीं। मेरुशिखरसे जिस प्रकार सूर्य उठता है, उस प्रकार वह पुरुष मेरे देखते ही सिंहासनसे उठकर विमानसे उतरा और वह उस शवको खाने लगा। ॥ १३ ॥ १५ ॥ उस मोटे माँसको इच्छापूर्वक खाकर वह जल पीनेके लिए तालाबमें उतरा ॥ १६ ॥ विधिपूर्वक जल पीकर वह पुरुष विमानपर चढ़नेके लिए चला ॥ १७ ॥ मैंने उस देवतुल्य पुरुषको विमानपर चढ़ते देखा, उस समय मैं उससे बोला ॥ १८ ॥ आप देवतुल्य कौन हैं ? और आपका ऐसा निन्दित आहार क्यों है, कृपया इसका कारण बतलाइए ॥ १९ ॥ देवतुल्य, आपके समान व्यक्तिका आहार ऐसा कैसे हो सकता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। अतएव मैं यथार्थ बात सुनना चाहता हूँ। यह शवका आहार करना तुम्हारे योग्य है ऐसा मैं नहीं समझता ॥ २० ॥ राजन्, कौतूहलसे मैंने उस स्वर्गीय मनुष्यसे बड़े कोमल शब्दोंमें यह पूछा। मेरी बात सुनकर उसने मुझसे सब बातें यथावत् कहीं ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥

मेरे सुन्दर वचन सुनकर वह स्वर्गीय मनुष्य हाथ जोड़कर बोला ॥ १ ॥ ब्रह्मन्, मेरे सुख-दुःखका कारण आप सुनें, वह टाला नहीं जा सकता, फिर भी आपके पूछनेसे कहता हूँ ॥ २ ॥ पहले मेरे पिता

पुरा वैदर्भको राजा पिता मम महायशाः । सुदेव इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ३ ॥
तस्य पुत्रोद्वयं ब्रह्मन्द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत । अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान्सुरथोऽभवत् ॥ ४ ॥
ततः पितरि स्वर्याते पौरा मामभ्यषेचयन् । तत्राहं कृतवान्राज्यं धर्म्यं च सुसमाहितः ॥ ५ ॥
एवं वर्षसहस्राणि समतीतानि सुव्रत । राज्यं कारयतो ब्रह्मन्प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ६ ॥
सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्विज्ञातायुर्द्विजोत्तम । कालधर्मं हृदि न्यस्य ततो वनमुपागमम् ॥ ७ ॥
सोऽहं वनमिदं दुर्गं मृगपक्षिविवर्जितम् । तपश्चर्तुं प्रविष्टोऽस्मि समीपे सरसः शुभे ॥ ८ ॥
भ्रातरं सुरथं राज्ये अभिषिच्य महीपतिम् । इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं मया चिरम् ॥ ९ ॥
सोऽहं वर्षसहस्राणि तपस्त्रीणि महावने । तप्त्वा सुदुष्करं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥१०॥
तस्येमे स्वर्गभूतस्य क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम । बाधेते परमे वीर ततोऽहं व्यथितेन्द्रियः ॥११॥
गत्वा त्रिभुवनश्रेष्ठं पितामहमुवाच ह । भगवन्ब्रह्मलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥१२॥
कस्यायं कर्मणः पाकः क्षुत्पिपासानुगो ह्यहम् । आहारः कश्च मे देव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१३॥
पितामहस्तु मामाह तवाहारः सुदेवज । स्वादूनि स्वानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः ॥१४॥
स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम् । अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते ॥१५॥
दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे । तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया ॥१६॥
स त्वं सुपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् । भक्षयित्वामृतरसं तेन तृप्तिर्भविष्यति ॥१७॥

विदर्भ देशके राजा थे, वे यशस्वी थे, सुदेव उनका नाम था, तीनोंलोकोंमें उनके पराक्रमकी प्रसिद्धि थी ॥ ३ ॥ उनकी दो स्त्रियोंसे दो पुत्र हुए, मेरानाम श्वेत है और मेरे छोटे भाईका सुरथ ॥४॥ पिताके स्वर्ग जानेपर पुरवासियोंने मेरा अभिषेक किया । मैंने धर्मपूर्वक सावधानीसे राज्यका पालन किया ॥ ५ ॥ इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते और प्रजाका पालन करते हजारवर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ मैंने किसी प्रकार अपनी आयुका पता पा लिया । अतएव मृत्युका विचार करके मैं वनमें चला आया ॥ ७ ॥ मैं पशुपक्षिहीन दुर्गम इसी वनमें तपस्या करने आया, और इस तालावके पास तपस्या करने लगा ॥ ८ ॥ भाई सुरथको राज्य देकर यहाँ वनमें बहुत दिनोंतक मैंने तपस्या की ॥ ९ ॥ इस महावनमें तीनहजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या करके उत्तम ब्रह्मलोक पाया ॥ १० ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ, स्वर्गलोकमें जानेपर भी मुझे भूख और प्यासकी तीव्र बाधा होती है, इनसे मैं व्याकुल हो जाता हूँ ॥ ११ ॥ त्रिभुवनश्रेष्ठ पितामह ब्रह्माके पास मैं गया और बोला, भगवन्, यहाँ तो किसीको भूख-प्यास नहीं लगती ॥ १२ ॥ मेरे किस कर्मका यह फल है कि मुझे भूख-प्यास लगती हैं । देव, आप मेरे लिए आहार बतलावें ॥ १३ ॥ पितामहने कहा, सुदेवपुत्र, तुम्हारे लिए आहार होगा अपना मांस, वही स्वादिष्ट मांस तुम प्रतिदिन खाया करो ॥ १४ ॥ तुमने तप करनेके समय केवल अपने शरीरको ही पुष्ट किया । महामतेश्वेत, बिना पाये तो कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती ॥ १५ ॥ तुमने थोड़ा भी दान नहीं किया है, केवल तप किया है, । वत्स, इसीसे स्वर्गमें आनेपर भी तुम्हें भूख-प्यास लगती हैं ॥ १६ ॥ अतएव आहारके द्वारा पुष्ट अपने शरीरका माँस खाकर निर्वाह करो, उसे तुम अमृततुल्य समझो ॥ १७ ॥ श्वेत, जब महर्षि अगस्त्य इस वनमें आवेंगे उस समय तुम्हारा

यदा तु तद्वनं श्वेत अगस्त्यः स महानृषिः । आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद्विमोक्ष्यते ॥१८॥
स हि तारयितुं सौम्य शक्तः सुरगणानपि । किं पुनस्त्वां महाबाहो क्षुत्पिपासावशंगतम् ॥१९॥
सोऽहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य निश्चयम् । आहारं गर्हितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥२०॥
बहून्वर्षगणान्ब्रह्मन्भुज्यमानमिदं मया । क्षयं नाभ्येति ब्रह्मर्षे तृप्तिश्चापि ममोत्तमा ॥२१॥
तस्य मे कृच्छ्रभूतस्य कृच्छ्रादस्माद्विमोचय । अन्येषां न गतिर्ह्यत्र कुम्भयोनिमृते द्विजम् ॥२२॥
इदमाभरणं सौम्य धारणार्थं द्विजोत्तम । प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥२३॥
इदं तावत्सुवर्णं च धनं वस्त्राणि च द्विज । भक्ष्यं भोज्यं च ब्रह्मर्षे ददाम्याभरणानि च ॥२४॥
सर्वान्कामान्प्रयच्छामि भोगांश्च मुनिपुंगव । तारणे भगवन्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥२५॥
तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् । तारणायोपजग्राह तदाभरणमुत्तमम् ॥२६॥
मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे । मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह ॥२७॥
प्रणष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा । तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम् ॥२८॥
तेनेदं शक्रतुल्येन दिव्यमाभरणं मम । तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतदर्शनम् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे ऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९

तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वागस्त्यस्य राघवः । गौरवाद्विस्मयाच्चैव भूयः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥

इस कष्टसे छुटकारा होगा । १८ ॥ वे महर्षि देवताओंको भी तार सकते हैं, फिर क्षुधापिपासाके अधीन तुमको तारना उनके लिए कौन बड़ी बात है ॥ १९ ॥ द्विजश्रेष्ठ, भगवान् ब्रह्माके निश्चित वचन सुनकर मैं यह निन्दित आहार करता हूँ और अपने शरीरका मांस खाता हूँ॥२०॥ बहुत वर्षोंसे मैं इसे खा रहा हूँ पर यह समाप्त नहीं होता और न मेरी तृप्ति ही होती है ॥ २१ ॥ मैं बहुत दुःख भोग रहा हूँ, आप इस दुःखसे मेरा उद्धार करें । कुम्भयोनि महर्षि अगस्त्यके अतिरिक्त और किसीसे मेरा उद्धार नहीं हो सकता ॥ २२ ॥ द्विजोत्तम, यह आभरण धारण करनेके लिए आप मुझसे लें, और मुझपर कृपा करें ॥ २३ ॥ यह सुवर्ण, धन-वस्त्र, भक्ष्य-भोज्य तथा आभरण मैं आपको देता हूँ ॥ २४ ॥ भोगकी जिस वस्तुकी इच्छा हो वह मैं आपको देता हूँ । आप कृपा करके मेरा उद्धार करें, । २५ ॥ उस स्वर्गवासीके दुःखयुक्त वचन सुनकर मैंने वह आभरण ले लिया, जिससे उसका उद्धार हो ॥ २६ ॥ मेरे उस सुन्दर आभूषणके ले लेनेपर राजर्षिका वह मनुष्य शरीर (शव) नष्ट हो गया ॥ २६ ॥ शरीरके नाश होनेपर राजर्षि बहुत प्रसन्न हुआ और वह तृप्त तथा प्रसन्न होकर ब्रह्मलोक चला गया । २८ ॥ इन्द्रतुल्य उसी राजाने यह अद्भुत आभरण अपने उद्धारके लिए दिया था ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अठत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७८ ॥

अगस्त्यके वह अद्भुत वचन सुनकर रामचन्द्र उनके प्रति आदर तथा विस्मयवश होकर पुनः

भगवंस्तद्वनं घोरं तपस्तप्यति यत्र सः । श्वेतो वैदर्भको राजा कथं तदमृगद्विजम् ॥ २ ॥
तद्वनं स कथं राजा शून्यं मनुजवर्जितम् । तपश्चर्तुं प्रविष्टः स श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् । वाक्यं परमतेजस्वी वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ ४ ॥
पुरा कृतयुगे राम मनुर्दण्डधरः प्रभुः । तस्य पुत्रो महानासीदिक्ष्वाकुः कुलनन्दनः ॥ ५ ॥
तं पुत्रं पूर्वकं राज्ये निक्षिप्य भुवि धुर्जयम् । पृथिव्यां राजवंशानां भव कर्तेत्युवाच तम् ॥ ६ ॥
तथैव च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघवः । ततः परमसंतुष्टो मनुः पुत्रमुवाच ह ॥ ७ ॥
प्रीतोऽस्मि परमोदार कर्ता चासि न संशयः । दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥ ८ ॥
अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानवेषु वै । स दण्डो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥ ९ ॥
तस्माद्दण्डे महाबाहो यत्नवान्भव पुत्रक । धर्मो हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥१०॥
इति तं बहु संदिश्य मनुः पुत्रं समाधिना । जगाम त्रिदिवं हृष्टो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥११॥
प्रयाते त्रिदिवे तस्मिन्निक्ष्वाकुरमितप्रभः । जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥१२॥
कर्मभिर्बहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतस्तदा । जनयामास धर्मात्मा शतं देवसुतोपमान् ॥१३॥
तेषामवरजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन । मूढश्चाकृतविद्यश्च न शुश्रूषति पूर्वजान् ॥१४॥
नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽल्पतेजसः । अवश्यं दण्डपतनं शरीरेऽस्य भविष्यति ॥१५॥
अपश्यमानस्तं देशं घोरं पुत्रस्य राघव । विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्यं प्रादादरिंदम ॥१६॥

बोले ॥ १ ॥ भगवन्, वह घोरवन, जहाँ विदर्भके राजा श्वेत तपस्या करते थे, पशुपक्षीसे हीन क्यों हुआ ॥ २ ॥ तथा उस मनुष्यहीन सूने वनमें तपस्या करनेके लिए राजा ही क्यों गये । यह सब मैं सुनना चाहता हूँ ॥३॥ कुतूहलयुक्त रामके वचन सुनकर तेजस्वी अगस्त्य उत्तर देने लगे ॥४॥ पहले सत्ययुगमें मनुराजा थे वे दण्डके व्यवस्थापक थे । कुलको उज्ज्वल करनेवाले इक्ष्वाकुनामके उनके पुत्र थे ॥ ५ ॥ उस अजेय बड़े पुत्रको राज्य देकर मनुने कहा कि तुम पृथिवीमें राजवंशकी स्थापना करो ॥ ६ ॥ पुत्रने वैसा करनेकी पितासे प्रतिज्ञा की, इससे पिता मनु सन्तुष्ट हुए और बोले ॥ ७ ॥ परमोदार, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम अवश्य ही वैसा करोगे इसमें सन्देह नहीं । दण्डसे प्रजाकी रक्षा करो, पर निष्कारण किसीको दण्ड न दो ॥ ८ ॥ अपराधी मनुष्योंको जो दण्ड दिया जाता है, वह विधिपूर्वक दिया हुआ दण्ड राजाको स्वर्ग ले जाता है ॥ ९ ॥ अतएव, पुत्र, तुम दण्डके सम्बन्धमें यत्नवान् रहो, अपराधीको दण्ड दो, निरपराधकी रक्षा करो, ऐसा करनेसे तुम्हें धर्म होगा ॥ १० ॥ इस प्रकार पुत्रको बहुत सावधानीसे समझाकर मनु प्रसन्नता पूर्वक सनातन ब्रह्मलोकमें चले गये ॥ ११ ॥ उनके स्वर्ग जानेपर अमित पुत्र इक्ष्वाकु सोचने लगे मैं किस प्रकार पुत्र उत्पन्न करूँ ॥ १२ ॥ दान-यज्ञ आदि अनेक कर्मोंसे मनुपुत्र धर्मात्मा इक्ष्वाकुने देवपुत्र तुल्य सौ पुत्र उत्पन्न किये ॥ १३ ॥ उनमें जो सबसे छोटा था वह मूर्ख था, कुछ पढ़ा लिखा नहीं था वह अपने बड़ोंकी सेवा नहीं करता था, उनकी बातें नहीं सुनता था ॥ १४ ॥ पिताने उस मूर्खका नाम दण्ड रखा, क्योंकि उसके शरीरपर अवश्य दण्ड गिरनेवाला है यह बात पिताको मालूम थी ॥ १५ ॥ राजाको दण्डके योग्य कोई भयंकर देश दिखायी नहीं पड़ा, अतएव विन्ध्य और शैवल पर्वतोंके मध्यदेशका

स दण्डस्तत्र राजाभूद्रम्ये पर्वतरोधसि । पुरं चाप्रतिमं राम न्यवेशयदनुत्तमम् ॥१७॥
पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो । पुरोहितं तूशनसं वरयामास सुव्रतम् ॥१८॥
एवं स राजा तद्राज्यमकरोत्सपुरोहितः । प्रहृष्टमनुजाकीर्णं देवराजो यथा दिवि ॥१९॥
ततः स राजा मनुजेन्द्रपुत्रः सार्धं च तेनोशनसा तदानीम् ।
चकार राज्यं सुमहान्महात्मा शक्रो दिवीवोशनसा समेतः ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०

एतदाख्याय रामाय महर्षिः कुम्भसंभवः । अस्यामेवापरं वाक्यं कथायामुपचक्रमे ॥ १ ॥
ततः स दण्डः काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम् । अकरोत्तत्र दान्तात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥
अथ काले तु कस्मिंश्चिद्राजा भार्गवमाश्रमम् । रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रे मासि मनोरमे ॥ ३ ॥
तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां भुवि । विचरन्तीं वनोद्देशे दण्डोऽपश्यदनुत्तमाम् ॥ ४ ॥
स दृष्ट्वा तां सुदुर्मेधा अनङ्गशरपीडितः । अभिगम्य सुसंविग्नः कन्यां वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य वासि सुता शुभे । पीडितोऽहमनङ्गेन पृच्छामि त्वां शुभानने ॥ ६ ॥
तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य मोहोन्मत्तस्य कामिनः । भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं त्विदम् ॥ ७ ॥
भार्गवस्य सुतां विद्धि देवस्याक्लिष्टकर्मणः । अरजां नाम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥ ८ ॥

राज्य उसे दिया ॥ १६ ॥ दण्ड उन पर्वतोंके रमणीय तटकी भूमिपर राज्य करने लगा, वहाँ उसने बड़ा ही सुन्दर और रमणीय नगर बसाया ॥ १७ ॥ उसने अपने नगरका नाम मधुमन्त रखा, और शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाया ॥ १८ ॥ इस प्रकार वह राज्य करने लगा, उसके राज्यवासी मनुष्य प्रसन्न थे। जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गमें राज्य करते थे उसी प्रकार वह भी राज्य करने लगा ॥ १९ ॥ राजपुत्र वह दण्ड-नामका राजा शुक्राचार्यके साथ अपने विशाल राज्यका शासन करने लगा। जिस प्रकार इन्द्र बृहस्पतिकी सहायतासे देवलोकका राज्य करते हैं ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका उन्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७९ ॥

रामचन्द्रसे इतना कहकर अगस्त्य पुनः इसी सम्बन्धमें बोले ॥ १ ॥ इस प्रकार कई हजार वर्षों-तक दण्डने नियत चित्त होकर वहाँ शत्रुहीन राज्य किया ॥ २ ॥ कई दिनोंके पश्चात् राजा रमणीय चैत्र मासमें भार्गव (शुक्र) के आश्रमपर गये ॥ ३ ॥ वहाँ वनमें विचरती हुई सुन्दरी भार्गव कन्याको दण्डने देखा ॥ ४ ॥ उसको देखते ही वह मूर्ख काम पीड़ित हो गया और उसके पास जाकर व्याकुल होकर वह बोला ॥ ५ ॥ सुश्रोणि, तुम कहाँसे आई हो, किसकी कन्या हो, सुन्दरि, कामसे पीड़ित होकर मैं तुमसे पूछता हूँ ॥ ६ ॥ मदोन्मत्त कामी राजासे वह भार्गव कन्या मुँह मोड़कर बोली ॥ ७ ॥ पुण्यात्मा भार्गवकी मैं कन्या हूँ। मेरा अरजा नाम है, मैं उनकी बड़ी कन्या हूँ और आश्रममें रहती हूँ ॥ ८ ॥ राजन्,

मा मां स्पृश बलाद्राजंकन्या पितृवशा ह्यहम् । गुरुः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः ॥ ९ ॥
व्यसनं सुमहत्क्रुद्धः स ते दद्यान्महातपाः । यदि वान्यन्मया कार्यं धर्मदृष्टेन सत्पथा ॥१०॥
वरयस्व नरश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् । अन्यथा तु फलं तुभ्यं भवेद्घोराभिसंहितम् ॥११॥
क्रोधेन हि पिता मेऽसौ त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् । दास्यते चानवद्याङ्ग तव मां याचितः पिता ॥१२॥
एवं ब्रुवाणामरजां दण्डः कामवशं गतः । प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥१३॥
प्रसादं कुरु सुश्रोणि न कालं क्षेप्तुमर्हसि । त्वत्कृते हि मम प्राणा विदीर्यन्ते वरानने ॥१४॥
त्वां प्राप्य तु वधो वापि पापं वापि सुदारुणम् । भक्तं भजस्व मां भीरु भजमानं सुविह्वलम् ॥१५॥
एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोर्भ्यां प्राप्य बलाद्बली । विस्फुरन्तीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥१६॥
तमनर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम् । नगरं प्रययावाशु मधुमन्तमनुत्तमम् ॥१७॥
अरजापि रुदन्ती सा आश्रमस्याविदूरतः । प्रतीक्षते सुसंत्रस्ता पितरं देवसंनिभम् ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

स मुहूर्तादुपश्रुत्य देवर्षिरमितप्रभः । स्वमाश्रमं शिष्यवृतः क्षुधार्तः संन्यवर्तत ॥ १ ॥
सोऽपश्यदरजां दीनां रजसा समभिप्लुताम् । ज्योत्स्नामिव ग्रहग्रस्तां प्रत्यूषे न विराजतीम् ॥ २ ॥

बलपूर्वक मेरा स्पर्श न करो, क्योंकि मैं पिताके आधीन हूँ। मेरे पिता तुम्हारे गुरु हैं और तुम उनके शिष्य हो ॥ ९ ॥ क्रोध करनेपर वे तपस्वी तुमको बड़े दुःखमें डाल देंगे । यदि तुम मुझे चाहते हो, तो धर्मानुकूल सन्मार्गसे तुम महाद्युति मेरे पितासे मेरे लिये प्रार्थना करो, मुझसे विवाह करनेकी आज्ञा लो, यदि नहीं, दूसरी रीतिसे तुम चलोगे तो इसका फल तुम्हारे लिये बड़ा भयंकर होगा ॥ ११, १२ ॥ मेरे पिता क्रोध करके त्रिलोकको भी जला सकते हैं । सुन्दर, यदि मेरे पितासे मेरे लिये प्रार्थना करोगे तो वे अवश्य तुमको मेरा दान कर देंगे ॥ १२ ॥ राजासे अरजाने इस प्रकार कहा, पर वह मदोन्मत्त कामवश हो गया था, वह हाथ जोड़कर बोला ॥१३। सुश्रोणि, कृपा करो, देर न लगाओ, सुन्दरी तुम्हारे लिये मेरे प्राण जारहे हैं ॥१४॥ तुमको पानेपर मेरा वध हो या भयंकर पाप हो, चिन्ता नहीं मैं सह लूँगा । मैं तुम्हारा भक्त हूँ मुझे अङ्गीकार करो, भीरू, मैं व्याकुल हूँ, तुम्हें चाहता हूँ ॥ १५ । ऐसा कहकर उसने बलपूर्वक उस कन्याको पकड़ लिया और इच्छानुसार उसने उस कन्याके साथ बलात्कार किया ॥१६॥ भयंकर और दारुण वैसा अनर्थ करके दण्ड शीघ्रतापूर्वक अपने मधुमन्त नामक नगरमें चला गया ॥१७॥ अरजा भी आश्रमके थोड़ी दूरपर रोने लगी, घबड़ाई हुई वह देवतुल्य अपने पिताके आनेकी प्रतीक्षा करने लगी ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अस्सीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८० ॥

परम तेजस्वी देवर्षि भार्गव अरजाका समाचार सुनकर अपने शिष्यों समेत भूखे ही अपने आश्रमको लौट आए ॥ १ ॥ उन्होंने रजोयुक्त दीन अरजाको देखा जो कि उसी प्रकार निष्प्रभ हो रही थी जैसी कि

तस्य रोषः समभवत्क्षुधार्तस्य विशेषतः । निर्दहन्निव लोकांस्त्रीञ्शिष्यांश्चैतदुवाच ह ॥ ३ ॥
पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्याविदितात्मनः । विपत्तिं घोरसंकाशां क्रुद्धाग्निशिखामिव ॥ ४ ॥
क्षयोऽस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य महात्मनः । यः प्रदीप्तां हुताशस्य शिखां वै स्प्रष्टुमर्हेति ॥ ५ ॥
यस्मात्स कृतवान्पापमीदृशं घोरसंहितम् । तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६ ॥
सप्तरात्रेण राजासौ सपुत्रबलवाहनः । पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ ७ ॥
समन्ताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः । धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥ ८ ॥
सर्वसत्त्वानि यानीह स्थावराणि चराणि च । महता पांसुवर्षेण विलयं सर्वतोऽगमन् ॥ ९ ॥
दण्डस्य विषयो यावत्तावत्सर्वं समुच्छ्रयम् । पांसुवर्षमिवालक्ष्यं सप्तरात्रं भविष्यति ॥१०॥
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षस्तमाश्रमनिवासिनम् । जनं जनपदान्तेषु स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥११॥
श्रुत्वा तूशनसो वाक्यं सोऽश्रमावसथो जनः । निष्क्रान्तो विषयात्तस्मात्स्थानं चक्रेऽथ बाह्यतः ॥१२॥
स तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् । इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता ॥१३॥
इदं योजनपर्यन्तं सरः सुरुचिरप्रभम् । अरजे विज्वरा भुङ्क्ष्व कालश्चात्र प्रतीक्ष्यताम् ॥१४॥
त्वत्समीपे च ये सत्त्वा वासमेष्यन्ति तां निशाम् । अवध्याः पांसुवर्षेण ते भविष्यन्ति नित्यदा ॥१५॥
श्रुत्वा नियोगं ब्रह्मर्षेः सारजा भार्गवी तदा । तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥१६॥
इत्युक्त्वा भार्गवो वासमन्यत्र समकारयत् । तच्च राज्यं नरेन्द्रस्य सभृत्यबलवाहनम् ॥१७॥

प्रातःकालमें राहुग्रस्त चन्द्रमाकी चाँदनी होती है ॥ २ ॥ वे बुभुक्षित ऋषि अत्यन्त कुपित होकर अपने शिष्योंसे बोले—उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे तीनोंलोक जले जा रहे हों ॥ ३ ॥ अपनी योग्यता न समझनेवाले विरुद्धाचरण करनेवाले दण्डके ऊपर आनेवाली अग्निकी ज्वालाके समान सर्वनाश-कारिणी आपत्तिको देखो ॥ ४ ॥ यह दुष्ट जलती हुई अग्निकी शिखाको स्पर्श करनेवाले मनुष्यके समान इस दुर्बुद्धिका कुटुम्ब समेत नाश होनेवाला है ॥५॥ उसने ऐसा घोर पाप किया है जिसका फल वह नीच-बुद्धि अवश्य पाएगा ॥ ६ ॥ इन्द्र जलती हुई धूलकी वर्षा करके इसके राज्यको चारोंओर सौ-सौ योजन दूरतक जला डालेंगे ॥ ८ ॥ इतनी दूरीमें रहनेवाले सभी स्थावर-जङ्गम इस धूलिकी वर्षामें विलीन हो जाएँगे ॥ ९ ॥ सात दिन दण्डका सम्पूर्ण राज्य इस घोर धूलि वर्षाके कारण विलीन रहेगा जैसा कि धूलि प्रलयके समय संसार हो जाता है ॥ १० ॥ आँखें लाल किए हुए उन मुनिने इस प्रकार शाप देकर अपने आश्रमवासियोंसे कहा कि तुमलोग इस देशके बाहर चले जाओ ॥ ११ ॥ शुक्राचार्यके इस वचनको सुन-कर आश्रमनिवासीलोग उस देशको छोड़कर चले गए और राज्यकी सीमाके बाहर निवास करने लगे ॥ १२ ॥ मुनियोंसे ऐसा कहकर उन्होंने अरजासे कहा कि तू इसी जगह सावधान होकर रह ॥ १३ ॥ यह एक योजन लम्बा चौड़ा सरोवर है इसीके तटपर आनन्द कर और समयकी प्रतीक्षा कर ॥ १४ ॥ उस रात जो जीव तुम्हारे समीप रहेंगे वे कभी पांसुवर्षासे नष्ट नहीं होंगे ॥ १५ ॥ परम दुःखिता अरजा-ने पिताकी आज्ञाको स्वीकार कर लिया ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर भार्गव ऋषि दूसरे स्थानमें निवास करने लगे। इस अकट्ठ धर्मके करनेसे उन ब्रह्मवादी ऋषिके वचनके अनुसार विन्ध्य और शैवलके बीचका

सप्ताहाद्भस्मसाद्भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना । तस्यासौ दण्डविषयो विन्ध्यशैवलयोर्नृप ॥१८॥
शप्ते ब्रह्मर्षिणा तेन वैधर्म्ये सहिते कृते । ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते ॥१९॥
तपस्विनः स्थिता ह्यत्र जनस्थानमतोऽभवत् । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव ॥२०॥
संध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते । एते महर्षयः सर्वे पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥२१॥
कृतोदका नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासते । स तैर्ब्राह्मणमभ्यस्तं सहितैर्ब्रह्मवित्तमैः ।
रविरस्तं गतो राम गच्छोदकमुपस्पृश ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकाशीतितम सर्गः ॥८१॥

द्व्याशीतितमः सर्गः ८२

ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः संध्यामुपासितुम् । अपाक्रामत्सरः पुण्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ १ ॥
तत्रोदकमुपस्पृश्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम् । आश्रमं प्राविशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः ॥ २ ॥
तस्यागस्त्यो बहुगुणं कन्दमूलं तथौषधम् । शाल्यादीनि पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत् ॥ ३ ॥
स भुक्तवान्नरश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् । प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपाविशत् ॥ ४ ॥
प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाह्निकमरिंदमः । ऋषिं समुपचक्राम गमनाय रघूत्तमः ॥ ५ ॥
अभिवाद्याब्रवीद्रामो महर्षिं कुम्भसंभवम् । आपृच्छे स्वाश्रमं गन्तुं मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६ ॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनेन महात्मनः । द्रष्टुं चैवागमिष्यामि पावनार्थं महात्मनः ॥ ७ ॥

वह देश नौकर–चाकर समेत तथा फौज–फाँटे सहित सात दिनोंमें जलकर भस्म हो गया। तभीसे इस देश का नाम दण्डकारण्य हो गया ॥ १७ । १९ ॥ तपस्वीजनोंने यहाँ निवास किया इसलिए इसका नाम जनस्थान पड़ गया। हे राम, आपने मुझसे जो पूछा वह सब मैंने कह दिया ॥२०॥ हे वीर सन्ध्योपासन-का समय बीता जा रहा है। हे नरशार्दूल पूर्ण पात्र लिए हुए ये सब महर्षि भगवान् सूर्यकी उपासना कर रहे हैं। वेदके जाननेवाले ऋषियोंके वेदमंत्रोंके द्वारा की गई उपासनाको स्वीकार करते हुए सूर्य भगवान् अस्ताचलको चले गए। हे राम, आप भी जाकर सन्ध्योपासन कीजिए ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एक्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८१ ॥

महर्षि अगस्त्यकी आज्ञाके अनुसार राम सन्ध्योपासनके लिए अप्सराओंसे सेवित पवित्र सरोवर-पर गए ॥ १ ॥ वहाँ आचमन करके सायंकालकी सन्ध्या समाप्त कर अगस्त्य ऋषिके आश्रममें पहुँचे ॥ २ ॥ अगस्त्य ऋषिने बहु गुणकारी कन्द, मूल तथा चावल आदि पदार्थ रामको भोजनके लिये दिये ॥ ३ ॥ अमृतके समान उन पदार्थोंको खाकर वे बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए और रात्रिके समय वहीं सोये ॥ ४ ॥ वे सबेरे उठकर और प्रातःकालके दैनिक-कार्यको समाप्तकर महर्षि अगस्त्यसे चलनेका प्रस्ताव करने लगे ॥ ५ ॥ रामने अगस्त्य ऋषिको प्रणाम कर कहा—हे महाराज ! अब आप मुझे अपने आश्रममें जानेकी आज्ञा दें ॥ ६ ॥ आपके दर्शनसे मैं धन्य और अनुगृहीत हो गया हूँ, अपनी आत्माको

तथा वदति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् । उवाच परमप्रीतो धर्मनेत्रस्तपोधनः ॥ ८ ॥
अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् । पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥ ९ ॥
मुहूर्तमपि राम त्वां येऽनुपश्यन्ति केचन । पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते त्रिदिवेश्वरैः ॥१०॥
ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनो भुवि । हतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिनः ॥११॥
ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् । भुवि त्वां कथयन्तो हि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥१२॥
त्वं गच्छारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् । प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥१३॥
एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः । अभ्यवादयत प्राज्ञस्तमृषिं सत्यशीलिनम् ॥१४॥
अभिवाद्य ऋषिश्रेष्ठं तांश्च सर्वांस्तपोधनान् । अध्यारोहत्तदव्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् ॥१५॥
तं प्रयान्तं मुनिगणा आशीर्वादैः समन्ततः । अपूजयन्महेन्द्राभं सहस्राक्षमिवामराः ॥१६॥
स्वस्थः स ददृशे रामः पुष्पके हेमभूषिते । शशी मेघसमीपस्थो यथा जलधरागमे ॥१७॥
ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते पूज्यमानस्ततस्ततः । अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थो मध्यकक्षामवातरत् ॥१८॥
ततो विसृज्य रुचिरं पुष्पकं कामगामिनम् । विसर्जयित्वा गच्छेति स्वस्ति तेऽस्त्विति च प्रभुः ॥१९॥
कक्षान्तरस्थितं क्षिप्रं द्वास्थं रामोऽब्रवीद्वचः । लक्ष्मणं भरतं चैव गत्वा तौ लघुविक्रमौ ।
ममागमनमाख्याय शब्दापयत मा चिरम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

पवित्र करनेके लिये, आपके दर्शन करनेके लिये मैं पुनः आऊँगा ॥ ७ ॥ रामके ऐसे अद्भुत वचन सुनकर धर्म-प्रवर्तक परम तपस्वी अगस्त्य ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और बोले ॥ ८ ॥ हे राम ! आपके ये सुन्दर वचन हृदयमें आश्चर्य उत्पन्न करते हैं । हे रघुनन्दन ! आप ही सब भूतोंके पवित्र करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ हे राम ! एक क्षणके लिये भी जिन्हें आपके दर्शन मिल जाते हैं, वे पवित्र हो जाते हैं और वे देवताओंके भी पूज्य बन जाते हैं ॥ १० ॥ पृथवीके जो प्राणी आपको क्रूर-दृष्टिसे देखते हैं उन्हें यमका दण्ड मिलता है और शीघ्र ही यमलोकको चले जाते हैं ॥ ११ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप सब जीवोंके पवित्र करनेवाले हैं, और पृथवीके जीव आपकी कथा कहकर सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥१२॥ आप निश्चिन्त होकर जाइये, आपके मार्गमें किसी प्रकारका विघ्न और भय न हो । और धर्मसे राज्यका पालन करो, क्योंकि आप ही संसारको उत्तम गति देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ मुनिके इस प्रकार कहनेपर हाथ जोड़कर बुद्धिमान् रामने सत्य-निष्ठ उन ऋषिको प्रणाम किया ॥ १४ ॥ ऋषिको प्रणामकर अन्य तपस्वियोंका भी अभिवादन करके सुवर्ण-जटित पुष्पकविमानपर बैठ गये ॥ १५ ॥ उनको जाते हुए मुनि लोग चारोंओरसे आशीर्वाद देने लगे, जिस प्रकार देवतागण इन्द्रको सत्कार करते हैं ॥ १६ ॥ आकाशमें उड़ते हुए हेम-जटित पुष्पकविमानपर बैठे हुए वे उसी प्रकार शोभित होते थे जैसे वर्षा ऋतुमें मेघसे घिरे हुए चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं ॥ १७ ॥ तब मध्याह्नके समय भिन्न-भिन्न स्थानोंपर सत्कारको स्वीकार करते हुए वे अयोध्यामें पहुँचे ॥१८॥ वहाँ इच्छा-गामी पुष्पकविमानको छोड़ दिया और उससे बोले—कि तुम अब जाओ तुम्हारा कल्याण हो ॥ १९ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । द्वास्थः कुमारावाहूय राघवाय न्यवेदयत् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तावुभौ भरतलक्ष्मणौ । परिष्वज्य ततो रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥
कृतं मया यथातथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् । धर्मसेतुमथो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥ ३ ॥
अक्षयश्चाव्ययश्चैव धर्मसेतुर्मतो मम । धर्मप्रवचनं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥
युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम् । सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मस्तु शाश्वतः ॥ ५ ॥
इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः । सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत् ॥ ६ ॥
सोमश्च राजसूयेन इष्ट्वा धर्मेण धर्मवित् । प्राप्तश्च सर्वलोकेषु कीर्तिं स्थानं च शाश्वतम् ॥ ७ ॥
अस्मिन्नहनि यच्छ्रेयश्चिन्त्यतां तन्मया सह । हितं चायतियुक्तं च प्रयतौ वक्तुमर्हतः ॥ ८ ॥
श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वाक्यं वाक्यविशारदः । भरतः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥
त्वयि धर्मः परः साधो त्वयि सर्वा वसुंधरा । प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम ॥१०॥
महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः । निरीक्षन्ते महात्मानं लोकनाथं यथा वयम् ॥११॥
पुत्राश्च पितृवद्राजन्पश्यन्ति त्वां महाबल । पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव ॥१२॥

वहाँ महाबाहु रामने द्वारपालसे कहा—कि बड़े पराक्रमी लक्ष्मण और भरतसे मेरे आगमनका समाचार शीघ्र कहो ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बयासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८२ ॥

महाराजा रामके वचनको सुनकर द्वारपालने लक्ष्मण और भरतको बुलाकर उनके पास पहुँचा दिया ॥ १ ॥ रामचन्द्रने आये हुए भरत और लक्ष्मणका आलिंगनकर उनसे कहा ॥ २ ॥ मैंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणका कार्य यथावत् कर दिया । अब मैं एक राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ ॥३॥ अक्षय नित्य फलदेनेवाला, सब पापोंका नाश करनेवाला, राजसूय यज्ञ मुझे बहुत ही अच्छा लगता है ॥ ४ ॥ तुमलोग मुझे आत्माके समान प्यारे हो । इसलिये तुम लोगोंके साथ इस सर्वोत्तम राजसूय यज्ञको करना चाहता हूँ, इसके द्वारा अक्षयपुण्य प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले मित्रने विधि-पूर्वक राजसूय यज्ञ करके वरुणका पद पा लिया ॥ ६ ॥ धर्मज्ञ सोमने विधिपूर्वक राज-सूय यज्ञ करके विश्वभरमें नित्य-कीर्ति और स्थानको प्राप्त कर लिया ॥ ७ ॥ इस समय जो हम लोगोंके लिये हित-कर हो वह सोचो और सावधान होकर बताओ कि क्या हितकर और परिणाममें सुख देनेवाला होगा ॥ ८ ॥ रामचन्द्रके ऐसे वचन सुनकर बोलनेमें चतुर भरत हाथ जोड़कर बोले ॥ ९ ॥ हे महाराज ! आपमें ही धर्म स्थित है और आपकेही द्वारा इस पृथवीकी स्थिति है । आपका यश प्रसिद्ध है ॥ १० ॥ जिस प्रकार देवतालोग ब्रह्माको महापुरुष और संसारके नाथ समझते हैं, उसी प्रकार सब राजालोग और हमलोग आपको मानते हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार लड़के पिताको देखते हैं, उसी प्रकार राजालोग आपको देखते हैं । हे राघव ! आप पृथवीकी तथा सब प्राणियोंकी गति है ॥१२॥ हे राजन्, आप ऐसे यश-

स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्तासि कथं नृप । पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते ॥१३॥
पृथिव्यां ये च पुरुषा राजन्पौरुषमागताः । सर्वेषां भविता तत्र संक्षयः सर्वकोपजः ॥१४॥
सर्वां पुरुषशार्दूल गुणैरतुलविक्रम । पृथिवीं नार्हसे हन्तुं वशे हि तव वर्तते ॥१५॥
भरतस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वामृतमयं यथा । प्रहर्षमतुलं लेभे रामः सत्यपराक्रमः ॥१६॥
उवाच च शुभं वाक्यं कैकेय्यानन्दवर्धनम् । प्रीतोऽस्मि परितुष्टोऽस्मि तवाद्य वचनेऽनघ ॥१७॥
इदं वचनमक्लीबं त्वया धर्मसमागतम् । व्याहृतं पुरुषव्याघ्र पृथिव्याः परिपालनम् ॥१८॥
एष्यदस्मदभिप्रायाद्राजसूयात्क्रतूत्तमात् । निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन च ॥१९॥
लोकपीडाकरं कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः । बालानां तु शुभं वाक्यं ग्राह्यं लक्ष्मणपूर्वज ।
तस्माच्छृणोमि ते वाक्यं साधु युक्तं महाबल ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४

तथोक्तवति रामे तु भरते च महात्मनि । लक्ष्मणोऽथ शुभं वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥ १ ॥
अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम् । पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन ॥ २ ॥
श्रूयते हि पुरावृत्तं वासवे सुमहात्मनि । ब्रह्महत्यावृतः शक्रो हयमेधेन पावितः ॥ ३ ॥
पुरा किल महाबाहो देवासुरसमागमे । वृत्रो नाम महानासीद्दैतेयो लोकसंमतः ॥ ४ ॥

को कैसे कर सकते हैं जिसमें अनेकों राजकुटुम्बोंका विनाश हो जाय ॥ १३ ॥ पृथवीमें जितने पराक्रमी पुरुष हैं, उन सबका नाश हो जायगा ॥ १४ ॥ हे पुरुष शार्दूल ! सम्पूर्ण पृथवीको नष्ट कर देना आपको उचित नहीं हैं क्योंकि वह तो आपके वशमें है ॥ १५ ॥ अमृतके समान भरतके इस वचनको सुनकर सत्य-पराक्रम रामचन्द्र बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ भरतसे वे यह वचन बोले कि तुम्हारे इस वचनसे मैं बहुत ही प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ ॥ १७ ॥ तुमने यह बहुत ही उदार धर्म-संगत और पृथवीकी रक्षा करनेवाला वचन कहा है ॥ १८ ॥ सर्वोत्तम यज्ञ राज-सूयके करनेका विचार मेरे हृदयमें आ रहा था परन्तु तुम्हारे वचनसे मैं इस विचारको बदल देता हूँ ॥ १९ ॥ विद्वानोंको संसारको कष्ट देनेवाला काम न करना चाहिये । हे भरत ! बच्चोंकी भी अच्छी बातें ग्रहण करनी चाहिये । इसी कारण तुम्हारे अच्छे वचनको सुनकर मान लेता हूँ ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडका तीरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८३ ॥

रामचन्द्र और भरतके इस बात-चीतको सुनकर रामचन्द्रसे लक्ष्मणने कहा ॥ १ ॥ हे रघुनन्दन ! अश्वमेध यज्ञ सब पापोंका दूर करनेवाला है और सब यज्ञोंसे उत्तम है । उसका करना आपको अवश्य अच्छा लगेगा ॥ २ ॥ ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकालमें महापुरुष इन्द्रको जब हत्याका पाप लगा था तब इसी अश्वमेध यज्ञसे उनका पाप दूर हुआ था ॥ ३ ॥ प्राचीनकालमें जब देवताओं और

विस्तीर्णो योजनशतमुच्छ्रितस्त्रिगुणं ततः । अनुरागेण लोकांस्त्रीन्स्नेहात्पश्यति सर्वतः ॥ ५ ॥
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः । शशास पृथिवीं स्फीतां धर्मेण सुसमाहितः ॥ ६ ॥
तस्मिन्प्रशासति तदा सर्वकामदुघा मही । रसवन्ति प्रसूनानि मूलानि च फलानि च ॥ ७ ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सुसंपन्ना महात्मनः । स राज्यं तादृशं भुङ्क्ते स्फीतमद्भुतदर्शनम् ॥ ८ ॥
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपः कुर्यामनुत्तमम् । तपो हि परमं श्रेयः संमोहमितरत्सुखम् ॥ ९ ॥
स निक्षिप्य सुतं ज्येष्ठं पौरेषु मधुरेश्वरम् । तप उग्रं समातिष्ठत्तापयन्सर्वदेवताः ॥१०॥
तपस्तप्यति वृत्रे तु वासवः परमार्तवत् । विष्णुं समुपसंक्रम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥११॥
तपस्यता महाबाहो लोकाः सर्वे विनिर्जिताः । बलवान्स हि धर्मात्मा नैनं शक्ष्यामि शासितुम् ॥१२॥
यद्यसौ तप आतिष्ठेद्भूय एव सुरेश्वर । यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदस्य वशानुगाः ॥१३॥
तं चैनं परमोदारमुपेक्षसि महाबल । क्षणं हि न भवेद्वृत्रः क्रुद्धे त्वयि सुरेश्वर ॥१४॥
यदा हि प्रीतिसंयोगं त्वया विष्णो समागतः । तदाप्रभृति लोकानां नाथत्वमुपलब्धवान् ॥१५॥
स त्वं प्रसादं लोकानां कुरुष्व सुसमाहितः । त्वत्कृतेन हि सर्वं स्यात्प्रशान्तमरुजं जगत् ॥१६॥
इमे हि सर्वे विष्णो त्वां निरीक्षन्ते दिवौकसः । वृत्रघातेन महता तेषां साह्यं कुरुष्व ह ॥१७॥
त्वया हि नित्यशः साह्यं कृतमेषां महात्मनाम् । असह्यमिदमन्येषामगतीनां गतिर्भवान् ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

असुरोंमें मेल था, एक वृत्रासुर नामका सम्पूर्ण संसारका मान्य दैत्य था ॥ ४ ॥ वह तीन योजन चौड़ा था और नौ योजन लम्बा था और तीनों लोकोंको स्नेहकी दृष्टिसे देखता था ॥ ५ ॥ वह बड़ा धर्मज्ञ, कृतज्ञ और बुद्धिमान् था, और धर्मके साथ सावधान होकर पृथवीका शासन करता था ॥ ६ ॥ उसके राज्यकालमें पृथवी सब वस्तुओंको उत्पन्न करती थी, अनेक फूल फूलते थे और स्वादिष्ट फल, मूल उत्पन्न होते थे ॥ ७ ॥ उस समय पृथवी बिना जोते धान्य उत्पन्न करती थी और पूर्णरूपसे हरी-भरी रहती थी। ऐसे सुन्दर और अद्भुत राज्यका वह उपभोग करता था ॥ ८ ॥ उसके मनमें तप करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई, उसने विचारा कि तप परम कल्याण कर देनेवाला है अन्य वैषयिक सुख क्षणिक और विनाश करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ उसने अपने जेठे मधुरभाषी पुत्रको राज्यके संचालनके काममें नियुक्त कर सब देवताओंको प्रसन्न करता हुआ उग्रतप करने लगा ॥ १० ॥ वृत्रासुरके घोर तपको देखकर इन्द्र विष्णुके पास जाकर बड़ी दीनताके साथ बोले—॥ ११ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुरने तप करके सब लोकोंको जीत लिया है वह बलवान् और धर्मात्मा है इसलिये मैं उसका शासन नहीं कर सकता ॥ १२ ॥ हे सुरेश्वर ! यदि वह और तप करेगा तो सभीलोग उसके वशमें हो जायँगे ॥ १३ ॥ हे महापराक्रम ! अपनी उदारताके कारण आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं यदि आप क्रुद्ध हो जायँ तो वह क्षण भर भी नहीं रह सकता ॥ १४ ॥ हे विष्णो ! जिस दिनसे आपका मेरे ऊपर प्रेम हुआ है उसी दिनसे मैं लोकनाथ बन गया हूँ ॥ १५ ॥ आप सावधान होकर लोकोंके ऊपर प्रसाद करें, आपके द्वारा की गई रक्षासे सम्पूर्ण संसार शान्त और दुःखरहित हो सकता है ॥१६॥ हे विष्णो ! सभी देवता आपकी कृपाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, वृत्रासुरको मारकर

पञ्चाशीतितमः सर्गः ८५

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा शत्रुनिबर्हणः । वृत्रघातमशेषेण कथयेत्याह सुव्रत ॥ १ ॥
राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धनः । भूय एव कथां दिव्यां कथयामास सुव्रतः ॥ २ ॥
सहस्राक्षवचः श्रुत्वा सर्वेषां च दिवौकसाम् । विष्णुर्देवानुवाचेदं सर्वानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ३ ॥
पूर्वं सौहृदबद्धोऽस्मि वृत्रस्येह महात्मनः । तेन युष्मत्प्रियार्थं हि नाहं हन्मि महासुरम् ॥ ४ ॥
अवश्यं करणीयं च भवतां सुखमुत्तमम् । तस्मादुपायमाख्यास्ये सहस्राक्षो वधिष्यति ॥ ५ ॥
त्रेधाभूतं करिष्यामि आत्मानं सुरसत्तमाः । तेन वृत्रं सहस्राक्षो वधिष्यति न संशयः ॥ ६ ॥
एकांशो वासवं यातु द्वितीयो वज्रमेव तु । तृतीयो भूतलं यातु तदा वृत्रं हनिष्यति ॥ ७ ॥
तथा ब्रुवति देवेशे देवा वाक्यमथाब्रुवन् । एवमेतन्न संदेहो यथा वदसि दैत्यहन् ॥ ८ ॥
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामो वृत्रासुरवधैषिणः । भजस्व परमोदार वासवं स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥
ततः सर्वे महात्मानः सहस्राक्षपुरोगमाः । तदारण्यमुपाक्रामन्यत्र वृत्रो महासुरः ॥ १० ॥
ते पश्यंस्तेजसा भूतं तपन्तमसुरोत्तमम् । पिबन्तमिव लोकांस्त्रीन्निर्दहन्तमिवाम्बरम् ॥ ११ ॥
दृष्ट्वैव चासुरश्रेष्ठं देवास्त्रासमुपागमन् । कथमेनं वधिष्यामः कथं न स्यात्पराजयः ॥ १२ ॥

उनकी सहायता आप कीजिये ॥ १७ । आपने इन महापुरुषोंकी सदा रक्षा की है । दूसरोंके लिये यह बात बहुत ही कठिन है । जिनको कहीं गति न मिलती हो उनके आप गति हैं ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौरासीवाँ सर्ग समाप्त । ८४ ॥

लक्ष्मणके इस वचनको सुनकर शत्रु निहन्ता रामचन्द्रने कहा कि हे सुव्रत, वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा कहो ॥ १ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने भगवानके ऐसे वचन सुनकर उस पवित्र कथाका कहना पुनः प्रारम्भ किया ॥ २ ॥ वे कहने लगे कि इन्द्रके तथा अन्य सब देवताओंके वचनको सुनकर भगवान् विष्णु इन्द्रादि देवोंसे बोले ॥३। प्राचीनकालमें महापुरुष वृत्रासुरसे मेरा बड़ा प्रेम था, इसलिये आप लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये मैं वृत्रासुरको नहीं मार सकता ॥ अब आप लोगोंके सुखके लिये यह अवश्य ही करना है, इसलिये मैं उसके वधका उपाय बताता हूँ ॥ ५ । हे देवगण ! मैं अपनी तेजोमूर्तिको तीन हिस्सोंमें बाटूँगा उससे वृत्रासुरको इन्द्र अवश्य मारेंगे ॥६॥ मेरी मूर्तिका एक अंश इन्द्रमें जायगा । दूसरा वज्रमें जायगा और तीसरा पृथवीपर जायगा और तब वृत्रासुरका वध होगा ॥ ७ ॥ विष्णुके ऐसे वचन सुनकर देवताओंने कहा—हे दैत्यारि ! आपने जो कुछ कहा है उसके द्वारा कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी ॥८॥ आपका कल्याण हो । अब हमलोग जाहते हैं और वृत्रासुरके वधकी हम लोगोंको उत्कट इच्छा है । हे भगवन् ! आप अपने तेजसे इन्द्रमें प्रवेश करें ॥ ९ ॥ तब वे इन्द्रादि देवता उस वनमें पहुँचे, जहाँ वृत्रासुर तपस्या कर रहा था ॥ १० ॥ उन्होंने वहाँ जाकर तपस्या करते हुए वृत्रासुरको देखा जो कि अपने तेजसे तीनों लोकोंको पीस रहा था और आकाशको जला रहा था ॥ ११ ॥ उस महादैत्यको देखते ही सब देवता भयभीत हो गये और सोचने लगे कि यह कैसे मारा जायगा, कहीं हम लोगोंका पराजय न हो जाय ॥ १२ ॥ देवतालोग

तेषां चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरंदरः। वज्रं प्रगृह्य पाणिभ्यां प्राहिणोद्वृत्रमूर्धनि ॥१३॥
कालाग्निनेव घोरेण दीप्तेनेव महार्चिषा। पतता वृत्रशिरसा जगत्त्रासमुपागमत् ॥१४॥
असंभाव्यं वधं तस्य वृत्रस्य विबुधाधिपः। चिन्तयानो जगामाशु लोकस्यान्तं महायशाः ॥१५॥
तमिन्द्रं ब्रह्महत्याशु गच्छन्तमनुगच्छति। अपतच्चास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥१६॥
हतारयः प्रनष्टेन्द्रा देवाः साग्निपुरोगमाः। विष्णुं त्रिभुवनेशानं मुहुर्मुहुरपूजयन् ॥१७॥
त्वं गतिः परमेशान पूर्वजो जगतः पिता। रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥१८॥
हतश्चायं त्वया वृत्रो ब्रह्महत्या च वासवम्। बाधते सुरशार्दूल मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥१९॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत्। मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ॥२०॥
पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः। पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः ॥२१॥
एवं संदिश्य तां वाणीं देवानां चामृतोपमाम्। जगाम विष्णुर्देवेशः स्तूयमानस्त्रिविष्टपम् ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६

तदा वृत्रवधं सर्वमखिलेन स लक्ष्मणः। कथयित्वा नरश्रेष्ठः कथाशेषं प्रचक्रमे ॥ १ ॥
ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे। ब्रह्महत्यावृतः शक्रः संज्ञां लेभे न वृत्रहा ॥ २ ॥

ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरके मस्तकपर प्रहार किया ॥ १३ ॥ घोर कालाग्निके समान चमकते हुए वज्रके वृत्रासुरके मस्तकपर गिरने ही संसारमें हाहाकार मच गया ॥ १४ ॥ इन्द्र वृत्रासुरके असम्भव वधको करके अत्यन्त चिन्तित होते हुए लोकके अन्त प्रदेशको चले गये ॥१५॥ आगे-आगे इन्द्र जाते थे और पीछे-पीछे ब्रह्म-हत्या जा रही थी, उनके शरीरमें ब्रह्म-हत्याने प्रवेश कर लिया और वे अत्यन्त दुःखित हुए ॥ १६ ॥ शत्रुके मारे जानेपर, इन्द्रके भाग जानेपर, अग्नि आदिक देवता त्रिभुवन नाथ भगवान विष्णुकी बार-बार स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ वे कहने लगे कि हे परमेश्वर ! आप संसारकी सृष्टि करनेवाले हैं और सब भूतोंकी रक्षा करनेके लिये आपने विष्णुका रूप धारण किया है ॥ १८ ॥ आपके ही बलसे वृत्रासुरका वध हुआ। हे भगवन ! ब्रह्म-हत्या-पीड़ित इन्द्रको मुक्त होनेका मार्ग कृपाकर बतलाइये ॥ १९ ॥ देवताओंके वचनको सुनकर विष्णुने कहा कि इन्द्र मेरी पूजा कर मैं पापसे मुक्त कर दूँगा ॥ २० ॥ इन्द्र पवित्र अश्वमेधयज्ञ करके फिर देवेन्द्रके पदको प्राप्त हो जायगा और तब किसी प्रकारका भय न रह जायगा ॥ २१ ॥ देवताओंको ऐसी अमृतके समान वाणी सुनाकर भगवान् विष्णु अपने लोकको चले गये और देवतालोग उनकी स्तुति करते रह गये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका पचासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८५ ॥

लक्ष्मण वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा सुनाकर कथाका अन्तिम भाग सुनाने लगे ॥१॥ उन्होंने कहा— कि देवताओंको भी डरा देनेवाले महापराक्रमी वृत्रासुरके मारे जानेपर ब्रह्म-हत्यासे घिरेहुए इन्द्रका चित्त

सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः । कालं तत्रावसत्कंचिद्वेष्टमान इवोरगः ॥ ३ ॥
अथ नष्टे सहस्राक्षे उद्विग्नमभवज्जगत् । भूमिश्च ध्वस्तसंकाशा निःस्नेहा शुष्ककानना ॥ ४ ॥
निःस्रोतसस्ते सर्वे तु ह्रदाश्च सरितस्तथा । संक्षोभश्चैव सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ॥ ५ ॥
क्षीयमाणे तु लोकेऽस्मिन्संभ्रान्तमनसः सुराः । यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तं यज्ञं समुपानयन् ॥ ६ ॥
ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः । तं देशं समुपाजग्मुर्यत्रेन्द्रो भयमोहितः ॥ ७ ॥
ते तु दृष्ट्वा सहस्राक्षमावृतं ब्रह्महत्यया । तं पुरस्कृत्य देवेशमश्वमेधं प्रचक्रिरे ॥ ८ ॥
ततोऽश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः । ववृते ब्रह्महत्यायाः पावनार्थं नरेश्वर ॥ ९ ॥
ततो यज्ञे समाप्ते तु ब्रह्महत्या महात्मनः । अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं क मे स्थानं विधास्यथ ॥१०॥
ते तामूचुस्ततो देवास्तुष्टाः प्रीतिसमन्विताः । चतुर्धा विभजात्मानमात्मनैव दुरासदे ॥११॥
देवानां भाषितं श्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् । संदधौ स्थानमन्यत्र वरयामास दुर्वसा ॥१२॥
एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै । चतुरो वार्षिकान्मासान्दर्पघ्नी कामचारिणी ॥१३॥
भूम्यामहं सर्वकालमेकेनांशेन सर्वदा । वसिष्यामि न संदेहः सत्येनैतद्ब्रवीमि वः ॥१४॥
योऽयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु । त्रिरात्रं दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी ॥१५॥
हन्तारो ब्राह्मणान्ये तु मृषापूर्वमदूषकान् । तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः ॥१६॥
प्रत्यूचुस्तां ततो देवा यथा वदसि दुर्वसे । तथा भवतु तत्सर्वं साधयस्व यदीप्सितम् ॥१७॥

शान्त नहीं हुआ ॥ २ ॥ एक बंधे हुए सर्पके समान ज्ञान और चैतन्यसे रहित होकर लोकोंके अन्तमें जाकर उन्होंने कुछ दिनतक निवास किया ॥ ३ ॥ इन्द्रके न रहनेपर संसार उद्विग्न हो गया, पृथवीकी शोभा नष्ट हो गई और जलके अभावसे सब कानन सूख गये ॥ ४ ॥ सभी नदियाँ और सरोवर निर्जल हो गये और वृष्टिके न होनेसे जीवोंमें बड़ा क्षोभ हो गया ॥ ५ ॥ इस प्रकार संसारको नष्ट होते देख देवतालोग बहुत घबड़ाये और विष्णुने जो यज्ञ पहले बताया था उसे करनेके लिए तैयार हुए ॥ ६ ॥ तब वृहस्पति समेत सब देवता तथा अनेक ऋषि उस स्थानपर गये जहाँ कि इन्द्र भयके मारे छिपे हुए थे ॥ ७ ॥ वे लोग ब्रह्म-हत्यासे पीड़ित इन्द्रको देखकर उन्हें आगेकर अश्वमेध यज्ञ करने लगे ॥ ८ ॥ हे महाराज ! तब महात्मा इन्द्रके ब्रह्म-हत्याके दूर करनेके लिये अश्वमेधका महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ॥ ९ ॥ यज्ञके समाप्त हो जानेपर इन्द्रकी ब्रह्म-हत्या देवताओंके पास जाकर बोली—कि अब मैं कहाँ रहूँ ॥१०॥ देवतालोग सन्तुष्ट होकर बड़े प्रेमसे उससे बोले—कि तुम अपने चार हिस्से कर डालो ॥ ११ ॥ देवताओंके वचनको सुनकर ब्रह्म-हत्याने अपने चार हिस्से कर डाले और प्रार्थना करने लगी कि मुझे निवास करनेके लिये दूसरा स्थान बताया जाय ॥ १२ ॥ चार महीनेतक जल-पूर्ण नदियोंमें पापियोंके अहंकारको दूर करती हुई एक अंशसे निवास करूँगी ॥१३॥ एक अंशसे मैं सदा पृथवीमें निवास करूँगी । यह मैं सत्य कहती हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ मेरा तीसरा अंश युवती स्त्रियोंमें रहेगा जिसके कारण स्त्रियोंके अहंकारका खण्डन होगा ॥ १५ ॥ जो पवित्र ब्राह्मणोंको व्यर्थमें मारेंगे उनमें मेरा चौथा अंश रहेगा ॥ १६ ॥ देवताओंने ब्रह्म-हत्याको उत्तर दिया कि जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो ॥ १७ ॥

ततः प्रीत्यान्विता देवाः सहस्राक्षं ववन्दिरे । विज्वरः पूतपाप्मा च वासवः समपद्यत ॥१८॥
प्रशान्तं च जगत्सर्वं सहस्राक्षे प्रतिष्ठिते । यज्ञं चाद्भुतसंकाशं तदा शक्रोऽभ्यपूजयत् ॥१९॥
ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रसादो रघुनन्दन । यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव ॥२०॥
इति लक्ष्मणवाक्यमुत्तमं नृपतिरतीव मनोहरं महात्मा ।
परितोषमवाप हृष्टचेताः स निशम्येन्द्रसमानविक्रमौजाः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणेनोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः । प्रत्युवाच महातेजाः प्रहसन्राघवो वचः ॥ १ ॥
एवमेव नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण । वृत्रघातमशेषेण वाजिमेधफलं च यत् ॥ २ ॥
श्रूयते हि पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः । पुत्रो बाह्लीश्वरः श्रीमानिलो नाम सुधार्मिकः ॥ ३ ॥
स राजा पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा महायशाः । राज्यं चैव नरव्याघ्र पुत्रवत्पर्यपालयत् ॥ ४ ॥
सुरैश्च परमोदारैर्दैतेयैश्च महाधनैः । नागराक्षसगन्धर्वैर्यक्षैश्च सुमहात्मभिः ॥ ५ ॥
पूज्यते नित्यशः सौम्य भयार्तै रघुनन्दन । अबिभ्यंश्च त्रयो लोकाः सरोषस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
स राजा तादृशोऽप्यासीद्धर्मे वीर्ये च निष्ठितः । बुद्ध्या च परमोदारो बाह्लीकेशो महायशाः ॥ ७ ॥
स प्रचक्रे महाबाहुर्मृगयां रुचिरे वने । चैत्रे मनोरमे मासे सभृत्यबलवाहनः ॥ ८ ॥

तब देवता लोगोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्द्रको प्रणाम किया । और इन्द्र पाप और सन्तापरहित हो गये ॥ १८ ॥ जब सम्पूर्ण संसारमें शान्ति हो गई और इन्द्र अपने पदपर विराजमान हो गये, तो उन्होंने परम देदीप्यमान यज्ञकी पूजा की ॥ १९ ॥ हे रघुनन्दन ! अश्वमेधका ऐसा उत्तम प्रभाव है । हे महाभाग ! आप अश्वमेध यज्ञ करें ॥ २० ॥ लक्ष्मणके ऐसे उत्तम और मनोहर वचनको सुनकर इन्द्रके समान पराक्रमवाले महात्मा रामचन्द्र चित्तमें प्रसन्नहोकर अति सन्तुष्ट हुए ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छिआसीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८६ ॥
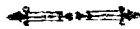
भाषणमें प्रवीण महातेजस्वी रामचन्द्रने लक्ष्मणके ऐसे वचनको सुनकर हँसते हुए कहा— ॥ १ ॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ! वृत्रासुरके वधके विषयमें और अश्वमेध यज्ञके विषयमें तुम जो कहते हो वो बहुत ठीक है ॥२॥ ऐसा सुना जाता है कि प्रजापति कर्दमके पुत्र वाह्लीक देशके राजा श्रीमान इल बहुत धार्मिक थे ॥ ३ ॥ वे महायशस्वी राजा सब पृथ्वीको अपने वशमें करके प्रजाका पुत्रके समान पालन करते थे ॥ ४ ॥ देवता, राक्षस-नाग-गन्धर्व, यक्ष मारे भयके उनकी सदा पूजा किया करते थे और उन राजाके क्रुद्ध होनेपर तीनोंलोक भयके मारे काँपते थे ॥ ५, ६ ॥ वे वाह्लीक देशके राजा बड़े धर्मात्मा पराक्रमी बुद्धिमान और उदार थे ॥ ७ ॥ वे एक दिन मनोहर चैत्रके महीनेमें अपनी सेना समेत एक सुन्दर वनमें मृगयाके लिये गये ॥ ८ ॥ उन्होंने वनमें सैकड़ों, हजारों, वन-पशुओंको मारा पर तो भी उनकी तृप्ति नहीं

मजघ्ने स नृपोऽरण्ये मृगाञ्शतसहस्रशः। हत्यैव तृप्तिर्नाभूच्च राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ९ ॥
नानामृगाणामयुतं वध्यमानं महात्मना। यत्र जातो महासेनस्तं देशमुपचक्रमे ॥१०॥
तस्मिन्प्रदेशे देवेश शैलराजसुतां हरः। रमयामास दुर्धर्षः सर्वैरनुचरैः सह ॥११॥
कृत्वा स्त्रीरूपमात्मानमुमेशो गोपतिध्वजः। देव्याः प्रियचिकीर्षुः संस्तस्मिन्पर्वतनिर्झरे ॥१२॥
यत्र यत्र वनोद्देशे सत्त्वाः पुरुषवादिनः। वृक्षाः पुरुषनामानस्ते सर्वे स्त्रीजनाभवन् ॥१३॥
यच्च किंचन तत्सर्वं नारीसंज्ञं बभूव ह। एतस्मिन्नन्तरे राजा स इलः कर्दमात्मजः ॥१४॥
निघ्नन्मृगसहस्राणि तं देशमुपचक्रमे। स दृष्ट्वा स्त्रीकृतं सर्वं सव्यालमृगपक्षिणम् ॥१५॥
आत्मानं स्त्रीकृतं चैव सानुगं रघुनन्दन। तस्य दुःखं महच्चासीद्दृष्ट्वात्मानं तथागतम् ॥१६॥
उमापतेश्च तत्कर्म ज्ञात्वा त्रासमुपागमत्। ततो देवं महात्मानं शितिकण्ठं कपर्दिनम् ॥१७॥
जगाम शरणं राजा सभृत्यबलवाहनः। ततः प्रहस्य वरदः सह देव्या महेश्वरः ॥१८॥
प्रजापतिसुतं वाक्यमुवाच वरदः स्वयम्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे कार्दमेय महाबल ॥१९॥
पुरुषत्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत। ततः स राजा शोकार्तः प्रत्याख्यातो महात्मना ॥२०॥
स्त्रीभूतोऽसौ न जग्राह वरमन्यं सुरोत्तमात्। ततः शोकेन महता शैलराजसुतां नृपः ॥२१॥
प्रणिपत्य उमां देवीं सर्वेणैवान्तरात्मना। ईशे वराणां वरदे लोकानामसि भामिनि ॥२२॥
अमोघदर्शने देवि भज सौम्येन चक्षुषा। हृद्गतं तस्य राजर्षेर्विज्ञाय हरसंनिधौ ॥२३॥

हुई ॥ ९ ॥ हजारों मृगोंको मारते हुए वे उस वनमें पहुँचे, जहाँ स्कन्द उत्पन्न हुये थे ॥ १० ॥ उस वन में शिवजी पार्वतीके सहित क्रीड़ा कर रहे थे ॥ ११ ॥ महादेवजी स्त्रीका रूप धारण करके पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये उस रम्य पर्वत, निर्झरसे सुशोभित वनमें आनन्दोपभोग करने लगे ॥ १२ ॥ उस वनमें जितने पुरुष वाचक जन्तु थे, वे सब स्त्री-वाचक हो गये, और जितने पुरुष-वाचक वृक्ष थे। वे सब स्त्री-वाचक हो गये ॥ १३ ॥ उस वनमें जो कुछ भी था, वह सब स्त्री-वाचक हो गया, इसी बीच कर्दमके पुत्र राजा इल हजारों जन्तुओंको मारते हुए उसी वनमें पहुँच गये और वहाँपर सभी पशु-पक्षियोंको स्त्री भावमें प्राप्त देखकर बहुत दुःखी हुए ॥ १४, १५ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस समय उन्होंने अपनेको स्त्री भावमें प्राप्त देखा, तब उनके दुःखका ठिकाना न रहा उनके नौकर-चाकर तथा सैनिक सभी स्त्री-भावको प्राप्त हो गये थे ॥ १६ ॥ यह जानकर कि यह शिवजीके शापसे हुआ है उन्हें बहुत ही भय हुआ और वे अपने अनुचरों समेत आशुतोष भगवान् शंकरकी शरण गये। भगवान् शंकर कर्दमके पुत्र इलसे हँसते हुए बोले– कि हे राजर्षि ! उठो !! ॥ १७-१९ ॥ हे सौम्य ! पुरुषत्वको छोड़कर और जो इच्छा हो वर माँग लो, श्री महादेवजीके मुखसे पुरुषत्वकी प्राप्तिकी सम्भावना न देखकर वे बहुत दुःखी हुए ॥ २० ॥ वे स्त्री-भावको प्राप्त हो गये थे और दूसरा वर उन्हें अभीष्ट न था, शोकाकुल होकर उन्होंने सच्चे हृदयसे पार्वतीजीको प्रणामकर स्तुति की, कि हे देवि ! आप सम्पूर्ण संसारको वर देनेवाली हैं आपके दर्शनका फल अवश्य प्राप्त होता है इसलिये आप मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि करें। राजर्षिके हृदयके भावको जानकर रुद्रकी प्रिया पार्वतीने यह मनोहर वचन कहा—कि आधे वरके देनेवाले भगवान् शंकर हैं। और आधे वरको देनेवाली

प्रत्युवाच शुभं वाक्यं देवि रुद्रस्य संमता। अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तव ह्यहम् ॥२४॥
तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि। तदद्भुततरं श्रुत्वा देव्या वरमनुत्तमम् ॥२५॥
संप्रहृष्टमना भूत्वा राजा वाक्यमथाब्रवीत्। यदि देवि प्रसन्ना मे रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२६॥
मासं स्त्रीत्वमुपासित्वा मासं स्यां पुरुषः पुनः। ईप्सितं तस्य विज्ञाय देवी सुरुचिरानना ॥२७॥
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमेवमेव भविष्यति। राजन्पुरुषभूतस्त्वं स्त्रीभावं न स्मरिष्यसि ॥२८॥
स्त्रीभूतश्च परं मासं न स्मरिष्यसि पौरुषम्। एवं स राजा पुरुषो मासं भूत्वाथ कार्दमिः।
त्रैलोक्यसुन्दरी नारी मासमेकमिलाभवत् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

तां कथामैलसंबद्धां रामेण समुदीरिताम्। लक्ष्मणो भरतश्चैव श्रुत्वा परमविस्मितौ ॥ १ ॥
तौ रामं प्राञ्जली भूत्वा तस्य राज्ञो महात्मनः। विस्तरं तस्य भावस्य तदा प्रपच्छतुः पुनः ॥ २ ॥
कथं स राजा स्त्रीभूतो वर्तयामास दुर्गतिः। पुरुषः स यदा भूतः कां वृत्तिं वर्तयत्यसौ ॥ ३ ॥
तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम्। कथयामास काकुत्स्थस्तस्य राज्ञो यथागमम् ॥ ४ ॥
तमेव प्रथमं मासं स्त्री भूत्वा लोकसुन्दरी। ताभिः परिवृता स्त्रीभिर्येऽस्य पूर्वं पदानुगाः ॥ ५ ॥
तत्काननं विगाह्याशु विजह्रे लोकसुन्दरी। द्रुमगुल्मलताकीर्णं पद्भ्यां पद्मदलेक्षणा ॥ ६ ॥

मैं हूँ ॥ २१, २४ ॥ इसलिये स्त्रीत्व और पुरुषत्वमेंसे जो चाहो आधा ले लो। देवीके उस अद्भुत और सर्वोत्तम वरको सुनकर राजा बहुत प्रसन्न होकर पार्वतीसे बोले कि हे देवि! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो यह वर दें कि मैं एक महीने तक स्त्री रहूँ, और एक महीने तक पुरुष। उन दर्शनीय देवीने राजाके मनकी बात जानकर कहा—॥ २५, २७ ॥ हे राजन! जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा जब तुम पुरुष रहोगे; तब स्त्री भावका स्मरण नहीं करोगे और जिस महीनेमें तुम स्त्री रहोगे उस समय पुरुषत्वका स्मरण नहीं करोगे। इस प्रकार कर्दमके पुत्र वे राजा इल एक महीना पुरुष रहते और एक महीना परम सुंदरी स्त्री बन जाते। और तब उनका नाम इला हो जाता ॥ २८, २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सतासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८७ ॥

रामवर्णित राजा इलकी कथा सुनकर भरत और लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए ॥ १ ॥ उन दोनोंने हाथ जोड़कर महात्मा इलके स्त्री-पुरुष होनेके सम्बन्धकी कथा विस्तार-पूर्वक कहनेके लिए रामचन्द्रसे प्रश्न किया ॥ २ ॥ दुःखी उस राजाका स्त्री होनेपर कैसा व्यवहार रहता था, और जब वे पुरुष होते थे तब कैसा व्यवहार करते थे ॥ ३ ॥ उन दोनोंके कौतूहलयुक्त वचन सुनकर रामचन्द्रजीने जैसी कथा इलकी सुनी थी, वह कही ॥ ४ ॥ पहले महीनेमें इल सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी स्त्री हुए और अपने पहलेके साथियोंके साथ, जो स्त्री हो गये थे वे वृक्षलता गुल्मसे पूर्ण वनमें जाकर विहार करने लगे। वाहनोंको छोड़कर कमललोचना

वाहनानि च सर्वाणि संत्यक्त्वा वै समन्ततः। पर्वताभोगविवरे तस्मिन्रेमे इला तदा ॥ ७ ॥
अथ तस्मिन्वनोद्देशे पर्वतस्याविदूरतः। सरः सुरुचिरप्रख्यं नानापक्षिगणायुतम् ॥ ८ ॥
ददर्श सा इला तस्मिन्बुधं सोमसुतं तदा। ज्वलन्तं स्वेन वपुषा पूर्णं सोममिवोदितम् ॥ ९ ॥
तपन्तं च तपस्तीव्रमम्भोमध्ये दुरासदम्। यशस्करं कामकरं कारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥१०॥
सा तं जलाशयं सर्वं क्षोभयामास विस्मिता। सह तैः पूर्वपुरुषैः स्त्रीभूतैं रघुनन्दन ॥११॥
बुधस्तु तां समीक्ष्यैव कामबाणवशंगतः। नोपलेभे तदात्मानं स चचाल तदाम्भसि ॥१२॥
इलां निरीक्षमाणस्तु त्रैलोक्यादधिकां शुभाम्। चिन्तां समभ्यतिक्रामत्कान्वियं देवताधिका ॥१३॥
न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्सरःसु च। दृष्टपूर्वा मया काचिद्रूपेणानेन शोभिता ॥१४॥
सदृशीयं मम भवेद्यदि नान्यपरिग्रहः। इति बुद्धिं समास्थाय जलात्कूलमुपागमत् ॥१५॥
आश्रमं समुपागम्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः। शब्दापयत धर्मात्मा ताश्चैनं च ववन्दिरे ॥१६॥
स ताः पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यैषा लोकसुन्दरी। किमर्थमागता चैव सर्वमाख्यात मा चिरम् ॥१७॥
शुभं तु तस्य तद्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम्। श्रुत्वा स्त्रियश्च ताः सर्वा ऊचुर्मधुरया गिरा ॥१८॥
अस्माकमेषा सुश्रोणी प्रभुत्वे वर्तते सदा। अपतिः काननान्तेषु सहास्माभिश्चरत्यसौ ॥१९॥
तद्वाक्यमाव्यक्तपदं तासां स्त्रीणां निशम्य च। विद्यामावर्तनीं पुण्यामावर्तयति स द्विजः ॥२०॥
सोऽर्थं विदित्वा सकलं तस्य राज्ञो यथा तथा। सर्वा एव स्त्रियस्ताश्च बभाषे मुनिपुंगवः ॥२१॥

इला पैदल घूमती हुई पर्वतकी कन्दरामें जाकर आनन्द करने लगी ॥ ५, ७ ॥ उसी वनमें पर्वतके थोड़ी दूरपर एक सुन्दर तालाब था, वहाँ अनेक पक्षी रहते थे ॥ ८ ॥ इलाने वहाँ चन्द्रमाके पुत्र बुधको तपस्या करते देखा, वे शरीरके तेजसे चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥९॥ जलके बीचमें उग्र तपस्या कर रहे थे। वे यशस्वी दयालु और रामभक्त थे ॥१०॥ इलाने पहलेके पुरुष और इस समयकी स्त्री अपने साथियोंके साथ उठ जलाशयके जलको गँदला कर दिया ॥११॥ उसको देखते ही बुध कामवश हो गए उन्हें अपना ध्यान न रहा, अपनेको भूल गये और वहीं जलमें इधर-उधर घूमने लगे ॥१२॥ वे त्रिलोकमें सबसे अधिक सुन्दरी इलाको देखकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह देव सुन्दरियोंसे भी अधिक सुन्दरी कौन है ॥ १३ ॥ ऐसा सौन्दर्य मैंने देवियों, नागाङ्गनाओं, असुरियों और अप्सराओंमें पहले नहीं देखा था ॥ १४ ॥ यदि यह किसी दूसरेकी स्त्री न होगी तो मेरे योग्य है, अर्थात् मेरी स्त्री बन सकती है, ऐसा सोचकर वह तीरपर आये ॥ १५ ॥ अपने आश्रममें आकर धर्मात्मा बुधने उन सुन्दरियोंको बुलाया, आकर उन लोगोंने इन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥ बुधने पूछा, यह सुन्दरी किसकी है, तुमलोग यहाँ क्यों आयी हो, यह सब मुझसे शीघ्र कहो ॥ १७ ॥ उसके मधुराक्षर मधुर वचन सुनकर वे सब स्त्रियाँ मधुर स्वरसे बोलीं ॥ १८ ॥ यह स्त्री हम लोगोंकी स्वामिनी है, इसका कोई पति नहीं है। हम लोगोंके साथ यह वन भ्रमण करनेको निकली है ॥ १९ ॥ उन स्त्रियोंकी बातें साफ-साफ बुधकी समझमें न आयी, अतएव वे उस विद्याका स्मरण करने लगे जिससे अज्ञात विषयका ज्ञान होता है ॥ २० ॥ उस विद्याके द्वारा बुधने उस राजाकी सब बातें जानलीं, पुनः वे उन समस्त स्त्रियोंसे बोले ॥ २१ ॥ आप

अत्र किंपुरुषीभूत्वा शैलरोधसि वत्स्यथ । आवासस्तु गिरावस्मिञ्शीघ्रमेव विधीयताम् ॥२२॥
मूलपत्रफलैः सर्वा वर्तयिष्यथ नित्यदा । स्त्रियः किंपुरुषान्नाम भर्तृन्समुपलप्स्यथ ॥२३॥
ताः श्रुत्वा सोमपुत्रस्य स्त्रियः किंपुरुषीकृताः । उपासांचक्रिरे शैलं वध्वस्ता बहुलास्तदा ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोनवतितमः सर्गः ८९

श्रुत्वा किंपुरुषोत्पत्तिं लक्ष्मणो भरतस्तथा । आश्चर्यमिति च ब्रूतामुभौ रामं जनेश्वरम् ॥ १ ॥
अथ रामः कथामेतां भूय एव महायशाः । कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिसुतस्य वै ॥ २ ॥
सर्वास्ता विद्रुता दृष्ट्वा किंनरीर्ऋषिसत्तमः । उवाच रूपसंपन्नां तां स्त्रियं प्रहसन्निव ॥ ३ ॥
सोमस्याहं सुदयितः सुतः सुरुचिराननेः । भजस्व मां वरारोहे भक्त्या स्निग्धेन चक्षुषा ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शून्ये स्वजनवर्जिते । इला सुरुचिरप्रख्यं प्रत्युवाच महाग्रहम् ॥ ५ ॥
अहं कामचरी सौम्य तवास्मि वशवर्तिनी । प्रशाधि मां सोमसुत यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥
तस्यास्तदद्भुतप्रख्यं श्रुत्वा हर्षसमागतः । स वै कामी सह तया रेमे चन्द्रमसः सुतः ॥ ७ ॥
बुधस्य माधवो मासस्तामिलां रुचिराननाम् । गतो रमयतोऽत्यर्थं क्षणवत्तस्य कामिनः ॥ ८ ॥
अथ मासे तु संपूर्णे पूर्णेन्दुसदृशाननः । प्रजापतिसुतः श्रीमाञ्शयने प्रत्यबुध्यत ॥ ९ ॥

सबलोग किंपुरुषयोनिकी होकर इसी पर्वतके पास निवास करें । यहाँ आपलोग शीघ्र ही अपने रहनेका प्रबन्ध कर ले ॥ २२ ॥ फलमूल आदिसे आप लोगोंकी जीविका होगी और किंपुरुषयोनिके पुरुष तुम स्त्रियोंके पति होंगे ॥ २३ ॥ सोमपुत्रके कहनेसे वे स्त्रियाँ किंपुरुष नामसे प्रसिद्ध हुई और वे सब बहुत सी स्त्रियाँ उसी पर्वतपर निवास करने लगीं ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अठासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८८ ॥

किंपुरुषकी उत्पत्तिकी कथा सुनकर भरत और लक्ष्मणने राजा रामसे कहाकि आश्चर्यकी बात है ॥ १ ॥ धर्मात्मा यशस्वी रामचन्द्र कर्दम प्रजापतिके पुत्रकी कथा पुनः कहने लगे ॥ २ ॥ उस ऋषिश्रेष्ठने जब सब स्त्रियोंको देखा कि वे वहाँसे इधर-उधर चली गयीं, तब वे उस सुन्दरी स्त्रीसे हँसकर बोले ॥३॥ सुन्दरी, मैं चन्द्रमाका प्रिय पुत्र हूँ । वरारोहे, तुम मुझे स्नेहकी दृष्टिसे देखो ॥ ४ ॥ वहाँ इलाकी कोई साथिन न थीं वह अकेली थी, बुधके वचन सुनकर वह सुन्दर तथा तेजस्वी बुधसे बोली ॥ ५ ॥ सौम्य मैं किसीकी नहीं हूँ, इच्छानुसार भ्रमण करती हूँ । इस समय तुम्हारे आधीन हूँ, चन्द्रपुत्र, तुम मुझपर शासन करो, जो चाहो करो ॥ ६ ॥ इलाके ये अद्भुत वचन सुनकर बुध बड़े प्रसन्न हुए । कामी चन्द्रपुत्र बुधने उसके साथ रमण किया ॥ ७ ॥ सुन्दरी इलाके साथ रमण करते हुये कामी बुधने वैशाख मासको एक क्षणके समान बिताया ॥ ८ ॥

महीना बीत गया, उनका स्त्रीत्व भाव भी चला गया । प्रातःकाल प्रजापति कर्दमके पुत्र चन्द्रमुख

सोऽपश्यत्सोमजं तत्र तपन्तं सलिलाशये । ऊर्ध्वबाहुं निरालम्बं तं राजा प्रत्यभाषत ॥१०॥
भगवन्पर्वतं दुर्गं प्रविष्टोऽस्मि सहानुगः । न च पश्यामि तत्सैन्यं क नु ते मामका गताः ॥११॥
तच्छ्रुत्वा तस्य राजर्षेर्नष्टसंज्ञस्य भाषितम् । प्रत्युवाच शुभं वाक्यं सान्त्वयन्परया गिरा ॥१२॥
अश्मवर्षेण महता भृत्यास्ते विनिपातिताः । त्वं चाश्रमपदे सुप्तो वातवर्षभयार्दितः ॥१३॥
समाश्वसिहि भद्रं ते निर्भयो विगतज्वरः । फलमूलाशनो वीर निवसेह यथासुखम् ॥१४॥
स राजा तेन वाक्येन प्रत्याश्वस्तो महामतिः । प्रत्युवाच शुभं वाक्यं दीनो भृत्यजनक्षयात् ॥१५॥
त्यक्ष्याम्यहं स्वकं राज्यं नाहं भृत्यैर्विनाकृतः । वर्तयेयं क्षणं ब्रह्मन्समनुज्ञातुमर्हसि ॥१६॥
सुतो धर्मपरो ब्रह्मञ्ज्येष्ठो मम महायशाः । शशबिन्दुरिति ख्यातः स मे राज्यं प्रपत्स्यते ॥१७॥
नहि शक्ष्याम्यहं हित्वा भृत्यदारान्सुखान्वितान । प्रतिवक्तुं महातेजः किंचिदप्यशुभं वचः ॥१८॥
तथा ब्रुवति राजेन्द्रे बुधः परममद्भुतम् । सान्त्वपूर्वमथोवाच वासस्त इह रोचताम् ॥१९॥
न संतापस्त्वया कार्यः कार्दमेय महाबल । संवत्सरोषितस्येह कारयिष्यामि ते हितम् ॥२०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बुधस्याक्लिष्टकर्मणः । वासाय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥२१॥
मासं स स्त्री तदा भूत्वा रमयत्यनिशं सदा । मासं पुरुषभावेन धर्मबुद्धिं चकार सः ॥२२॥
ततः सा नवमे मासि इला सोमसुतात्सुतम् । जनयामास सुश्रोणी पुरूरवसमूर्जितम् ॥२३॥
जातमात्रे तु सुश्रोणी पितुर्हस्ते न्यवेशयत् । बुधस्य समवर्णं च इला पुत्रं महाबलम् ॥२४॥

इल सोकर उठे ॥ ९ ॥ उन्होंने जलमें चन्द्रमाके पुत्रको तपस्या करते देखा, वे पृथिवीके ऊपर ऊँची बाँह उठाकर तपस्या करते थे । राजा उनसे बोले ॥ १० ॥ भगवन् अपने साथियोंके साथ मैं इस दुर्गम पर्वत-पर आया था, पर मैं अपने सैनिकोंको नहीं देखता हूँ । वे कहाँ गये ॥ ११ ॥ राजा इलको अपने स्त्री होनेकी बातका ज्ञान नहीं था, बुधने उन्हें समझाते हुये उनसे कहा ॥ १२ ॥ पत्थरकी वृष्टिसे तुम्हारे सैनिक नष्ट हो गये । तुम हवा-पानीके भयसे इस आश्रममें आकर छिप रहे ॥ १३ ॥ धैर्य धारण करो, निर्भय हो जाओ चिन्ता छोड़ो । फलमूल खाकर यहाँ सुखपूर्वक निवास करो ॥ १४ ॥ बुधके वचनोंसे उन्हें धैर्य हुआ, भृत्योंके नाशसे वे बड़े दुःखी थे, वे बुधसे बोले ॥ १५ ॥ भृत्योंके नष्ट होनेपर भी मैं राज्य का त्याग नहीं कर सकता । मैं यहाँ एक क्षण भी रहना नहीं चाहता अतएव महाराज आप मुझे जाने की आज्ञा दें ॥ १६ ॥ मेरा बड़ा पुत्र धर्मात्मा है, शशिबिन्दु उसका नाम है, मेरे न जानेपर उसे राज्य करना पड़ेगा ॥ १७ ॥ मैं अपने सुखी भृत्यों और स्त्रियोंको छोड़ नहीं सकता । अतएव आप मेरे विचारके विरुद्ध कोई बात न करें ॥ १८ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर महात्मा बुद्धने उनसे कोमल वचन कहा—आप यहाँ रहना पसन्द करें, महाबली कर्दम पुत्र, आपको दुःख नहीं करना चाहिये, एक वर्ष यहाँ रहनेके पश्चात् मैं तुम्हारा कल्याण करा दूँगा ॥ १९, २० ॥ पुण्यात्मा बुधके समझानेपर राजा इलने वहाँ रहनेका ही निश्चय किया ॥ २१ ॥ वह राजा एक महीना स्त्री बनकर बुधके साथ रमण करता था और एक महीना पुरुष बनकर धर्माचरण करता था ॥ २२ ॥ नवें महीनेमें इलाने चन्द्रमाके पुत्र बुधसे एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम पुरूरवा था ॥ २३ ॥ उस पुत्रका रंग रूप बुधके ही समान था, इलाने उत्पन्न

बुधस्तु पुरुषीभूतं स वै संवत्सरान्तरम् । कथाभी रमयामास धर्मयुक्ताभिरात्मवान् ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०

तथोक्तवति रामे तु तस्य जन्म तदद्भुतम् । उवाच लक्ष्मणो भूयो भरतश्च महायशाः ॥ १ ॥
इला सा सोमपुत्रस्य संवत्सरमथोषिता । अकरोत्किं नरश्रेष्ठ तत्त्वं शंसितुमर्हसि ॥ २ ॥
तयोस्तद्वाक्यमाधुर्यं निशम्य परिपृच्छतोः । रामः पुनरुवाचेदं प्रजापतिसुते कथाम् ॥ ३ ॥
पुरुषत्वं गते शूरे बुधः परमबुद्धिमान् । संवर्तं परमोदारमाजुहाव महायशाः ॥ ४ ॥
च्यवनं भृगुपुत्रं च मुनिं चारिष्टनेमिनम् । प्रमोदनं मोदकरं ततो दुर्वाससं मुनिम् ॥ ५ ॥
एतान्सर्वान्समानीय वाक्यज्ञस्तत्त्वदर्शनः । उवाच सर्वान्सुहृदो धैर्येण सुसमाहितान् ॥ ६ ॥
अयं राजा महाबाहुः कर्दमस्य इलः सुतः । जानीतैनं यथाभूतं श्रेयो ह्यत्र विधीयताम् ॥ ७ ॥
तेषां संवदतामेव द्विजैः सह महात्मभिः । कर्दमस्तु महातेजास्तदाश्रममुपागमत् ॥ ८ ॥
पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव वषट्कारस्तथैव च । ओंकारश्च महातेजास्तमाश्रममुपागमन् ॥ ९ ॥
ते सर्वे हृष्टमनसः परस्परसमागमे । हितैषिणो बाह्लिपतेः पृथग्वाक्यान्यथाब्रुवन् ॥१०॥
कर्दमस्त्वब्रवीद्वाक्यं सुतार्थं परमं हितम् । द्विजाः शृणुत मद्वाक्यं यच्छ्रेयः पार्थिवस्य हि ॥११॥
नान्यं पश्यामि भैषज्यमन्तरा वृषभध्वजम् । नाश्वमेधात्परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मनः ॥१२॥

होते ही वह पिता बुधको दे दिया ॥ २४ ॥ एक वर्षके पश्चात् उसके पुरुष होनेपर जितेन्द्रिय बुध धार्मिक कथाओंसे उसे प्रसन्न करते रहे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका नवासिवां सर्ग समाप्त ॥ ८९ ॥

पुरूरवाके अद्भुत जन्मवृत्तान्त कहनेपर भरत और लक्ष्मण पुनः बोले ॥ १ ॥ महाभाग, एक वर्षतक चन्द्रपुत्रके साथ इला रही, उसके बाद क्या उसने किया सो आप कहें ॥ २ ॥ उनके मधुर वचन सुनकर रामचन्द्र पुनः राजा इल सम्बन्धी कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ इलाके पुरुष बननेपर यशस्वी बुद्धिमान् बुधने उदारसे बने मुनिको बुलाया, भृगुपुत्रच्यवन, अरिष्ट, नेमि, प्रमोदन और दुर्वासा ऋषिको उन्होंने बुलाया ॥ ४, ५ ॥ तत्वदर्शी वाक्यज्ञ बुधने इन सब मित्रोंको एकत्र किया और वे उनसे बोले ॥ ६ ॥ ये प्रजापति कर्दमके पुत्र राजा इल हैं, इनकी दशा आपलोग जानते ही हैं, इनका कल्याण जैसे हो वैसा आपलोग करें ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणोंके साथ बुध इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय प्रजापति कर्दम कई महात्माओंके साथ वहाँ आये ॥ ८ ॥ पुलस्त्य, ऋतु, वषट्कार और तेजस्वी ओंकार उस आश्रममें आये ॥ ९ ॥ परस्पर मिलनेसे वे सभी प्रसन्न थे, वाल्हीक पति राजाके हितके लिए अपनी-अपनी योजना वे सब कहने लगे ॥ १० ॥ कर्दमने अपने पुत्रके लिए परम हितकारी वचन कहा, ब्राह्मणों, आपलोग सुनें, इस राजाके हितकी बात मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥ वृषभध्वज महादेवके अतिरिक्त इनके लिए दूसरी दवा मैं

तस्माद्यजामहे सर्वे पार्थिवार्थे दुरासदम् । कर्दमेनैवमुक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभाः ॥१३॥
रोचयन्ति स्म तं यज्ञं रुद्रस्याराधनं प्रति । संवर्तस्य तु राजर्षिः शिष्यः परपुरंजयः ॥१४॥
मरुत्त इति विख्यातस्तं यज्ञं समुपाहरत् । ततो यज्ञो महानासीद्बुधाश्रमसमीपतः ॥१५॥
रुद्रश्च परमं तोषमाजगाम महायशाः । अथ यज्ञे समाप्ते तु प्रीतः परमया मुदा ॥१६॥
उमापतिर्द्विजान्सर्वानुवाच इलसंनिधौ । प्रीतोऽस्मि हयमेधेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः ॥१७॥
अस्य बाह्लिपतेश्चैव किं करोमि प्रियं शुभम् । तथा वदति देवेशे द्विजास्ते सुसमाहिताः ॥१८॥
प्रसादयन्ति देवेशं यथा स्यात्पुरुषस्त्विला । ततः प्रीतो महादेवः पुरुषत्वं ददौ पुनः ॥१९॥
इलायै सुमहातेजा दत्त्वा चान्तरधीयत । निवृत्ते हयमेधे च गते चादर्शनं हरे ॥२०॥
यथागतं द्विजः सर्वे तेऽगच्छन्दीर्घदर्शिनः । राजा तु बाह्लिमुत्सृज्य मध्यदेशे ह्यनुत्तमम् ॥२१॥
निवेशयामास पुरं प्रतिष्ठानं यशस्करम् । शशबिन्दुश्च राजर्षिर्बाह्लिं परपुरंजयः ॥२२॥
प्रतिष्ठाने इलो राजा प्रजापतिसुतो बली । स काले प्राप्तवाँल्लोकमिलो ब्राह्ममनुत्तमम् ॥२३॥
ऐलः पुरूरवा राजा प्रतिष्ठानमवाप्तवान् । ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभ ।
स्त्रीपूर्वः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम् ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥९०॥

नहीं देखता और महादेवको अश्वमेध यज्ञसे बढ़कर दूसरा यज्ञ प्रिय नहीं है ॥ १२ ॥ अतएव राजाके लिए हमलोग यही यज्ञ करें । कर्दमके कहनेपर उन सब ब्राह्मणोंने शिवकी आराधना करनेके लिए उसी यज्ञका करना पसन्द किया । शत्रु विजयी एक राजा संवर्त शिष्य थे, और मरुत्त नामसे प्रसिद्ध थे, उन्होंने यज्ञ की सामग्रियाँ एकत्र कीं । पुनः बुधके आश्रमके समीप उस महायज्ञका अनुष्ठान हुआ ॥१३, १५ ॥ यज्ञके समाप्त होनेपर महादेव सन्तुष्ट हुए । प्रसन्नतासे वे उमापति शिव, राजा इलके सामने सब ब्राह्मणोंसे बोले—ब्राह्मणों, अश्वमेध यज्ञ तथा आप लोगोंकी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ ॥ १६, १७ ॥ इस बाल्हीक पतिकी प्रसन्नताके लिए मैं क्या करूँ । देवेश शिवके ऐसा कहनेपर वे सब ब्राह्मण सावधान होकर महादेवको प्रसन्न करने लगे जिससे इल पुरुष हो जाँय । प्रसन्न होकर महादेवने उन्हें पुनः पुरुष बना दिया ॥ १८, १९ ॥ इलाको पुरुष बनाकर महादेव अन्तर्धान हो गये । यज्ञ समाप्त होनेपर महादेवके चले जानेपर वे दूरदर्शी ब्राह्मण भी अपने-अपने स्थानोंको गये । राजा इलने बाल्हीक देशको छोड़कर मध्यदेशमें प्रतिष्ठान नामक सुन्दर नगर बसाया । बाल्हीकका राज्य शशबिन्दु करने लगे ॥२०, २२॥ प्रजापति पुत्र बली राजा इल प्रतिष्ठानका राज्य करने लगे । समय होनेपर राजा ब्रह्मलोक चले गये, राजाकी मृत्यु हो गयी ॥ २३ ॥ इलपुत्र राजा पुरूरवा प्रतिष्ठानका राज्य पाया । अश्वमेधयज्ञका ऐसा प्रभाव है । स्त्री भी पुरुष हो गयी तथा और दुर्लभ वस्तुएँ भी उसे मिलीं ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका नब्बेवाँ सर्ग समाप्त ॥९०॥

एकनवतितमः सर्गः ९१

एतदाख्याय काकुत्स्थो भ्रातृभ्याममितप्रभः । लक्ष्मणं पुनरेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥
वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम् । द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान् ॥ २ ॥
एतान्सर्वान्समानीय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण । हयं लक्षणसंपन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना ॥ ३ ॥
तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः । द्विजान्सर्वान्समाहूय दर्शयामास राघवम् ॥ ४ ॥
ते दृष्ट्वा देवसंकाशं कृतपादाभिवन्दनम् । राघवं सुदुराधर्षमाशीर्भिः समपूजयन् ॥ ५ ॥
प्राञ्जलिः स तदा भूत्वा राघवो द्विजसत्तमान् । उवाच धर्मसंयुक्तमश्वमेधाश्रितं वचः ॥ ६ ॥
तेऽपि रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् । अश्वमेधं द्विजाः सर्वे पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥ ७ ॥
स तेषां द्विजमुख्यानां वाक्यमद्भुतदर्शनम् । अश्वमेधाश्रितं श्रुत्वा भृशं प्रीतोऽभवत्तदा ॥ ८ ॥
विज्ञाय कर्म तत्तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । प्रेषयस्व महाबाहो सुग्रीवाय महात्मने ॥ ९ ॥
यथा महद्भिर्हरिभिर्बहुभिश्च वनौकसाम् । सार्धमागच्छ भद्रं ते अनुभोक्तुं महोत्सवम् ॥१०॥
विभीषणश्च रक्षोभिः कामगैर्बहुभिर्वृतः । अश्वमेधं महायज्ञमायात्वतुलविक्रमः ॥११॥
राजानश्च महाभागा ये मे प्रियचिकीर्षवः । सानुगाः क्षिप्रमायान्तु यज्ञभूमिनिरीक्षकाः ॥१२॥
देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः । आमन्त्रयस्व तान्सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण ॥१३॥
ऋषयश्च महाबाहो आहूयन्तां तपोधनाः । देशान्तरगताः सर्वे सदाराश्च द्विजातयः ॥१४॥
तथैव तालावचरास्तथैव नटनर्तकाः । यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिषे वने ॥१५॥

दोनों भाइयोंसे इस प्रकार कहकर तेजस्वी रामचन्द्र लक्ष्मणसे यह धर्मयुक्त वचन बोले ॥ १ ॥ वसिष्ठ, वामदेव जाबालि तथा कश्यप इन ब्राह्मणोंको जो अश्वमेधयज्ञके विशेषज्ञ हैं एकत्र करके तथा इनसे सलाह करके मैं अश्वमेधके योग्य घोड़ा छोड़ता हूँ ॥ २,३ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर क्षिप्रकारी लक्ष्मण ब्राह्मणोंको बुलाकर उनके पास ले आये ॥ ४ ॥ उन लोगोंने रामचन्द्रको देखा, उन्होंने प्रणाम किये, और उन लोगोंने उन्हें आशीर्वाद दिये । ५ ॥ हाथ जोड़कर रामचन्द्रने अश्वमेध सम्बन्धी धर्मयुक्त वचन बोले ॥ ६ ॥ उन ब्राह्मणोंने भी रामचन्द्रकी बातें सुनी । महादेवको नमस्कार किया और अश्वमेधयज्ञकी प्रशंसा की ॥ ७ ॥ अश्वमेधके सम्बन्धमें उन ब्राह्मणोंकी उत्साह-जनक बातें सुनकर रामचन्द्र अत्याधिक प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ अश्वमेधयज्ञके अनुष्ठानका निश्चय होनेपर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा, महात्मा सुग्रीवके पास दूत भेजो, वे इस महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए प्रधान वानरों तथा अन्य वानरोंके साथ आवें । ॥ ९, १० ॥ अतुल पराक्रमी विभीषण कामचारी राक्षसोंको लेकर इस अश्वमेधयज्ञमें सम्मिलित हों ॥ ११ ॥ जो राजा हमारे हितैषी हैं, वे भी अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र आवें और यज्ञ देखें ॥ १२ ॥ अपने राज्यके जो धर्मात्मा ब्राह्मण कार्यवश दूसरे देशमें चले गये हैं उनको भी अश्वमेधयज्ञके लिए निमन्त्रित करो ॥ १३ ॥ तपस्वी ऋषियोंको भी निमन्त्रित करो, जो दूसरे देशोंमें रहते हैं उन्हें भी । सपत्नीक ब्राह्मणोंको भी निमन्त्रित करो ॥१४॥ जो बाजा बजाकर जीविका अर्जन करते हैं तथा नटनर्तकको निमन्त्रित करो । गोमती नदीके तीरपर नैमिष वनमें विशाल यज्ञशाला बनवानेकी आज्ञा दो क्योंकि

आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम् । शान्तयश्च महाबाहो प्रवर्तन्तां समन्ततः ॥१६॥
शतशश्चापि धर्मज्ञाः क्रतुमुख्यमनुत्तमम् । अनुभूय महायज्ञं नैमिषे रघुनन्दन ॥१७॥
तुष्टः पुष्टश्च सर्वोऽसौ मानितश्च यथाविधि । प्रतियास्यति धर्मज्ञ शीघ्रमामन्त्र्यतां जनः ॥१८॥
शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् । अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल ॥१९॥
चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च । अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ॥२०॥
सुवर्णकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः । अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे समाधिना ॥२१॥
अन्तरापणवीथ्यश्च सर्वे च नटनर्तकाः । सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः ॥२२॥
भरतेन तु सार्धं ते यान्तु सैन्यानि चाग्रतः । नैगमान्बालवृद्धांश्च द्विजांश्च सुसमाहिताः ॥२३॥
कर्मान्तिकान्वर्धकिनः कोशाध्यक्षांश्च नैगमान् । मम मातृस्तथा सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च ॥२४॥
काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि । अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः ॥२५॥
उपकार्या महार्हांश्च पार्थिवानां महौजसाम् । सानुगानां नरश्रेष्ठ व्यादिदेश महाबलः ॥२६॥
अन्नपानानि वस्त्राणि अनुगानां महात्मनाम् । भरतः स तदा यातः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥२७॥
वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा । विप्राणां प्रवराः सर्वे चक्रुश्च परिवेषणम् ॥२८॥
विभीषणश्च रक्षोभिः स्त्रीभिश्च बहुभिर्वृतः । ऋषीणामुग्रतपसां पूजां चक्रे महात्मनाम् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

वह पवित्र स्थान है। महाबाहो यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होनेके लिए शान्ति विधान प्रारम्भ करने दो ॥ १५, १६ ॥ सैकड़ों धर्मज्ञऋषि इस प्रधानयज्ञ तथा इसके अङ्गभूत अन्य यज्ञ नैमिष वनमें देखेंगे, हम लोगोंके द्वारा सम्मानित होंगे और तृप्त तथा प्रसन्न होकर वहाँसे जायँगे, अतएव सभाको निमन्त्रित करो ॥ १७, १८ ॥ सौ हजार बैल चावल लेकर चलें, जो चावल टूटे न हों, दस हजार बैल तिल और मूँग लेकर पहले चलें ॥ १९ ॥ चना, कुलथी, उड़द, नमक, घी, तेल, दही आदि इसीके अनुरूप लेकर जायँ, तथा थोड़ा सुगन्ध द्रव्य भी ले जायँ ॥ २० ॥ सैकड़ोंसे भी अधिक सिक्के जिनमें सुवर्णके सिक्के अधिक हों लेकर भरत आगे सावधानीसे जाँय ॥ २१ ॥ मार्गके खर्चके लिए वस्तु बेचनेवाले बनिए, मार्ग बनानेवाले कारीगर, नटनर्तक, रसोई बनानेवाले तथा युवती स्त्रियाँ भरतके साथ जाँय और आगे-आगे सेना जाय। वेदज्ञ बालक, वृद्ध, ब्राह्मण, कारीगर, बढ़ई, खजांची, समस्त माताएँ छोटे भाइयोंकी स्त्रियाँ, मेरी स्त्री भी सुवर्णमयी प्रतिमा तथा यज्ञके कार्योंमें निपुण विद्वानोंको लेकर यशस्वी भरत चलें ॥ २२, २५ ॥ पराक्रमी राजाओं तथा उनके अनुयायियोंकोंके लिए बहुमूल्य तम्बू बनवाए जायँ, अन्नपान तथा वस्त्र आदिकी व्यवस्थाकी जाय। राजाओंके लिए और उनके अनुयायके लिए भी, रामचन्द्रने लक्ष्मणको ऐसी आज्ञा दी, शत्रुघ्नके साथ भरतने उसी समय प्रस्थान किया ॥ २६, २७ ॥

सुग्रीवके साथी वानर तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण परोसनेका काम करते थे ॥ २८ ॥ अनेक राक्षसों तथा स्त्रियोंके साथ विभीषण उग्र—तपस्वी महात्मा ऋषियोंकी सेवा करते थे ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२

तत्सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः । हयं लक्षणसंपन्नं कृष्णसारं मुमोच ह ॥ १ ॥
ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणं सार्धमश्वे च विनियुज्य च । ततोऽभ्यगच्छत्काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिषम् ॥ २ ॥
यज्ञवाटं महाबाहुर्दृष्ट्वा परममद्भुतम् । प्रहर्षमतुलं लेभे श्रीमानिति च सोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥
नैमिषे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः । आनिन्युरुपहारांश्च तान्रामः प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥
अन्नपानादिवस्त्राणि सर्वोपकरणानि च । भरतः सहशत्रुघ्नो नियुक्तो राजपूजने ॥ ५ ॥
वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा । परिवेषणं च विप्राणां प्रयताः संप्रचक्रिरे ॥ ६ ॥
विभीषणश्च रक्षोभिर्बहुभिः सुसमाहितः । ऋषीणामुग्रतपसां किंकरः समपद्यत ॥ ७ ॥
उपकार्या महार्हाश्च पार्थिवानां महात्मनाम् । सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाबलः ॥ ८ ॥
एवं सुविहितो यज्ञो ह्यश्वमेधो ह्यवर्तत । लक्ष्मणेन सुगुप्ता सा हयचर्या प्रवर्तत ॥ ९ ॥
ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम् । नान्यः शब्दोऽभवत्तत्र हयमेधे महात्मनः ॥१०॥
छन्दतो देहि विस्रब्धो यावत्तुष्यन्ति याचकाः । तावत्सर्वाणि दत्तानि क्रतुमुख्ये महात्मनः ॥११॥
विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च । न निःसृतं भवत्योष्ठाद्वचनं यावदर्थिनाम् ॥१२॥
तावद्वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत । न कश्चिन्मलिनो वापि दीनो वाप्यथवा कृशः ॥१३॥
तस्मिन्यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजनावृते । ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः ॥१४॥
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम् । यः कृत्यवान्सुवर्णेन सुवर्णं लभते स्म सः ॥१५॥

यज्ञकी समस्त सामग्रियोंको भेजकर रामचन्द्रने यज्ञके योग्य काला घोड़ा छोड़ा ॥ १ ॥ ऋषियोंके साथ लक्ष्मणको घोड़ेकी रक्षाके लिए नियुक्त करके रामचन्द्र सेनाके साथ नैमिषारण्यके लिए प्रस्थित हुए ॥ २ ॥ अद्भुत यज्ञस्थान देखकर महाबाहु रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि बड़ा सुन्दर है ॥ ३ ॥ वहाँ रामचन्द्रके जानेपर सभी राजा उपहार लेकर आये, रामचन्द्रने उनका अन्न, पान, वस्त्र तथा अन्य सामग्रियोंसे सत्कार किया। भरत और शत्रुघ्न राजाओंके सत्कार करनेके लिए नियुक्त किये गये थे ॥ ४,५ ॥ सुग्रीवके सहित वानर ब्राह्मणोंको भोजन परोसनेके लिए नियत थे ॥ ६ ॥ विभीषण अन्य अनेक राक्षसोंके साथ सावधान होकर उग्रतपस्वी ऋषियोंकी सेवा करते थे ॥ ७ ॥ राजाओं तथा उनके साथियोंके लिए रामचन्द्रने बहुमूल्य तम्बू दिये ॥ ८ ॥ इस प्रकार विधान पूर्वक वह यज्ञ होने लगा। लक्ष्मणकी रक्षामें घोड़ेके भ्रमणकी विधि पूरी हुई। इस प्रकार राजश्रेष्ठ रामचन्द्रका वह यज्ञ होने लगा। रामचन्द्रका, उस अश्वमेध यज्ञमें "जबतक याचक सन्तुष्ट न हो जाय तबतक आँख मूँदकर देते जाओ" इस शब्दके अतिरिक्त दूसरा शब्द नहीं सुनायी पड़ता था। उस प्रधान यज्ञमें गुड़, खाँड़ आदिकी जो वस्तु थीं वे सब माँगनेवालोंको दी गयीं। जबतक याचकोंके मुँहसे कोई शब्द नहीं निकलता था तभी तक वानर और राक्षस उन्हें दे देते थे। उस यज्ञमें कोई दीन दुःखी अथवा मलिन न था सभी प्रसन्न और पुष्ट थे। वहाँ जो चिरजीवी महात्मा मुनि थे, उनको ऐसे किसी यज्ञका स्मरण नहीं था जिसमें इतनी अधिकताके साथ दान किया गया हो। जो सोना चाहता था वह सोना पाता था ॥ ९,१५ ॥ धन चाहने-

वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च। हिरण्यानां सुवर्णानां रत्नानामथ वाससाम् ॥१६॥
अनिशं दीयमानानां राशिः समुपदृश्यते। न शक्रस्य न सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥१७॥
ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचुस्तपोधनाः। सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः ॥१८॥
वासोधनान्नकामेभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम्। ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३

वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते। सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्भगवानृषिः॥ १ ॥
स दृष्ट्वा दिव्यसंकाशं यज्ञमद्भुतदर्शनम्। एकान्त ऋषिमिर्वासश्चकार उटजाञ्शुभान् ॥ २ ॥
शकटांश्च बहून्पूर्णान्फलमूलांश्च शोभनान्। वाल्मीकिवाटे रुचिरे स्थापयन्नविदूरतः ॥ ३ ॥
स शिष्यावब्रवीद्धृष्टो युवां गत्वा समाहितौ। कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ॥ ४ ॥
ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च। रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ५ ॥
रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते। ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ॥ ६ ॥
इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च। जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यास्वाद्य गायताम् ॥ ७ ॥

वाला धन, रत्न चाहनेवाला रत्न, पाता था। चाँदी सोना रत्न तथा वस्त्रोंकी वहाँ ढेर लगी रहती थी, जो दानके लिए रखे जाते थे। तपस्वी कहते थे कि इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुण किसीका भी ऐसा अश्वमेध यज्ञ हम लोगोंने पहले नहीं देखा। वानर और राक्षस सर्वत्र वस्त्र धन और अन्न चाहनेवालोंको देनेके लिए हाथ भरे रहते थे और देते थे। राजसिंह रामचन्द्रका यज्ञ इस प्रकार सर्वाङ्ग पूर्ण हुआ, वह एक वर्षसे अधिक दिनों तक होता रहा पर उसमें कोई कमी नहीं हुई ॥ १६,१९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका बानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९२ ॥

इस प्रकार वह परम अद्भुत यज्ञ हो रहा था, उसमें भगवान् वाल्मीकि ऋषि अपने शिष्योंके साथ आये ॥ १ ॥ उस अद्भुत यज्ञको देखकर वाल्मीकिने अपने ऋषि समूहके साथ एकान्त पर्णशालामें निवास किया ॥ २ ॥ अन्नसे भरी बहुत-सी गाड़ियाँ तथा उत्तम फल-फूल आदि महर्षि वाल्मीकिके सुन्दर आश्रमके पास रखवा दिये गये ॥ ३ ॥ अनन्तर वे ऋषिने प्रसन्न और सावधान अपने दो शिष्योंको आज्ञा दी कि तुमलोग रामायणका ज्ञान करो, निर्भय होकर गान करो ॥ ४ ॥ ऋषियोंके पवित्र स्थानोंमें, ब्राह्मणोंके स्थानोंमे, गलियों और सड़कोंमें, राजाके स्थानोंमें, रामचन्द्रके भवनके द्वारपर, जहाँ लोग काम करते हैं और ऋषियोंके पास विशेष करके अपना गान सुनाना ॥५,६॥ पर्वतके शिखरपर ये अनेक तरहके फल हैं इन्हें खा-खाकर गाना, गाते-गाते जब थक जाना तब खाना, मीठे मूल भी खाना, थकनेपर खाना, इस प्रकार तुमलोग लोभसे खा रहे हो यह समझकर कोई तुम्हारी हँसी भी न करेगा। अथवा थकनेपर

न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ । मूलानि च सुमृष्टानि न रागात्परिहास्यथः ॥ ८ ॥
यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः । ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम् ॥ ९ ॥
दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा । प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा ॥१०॥
लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया । किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा ॥११॥
यदि पृच्छेत्स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ । वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेवं नराधिपम् ॥१२॥
इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वाऽपूर्वदर्शनम् । मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ ॥१३॥
आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम् । पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥१४॥
तद्युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाहितौ । गायतं मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥१५॥
इति संदिश्य बहुशो मुनिः प्राचेतसस्तदा । वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्महामुनिः ॥१६॥
संदिष्टौ मुनिना तेन तावुभौ मैथिलीसुतौ । तथैव करवावेति निर्जग्मतुररिंदमौ ॥१७॥
तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ निवेश्य वाणीमृषिभाषितां तदा ।
समुत्सुकौ तौ सुखमूषतुर्निशां यथाश्विनौ भार्गवनीतिसंहिताम् ॥ ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४

तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ । यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम् ॥ १ ॥

जब तुमलोग फल-फूल खाओगे तो गलेकी मधुरता भी नष्ट न होगी ॥७,८॥ यदि राजाराम गान सुननेके लिए बुलावें तो वहाँ जाना, वहाँ ऋषि भी बैठे होंगे, वहाँ उचित व्यवहार करना ॥९॥ प्रतिदिन बीस सर्ग मधु स्वरसे गाना, जैसा मैंने सर्गोंका प्रमाण बतलाया है वैसे बीस सर्ग गाना ॥ १० ॥ धनके लिए थोड़ा भी लोभ न करना । आश्रममें रहनेवालों और फल-फूल खानेवालोंको धनका क्या काम है ॥ ११ ॥ यदि रामचन्द्र पूछें कि तुम दोनों किसके लड़के हो तो कह देना कि हमलोग वाल्मीकि ऋषिके शिष्य हैं ॥१२॥ मधुरस्वरवाली ये वीणा हैं, इनसे अपूर्व स्वर निकालना, इनके स्वरोंको मिलाकर निश्चिन्त होकर गाना ॥ १३ ॥ प्रारम्भसे ही रामायण गाना, राजाका अपमान न करना, क्योंकि राजा प्राणियोंका धर्मतः पिता होता है ॥ १४ ॥ अतएव कल प्रातःकाल सावधान होकर वीणाके साथ मधुर गान गाना ॥ १५ ॥ इस प्रकार दोनों शिष्योंको अनेक प्रकारकी शिक्षा देकर प्राचेतस वाल्मीकि मुनि चुप हो गये ॥ १६ ॥ सीताके दोनों पुत्रोंने मुनिकी आज्ञाके अनुसार करना स्वीकार किया और वे आश्रमसे चले ॥ १७ ॥ मुनिकी कही हुई उस अद्भुत वाणीको हृदयमें रखकर उन बालकोंने उत्सुकता-पूर्वक परम सुखसे रात बितायी, जिस प्रकार अश्विनीकुमारोंने भार्गवकी नीति संहिता हृदयमें धारण की थी ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका तेरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९३ ॥

रात बीतनेपर प्रातःकाल स्नान और हवन करके ऋषिने जहाँ बतलाया था वहाँ वे गाने लगे ॥१॥

तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम्। अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम् ॥ २ ॥
प्रमाणैर्बहुभिर्बद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम् । बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ३ ॥
अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन । पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान्नैगमांस्तथा ॥ ४ ॥
पौराणिकाञ्शब्दविदो ये वृद्धाश्च द्विजातयः । स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान्द्विजसत्तमान् ॥ ५ ॥
लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान्नैगमांश्च विशेषतः । पादाक्षरसमासज्ञांश्छन्दःसु परिनिष्ठितान् ॥ ६ ॥
कलामात्राविशेषज्ञाञ्ज्योतिषे च परं गतान् । क्रियाकल्पविदश्चैव तथा कार्यविशारदान् ॥ ७ ॥
हेतूपचारकुशलान्हैतुकांश्च बहुश्रुतान । छन्दोविदः पुराणज्ञान्वैदिकान्द्विजसत्तमान ॥ ८ ॥
चित्रज्ञान्वृत्तसूत्रज्ञान्गीतनृत्यविशारदान् । एतान्सर्वान्समानीय गातारौ समवेशयत् ॥ ९ ॥
तेषां संवदतां तत्र श्रोतॄणां हर्षवर्धनम् । गेयं प्रचक्रतुस्तत्र तावुभौ मुनिदारकौ ॥१०॥
ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् । न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गेयसंपदा ॥११॥
हृष्टा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः । पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः ॥१२॥
ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः । उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्बिम्बमिवोद्धृतौ ॥१३॥
जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि । विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ॥१४॥
एवं प्रभाषमाणेषु पौरजानपदेषु च । प्रवृत्तमादितः पूर्वसर्गं नारददर्शितम् ॥१५॥
ततः प्रभृति सर्गांश्च यावद्विंशत्यगायताम् । ततोऽपराह्णसमये राघवः समभाषत ॥१६॥

रामचन्द्रने गानेके साथ नये ढंगसे पढ़ना सुना, वह पढ़ना पूर्वाचार्योंकी बनायी रीतिके अनुकूल था ॥२॥ इस गानमें अनेक प्रकारके क्रम थे वीणाके मधुरस्वरके साथ वह गाया जाता था, उन बालकोंका वह गाना सुनकर रामचन्द्र बहुत विस्मित हुए ॥ ३ ॥ यज्ञके अवकाशमें रामचन्द्रने मुनियों, राजाओं तथा वेदज्ञ पण्डितोंको बुलाया ॥ ४ ॥ पौराणिकों, वैयाकरणों, बूढ़े ब्राह्मणों, स्वर जाननेवालों, गाना सुननेके रसिक ब्राह्मणों, सामुद्रिक लक्षणके विद्वानों, गन्धर्वों, पण्डितों, वाक्यपद और समासके जाननेवालों, छन्दः शास्त्रके पण्डितों, कलाविदों, ज्योतिषियों, कर्मकाण्डियों, व्यवहारदक्षों, नैयायिकों, बहुश्रुतों, वैदिक छन्दोंके ज्ञाताओं, पुराणवाचकों, वेदपाठियों, चित्रकाव्यके ज्ञाताओं, सदाचारी पण्डितों, सुबुद्धपण्डितों, और गीत-नृत्यके पण्डितोंको एकत्र करके रामचन्द्रने गानेवाले बालकोंको बुलाया ॥ ५,९ ॥ वे दोनों मुनिकुमार वहाँ गाने लगे । श्रोता प्रसन्न होकर वाहवाः करने लगे ॥ १० ॥ वहाँ मनुष्य लोकमें दुर्लभ गाना होने लगा, पर सुननेवाले तृप्त नहीं हुए, सुननेकी उत्सुकता बढ़ने लगी, ॥ ११ ॥ मुनि तथा पराक्रमी राजा उन बालकोंको बार-बार देख रहे थे मानों वे उन्हें पी रहे हों ॥ १२ ॥ वे सब आपसमें कहने लगे कि ये दोनों ठीक रामचन्द्रके समान हैं, बिम्ब-प्रतिबिम्बके समान मालूम पड़ते हैं ॥ १३ ॥ यदि ये जटा और वल्कलधारी न होते तो रामचन्द्र और इन गानेवालोंमें कोई भेद न देख पड़ता ॥ १४ ॥ नगर-वासी आदि इस प्रकार आपसमें बातें करते थे और उधर नारदका बतलाया पहला सर्ग गाया जाने लगा ॥ १५ ॥ पहलेसे लेकर बीस सर्गोंतक उन लोगोंने गाया । दोपहरके समय रामचन्द्रने बीस सर्गोंका गान सुनकर भ्रातृप्रेमी रामचन्द्र भाईसे बोले । अट्ठारह हजार सोनेके सिक्के इन महात्माओंको शीघ्र दो, और भी जो

श्रुत्वा विंशतिसर्गांस्तान्भ्रातरं भ्रातृवत्सलः । अष्टादश सहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ॥१७॥
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम् । ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक्पृथक् ॥१८॥
दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ । ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥१९॥
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ । सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥२०॥
तथा तयोः प्रब्रुवतोः कौतूहलसमन्विताः । श्रोतारश्चैव रामश्च सर्व एव सुविस्मिताः ॥२१॥
तस्य चैवागमं रामः काव्यस्य श्रोतुमुत्सुकः । पप्रच्छ तौ महातेजास्तावुभौ मुनिदारकौ ॥२२॥
किंप्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः । कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुंगवः ॥२३॥
पृच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ । वाल्मीकिर्भगवान्कर्ता संप्राप्तो यज्ञसंविधम् ।
येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं संप्रदर्शितम् ॥ ॥२४॥
संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम् । उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥२५॥
आदिप्रभृति वै राजन्पञ्चसर्गशतानि च । काण्डानि षट् कृतानीह सोत्तराणि महात्मना ॥२६॥
कृतानि गुरुणास्माकमृषिणा चरितं तव । प्रतिष्ठा जीवितं यावत्तावत्सर्वस्य वर्तते ॥२७॥
यदि बुद्धिः कृता राजञ्छ्रवणाय महारथ । कर्मान्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः ॥२८॥
बाढमित्यब्रवीद्रामस्तौ चानुज्ञाप्य राघवौ । प्रहृष्टौ जग्मतुः स्थानं यत्रास्ते मुनिपुंगवः ॥२९॥
रामोऽपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः । श्रुत्वा तद्गीतिमाधुर्यं कर्मशालामुपागमत् ॥३०॥
शुश्राव तत्ताललयोपपन्नं सर्गान्वितं सुस्वरशब्दयुक्तम् ।
तन्त्रीलयव्यञ्जनयोगयुक्तं कुशीलवाभ्यां परिगीयमानम् ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

कुछ ये चाहें दो, भरतने उन बालकोंको आधा-आधा दिया ॥ १६,१८ ॥ गानेवाले बालकोंने वह सोना नहीं लिया। उन लोगोंने विस्मित होकर कहा कि यह लेकर हम क्या करेंगे ॥ १९ ॥ हमलोग वनवासी हैं फल-फूलसे हमारा काम चल जाता है, इस सोना-चाँदीको लेकर हम वनमें क्या करेंगे ॥ २० ॥ उन दोनोंकी यह बात सुनकर श्रोता तथा रामचन्द्र सभी बहुत विस्मित हुए ॥ २१ ॥ यह काव्य उनलोगोंने कहाँ पढ़ा है यह रामचन्द्र जानना चाहते थे अतएव उन्होंने उन मुनि बालकोंसे पूछा ॥ २२ ॥ यह काव्य कितना बड़ा है, इसमें कर्ताका नाम क्या है, वे मुनि कहाँ रहते हैं ॥ २३ ॥ रामचन्द्रके पूछनेपर उन मुनि बालकोंने उत्तर दिया, भगवान वाल्मीकि इसके कर्ता हैं वे इस यज्ञमें आये हुए हैं, उन्होंने ही तुम्हारा यह चरित बनाया है ॥ २४ ॥ इस काव्यमें चौबीस हजार श्लोक हैं, सौ उपाख्यान हैं, महर्षि वाल्मीकिने इसे बनाया है ॥ २५ ॥ आदिसे लेकर पाँच सौ सर्ग तक छ काण्ड तथा उत्तरकाण्ड महात्मा वाल्मीकिने बनाया है ॥ २६ ॥ हमलोगोंके गुरु ऋषिने यह काव्य बनाया है, आपके जीवन पर्यन्तकी कथा इसमें है ॥ २७ ॥ राजन्, यदि आप अवकाशकालमें सुनना चाहें तो अपने भाइयोंके साथ सुनें ॥ २८ ॥ अच्छा कहकर रामचन्द्रने उन दोनों बालकोंको विदा किया, वे प्रसन्न होकर महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर चले गये ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजी मुनियों तथा राजाओंके साथ वह मधुर गान सुनकर यज्ञशालामें आये

पञ्चनवतितमः सर्गः ९५

रामो बहून्यहान्येव तद्गीतं परमं शुभम् । शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह वानरैः ॥ १ ॥
तस्मिन्गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ । तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
दूतान्शुद्धसमाचारानाहूयात्ममनीषया । मद्वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिके ॥ ३ ॥
यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा । करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥ ४ ॥
छन्दं मुनेश्च विज्ञाय सीतायाश्च मनोगतम् । प्रत्ययं दातुकामायास्ततः शंसत मेलघु ॥ ५ ॥
श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा । करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ॥ ६ ॥
श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वचः परममद्भुतम् । दूताः संप्रययुर्वाठं यत्र वै मुनिपुंगवः ॥ ७ ॥
ते प्रणम्य महात्मानं ज्वलन्तममितप्रभम् । ऊचुस्ते रामवाक्यानि मृदूनि मधुराणि च ॥ ८ ॥
तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम् । विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥
एवं भवतु भद्रं वो यथा वदति राघवः । तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियः ॥१०॥
तथोक्ता मुनिना सर्वे राजदूता महौजसः । प्रत्येत्य राघवं सर्वे मुनिवाक्यं बभाषिरे ॥११॥
ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः । ऋषींस्तत्र समेतांश्च राज्ञश्चैवाभ्यभाषत ॥१२॥
भगवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः । पश्यन्तु सीताशपथं यश्चैवान्योऽपि काङ्क्षते॥१३॥

॥ ३० ॥ सर्गोमें बटा हुआ ताललय तथा मधुर शब्दके साथ उन दोनोंके गान रामचन्द्र सुनने लगे । वीणाके स्वरलय आदिसे युक्त वह गान रामचन्द्र सुन लेगें ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका चौरानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९४ ॥
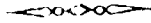
रामचन्द्र बहुत दिनों तक मुनियों राजाओं और वानरोंके साथ वह गान सुनते रहे ॥ १ ॥ उसी गानमें रामचन्द्रको यह मालूम हुआ कि ये दोनों गानेवाले सीताके पुत्र हैं, उसी सभामें शुद्धाचारी दूतों-को बुलाकर वे बोले, भगवान् वाल्मीकिके पास जाओ और मेरी ओरसे कहो ॥ २, ३ ॥ यदि सीता शुद्ध-आचारकी हो यदि उसके पाप दूर हो गये हों तो वह मुनिकी आज्ञासे यहाँ इस सभामें अपनी शुद्धता प्रमाणित करे ॥ ४ ॥ सीताका विश्वास करानेके विषयमें मुनिका क्या अभिप्राय है, यह जानकर मुझसे शीघ्र कहो ॥ ५ ॥ कल प्रातःकाल जनक पुत्री सीता सभाके मध्यमें शपथ करे और हमारा कलङ्क दूर करे ॥ ६ ॥ रामकी आज्ञासे दूत वाल्मीकि मुनिके पास गये ॥ ७ ॥ तेजसे प्रकाशमान मुनिको प्रणाम करके उन लोगोंने रामचन्द्रके वचनको कोमल और मधुर शब्दोंमें कहा ॥ ८ ॥ उनके वचन सुनकर तथा रामचन्द्रका अभिप्राय जानकर तेजस्वी मुनि इस प्रकार बोले ॥ ९ ॥ ठीक है, जैसा रामचन्द्र कहते हैं, सीता वैसाही करेगी, क्योंकि पति स्त्रीका देवता होता है ॥१०॥ राजदूत लौटकर रामचन्द्रके पास आये और उन लोगोंने मुनिकी कही बातें कह सुनायी ॥ ११ ॥ इन बातोंसे राम बड़े प्रसन्न हुए और वे वहाँ उपस्थित ऋषियों तथा राजाओंसे बोले ॥ १२ ॥ शिष्योंके साथ मुनि गण, अनुयायियोंके साथ-साथ सीताकी शपथ देखें, और जो लोग देखना चाहते हों वे भी देखें ॥ १३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । सर्वेषामृषिमुख्यानां साधुवादो महानभूत् ॥१४॥
राजानश्च महात्मानः प्रशंसन्ति स्म राघवम् । उपपन्नं नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ॥१५॥
एवं विनिश्चयं कृत्वा श्वोभूत इति राघवः । विसर्जयामास तदा सर्वांस्तानरिमर्दनः ॥१६॥

इति संप्रविचार्य राजसिंहः श्वोभूते शपथस्य निश्चयम् ।
विससर्ज मुनीन्नृपांश्च सर्वान्स महात्मा महतो महानुभावः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटं गतो नृपः । ऋषीन्सर्वान्महातेजाः शब्दापयति राघवः ॥ १ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः । विश्वामित्रो दीर्घतमा दुर्वासाश्च महातपाः ॥ २ ॥
पुलस्त्योऽपि तथा शक्तिर्भार्गवश्चैव वामनः । मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्मौद्गल्यश्च महायशाः ॥ ३ ॥
गर्गश्च च्यवनश्चैव शतानन्दश्च धर्मवित् । भरद्वाजश्च तेजस्वी अग्निपुत्रश्च सुप्रभः ॥ ४ ॥
नारदः पर्वतश्चैव गौतमश्च महायशाः । एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ॥ ५ ॥
कौतूहलसमाविष्टाः सर्व एव समागताः । राक्षसाश्च महावीर्या वानराश्च महाबलाः ॥ ६ ॥
सर्व एव समाजग्मुर्महात्मानः कुतूहलात् । क्षत्रिया ये च शूद्राश्च वैश्याश्चैव सहस्रशः ॥ ७ ॥
नानादेशगताश्चैव ब्राह्मणाः संशितव्रताः । सीताशपथवीक्षार्थं सर्व एव समागताः ॥ ८ ॥
तदा समागतं सर्वमश्मभूतमिवाचलम् । श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥ ९ ॥
तमृषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी । कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥१०॥

रामचन्द्रके इस बातको सुनकर सभी ऋषियोंने साधु-साधु कहा ॥ १४ ॥ राजाओंने रामचन्द्रकी प्रशंसा की, वे बोले, रामचन्द्र, ऐसी बात तुम्हींसे सम्भव है ॥ १५ ॥ इस प्रकार कलका कार्यक्रम निश्चय करके रामचन्द्रने सबको बिदा किया ॥ १६ ॥ महानुभाव महात्मा रामचन्द्रने कल शपथका निश्चय करके मुनियों तथा समस्त राजाओंको बिदा किया ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडका पंचानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९५ ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल होनेपर रामचन्द्र यज्ञशालामें गये और वहाँ उन्होंने मुनियोंको बुलवाया ॥ १ ॥ वसिष्ठ, वामदेव जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतमा, तपस्वी दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, मार्कण्डेय, दीर्घायु मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, शतानन्द, तेजस्वी भरद्वाज अपने पुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत और यशस्वी गौतम तथा अन्य प्रसिद्ध व्रतधारी मुनि वहाँ आये ॥ २, ५ ॥ ये सभी कुतूहलवश वहाँ आये । पराक्रमी राक्षस, बली वानर ये सभी कुतूहलवश होकर आये । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा देश-देशान्तरोंके ब्राह्मण सीताकी शपथ देखनेके लिए वहाँ आये ॥ ६, ८ ॥ सभी आ गये हैं और अपनी-अपनी जगह निश्चल होकर खड़े हैं यह सुनकर मुनि वाल्मीकि सीताके साथ वहाँ आये ॥ ९ ॥ ऋषिके पीछे पीछे सीता सिर झुकाये आ रही थी, हाथ जोड़े हुई थी आँखोंसे आँसू गिर रहा था और वे मनमें

तां दृष्ट्वा श्रुतिमायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम् । वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत् ॥११॥
ततो हलहलाशब्दः सर्वेषामेवमाबभौ । दुःखजन्मविशालेन शोकेनाकुलितात्मनाम् ॥१२॥
साधु रामेति केचित्तु साधु सीतेति चापरे । उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षकाः संप्रचुक्रुशुः ॥१३॥
ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुंगवः । सीतासहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ॥१४॥
इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी । अपवादात्परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥१५॥
लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत । प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ॥१६॥
इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ । सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१७॥
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन । न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥१८॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता । नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥१९॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् । तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥२०॥
अहं पञ्चसु भूतेषु मनःषष्ठेषु राघव । विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥२१॥
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता । लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥२२॥

तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रदिष्टा ।
लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

रामचन्द्रका ध्यान कर रही थीं ॥ १० ॥ ब्रह्माकी अनुगामिनी श्रुतिके समान वाल्मीकिके पीछे सीताको आती देखकर सबलोग साधु-साधु कहने लगे, जिसका महाकोलाहल हुआ ॥ ११ ॥ उस समय दुःख और शोकसे व्याकुल जनसमूहमें कोलाहल होने लगा ॥ १२ ॥ कोई रामको साधुवाद देने लगा कोई सीताको, और कोई दोनोंको, इस प्रकार वहाँ एकत्र जनता कोलाहल करने लगी ॥ १३ ॥ उस जनसमूह-के बीचमें सीताके साथ आकर वाल्मीकि मुनिने रामचन्द्रसे कहा ॥ १४ ॥ दसरथ-पुत्र, यह सीता धर्मचारिणी और व्रतका पालन करनेवाली है, लोकापवादके कारण मेरे आश्रमके पास छोड़ी गयी थी ॥ १५ ॥ रामचन्द्र, लोकापवादसे भयभीत तुमको सीता अपनी पवित्रताका विश्वास दिलावेगी, तुम उसे आज्ञा दो ॥ १६ ॥ ये दोनों जानकीके पुत्र हैं यमज हैं, ये दोनों वीर तुम्हारे ही पुत्र हैं। मैं तुमसे यह सत्य-सत्य कह रहा हूँ ॥ १७ ॥ मैं प्रचेताका दसवाँ पुत्र हूँ, मुझे अपने झूठ बोलनेका स्मरण नहीं है, मैं कहता हूँ ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं ॥ १८ ॥ बहुत हजार वर्षोंतक मैंने तपस्या की है, उसका फल मुझे न मिले यदि सीता पापिनी हो ॥ १९ ॥ मन, वचन और कर्मसे मैंने कभी पाप नहीं किया है उसका फल मुझे मिले यदि सीता निष्पाप हो ॥ २० ॥ पञ्चेन्द्रियों तथा मनसे मैंने सीताकी शुद्धि जान ली है तभी वनके निर्झर पर इसे पाकर मैंने आश्रय दिया ॥ २१ ॥ यह शुद्धाचारिणी निष्पाप और पतिको देवता समझनेवाली है । लोकापवादसे भयभीत तुमको यह विश्वास दिलावेगी ॥ २२ ॥ हे राजपुत्र, जानकी शुद्ध है यह बात मैंने दिव्य दृष्टिसे जानली है । लोकापवादसे घबड़ाकर तुमने अपनी प्रियतमाका परित्याग किया है । यद्यपि तुम भी इसे शुद्ध जानते हो ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका छानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत । प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां वरवर्णिनीम् ॥ १ ॥
एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित् । प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥ २ ॥
प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसंनिधौ । शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता ॥ ३ ॥
लोकापवादो बलवान्येन त्यक्ता हि मैथिली । सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ४ ॥
जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ । शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥
अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य सुरसत्तमाः । सीतायाः शपथे तस्मिन्सर्व एव समागताः ॥ ६ ॥
पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ ७ ॥
साध्याश्च देवाः सर्वे ते सर्वे च परमर्षयः । नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च ते सर्वे हृष्टमानसाः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा देवानृषींश्चैव राघवः पुनरब्रवीत् । प्रत्ययो मे नरश्रेष्ठ ऋषिवाक्यैरकल्मषैः ॥ ९ ॥
शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे । सीता शपथसंभ्रान्ताः सर्व एव समागताः ॥१०॥
ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरमः । तं जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः ॥११॥
तदद्भुतमिवाचिन्त्यं निरैक्षन्त समाहिताः । मानवाः सर्वराष्ट्रेभ्यः पूर्वं कृतयुगे यथा ॥१२॥
सर्वान्समागतान्दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी ॥१३॥
यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये । तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥१४॥

सीताकी ओर देखकर तथा हाथ जोड़कर रामचन्द्र सभाके बीचमें बोले ॥ १ ॥ महाराज, जैसा आप कह रहे हैं वह ठीक है, मुझे आपके शुद्ध वचनोंका विश्वास है ॥ २ ॥ देवताओंके सामने वैदेहीने विश्वास करा दिया है, इसने शपथकी थी तब मैं इसे घरमें ले आया था ॥ ३ ॥ इसके सम्बन्धमें लोकापवाद उठा, मैं इसे शुद्ध जानता था, लोकापवादसे डरकर मैंने इसका त्याग किया, आप मेरा यह अपराध क्षमा करें ॥ ४ ॥ ये दोनों यमज कुश और लव मेरे पुत्र हैं यह मैं जानता हूँ, पर मेरी प्रीति तो संसारके सामने शुद्ध सीतामें ही होगी ॥ ५ ॥ रामचन्द्रका अभिप्राय जानकर सीताके शपथके समय सभी देवता उपस्थित हुए ॥ ६ ॥ ब्रह्माको साथ लेकर आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत, साध्य ये सब देवता, महर्षिगण, नाग, पक्षी, तथा सिद्ध सभी प्रसन्नता-पूर्वक वहाँ आये ॥ ७,८ ॥ देवताओं और ऋषियोंको देखकर रामचन्द्र पुनः बोले । मुझे ऋषिके शुद्ध वचनोंका विश्वास है ॥ ९ ॥ संसारकी दृष्टिमें जानकीके शुद्ध होनेपर मेरी प्रीति इसपर रहेगी । सीता शपथ लेनेवाली है इससे घबड़ाकर सभी यहाँ आये हैं ॥१०॥ उसी समय दिव्य गन्धवाली मनोहर पवित्र हवाने चलकर वहाँके लोगोंको प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ सत्ययुगके समान ऐसी अपूर्व और अचिन्तनीय हवाका चलना देखकर सब स्थानोंसे आये मनुष्य विस्मित हुए ॥ १२ ॥ सब लोगोंके एकत्र होनेपर काषायवस्त्र पहने हुई और सिर झुकाये सीता आयीं और हाथ जोड़कर वे बोलीं ॥ १३ ॥ मैं रामचन्द्रको छोड़कर दूसरे पुरुषकी चिन्ता मनसे भी न करती होऊँ तो

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥१५॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥१६॥
तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत्तदद्भुतम्। भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥१७॥
ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः। दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥१८॥
तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्। स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥१९॥
तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्। पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥२०॥
साधुकारश्च सुमहान्देवानां सहसोत्थितः। साधुसाध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥२१॥
एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः। व्याजह्रुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ॥२२॥
यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते। राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ॥२३॥
अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः। दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः ॥२४॥
केचिद्विनेदुः संहृष्टाः केचिद्ध्यानपरायणाः। केचिद्रामं निरीक्षन्ते केचित्सीतामचेतसः ॥२५॥
सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत्समागमः। तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं संमोहितं जगत् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

विष्णु-पत्नी पृथिवी देवी मुझे स्थान दें ॥१४। मन वचन और कर्ममें मैं रामचन्द्रकी ही पूजा करती होऊँ तो विष्णु-पत्नी पृथिवी देवी मुझे स्थान दें ॥ १५ ॥ मैं रामके अतिरिक्त दूसरे पुरुषको नहीं जानती, यह मेरा वचन यदि सत्य हो तो विष्णु-पत्नी पृथिवी देवी मुझे स्थान दें ॥ १६ ॥ इसी प्रकार सीता शपथ कर रही थीं उस समय एक अद्भुत घटना हुई। पृथिवीसे फोड़कर एक दिव्य सिंहासन ऊपर उठा। वह सिंहासन सर्पोंके सिरोंपर रक्खा हुआ था। नागोंने अपने दिव्य शरीरपर उस दिव्य सिंहासनको धारण किया था, वे सर्प दिव्य रत्नोंसे भूषित थे। सीतादेवीको पृथिवीने दोनों हाथोंसे पकड़कर अभिनन्दन किया और उन्हें सिंहासन पर बैठाया ॥ १७,१९ ॥ सीता सिंहासनपर बैठकर भूतलमें चलीं, उस समय उनपर लगातार पुष्प वृष्टि हुई ॥२०॥ उस समय देवताओंकी ओरसे साधुवाद होने लगा, देवताओंने कहा, सीते, तुमको अनेक साधुवाद, जिसका ऐसा उत्तम शील है ॥२१॥ सीताका भूतल-प्रवेश देखकर अन्तरिक्षसे देवताओंने इसी प्रकारकी अनेक बातें कहीं ॥२२॥ यज्ञस्थानमें आये राजाओं तथा मुनियोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥२३॥ अन्तरिक्ष तथा पृथिवीमें सभी स्थावरजंगम, विशाल शरीर दानव, पातालमें नाग, सभी इस घटनासे विस्मित हुए ॥२४॥ कई प्रसन्नतासे चिल्लाने लगे, कई ध्यान मग्न हो गये, कोई रामको देखते थे, कोई सीताको देखते थे और कई बेहोश हो गये ॥२५॥ उन लोगोंका जो सुखमय समागम था वह सीताका प्रवेश देखकर दुःखमय हो गया, थोड़ी देरके लिए सभी मोहित हो गये ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सत्तानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८

रसातलं प्रविष्टायां वैदेह्यां सर्ववानराः। चुक्रुशुः साधुसाध्वीति मुनयो रामसंनिधौ ॥ १ ॥
दण्डकाष्ठमवष्टभ्य बाष्पव्याकुलितेक्षणः। अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यासीत्सुदुःखितः ॥ २ ॥
स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो बाष्पमुत्सृजन्। क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्प्रष्टुमिवेच्छति। पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्रीरिव रूपिणी ॥ ४ ॥
सादर्शनं पुरा सीता लङ्कां पारे महोदधेः। ततश्चापि मयानीता किं पुनर्वसुधातलात् ॥ ५ ॥
वसुधे देवि भवति सीता निर्यात्यतां मम। दर्शयिष्यामि वा रोषं यथा मामवगच्छति ॥ ६ ॥
कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात्तु मैथिली। कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ॥ ७ ॥
तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे। पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥ ८ ॥
आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोऽहं मैथिलीकृते। न मे दास्यसि चेत्सीतां यथारूपां महीतले ॥ ९ ॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां व्यथयिष्यामि ते स्थितिम्। नाशयिष्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवन्त्विह ॥१०॥
एवं ब्रुवाणे काकुत्स्थे क्रोधशोकसमन्विते। ब्रह्मा सुरगणैः सार्धमुवाच रघुनन्दनम् ॥११॥
रामराम न संतापं कर्तुमर्हसि सुव्रत। स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन ॥१२॥
न खलु त्वां महाबाहो स्मारयेयमनुत्तमम्। इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥१३॥
सीता हि विमला साध्वी तव पूर्वपरायणा। नागलोकं सुखं प्रायात्त्वदाश्रयतपोबलात् ॥१४॥

सीताके भूतल प्रवेश करनेपर सभी वानर तथा मुनिगण जो रामचन्द्रके पास थे, वे साधुवाद देने लगे ॥ १ ॥ उस समय रामचन्द्रकी आँखें जलसे भर गयी थीं, वे दुखी सिर झुकाये डण्डा पकड़े खड़े थे ॥ २ ॥ रामचन्द्र बहुत देरतक रोते रहे, आँसू बहाते रहे पुनः वे शोक और क्रोध युक्त होकर बोले ॥ ३ ॥ मेरे सामने ही लक्ष्मिरूपिणी सीता नष्ट हो गयी, पाताल चली गयी, इससे मेरा मन बहुत ही दुःखी हो रहा है ॥ ४ ॥ पहले वह सीता समुद्रपार लंकामें चली गयी थी, वहाँसे भी मैं उसे ले आया फिर पातालसे ले आना कौन बड़ी बात है ॥ ५ ॥ पृथिवी देवि, आप मुझे सीता लौटा दें यदि आप मुझे जानती हो, नहीं तो मैं अपना क्रोध दिखऊँगा ॥ ६ ॥ आप मेरी सास हैं। आपको ही हलसे जोतकर पहले राजा जनकने सीताका उद्धार किया था ॥ ७ ॥ इसलिए आप सीताको लौटा दें अथवा मेरे लिए भी जगह दें। मैं सीताके साथ पाताल या स्वर्गमें रह सकता हूँ ॥ ८ ॥ आप सीताको ले आवें, उसके लिए मैं पागल हो रहा हूँ। यदि पृथिवी तलमें गयी सीताको न लौटाओगी तो मैं पर्वत, वनके साथ समस्त पृथिवीको पीड़ा दूँगा, नाश कर दूँगा जिससे सर्वत्र जल-ही-जल हो जायगा ॥ ९, १० ॥ क्रोध और शोकके कारण रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर देवताओंके साथ ब्रह्मा उनसे बोले ॥ ११ ॥ राम, राम, आपको दुःख नहीं करना चाहिए, आप पहलेकी बातें स्मरण करें, देवताओंके साथ आपका जो निश्चय हुआ था उसे स्मरण करें ॥ १२ ॥ महाबाहो, मैं आपको किसी नयी बातका स्मरण नहीं करा रहा हूँ। वैष्णव-जन्म सम्बन्धी बातें इस समय स्मरण करो। अर्थात् आपने रावण-वधके लिए मनुष्य जन्म धारण किया था, वह पूरा हुआ अब आपको पूर्व निश्चयके अनुसार यहाँसे चलना चाहिए ॥ १३ ॥ साध्वी सीता निष्पाप है पूर्व जन्मसे

स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः । अस्यास्तु परिषन्मध्ये यद्ब्रवीमि निबोध तत् ॥१५॥
एतदेव हि काव्यं ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम् । सर्वं विस्तरतो राम व्याख्यास्यति न संशयः ॥१६॥
जन्मप्रभृति ते वीर सुखदुःखोपसेवनम् । भविष्यदुत्तरं चेह सर्वं वाल्मीकिना कृतम् ॥१७॥
आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । नह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते ॥१८॥
श्रुतं ते पूर्वमेतद्धि मया सर्वं सुरैः सह । दिव्यमद्भुतरूपं च सत्यवाक्यमनावृतम् ॥१९॥
स त्वं पुरुषशार्दूल धर्मेण सुसमाहितः । शेषं भविष्यं काकुत्स्थ काव्यं रामायणं शृणु ॥२०॥
उत्तरं नाम काव्यस्य शेषमत्र महायशः । तच्छृणुष्व महातेज ऋषिभिः सार्धमुत्तमम् ॥२१॥
न खल्वन्येन काकुत्स्थ श्रोतव्यमिदमुत्तमम् । परमऋषिणा वीर त्वयैव रघुनन्दन ॥२२॥
एतावदुक्त्वा वचनं ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः । जगाम त्रिदिवं देवो देवैः सह सबान्धवैः ॥२३॥
ये च तत्र महात्मान ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः । ब्रह्मणा समनुज्ञाता न्यवर्तन्त महौजसः ॥२४॥
उत्तरं श्रोतुमनसो भविष्यं यच्च राघवे । ततो रामः शुभां वाणीं देवदेवस्य भाषिताम् ॥२५॥
श्रुत्वा परमतेजस्वी वाल्मीकिमिदमब्रवीत् । भगवञ्श्रोतुमनस ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ॥२६॥
भविष्यदुत्तरं यन्मे श्वोभूते संप्रवर्तताम् । एवं विनिश्चयं कृत्वा संप्रगृह्य कुशीलवौ ॥२७॥
तं जनौघं विसृज्याथ पर्णशालामुपागमत् । तामेव शोचतः सीतां सा व्यतीता च शर्वरी ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

ही तुम्हारी अनुरागिणी है । वह तुम्हारे आश्रय तथा अपने तपोबलसे सुखपूर्वक नाग लोकमें गयी है ॥ १४ ॥ स्वर्गमें पुनः तुम्हारा उससे साथ होगा ।

इस सभामें मैं जो कहना हूँ वह ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १५ ॥ काव्योंमें श्रेष्ठ यह काव्य, जो तुमने सुना है जन्मसे लेकर सुख-दुःखकी बातें विस्तार-पूर्वक बतलावेगा । इसमें जैसा लिखा है वैसा ही होगा । उत्तरके साथ इस समस्त काव्यका निर्माण वाल्मीकिने किया है ॥ १६,१७ ॥ राम, यह आदि काव्य है इसमें तुम्हारा समस्त चरित वर्णित है । सत्कवियोंके काव्यमें वर्णित यशके आश्रय रामचन्द्रके अतिरिक्त दूसरा कौन है ? ॥१८। देवताओंके साथ तुमने और मैंने यह काव्य सुना है जो दिव्य है, अद्भुत है और जिसमें स्पष्ट सच्ची बातें लिखी गयी है ॥१९॥ अतएव पुरुषसिंह, धर्मपूर्वक सावधान होकर तुम इस रामायण-का आगेका भाग सुनो जिसमें तुम्हारा भविष्य-चरित वर्णित है ॥ २० ॥ इस काव्यका उत्तरकाण्ड अभी शेष है, तुमने नहीं सुना है। वह ऋषियोंके साथ सुनो ॥२१॥ यह उत्तम अंश केवल तुम्हींको सुनना चाहिए अर्थात लक्ष्मण आदिको नहीं ॥ २२ ॥ रामचन्द्रसे ऐसा कहकर त्रिभुवन-स्वामी ब्रह्मा अपने बान्धवों देवताओंको साथ लेकर स्वर्ग चले गये ॥२३॥ जो महात्मा ऋषि ब्रह्मलोकसे आये थे वे ब्रह्माकी आज्ञा लेकर लौट गये । वे ब्रह्माके साथ आ रहे थे, पर उत्तरकांड सुननेकी इच्छासे लौट आये । रामचन्द्र देवदेव ब्रह्माके वचन सुनकर वाल्मीकिसे बोले, भगवन्, ये ब्रह्मलोकके ऋषि उत्तरकाण्ड सुनना चाहते हैं जिसमें हमारा भविष्य चरित है, उसका पारायण कल हो । ऐसा निश्चय करके तथा कुश-लवको लेकर सब लोगोंको

एकोनशततमः सर्गः ९९

रजन्यां तु प्रभातायां समानीय महामुनीन्। गीयतामविशङ्काभ्यां रामः पुत्रावुवाच ह ॥ १ ॥
ततः समुपविष्टेषु महर्षिषु महात्मसु। भविष्यदुत्तरं काव्यं जगतुस्तौ कुशीलवौ ॥ २ ॥
प्रविष्टायां तु सीतायां भूतलं सत्यसंपदा। तस्यावसाने यज्ञस्य रामः परमदुर्मनाः ॥ ३ ॥
अपश्यमानो वैदेहीं मेने शून्यमिदं जगत्। शोकेन परमायस्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥ ४ ॥
विसृज्य पार्थिवान्सर्वानृक्षवानरराक्षसान्। जनौघं विप्रमुख्यानां वित्तपूर्वं विसृज्य च ॥ ५ ॥
ततो विसृज्य तान्सर्वान्रामो राजीवलोचनः। हृदि कृत्वा सदा सीतामयोध्यां प्रविवेश ह ॥ ६ ॥
न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः। यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनीभवत् ॥ ७ ॥
दशवर्षसहस्राणि वाजिमेधानथाकरोत्। वाजपेयान्दशगुणांस्तथा बहुसुवर्णकान् ॥ ८ ॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः। ईजे क्रतुभिरन्यैश्च स श्रीमानाप्तदक्षिणैः ॥ ९ ॥
एवं स कालः सुमहान्राज्यस्थस्य महात्मनः। धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद्राघवस्य च ॥१०॥
ऋक्षवानररक्षांसि स्थिता रामस्य शासने। अनुरञ्जन्ति राजानो ह्यहन्यहनि राघवम् ॥११॥
काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥१२॥
नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा। नानर्थो विद्यते कश्चिद्रामे राज्यं प्रशासति ॥१३॥

विदा करके रामचन्द्र पर्णशालामें गये। सीताका ध्यान करते-करते उनकी रात बीत गयी ॥ २४–२८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका अट्ठानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९८ ॥

रात बीतनेपर मुनियोंको एकत्र करके रामचन्द्रने अपने निःशङ्क पुत्रोंको गानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ महर्षियोंके यथास्थान बैठ जानेपर रामायणका उत्तरकाण्ड वे दोनों कुश और लव गाने लगे, जिसमें रामचन्द्रके भविष्य जीवनका वर्णन है ॥ २ ॥ सत्य बलके द्वारा सीताके पातालमें चली जानेपर तथा यज्ञकी समाप्तिपर रामचन्द्र बहुत दुःखी हुए, ॥ ३ ॥ सीताके न रहनेसे उन्हें समस्त संसार सूना दीख पड़ा, वे बड़े दुःखी रहने लगे, उनके मनकी शान्ति जाती रही ॥ ४ ॥ राजा, वानर, भालु, राक्षसों तथा उस बड़े जनसमूहको उन्होंने बिदा कर दिया, ब्राह्मणोंको भी धन देकर बिदा किया ॥५॥ इन सबको बिदा करके और मनमें सीताका ध्यान करते हुए रामचन्द्रने अयोध्यामें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ रामचन्द्रने सीताके अतिरिक्त दूसरी स्त्री नहीं ब्याही, यज्ञोंके लिए उन्होंने सुवर्णकी सीताकी प्रतिमा बनवायी थी ॥ ७ ॥ दसहजार वर्षोंतक उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया, इसके दसगुने समयतक वाजपेय यज्ञ किया और बहुत सुवर्ण दक्षिणामें दिया ॥ ८ ॥ इनके अतिरिक्त अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोमेध आदि यज्ञ उन्होंने किये और प्रचुर दक्षिणा दी ॥ ९ ॥ राज्य-पालन करते हुए तथा धर्मके लिए प्रयत्न करते हुए रामचन्द्रका समय इस प्रकार बीतने लगा ॥ १० ॥ भालु, वानर और राक्षस रामके अधीन रहकर राजाओंकी सेवा नित्य करने लगे ॥ ११ ॥ समयपर पानी बरसता था, सुभिक्ष रहता था, दिशाएँ स्वच्छ रहती थीं, नगरवासी प्रसन्न और पुष्ट रहते थे ॥१२॥ अकालमें कोई मरता न था, किसीको कोई रोग न होता

अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी । पुत्रपौत्रैः परिवृता कालधर्ममुपागमत् ॥१४॥
अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी । धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिदिवे पर्यवस्थिता ॥१५॥
सर्वाः प्रमुदिताः स्वर्गे राज्ञा दशरथेन च । समागता महाभागाः सर्वधर्मं च लेभिरे ॥१६॥
तासां रामो महादानं काले काले प्रयच्छति । मातॄणामविशेषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥१७॥
पित्र्याणि ब्रह्मरत्नानि यज्ञान्परमदुस्तरान् । चकार रामो धर्मात्मा पितॄन्देवान्विवर्धयन् ॥१८॥
एवं वर्षसहस्राणि बहून्यथ ययुः सुखम् । यज्ञैर्बहुविधं धर्मं वर्धयानस्य सर्वदा ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः १००

कस्यचित्त्वथ कालस्य युधाजित्केकयो नृपः । स्वगुरुं प्रेषयामास राघवाय महात्मने ॥ १ ॥
गार्ग्यमङ्गिरसः पुत्रं ब्रह्मर्षिममितप्रभम् । दश चाश्वसहस्राणि प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥ २ ॥
कम्बलानि च रत्नानि चित्रवस्त्रमथोत्तमम् । रामाय प्रददौ राजा शुभान्याभरणानि च ॥ ३ ॥
श्रुत्वा तु राघवो धीमान्महर्षिं गार्ग्यमागतम् । मातुलस्याश्वपतिनः प्रहितं तन्महाधनम् ॥ ४ ॥
प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः क्रोशमात्रं सहानुजः । गार्ग्यं संपूजयामास यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥
तथा संपूज्य तमृषिं तद्धनं प्रतिगृह्य च । पृष्ट्वा प्रतिपदं सर्वं कुशलं मातुलस्य च ॥ ६ ॥

था, रामचन्द्रके राज्य शासनकालमें कोई अनर्थ नहीं होता था ॥ १३ ॥

अनन्तर बहुत समय बीतनेपर रामचन्द्रकी यशस्विनी माता कौशल्याकी मृत्यु हुई ॥ १४ ॥ सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयीने कौशल्याका अनुगमन किया वे भी स्वर्गगामिनी हुईं, अनेक प्रकारके धर्मकरके वे स्वर्गमें गयीं ॥ १५ ॥ ये सभी महारानियाँ प्रसन्न होकर राजा दसरथके साथ मिलीं और इस प्रकार इनके धर्मोंका फल इन्हें प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इन माताओंके लिए बिना किसी भेदके समय-समय-पर रामचन्द्रने ब्राह्मणों तथा तपस्वियोंको बड़ा-बड़ा दान किया ॥ १७ ॥ पितरोंको प्रसन्नकरनेवाले रत्न वे ब्राह्मणोंको देते थे, और बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, इस प्रकार धर्मात्मा रामचन्द्र पितरों और देवताओंको प्रसन्नताके लिए यह सब करते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके यज्ञों विविध धर्मोंके द्वारा देवताओंको पुष्ट करते हुए रामचन्द्रके कई हजार वर्ष सुखपूर्वक बीत गये ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका निन्नानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९९ ॥

कुछ काल बीतनेके पश्चात् केकय देशके राजा युधाजितने अपने गुरुको रामचन्द्रके पास भेजा ॥ १ ॥ अङ्गिराके पुत्र ब्रह्मर्षि गार्ग्य एक हजार दस घोड़े लेकर रामचन्द्रके पास आये ॥ २ ॥ कम्बल रत्न छपे हुए वस्त्र और उत्तम आभरण राजाने रामचन्द्रके लिए भेजे थे ॥३ ॥ रामचन्द्रने सुनाकि मामाके यहाँसे महर्षि गार्ग्य बहुत मूल्यवान् भेंट लेकर आये हैं ॥ ४ ॥ भाईके साथ एक कोश आगे जाकर रामचन्द्रने महर्षिका सत्कार किया, जिस प्रकार इन्द्र वनस्पतिका सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥ महर्षिकी पूजा करके

उपविष्टं महाभागं रामः प्रष्टुं प्रचक्रमे। किमाह मातुलो वाक्यं यदर्थं भगवानिह ॥ ७ ॥
प्राप्तो वाक्यविदां श्रेष्ठः साक्षादिव बृहस्पतिः। रामस्य भाषितं श्रुत्वा महर्षिः कार्यविस्तरम् ॥ ८ ॥
वक्तुमद्भुतसंकाशं राघवायोपचक्रमे। मातुलस्ते महाबाहो वाक्यमाह नरर्षभः ॥ ९ ॥
युधाजित्प्रीतिसंयुक्तं श्रूयतां यदि रोचते। अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ॥१०॥
सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः। तं च रक्षन्ति गन्धर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः ॥११॥
शैलूषस्य सुता वीर तिस्रः कोट्यो महाबलाः। तान्विनिर्जित्य काकुत्स्थ गन्धर्वनगरं शुभम् ॥१२॥
निवेशय महाबाहो स्वे पुरे सुसमाहिते। अन्यस्य न गतिस्तत्र देशः परमशोभनः।
रोचतां ते महाबाहो नाहं त्वामहितं वदे ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतो महर्षेर्मातुलस्य च। उवाच बाढमित्येव भरतं चान्ववैक्षत ॥१४॥
सोऽब्रवीद्राघवः प्रीतः साञ्जलिप्रग्रहो द्विजम्। इमौ कुमारौ तं देशं ब्रह्मर्षे विचरिष्यतः ॥१५॥
भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च। मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ ॥१६॥
भरतं चाग्रतः कृत्वा कुमारौ सबलानुगौ। निहत्य गन्धर्वसुतान्द्वे पुरे विभजिष्यतः ॥१७॥
निवेश्य ते पुरवरे आत्मजौ संनिवेश्य च। आगमिष्यति मे भूयः सकाशमतिधार्मिकः ॥१८॥
ब्रह्मर्षिमेवमुक्त्वा तु भरतं सबलानुगम्। आज्ञापयामास तदा कुमारौ चाभ्यषेचयत् ॥१९॥
नक्षत्रेण च सौम्येन पुरस्कृत्याङ्गिरःसुतम्। भरतः सह सैन्येन कुमाराभ्यां विनिर्ययौ ॥२०॥

भेंट लेकर रामचन्द्रने मामाका समस्त कुशल-संवाद पूछा ॥ ६ ॥ महर्षिके बैठनेपर रामचन्द्रने पूछा कि मामाने क्या कहा है, जिसके लिए आप यहाँ आये हैं ॥ ७ ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ वे महर्षि बृहस्पतिके समान थे। वे रामचन्द्रके पूछनेपर अद्भुत ढंगसे सभी बातें कहने लगे। उन्होंने कहा, महाबाहो, आपके मामाने जो कहा है, वह आप प्रेमसे सुनें, शायद वह आपको अच्छा लगे। वह गन्धर्वोंका देश है, वहाँ फल-मूल अधिक होते हैं ॥ ८–१० ॥ सिन्धुनदीके दोनों तटका देश बड़ाही रमणीय है। उसकी रक्षा युद्ध-विशारद गन्धर्व अस्त्र लेकर करते हैं ॥ ११ ॥ गन्धर्व-राज शैलूषके तीन करोड़ पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। उन गन्धर्वोंको जीतकर उस गन्धर्व-नगरको अपने राज्यमें मिला लो। वहाँ दूसरेके किये कुछ न होगा। वह देश बड़ाही रमणीय है। आप इसे पसन्द करें, मैं आपके अकल्याणकी बात नहीं कहता ॥१२,१३॥ महर्षि तथा मामाके वचन सुनकर रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए "अच्छा" कहकर उन्होंने भरतकी ओर देखा ॥ १४ ॥ हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्र महर्षिसे बोले, ये दोनों कुमार उस देश में जायँगे ॥ १५ ॥ ये भरतके पुत्र हैं इनके नाम तक्ष और पुष्कल हैं ये धर्मात्मा हैं, मामाके द्वारा सुरक्षित होकर ये वहाँ रहेंगे ॥ १६ ॥ सेनाके साथ भरत इनको लेकर जायँगे, गन्धर्व पुत्रोंको मारकर दोनों नगर इनको बाँट दिये जायँगे ॥ १७ ॥ उस नगरको पुनः बसाकर वहाँ दोनों कुमारोंको रखकर धर्मात्मा भरत पुनः मेरे पास आ जायँगे ॥ १८ ॥ महर्षिसे ऐसा कहकर रामचन्द्रने जानेके लिए भरतको आज्ञा दी और दोनों कुमारोंका वहीं उन्होंने अभिषेक किया ॥ १९ ॥ उत्तम नक्षत्रमें महर्षि दोनों कुमार तथा सेना लेकर भरत

सा सेना शक्रयुक्तेव नगरान्निर्ययावथ । राघवानुगता दूरं दुराधर्षा सुरैरपि ॥२१॥
मांसाशिनश्च ये सत्त्वा रक्षांसि सुमहान्ति च । अनुजग्मुर्हि भरतं रुधिरस्य पिपासया ॥२२॥
भूतग्रामाश्च बहवो मांसभक्षाः सुदारुणाः । गन्धर्वपुत्रमांसानि भोक्तुकामाः सहस्रशः ॥२३॥
सिंहव्याघ्रवराहाणां खेचराणां च पक्षिणाम् । बहूनि वै सहस्राणि सेनाया ययुरग्रतः ॥२४॥
अध्यर्धमासमुषिता पथि सेना निरामया । हृष्टपुष्टजनाकीर्णा केकयं समुपागमत् ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे शततम सर्गः ॥ १०० ॥

एकोत्तरशततमः सर्गः १०१

श्रुत्वा सेनापतिं प्राप्तं भरतं केकयाधिपः । युधाजिद्गार्ग्यसहितं परां प्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥
स निर्ययौ जनौघेन महता केकयाधिपः । त्वरमाणोऽभिचक्राम गन्धर्वान्केकयाधिपः ॥ २ ॥
भरतश्च युधाजिच्च समेतौ लघुविक्रमैः । गन्धर्वनगरं प्राप्तौ सबलौ सपदानुगौ ॥ ३ ॥
श्रुत्वा तु भरतं प्राप्तं गन्धर्वास्ते समागताः । योद्धुकामा महावीर्या व्यनदंस्ते समन्ततः ॥ ४ ॥
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । सप्तरात्रं महाभीमं न चान्यतरयोर्जयः ॥ ५ ॥
खड्गशक्तिधनुर्ग्राहा नद्यः शोणितसंस्रवाः । नृकलेवरवाहिन्यः प्रवृत्ताः सर्वतोदिशम् ॥ ६ ॥
ततो रामानुजः क्रुद्धः कालस्यास्त्रं सुदारुणम् । संवर्तं नाम भरतो गन्धर्वेष्वभ्यचोदयत् ॥ ७ ॥
ते बद्धाः कालपाशेन संवर्तेन विदारिताः । क्षणेनाभिहतास्तेन तिस्रः कोट्यो महात्मना ॥ ८ ॥

वहाँसे चले ॥ २० ॥ इन्द्र सहित सेनाके समान वह सेना अयोध्यासे चली, उसे देवता भी नहीं हरा सकते थे । रामचन्द्र दूरतक उसके साथ गये ॥ २१ ॥ जो प्राणी माँस खानेवाले थे वे तथा राक्षस भरतके साथ साथ रुधिर पीनेके लिए चले ॥ २२ ॥ हजारों माँस खानेवाले भयंकर भूतोंका समूह गन्धर्व-पुत्रोंका माँस खानेकी इच्छासे चला ॥ २३ ॥ सिंह बाघ सूअर तथा अनेक पक्षी सेनाके साथ आगे आगे चले ॥ २४ ॥ डेढ़ महीना रास्तेमें बिताकर वह सेना केकय देशमें पहुँची, रास्तेमें कोई बिमार न पड़ा, सभी हृष्ट-पुष्ट थे ॥२५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका सवाँ सर्ग समाप्त ॥१००॥

राजा युधाजित्‌ने सुना कि गर्गके साथ भरत सेनापति बनकर आया है, वे इससे बहुत प्रसन्न हुए ॥१॥ बड़े भारी जनसमूहके साथ केकयराज अपनी राजधानीसे निकले, भरतसे मिले, और शीघ्रही उन्होंने गन्धर्व देशपर आक्रमण किया ॥ २ ॥ क्षिप्रयुद्धकारी योधाओंके साथ युधाजित् और भरत अपनी-अपनी सेना लिये गन्धर्व नगरमें पहुँचे ॥ ३ ॥ भरत आये हैं यह सुनकर पराक्रमी गन्धर्व युद्ध करनेके लिए आये और वे गर्जन-तर्जन करने लगे ॥ ४ ॥ सात राततक वह भयंकर युद्ध होता रहा, पर किसी पक्षकी विजय नहीं हुई ॥ ५ ॥ चारों ओर खूनकी नदियाँ बहने लगीं जिनमें मनुष्योंके शरीर बहते थे, तलवार धनुष और शक्ति ग्राहके समान मालूम पड़ते थे ॥६॥ अनन्तर क्रोध करके रामानुज भरतने संवर्त नामका भयंकर कालास्त्र गन्धर्वोंपर चलाया ॥ ७ ॥ कालपाशसे बाँधा, संवर्तसे फाड़ा, इस प्रकार भरतने क्षणमें

तद्युद्धं तादृशं घोरं न स्मरन्ति दिवौकसः। निमेषान्तरमात्रेण तादृशानां महात्मनाम् ॥ ९ ॥
हतेषु तेषु सर्वेषु भरतः कैकयीसुतः। निवेशयामास तदा समृद्धे द्वे पुरोत्तमे ॥१०॥
तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते। गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धारविषये च सः ॥११॥
धनरत्नौघसंकीर्णे काननैरुपशोभिते। अन्योन्यसंघर्षकृते स्पर्धया गुणविस्तरैः ॥१२॥
उभे सुरुचिरप्रख्ये व्यवहारैरकिल्बिषैः। उद्यानयानसंपूर्णे सुविभक्तान्तरापणे ॥१३॥
उभे पुरवरे रम्ये विस्तरैरुपशोभिते। गृहमुख्यैः सुरुचिरैर्विमानैर्बहुभिर्वृते ॥१४॥
शोभिते शोभनीयैश्च देवायतनविस्तरैः। तालैस्तमालैस्तिलकैर्बकुलैरुपशोभिते ॥१५॥
निवेश्य पञ्चभिर्वर्षैर्भरतो राघवानुजः। पुनरायान्महाबाहुरयोध्यां कैकयीसुतः ॥१६॥
सोऽभिवाद्य महात्मानं साक्षाद्धर्ममिवापरम्। राघवं भरतः श्रीमान्ब्रह्माणमिव वासवः ॥१७॥
शशंस च यथावृत्तं गन्धर्ववधमुत्तमम्। निवेशनं च देशस्य श्रुत्वा प्रीतोऽस्य राघवः ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥१०१॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः १०२

तच्छ्रुत्वा हर्षमापेदे राघवो भ्रातृभिः सह। वाक्यं चाद्भुतसंकाशं भ्रातॄनुवाच राघवः ॥ १ ॥
इमौ कुमारौ सौमित्रे तव धर्मविशारदौ। अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च राज्यार्थे दृढविक्रमौ ॥ २ ॥
इमौ राज्येऽभिषेक्ष्यामि देशः साधु विधीयताम्। रमणीयो ह्यसंबाधो रमेतां यत्र धन्विनौ ॥ ३ ॥

ही उन तीन करोड़ गन्धर्वोंको नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥ वैसे भयंकर युद्धका स्मरण देवताओंको भी नहीं है, अर्थात् वैसा युद्ध हुआ ही नहीं। वैसे वीर गन्धर्वोंको एक क्षणमें ही मारकरके केकयी-पुत्र भरतने उनदोनों नगरोंको बसाया ॥ ९, १० ॥ भरतने गन्धर्व देशको तक्षशिला नगरीमें तक्षको और गान्धार देशके पुष्कलावत नगरमें पुष्कलको रखा ॥ ११ ॥ वे दोनों नगर धन-धान्यसे पूर्ण और वनसे शोभित थे, गुणोंमें वे एक दूसरेसे बढ़कर थे, मानों होड़ लगाकर वे अपना-अपना गुण बढ़ा रहे थे ॥ १२ ॥ दोनों ही नगर सुन्दर थे, वहाँका व्यवहार शुद्ध था, वन थे, सवारियाँ थीं, सड़कें और बाजार थे॥ १३ ॥ वे दोनों ही रमणीय नगर सुन्दर थे, विशाल थे, वहाँके घर सुन्दर थे, वहाँ कई मन महले मकान थे ॥ १४ ॥ वहाँ बड़े-बड़े देवस्थान थे, ताल-तमाल तिलक और बकुल आदि वृक्षोंसे वे दोनों नगर शोभित हो रहे थे ॥ १५ ॥ पाँच वर्षोंमें उन नगरोंको अच्छी तरह आबाद करके केकयी-पुत्र भरत पुनः अयोध्या लौट आये ॥ १६ ॥ भरतने दूसरे साक्षात् धर्म तुल्य रामचन्द्रको प्रणाम किया मानों इन्द्रने ब्रह्माको प्रणाम किया हो ॥ १७ ॥ गन्धर्वोंके मारे जाने तथा वहाँ राज्य स्थापित करनेकी बात उन्होंने कही, सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥१८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एक सौ पहला सर्ग समाप्त ॥ १०१ ॥

भाइयोंके साथ रामचन्द्र भरतकी बातोंसे प्रसन्न हुए और वे उनसे बोले ॥ १ ॥ लक्ष्मण, तुम्हारे दोनों पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतु धर्मात्मा हैं तथा राज्यके लिए उपयुक्त पराक्रमी हैं ॥ २ ॥ इन दोनोंका मैं

न राज्ञां यत्र पीडा स्यान्नाश्रमाणां विनाशनम् । स देशो दृश्यतां सौम्य नापराध्यामहे यथा ॥ ४ ॥
तथोक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह । अयं कारुपथो देशो रमणीयो निरामयः ॥ ५ ॥
निवेश्यतां तत्र पुरमङ्गदस्य महात्मनः । चन्द्रकेतोः सुरुचिरं चन्द्रकान्तं निरामयम् ॥ ६ ॥
तद्वाक्यं भरतेनोक्तं प्रतिजग्राह राघवः । तं च कृत्वा वशे देशमंगदस्य न्यवेशयत् ॥ ७ ॥
अङ्गदीया पुरी रम्याप्यङ्गदस्य निवेशिता । रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ८ ॥
चन्द्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता । चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा ॥ ९ ॥
ततो रामः परां प्रीतिं लक्ष्मणो भरतस्तथा । ययुर्युद्धे दुराधर्षा अभिषेकं च चक्रिरे ॥१०॥
अभिषिच्य कुमारौ द्वौ प्रस्थाप्य सुसमाहितौ । अङ्गदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम् ॥११॥
अङ्गदं चापि सौमित्रिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । चन्द्रकेतोस्तु भरतः पार्ष्णिग्राहो बभूव ह ॥१२॥
लक्ष्मणस्त्वङ्गदीयायां संवत्सरमथोषितः । पुत्रे स्थिते दुराधर्षे अयोध्यां पुनरागमत् ॥१३॥
भरतोऽपि तथैवोष्य संवत्सरमतोऽधिकम् । अयोध्यां पुनरागम्य रामपादावुपास्त सः ॥१४॥
उभौ सौमित्रिभरतौ रामपादावनुव्रतौ । कालं गतमपि स्नेहान्न जज्ञातेऽतिधार्मिकौ ॥१५॥
एवं वर्षसहस्राणि दश तेषां ययुस्तदा । धर्मे प्रयतमानानां पौरकार्येषु नित्यदा ॥१६॥

राज्याभिषेक करना चाहता हूँ अतएव कोई रमणीय सुन्दर देश चुनो, जहाँ ये धनुर्धारी आनन्दसे रह सकें ॥ ३ ॥ जहाँ रहनेसे न राजाओंसे सङ्घर्ष हो और न आश्रमवासियोंको दुःख हो, ऐसा देश देखो जहाँ रहनेसे किसीके प्रति अपराध करना न पड़े ॥ ४ ॥ रामके कहनेपर भरतने उत्तर दिया । यह कारुपथ नामका देश है, वह रमणीय और नीरोग है । ५ ॥ वहाँ महात्मा अङ्गदकी राजधानी बनवायी जाय, तथा चन्द्रकेतुकी राजधानी चन्द्रकान्त नामकी बनवायी जाय ॥ ६ ॥ रामचन्द्रने भरतकी बात मान ली और उस देशको वशमें करके रामचन्द्रने वहाँका राजा अंगदको बनाया ॥ ७ ॥ पुण्यात्मा रामचन्द्रने अङ्गदके लिए अङ्गदीया नामकी सुन्दर सुरक्षित पुरी बनवायी ॥ ८ ॥ और चन्द्रकेतुके लिए मल्ल देशमें चन्द्रकान्त नामक दिव्य नगर बनवाया ॥ ९ ॥ युद्धमें अजेय राम, भरत और लक्ष्मण इससे बड़े प्रसन्न हुए और उन लोगोंने उन दोनोंका अभिषेक किया । १०॥ दोनों कुमारोंका अभिषेक करके रामचन्द्रने अङ्गदको पश्चिमकी ओर और चन्द्रकेतुको उत्तरकी ओर भेजा ॥ ११ ॥ अङ्गदके साथ लक्ष्मण गये और चन्द्रकेतुके साथ भरत गये ॥ १२ ॥ लक्ष्मण अङ्गदीया नगरीमें एक वर्ष रहे, जब उनका अजेय पुत्र राज्यपर दृढ़ हो गया तब वे अयोध्या चले आये ॥ १३ ॥ भरत भी उसी प्रकार एकवर्षसे कुछ अधिक दिनों तक रहकर पुनः अयोध्या लौट आये और रामचन्द्रके चरणोंकी सेवा करने लगे ॥ १४ ॥ लक्ष्मण और भरत दोनोंका रामचन्द्रके चरणोंमें अनुराग था । अतएव स्नेहके कारण उन धार्मिकोंको समयका बीतना मालूम नहीं होता था ॥ १५ ॥ इसी प्रकार उन लोगोंके दसहजार वर्ष बीत गये, वे धर्मकार्य तथा पुरवासियोंके कार्य करते थे ॥ १६ ॥ वे तीनों भाई अयोध्यामें रहते थे, उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे, नियत समयतक विहार

विहृत्य कालं परिपूर्णमानसाः श्रिया वृता धर्मपुरे च संस्थिताः ।
त्रयः समिद्धाहुतिदीप्ततेजसो हुताग्नयः साधुमहाध्वरे त्रयः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥१०२॥

त्र्युत्तरशततमः सर्गः १०३

कस्यचित्त्वथ कालस्य रामे धर्मपरे स्थिते । कालस्तापसरूपेण राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥
दूतो ह्यतिबलस्याहं महर्षेरमितौजसः । रामं दिदृक्षुरायातः कार्येण हि महाबलः ॥ २ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः । न्यवेदयत रामाय तापसं तं समागतम् ॥ ३ ॥
जयस्व राजधर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते । दूतस्त्वां द्रष्टुमायातस्तपसा भास्करप्रभः ॥ ४ ॥
तद्वाक्यं लक्ष्मणेनोक्तं वै श्रुत्वा राम उवाच ह । प्रवेश्यतां मुनिस्तात महौजास्तस्य वाक्यधृक् ॥ ५ ॥
सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तं मुनिम् । ज्वलन्तमिव तेजोभिः प्रदहन्तमिवांशुभिः ॥ ६ ॥
सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानं स्वतेजसा । ऋषिर्मधुरया वाचा वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥ ७ ॥
तस्मै रामो महातेजाः पूजामर्घ्यपुरोगमाम् । ददौ कुशलमव्यग्रं प्रष्टुं चैवोपचक्रमे ॥ ८ ॥
पृष्टश्च कुशलं तेन रामेण वदतां वरः । आसने काञ्चने दिव्ये निषसाद महायशाः ॥ ९ ॥
तमुवाच ततो रामः स्वागतं ते महामते । प्रापयास्य च वाक्यानि यतो दूतस्त्वमागतः ॥१०॥
चोदितो राजसिंहेन मुनिर्वाक्यमभाषत । द्वन्द्वे ह्येतत्प्रवक्तव्यं हितं वै यद्यवेक्षसे ॥११॥

करके वे उस यज्ञीय अग्निके समान शोभित होने लगे जो आहुति पानेसे प्रकाशमान हो गया है ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ दूसरा सर्ग समाप्त ॥ १०२ ॥

थोड़ा समय और बीत गया, रामचन्द्र धर्मपूर्वक अयोध्यामें निवास कर रहे थे, उस समय काल तपस्वीके रूपमें राजद्वारपर उपस्थित हुए ॥ १ ॥ उसने कहा, मैं तेजस्वी अतिबल महर्षिका दूत हूँ, किसी कार्यसे रामचन्द्रके पास आया हूँ ॥ २ ॥ उसके वचन सुनकर लक्ष्मणने शीघ्र ही तपस्वीका आना रामचन्द्रसे कहा ॥ ३ ॥ महाद्युते, राजधर्मसे आप दोनों लोकोंको जीतें, एक दूत आपसे मिलने आया है, जिसका तप, तेज, सूर्यके समान है ॥ ४ ॥ लक्ष्मणके मुँहसे दूतकी कही बात सुनकर रामचन्द्र बोले, मुनिको ले आओ, वे उनके दूत हैं । कुछ कहने आये हैं ॥ ५ ॥ लक्ष्मण उन मुनिको, जो तेजसे प्रकाशमान थे, जो किरणोंसे मानों जलाना चाहते हों, रामचन्द्रके पास ले आये ॥ ६ ॥ अपने तेजसे दीप्तिमान रामचन्द्रके पास वे मुनि आये, उन्होंने मीठे स्वरसे रामचन्द्रकी बढ़ती मनायी ॥ ७ ॥ तेजस्वी रामचन्द्रने अर्घ्य आदिसे उनका सत्कार किया और वे निश्चिन्त होकर मुनिसे कुशल संवाद पूछने लगे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रने उनसे कुशल पूछा, और वे मुनि सुवर्णके आसनपर बैठे ॥ ९ ॥ तब रामचन्द्र उनसे बोले, बुद्धिमन्, आपका स्वागत । जो वचन-सन्देश, आप ले आये हों कहें, क्योंकि आप दूत होकर आये हैं ॥१०॥ रामचन्द्रके पूछनेपर मुनिने कहा, यदि आप हमलोगोंका हित करना चाहते हों तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर

यः शृणोति निरीक्षेद्वा स वध्यो भविता तव । भवेद्वै मुनिमुख्यस्य वचनं यद्यवेक्षसे ॥१२॥
तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । द्वारि तिष्ठ महाबाहो प्रतिहारं विसर्जय ॥१३॥
स मे वध्यः खलु भवेद्वाचं द्वन्द्वसमीरितम् । ऋषेर्मम च सौमित्रे पश्येद्वा शृणुयाच्च यः ॥१४॥
ततो निक्षिप्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं द्वारि संग्रहम् । तमुवाच मुने वाक्यं कथयस्वेति राघवः ॥१५॥
यत्ते मनीषितं वाक्यं येन वासि समाहितः । कथयस्वाविशङ्कस्त्वं ममापि हृदि वर्तते ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥१०३॥

चतुरधिकशततमः सर्गः १०४

शृणु राजन्महासत्त्व यदर्थमहमागतः । पितामहेन देवेन प्रेषितोऽस्मि महाबल ॥ १ ॥
तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः परपुरंजय । मायासंभावितो वीर कालः सर्वसमाहरः ॥ २ ॥
पितामहश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः । समयस्ते कृतः सौम्य लोकान्संपरिरक्षितुम् ॥ ३ ॥
संक्षिप्य हि पुरा लोकान्मायया स्वयमेव हि । महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ ४ ॥
भोगवन्तं ततो नागमनन्तमुदकेशयम् । मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्त्वौ महाबलौ ॥ ५ ॥
मधुं च कैटभं चैव ययोरस्थिचयैर्वृता । इयं पर्वतसंबाधा मेदिनी चाभवत्तदा ॥ ६ ॥
पद्मे दिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि । प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेशितम् ॥ ७ ॥

एकान्तमें देना चाहता हूँ ॥ ११ ॥ यदि मुनिकी आज्ञा आप मानें तो आपको यह प्रतिज्ञा भी करनी पड़ेगी कि जो कोई सन्देशको सुनेगा अथवा हम लोगोंको बातें करते देखेगा उसका आप वध करेंगे ॥ १२ ॥ रामचन्द्रने उस मुनिकी बातें मानकर लक्ष्मणसे कहा, तुम द्वारपर रहो, द्वारपालको बिदा कर दो ॥ १३ ॥ लक्ष्मण, मैं उसका वध करूँगा, जो इन मुनिकी बातें सुनेगा, अथवा हम लोगोंकी बातें करते सुनेगा ॥ १४ ॥ इस प्रकार द्वारपर लक्ष्मणका नियोग करके रामचन्द्रने मुनिसे कहा कि 'कहिए' ॥ १५ ॥ जो आपको कहना हो, जो सन्देश लेकर आप आये हैं वह आप निःशङ्क होकर कहें, मैं भी सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ तीसरा सर्ग समाप्त ॥ १०३ ॥
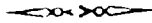
महासत्त्वराजन्, सुनिए जिसलिए मैं आया हूँ । मुझे पितामह ब्रह्माने भेजा है ॥ १ ॥ मैं आपके पूर्व जन्मका पुत्र हूँ । मायाके द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ । मेरा नाम काल है मैं सबका नाश करता हूँ ॥ २ ॥ लोकपति भगवान् ब्रह्माने आपसे कहा है, सौम्य, लोकरक्षाके लिए आपने जो समय नियत किया था, जितने दिन मर्त्यलोकमें निवास करनेकी इच्छा की थी, वह समय पूरा हो गया ॥ ३ ॥ पहले सृष्टिके पहले समस्त लोकोंको संक्षिप्त रूपमें, परमाणु रूपमें, मायाके द्वारा धारण करके आप महासमुद्रके जलमें सो रहे थे । उसी समय आपने मुझे उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ अनन्तर फणाधारी जलमें रहनेवाला अनन्त नामका नाग उत्पन्न किया, मायाके बल दो महाबली और प्राणी भी आपने उत्पन्न किये, जिनका नाम मधु और कैटभ था, जिनकी हड्डियोंसे यह पर्वतवाली पृथिवी उत्पन्न हुई । आपने अपनी नाभिमें सूर्यके समान प्रका-

सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपास्य जगत्पतिम् । रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥ ८ ॥
ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन्भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ ९ ॥
अदित्यां वीर्यवान्पुत्रो भ्रातॄणां वीर्यवर्धनः । समुत्पन्नेषु कृत्येषु तेषां साह्याय कल्पसे ॥१०॥
स त्वमुज्जास्यमानासु प्रजासु जगतो वर । रावणस्य वधाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोऽदधाः ॥११॥
दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । कृत्वा वासस्य नियमं स्वयमेवात्मना पुरा ॥१२॥
स त्वं मनोमयः पुत्रः पूर्णायुर्मानुषेष्विह । कालो नरवरश्रेष्ठ समीपमुपवर्तितुम् ॥१३॥
यदि भूयो महाराज प्रजा इच्छस्युपासितुम् । वस वा वीर भद्रं ते एवमाह पितामहः ॥१४॥
अथ वा विजिगीषा ते सुरलोकाय राघव । सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः ॥१५॥
श्रुत्वा पितामहेनोक्तं वाक्यं कालसमीरितम् । राघवः प्रहसन्वाक्यं सर्वसंहारमब्रवीत् ॥१६॥
श्रुत्वा मे देवदेवस्य वाक्यं परमद्भुतम् । प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसंभवा ॥१७॥
त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम संभवः । भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः ॥१८॥
हृद्गतो ह्यसि संप्राप्तो न मे तत्र विचारणा । मया हि सर्वकृत्येषु देवानां वशवर्तिनाम् ।
स्थातव्यं सर्वसंहार यथा ह्याह पितामहः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः ॥१०४।

शमान कमल उत्पन्न किया और उसमें मुझे उत्पन्न किया। आपने सृष्टि रचनेका समस्त भार मुझे सौंपा ॥ ५,७ ॥ सृष्टि रचनेका भार लेकर मैंने आपकी उपासना की, आपसे सृष्टिकी रक्षाका भार लेनेकी प्रार्थना की, क्योंकि आपने ही सृष्टि करनेका भार मुझपर सौंपा था ॥ ८ ॥ अतएव उस दुर्धर्ष सनातनभाव (ब्रह्मभाव) को छोड़कर प्राणियोंकी रक्षाके लिए आप विष्णुरूपमें प्रकट हुए ॥ ९ ॥ अपने भाइयोंको पराक्रमी बनानेके लिए आप अदितिके गर्भसे पराक्रमी पुत्रके रूपमें प्रकट हुए और आवश्यकता पड़नेपर आप उनकी सहायता करते हैं ॥ १० ॥ जिस समय समस्त प्रजाका नाश हो रहा था उस समय आपने रावणके वधके लिए मनुष्य रूपमें उत्पन्न होनेकी इच्छा की ॥११॥ स्वयं आपने ही दसहजार और दस-सौ वर्ष मनुष्य लोकमें रहनेका निर्णय किया था ॥ १२ ॥ इस प्रकार वासका नियम करके आप आये थे, वह समय पूरा हो गया, आपकी आयु पूरी हो गयी, यही आपको स्मरण दिलानेके लिए मैं काल, ब्रह्माकी आज्ञासे आपके समीप आया हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्माने कहा है कि यदि आप कुछ और अधिक दिनों तक प्रजाकी सेवा करना चाहते हों तो रहें । १४ ॥ यदि आपकी इच्छा देवलोकमें जानेकी हो तो आपके आनेसे देवता सनाथ हो निर्भय हों ॥ १५ ॥ ब्रह्माकी कही बात कालसे सुनकर रामचन्द्र हँसते हुए सर्व-संहारी कालसे बोले ॥ १६ ॥ देवदेव ब्रह्माकी अद्भुत बातें सुनकर तथा तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १७ ॥ तीनों लोकोंकी रक्षाके लिए मेरी उत्पत्ति हुई थी, अच्छा, अब मैं वहीं जाऊँगा, जहाँसे आया हूँ ॥ १८ ॥ काल, मैंने तुम्हारे विषयमें सोचा था, उसी समय तुम आये, अतएव इस विषयमें कोई विचार नहीं है । मैं देवताओंके अधीन हूँ, वे जैसा कहेंगे वैसा मुझे करना होगा, जैसा ब्रह्माने भी कहा है ॥१९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ चौथा सर्ग समाप्त ॥ १०४ ॥

पञ्चोत्तरशततमः सर्गः १०५

तथा तयोः संवदतोर्दुर्वासा भगवानृषिः। रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥
सोऽभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तमः। रामं दर्शय मे शीघ्रं पुरा मेऽर्थोऽतिवर्तते ॥ २ ॥
मुनेस्तु भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा। अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥
किं कार्यं ब्रूहि भगवन्को ह्यर्थः किं करोम्यहम्। व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन्मुहूर्तं परिपाल्यताम् ॥ ४ ॥
तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलः क्रोधेन कलुषीकृतः। उवाच लक्ष्मणं वाक्यं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ५ ॥
अस्मिन्क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय। विषयं त्वां पुरं चैव शपिष्ये राघवं तथा ॥ ६ ॥
भरतं चैव सौमित्रे युष्माकं या च संततिः। न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं वाक्यं तस्य महात्मनः। चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ८ ॥
एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत्सर्वविनाशनम्। इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत् ॥ ९ ॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः कालं विसृज्य च। निःसृत्य त्वरितो राजा अत्रेः पुत्रं ददर्श ह ॥१०॥
सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा। किं कार्यमिति काकुत्स्थः कृताञ्जलिरभाषत ॥११॥
तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवरः प्रभुः। प्रत्याह रामं दुर्वासाः श्रूयतां धर्मवत्सल ॥१२॥
अद्य वर्षसहस्रस्य समाप्तिर्मम राघव। सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तवानघ ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा राघवः प्रीतमानसः। भोजनं मुनिमुख्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥१४॥
स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम्। साधु रामेति संभाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥१५॥

जिस समय रामचन्द्र और काल बातें कर रहे थे उसी समय दुर्वासा ऋषि रामचन्द्रसे मिलनेके लिए राजद्वारपर आये ॥ १ ॥ ऋषिश्रेष्ठ लक्ष्मणके पास आकर बोले, मुझे शीघ्र रामके पास ले चलो, मेरा बड़ा आवश्यक काम बिगड़ रहा है ॥ २ ॥ मुनिके वचन सुनकर उनको प्रणामकर लक्ष्मण उनसे बोले ॥ ३ ॥ भगवन्, कहिए क्या काम है, कौन प्रयोजन है, मैं किस आज्ञाका पालन करूँ। रामचन्द्र इस समय काममें व्यग्र हैं थोड़ा देर ठहरिए ॥ ४ ॥ यह सुनकर ऋषि क्रोधसे जलने लगे, वे लक्ष्मणसे बोले, मानों आँखोंसे जला रहे हों ॥ ५ ॥ इसी क्षण तुम रामचन्द्रके पास मुझे ले चलो, नहीं तो राज्य-नगर और रामचन्द्रको मैं शाप दूँगा ॥ ६ ॥ भरतको और तुम लोगोंका सन्तानको मैं शाप दूँगा, उस समय मैं अपना क्रोध रोक न सकूँगा ॥ ७ ॥ महात्माके वैसे क्रूर वचन सुनकर लक्ष्मण इस विषयमें अपना कर्तव्य सोचने लगे ॥८॥ एक मेरी ही मृत्यु हो, सबका नाश न हो। मनमें ऐसा निश्चय करके लक्ष्मणने रामचन्द्रको मुनिके आनेकी खबर दी ॥९॥ लक्ष्मणकी बातें सुनकर रामचन्द्रने कालको विदा किया और शीघ्र ही निकलकर अत्रिपुत्र दुर्वासासे वे मिले ॥ १० ॥ तेज प्रकाशित महात्माको प्रणाम करके रामचन्द्र हाथ जोड़कर बोले, महाराज, क्या काम है ॥ ११ ॥ दुर्वासाने कहा, धर्मवत्सल, सुनिए, ॥ १२ ॥ आज मेरे हजारवर्षके उपवासकी समाप्ति है। अतएव आपके यहाँ जो तैयार हो वह भोजन मैं चाहता हूँ ॥१३॥ मुनिके वचनसे रामचन्द्र प्रसन्न हुए और जो तैयार था वह भोजन मुनिको उन्होंने दिया ॥ १४ ॥ मुनिने अमृत-तुल्य वह अन्न खाया और रामचन्द्रको धन्यवाद देकर वे अपने आश्रममें चले गये ॥ १५ ॥ पुनः

संस्मृत कालवाक्यानि ततो दुःखमुपागमत् । दुःखेन च सुसंतप्तः स्मृत्वा तद्घोरदर्शनम् ॥१६॥
अवाङ्मुखो दीनमना व्याहर्तुं न शशाक ह । ततो बुद्ध्या विनिश्चित्य कालवाक्यानि राघवः ।
नैतदस्तीति निश्चित्य तूष्णीमासीन्महायशाः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः १०६

अवाङ्मुखमथो दीनं दृष्ट्वा सोममिवाप्लुतम् । राघवं लक्ष्मणो वाक्यं हृष्टो मधुरमब्रवीत् ॥ १ ॥
न संतापं महाबाहो मदर्थं कर्तुमर्हसि । पूर्वनिर्माणबद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥
जहि मां सौम्य विस्रब्धं प्रतिज्ञां परिपालय । हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥ ३ ॥
यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि । जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥ ४ ॥
लक्ष्मणेन तथोक्तस्तु रामः प्रचलितेन्द्रियः । मन्त्रिणः समुपानीय तथैव च पुरोधसः ॥ ५ ॥
अब्रवीच्च तदा वृत्तं तेषां मध्ये स राघवः । दुर्वासोऽभिगमं चैव प्रतिज्ञां तापसस्य च ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणः सर्वे सोपाध्यायाः समासत । वसिष्ठस्तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७ ॥
दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते रोमहर्षणम् । लक्ष्मणेन वियोगश्च तव राम महायशः ॥ ८ ॥
त्यजैनं बलवान्कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः । प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत् ॥ ९ ॥

रामचन्द्रको कालसे भी अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण हुआ । उसका घोर रूप स्मरण करके रामचन्द्र बहुत व्यथित हुए ॥ १६ ॥ वे मलिन मन सिर झुकाये कुछ बोल नहीं सकते थे । पुनः कालकी बातोंका विचार करके उन्होंने निश्चय किया कि अब तो यह कुछ भी न रहेगा, सभीका नाश होगा । यह सोचकर वे चुप हो गये ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०५ ॥

सिर झुकाये दुःखी रामचन्द्र ग्रहग्रस्त चन्द्रमाके समान बैठे हैं, यह देखकर लक्ष्मण प्रसन्न होकर उनसे मधुर स्वरसे बोले ॥ १ ॥ महाबाहो, मेरे लिए आपको दुःख नहीं करना चाहिए, ये बातें पूर्वकर्मोंके अनुसार पहलेसेही निश्चित हैं, कालकी ऐसी ही गति है ॥ २ ॥ निर्भय होकर मेरा वध कीजिए, अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए । क्योंकि प्रतिज्ञा पालन न करनेवाले मनुष्य नरकगामी होते हैं ॥ ३ ॥ यदि आपका मुझपर स्नेह है, यदि मुझपर कृपा है तो निःशङ्क होकर मेरा वध कीजिए और अपने धर्मकी रक्षा कीजिए ॥४॥ लक्ष्मणकी इन बातोंसे रामचन्द्र विचलित हो गये । उन्होंने मंत्रियों और पुरोहितोंको बुलाया ॥५॥ उनके सामने उन्होंने सभी बातें कहीं । दुर्वासाके आने तथा उस मुनिसे की प्रतिज्ञा उन्होंने सुनायी ॥६॥ इन बातोंको सुनकर सभी मंत्री और पुरोहित चुप हो गये । तेजस्वी वसिष्ठ केवल बोले ॥ ७ ॥ महाबाहो, इस प्रकार तुम्हारा विनाश और लक्ष्मणसे तुम्हारा वियोग मैंने पहले ही जान लिया था ॥८॥ लक्ष्मणका त्याग करो, समय बड़ा बली है, प्रतिज्ञा न छोड़ो, क्योंकि प्रतिज्ञा भ्रष्ट होनेपर धर्म नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

ततो धर्मे विनष्टे तु त्रैलोक्यं सचराचरम् । सदेवर्षिगणं सर्वं विनश्येत्तु न संशयः ॥१०॥
स त्वं पुरुषशार्दूल त्रैलोक्यस्याभिपालनात् । लक्ष्मणेन विना चाद्य जगत्स्वस्थं कुरुष्व ह ॥११॥
तेषां तत्समवेतानां वाक्यं धर्मार्थसंहितम् । श्रुत्वा परिषदो मध्ये रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१२॥
विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद् धर्मविपर्ययः । त्यागो वधो वा विहितः साधूनां ह्युभयं समम् ॥१३॥
रामेण भाषिते वाक्ये बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः । लक्ष्मणस्त्वरितः प्रायात्स्वगृहं न विवेश ह ॥१४॥
स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः । निगृह्य सर्वस्रोतांसि निःश्वासं न मुमोच ह ॥१५॥
अनिःश्वसन्तं युक्तं तं सशक्राः साप्सरोगणाः । देवाः सर्षिगणाः सर्वे पुष्पैरभ्यकिरंस्तदा ॥१६॥
अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् । प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह ॥१७॥
ततो विष्णोश्चतुर्भागमागतं सुरसत्तमाः । हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे पूजयन्ति स्म राघवम् ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः १०७

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः । पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम् । अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम् ॥ २ ॥
प्रवेशयत संभारान्मा भूत्कालात्ययो यथा । अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम् ॥ ३ ॥

धर्मके नाश होनेपर चराचर त्रिलोक देवता ऋषि आदि सभीका नाश हो जाता है ॥ १० ॥ पुरुषसिंह इस कारण त्रिलोककी रक्षाके लिए लक्ष्मणका त्याग करके आप संसारको सुखी करें ॥ ११ ॥उन उपस्थित मन्त्रियों और पुरोहितोंके वचन सुनकर रामचन्द्र सभामें लक्ष्मणसे बोले ॥ १२ ॥ लक्ष्मण, धर्मका नाश न हो इसलिए मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ, क्योंकि सज्जनोंका त्याग और वध दोनों समान कहे गये हैं ॥ १३ ॥ रामके वचन सुननेपर लक्ष्मणकी आँखें भर आयीं, उनकी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं, वे वहाँसे शीघ्र ही बाहर निकले, अपने घर भी नहीं गये ॥ १४ ॥ सरयूतीरपर जाकर आचमन और जलदान करके तथा सब इन्द्रियद्वारोंको रोककर वे स्तब्ध हो गये, साँस लेना उन्होंने बन्द कर दिया ॥ १५ ॥ लक्ष्मणने योगस्थ होकर साँस लेना बन्द कर दिया है यह देखकर इन्द्र, अप्सराएँ, देवता और ऋषि उनपर पुष्प-वृष्टि करने लगे ॥ १६ ॥ इन्द्र लक्ष्मणको सशरीर लेकर स्वर्ग चले गये, पर यह बात किसी मनुष्यने नहीं देखी ॥ १७ ॥ विष्णुके चारों भागोंसे पूर्ण रामचन्द्रके पास आकर सभी देवता प्रसन्न और हर्षित होकर उनकी पूजा करने लगे ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ छठा सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

लक्ष्मणका त्याग करके रामचन्द्र बड़े दुःखी और शोकित हुए । वे पुरोहितों, मंत्रियों तथा विद्वानोंसे बोले ॥ १ ॥ आज मैं धर्मात्मा भरतका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक करूँगा और मैं वन जाऊँगा ॥ २ ॥ सभी सामग्रियाँ एकत्र की जाँय, देर न होने पावे । मैं भी आज ही लक्ष्मणके राह जाऊँगा ॥३॥ रामचन्द्र-

तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं सर्वाः प्रकृतयो भृशम्। मूर्धभिः प्रणता भूमौ गतसत्त्वा इवाभवन् ॥ ४ ॥
भरतश्च विसंज्ञोऽभूच्छ्रुत्वा राघवभाषितम्। राज्यं विगर्हयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
सत्येनाहं शपे राजन्स्वर्गभोगेन चैव हि। न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥ ६ ॥
इमौ कुशीलवौ राजन्नभिषिच्य नराधिप। कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥ ७ ॥
शत्रुघ्नस्य च गच्छन्तु दूतास्त्वरितविक्रमाः। इदं गमनमस्माकं शीघ्रमाख्यातु मा चिरम् ॥ ८ ॥
तच्छ्रुत्वा भरतेनोक्तं दृष्ट्वा चापि ह्यधोमुखान्। पौरान्दुःखेन संतप्तान्वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
वत्स राम इमाः पश्य धरणीं प्रकृतीर्गताः। ज्ञात्वैषामीप्सितं कार्यं मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥१०॥
वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्य प्रकृतीजनम्। किं करोमीति काकुत्स्थः सर्वान्वचनमब्रवीत् ॥११॥
ततः सर्वाः प्रकृतयो रामं वचनमब्रुवन्। गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र राम गमिष्यसि ॥१२॥
पौरेषु यदि ते प्रीतिर्यदि स्नेहो ह्यनुत्तमः। सपुत्रदाराः काकुत्स्थ समं गच्छाम सत्पथम् ॥१३॥
तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा। वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर ॥१४॥
एषा नः परमा प्रीतिरेष नः परमो वरः। हृद्गता नः सदा प्रीतिस्तवानुगमने नृप ॥१५॥
पौराणां दृढभक्तिं च बाढमित्येव सोऽब्रवीत्। स्वकृतान्तं चान्ववेक्ष्य तस्मिन्नहनि राघवः ॥१६॥
कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्। अभिषिच्य महात्मानावुभौ रामः कुशीलवौ ॥१७॥
अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः। रथानां तु सहस्राणि नागानामयुतानि च।
दश चाश्वसहस्राणि एकैकस्य धनं ददौ ॥१८॥

की इन बातोंसे सभीके सिर झुक गये, वे निष्प्राणसे हो गये ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके वचनसे भरत बेहोश हो गये। उन्होंने राज्यकी निन्दा की और कहा ॥ ५ ॥ राजन्, मैं सत्यका अथवा स्वर्गभोगका शपथ करता हूँ। मुझे आपके बिना राज्य नहीं चाहिए ॥ ६ ॥ राजन्, ये कुश-लव राज्याभिषेकके योग्य हैं। कोशलमें कुशका तथा उत्तर कोशलमें लवका राज्याभिषेक कीजिए ॥ ७ ॥ शीघ्रगामी दूत शत्रुघ्नके पास जायँ, और हमलोगके जानेका वृत्तान्त उनसे कहें ॥८॥ भरतके वचन सुनकर तथा पुरवासियोंका दुःख सन्ताप और अधोमुख देखकर वसिष्ठ बोले ॥ ९ ॥ वत्स राम, भूमिपर पड़ी अपनी प्रजाको तुम देखो, इनका अभिप्राय जानकर तुम काम करो, इनके प्रतिकूल कुछ न करो ॥ १० ॥ वसिष्ठके कहनेसे प्रजाओंको उठाकर रामचन्द्र बोले, मैं क्या करूँ ॥ ११ ॥ उन लोगोंने कहा, जहाँ आप जायँगे वहाँ हमलोग भी चलेंगे ॥ १२ ॥ यदि नगरवासियोंपर आपका प्रेम है, यदि स्नेह है तो हमलोग भी पुत्र, स्त्रीको लेकर आपके साथ चलेंगे ॥१३॥ तपोवनमें, वनमें, नदीमें अथवा समुद्रमें जहाँ आप जायँ हम लोगोंको साथ ले चलें, आप हम लोगोंका त्याग न करें ॥ १४ ॥ यही हम लोगोंका सबसे बड़ा मनोरथ है, वर है, हृदयकी अभिलाषा है कि आपके साथ चलें ॥ १५ ॥ पुरवासियोंका साथ चलनेका दृढ़ अनुराग तथा अपना कर्तव्य विचारकरके रामचन्द्रने उनका कहना मान लिया ॥ १६ ॥ रामचन्द्रने कोशलमें कुशका और उत्तर कोशलमें लवका राज्याभिषेक किया ॥ १७ ॥ अभिषेक होनेपर दोनों पुत्रोंको गोदमें बैठाकर रामचन्द्रने हजाररथ, दसहजार हाथी, दसहजार घोड़े तथा धन एक-एकको दिये ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनों भाइयोंको बहुत धन, रत्न तथा हृष्ट-

बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनाश्रयौ । स्वे पुरे प्रेषयामास भ्रातरौ तौ कुशीलवौ ॥१९॥
अभिषिच्य ततो वीरौ प्रस्थाप्य स्वपुरे तदा । दूतान्संप्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८

ते दूता रामवाक्येन चोदिता लघुविक्रमाः । प्रजग्मुर्मधुरां शीघ्रं चक्रुर्वासं न चाध्वनि ॥ १ ॥
ततस्त्रिभिरहोरात्रैः संप्राप्य मधुरामथ । शत्रुघ्नाय यथातत्त्वमाचख्युः सर्व एव तत् ॥ २ ॥
लक्ष्मणस्य परित्यागं प्रतिज्ञां राघवस्य च । पुत्रयोरभिषेकं च पौरानुगमनं तथा ॥ ३ ॥
कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधसि । कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥ ४ ॥
श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य ह । अयोध्यां विजनां कृत्वा राघवो भरतस्तथा ॥ ५ ॥
स्वर्गस्य गमनोद्योगं कृतवन्तौ महारथौ । एवं सर्वं निवेद्याशु शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ६ ॥
विरेमुस्ते ततो दूतास्त्वर राजेति चाब्रुवन् । तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं कुलक्षयमुपस्थितम् ॥ ७ ॥
प्रकृतीस्तु समानीय काञ्चनं च पुरोधसम् । तेषां सर्वं यथावृत्तमब्रवीद्रघुनन्दनः ॥ ८ ॥
आत्मनश्च विपर्यासं भविष्यं भ्रातृभिः सह । ततः पुत्रद्वयं वीरः सोऽभ्यषिञ्चन्नराधिपः ॥ ९ ॥
सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् । द्विधा कृत्वा तु तां सेनां माधुरीं पुत्रयोर्द्वयोः ।
धनं च युक्तं कृत्वा वै स्थापयामास पार्थिवः ॥१०॥

पुष्ट आदमियोंके साथ उन्हें उनके नगरोंमें भेजा ॥ १९ ॥ इस प्रकार दोनों पुत्रोंका अभिषेक करके तथा उन्हें उनके नगरोंमें भेजकर रामचन्द्रने महात्मा शत्रुघ्नके पास दूत भेजा ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०७ ॥

शीघ्रगामी वे दूत रामकी आज्ञासे शीघ्र मधुरापुरीमें पहुँचे, उन्होंने रास्तेमें कहीं विश्राम नहीं किया ॥ १ ॥ तीन रात-दिन चलकर वे मधुरा पहुँचे और शत्रुघ्नको अयोध्याकी सब बातें उन्होंने सुनायीं ॥२॥ लक्ष्मणका त्याग, रामकी प्रतिज्ञा। पुत्रोंका अभिषेक तथा पुरवासियोंका रामके साथ जानेकी तैयारी उन लोगोंने कही ॥ ३ ॥ विन्ध्यपर्वतके पास कुशके लिए रामचन्द्रने कुशावती नगरी बसायी है ॥ ४ ॥ लवके लिए श्रावस्ती नामकी नगरी उन्होंने बसायी है। इस प्रकार अयोध्याको जनहीन करके राम और भरतने स्वर्ग जानेका उद्योग किया है। इस प्रकार सब बातें उन लोगोंने शत्रुघ्नसे कहीं ॥ ५, ६ ॥ इतना कहकर वे दूत चुप हो गये, पुनः उन लोगोंने कहा, राजन्, शीघ्रता कीजिए। यह भयंकर कुलक्षय होनेका संवाद सुनकर शत्रुघ्नने समस्त प्रजाको तथा काञ्चननामक पुरोहितको बुलाया और उनसे सब बातें उन्होंने यथावत् कह सुनायीं ॥ ७, ८ ॥ भाइयोंके साथ अपने शरीर त्यागकी भी बात उन्होंने कही। अनन्तर उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक किया ॥ ९ ॥ सुबाहुको मधुरा मिली और शत्रुघातीको वैदिश। मधुराकी सेनाका दो भाग करके उन्होंने वह दोनों पुत्रोंको दे दी। धनका भी उन्होंने पुत्रोंमें विभाग कर

सुबाहुं मधुरायां च वैदिशे शत्रुघातिनम् । ययौ स्थाप्य तदायोध्यां रथेनैकेन राघवः ॥११॥
स ददर्श महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् । सूक्ष्मक्षौमाम्बरधरं मुनिभिः सार्धमक्षयैः ॥१२॥
सोऽभिवाद्य ततो रामं प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः । उवाच वाक्यं धर्मज्ञं धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥१३॥
कृत्वाभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन । तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥१४॥
न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम् । विहन्यमानमिच्छामि मद्विधे न विशेषतः ॥१५॥
तस्य तां बुद्धिमक्लीबां विज्ञाय रघुनन्दनः । बाढमित्येव शत्रुघ्नं रामो वाक्यमुवाच ह ॥१६॥
तस्य वाक्यस्य वाक्यान्ते वानराः कामरूपिणः। ऋक्षराक्षससङ्घाश्च समापेतुरनेकशः ॥१७॥
सुग्रीवं ते पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः । तं रामं द्रष्टुमनसः स्वर्गायाभिमुखं स्थितम् ॥१८॥
देवपुत्रा ऋषिसुता गन्धर्वाणां सुतास्तथा । रामक्षयं विदित्वा ते सर्व एव समागताः ॥१९॥
तवानुगमने राजन्संप्राप्ताः स्म समागताः । यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषोत्तम ॥२०॥
यमदण्डमिवोद्यम्य त्वया स्म विनिपातिताः । एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः ।
प्रणम्य विधिवद्वीरं विज्ञापयितुमुद्यतः ॥२१॥
अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर । तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥२२॥
तैरेवमुक्तः काकुत्स्थो बाढमित्यब्रवीत्स्मयन् । विभीषणमथोवाच राक्षसेन्द्रं महायशाः ॥२३॥
यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावत्त्वं वै विभीषण । राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थः त्वं धरिष्यसि ॥२४॥

दिया ॥ १० ॥ मधुरामें सुबाहुको और वैदिशमें शत्रुघातीको रखकर शत्रुघ्न एक ही रथसे अयोध्याके लिए चले ॥ ११ ॥ उन्होंने महात्मा रामचन्द्रको जलते अग्निके समान, तथा सूक्ष्म रेशमी वस्त्र धारण किये हुए मुनियोंके साथ बैठे देखा ॥१२॥ धर्मका विचार करते हुए शत्रुघ्न हाथ जोड़कर धर्मात्मा रामचन्द्रसे बोले ॥ १३ ॥ दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक करके मैं आपके साथ जानेका दृढ़ निश्चय करके आया हूँ यह आप समझें ॥ १४ ॥ अतएव आप आज और कुछ न कहें, मेरे निश्चयके विरुद्ध न बोलें क्योंकि, इससे बढ़कर दूसरा दण्ड न होगा । मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरे द्वारा आपकी आज्ञाका भंग हो । १५ । शत्रुघ्नका निश्चय दृढ़ है यह जानकर रामचन्द्रने उन्हें आज्ञा दे दी ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नको स्वीकृति देनेके पश्चात् रामरूपी वानर, भालु और राक्षस अनेक दलोंमें वहाँ आये ॥ १७ ॥ स्वर्गगमनके लिए तैयार रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए वे सुग्रीवके साथ आये थे ॥ १८ ॥ देवता ऋषि तथा गन्धर्वोंके पुत्र भी रामचन्द्रके स्वर्गागमनका संवाद पाकर वहाँ आये ॥ १९ ॥ उन लोगोंने कहा, रामचन्द्र, हमलोग आपके साथ चलनेके लिए आये हैं यदि आप हम लोगोंको छोड़कर गये तो आपका यह काम हम लोगोंको यमदण्डसे मारकर गिरा देनेके बराबर होगा । इसी समय महाबली सुग्रीव भी आये और विधिवत् प्रणाम करके वे बोले ॥ २०,२१ ॥ राजन्, वीर अंगदका अभिषेक करके मैं आया हूँ, आपके साथ जानेका मेरा निश्चय दृढ़ है यह आप समझें ॥ २२ ॥ उन लोगोंके अपना-अपना अभिप्राय प्रकट करनेपर रामचन्द्रने हँसकर कहा "अच्छा" इसके पश्चात् वे राक्षसराज विभीषणसे बोले ॥ २३ ॥ राक्षसराज, विभीषण, जब तक यह प्रजा रहेगी तबतक तुम लंकामें रहोगे और जीवित रहोगे ॥ २४ ॥ जबतक चन्द्रमा और सूर्य

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी । यावच्च मत्कथा लोके तावद्राज्यं तवास्त्विह ॥२५॥
शासितश्च सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् । प्रजाः संरक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥२६॥
किंचान्यद्वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महाबल । आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥२७॥
आराधनीयमनिशं देवैरपि सवासवैः । तथेति प्रतिजग्राह रामवाक्यं विभीषणः ।
राजा राक्षसमुख्यानां राघवाज्ञामनुस्मरन् ॥२८॥
तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् । जीविते कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ॥२९॥
मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर । तावद्रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ॥३०॥
एवमुक्तस्तु हनुमान्राघवेण महात्मना । वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप च ॥३१॥
यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी । तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ॥३२॥
जाम्बवन्तं तथोक्त्वा तु वृद्धं ब्रह्मसुतं तदा । मैन्दं च द्विविदं चैव पञ्च जाम्बवता सह ।
यावत्कलिश्च संप्राप्तस्तावज्जीवत सर्वदा ॥३३॥
तदेवमुक्त्वा काकुत्स्थः सर्वांस्तानृक्षवानरान् । उवाच बाढं गच्छध्वं मया सार्धं यथोदितम् ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥१०८॥

नवाधिकशततमः सर्गः १०९

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः । रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

है, जबतक पृथिवी है और जबतक मेरी कथा रहेगी तबतक तुम्हारा राज्य रहे ॥ २५ ॥ मित्र समझकर मैंने तुम्हें यह उपदेश दिया है । मेरे कहनेके अनुसार करना, धर्मसे प्रजाका पालन करो, मेरी बातोंका उत्तर न दो ॥ २६ ॥ राक्षसराज, मैं तुमसे कुछ और भी कहना चाहता हूँ । इक्ष्वाकुकुलके देवता जगन्नाथकी तुम सदा आराधना करो, इन्द्र आदि देवता भी उनकी आराधना करते हैं । विभीषणने रामचन्द्रके उपदेश ग्रहण किये । राक्षसराज रामचन्द्रकी आज्ञाके विषयमें विचार करने लगे ॥ २७, २८ ॥

रामचन्द्र हनुमानसे बोले । तुम्हारी इच्छा जीने की है, तुम अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़ो ॥ २९ ॥ जबतक मेरी कथाका प्रचार रहे तबतक वानरराज, मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरण करो ॥ ३० ॥ महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर हनुमानने कहा और वे प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥ जबतक आपकी पवित्र कथाका प्रचार रहेगा तबतक मैं पृथिवीमें रहूँगा और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मपुत्र वृद्ध जाम्बवान्, मैन्द, द्विविदसे रामचन्द्रने वैसा ही कहा । जाम्बवानके साथ आप पाँचों जबतक कलि आवे तबतक जीवित रहें ॥ ३३ ॥ उन सबसे ऐसा कहकर वे दूसरोंसे बोले । अच्छा, जैसा आप लोगोंने कहा है आपलोग मेरे साथ चलें ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०८ ॥

रातके बीतनेपर विशालवक्षा कमलनेत्र रामचन्द्र पुरोहितसे बोले ॥ १ ॥ जगता हुआ मेरा

अग्निहोत्रं व्रजत्वग्रे दीप्यमानं सह द्विजैः। वाजपेयातपत्रं च शोभमानं महापथे ॥ २ ॥
ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः। चकार विधिवद्धर्मं महाप्रस्थानिकं विधिम् ॥ ३ ॥
ततः सूक्ष्माम्बरधरो ब्रह्ममावर्तयन्परम्। कुशान्गृहीत्वा पाणिभ्यां सरयूं प्रययावथ ॥ ४ ॥
अव्याहरन्कचित्किंचिन्निश्चेष्टो निःसुखः पथि। निर्जगाम गृहात्तस्माद्दीप्यमानो यथांशुमान् ॥ ५ ॥
रामस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मा श्रीः समुपाश्रिता। सव्येऽपि च मही देवी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ६ ॥
शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम्। तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥ ७ ॥
वेदा ब्राह्मणरूपेण गायत्री सर्वरक्षिणी। ओङ्कारोऽथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः ॥ ८ ॥
ऋषयश्च महात्मानः सर्व एव महीसुराः। अन्वगच्छन्महात्मानं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ ९ ॥
तं यान्तमनुगच्छन्ति ह्यन्तःपुरचराः स्त्रियः। सवृद्धबालदासीकाः सवर्षवरकिंकराः ॥१०॥
सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ। रामं गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुव्रताः ॥११॥
ते च सर्वे महात्मानः साग्निहोत्राः समागताः। सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुजग्मुर्महामतिम् ॥१२॥
मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्रपशुबान्धवाः। सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन्प्रहृष्टवत् ॥१३॥
ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः। गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥१४॥
ततः सस्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुबान्धवाः। राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मषाः ॥१५॥
स्नाताः प्रमुदिताः सर्वे हृष्टपुष्टाश्च वानराः। दृढं किलकिलाशब्दैः सर्वं राममनुव्रतम् ॥१६॥

अग्निहोत्र (अग्निहोत्रकी तीनों आग तथा उसकी सामग्रियाँ) ब्राह्मणोंके साथ आगे चलें, और वाजपेय यज्ञका छत्र भी चले ॥ २ ॥ अनन्तर पुरोहित वसिष्ठने महाप्रस्थानकी समस्त विधि धर्मपूर्वक की ॥ ३ ॥ पतले वस्त्र पहनकर हाथमें कुश लेकर वेद पाठ करते हुए रामचन्द्र सरजू तीर गये ॥ ४ ॥ रामचन्द्र कुछ बोलते न थे किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं करते थे, बिना जूतेके थे। वे दीपमान सूर्यके समान उस घरसे निकले ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके दाहिनी ओर पद्म और श्री चलीं, बायीं ओर पृथिवी चलीं, तथा उनका व्यवसाय—संहार शक्ति अथवा प्रभाव आगे चला ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके बाण, विशाल धनुष तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र मनुष्य शरीर धारण करके रामचन्द्रके आगे-आगे चले ॥ ७ ॥ वेद, सबकी रक्षा करनेवाली गायत्री, ओङ्कार और वषट्कार ये सब ब्राह्मण रूपमें रामचन्द्रके साथ चले ॥ ८ ॥ ऋषि तथा समस्त ब्राह्मण ये भी रामचन्द्रके साथ चलें, क्योंकि स्वर्ग द्वार खुला हुआ था, इनके साथ जानेवालोंके लिए कोई रुकावट न थी ॥ ९ ॥ बालक, वृद्ध, दासियाँ, अन्तपुररक्षक तथा भृत्योंके साथ महलकी स्त्रियाँ भी रामचन्द्रके साथ चलीं ॥ १० ॥ स्त्रियोंके साथ भरत और शत्रुघ्न सदाके आश्रय रामचन्द्रके साथ चले ॥ ११ ॥ अग्निहोत्र और स्त्रीपुत्रके साथ आये हुए वे सभी महात्मा रामचन्द्रके साथ चले ॥१२॥ मन्त्री, भृत्यपुत्र पशु और बान्धवोंके साथ प्रसन्न होकर रामचन्द्रके साथ चले ॥१३॥ प्रजा तथा कर्मचारी सभी रामचन्द्रके गुणोंसे आकृष्ट होकर उनके साथ चले ॥ १४ ॥ स्त्री-पुरुष पशु-पक्षीको लेकर रामचन्द्रके साथ चले। वे सभी प्रसन्न थे, निष्पक्ष थे ॥१५॥ हृष्ट-पुष्ट वानर स्नान करके प्रसन्नताके साथ किलकिल शब्द करने लगे। वे सब रामचन्द्रमें अपना प्रेम बतलाते थे, उनके साथ जानेका अपना दृढ़ निश्चय बतलाते

न तत्र कश्चिद्दीनो वा व्रीडितो वापि दुःखितः । हृष्टं समुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥१७॥
द्रष्टुकामोऽथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः । यः प्राप्तः सोऽपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः ॥१८॥
ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः । आगच्छन्परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥१९॥
यानि भूतानि नगरेऽप्यन्तर्धानगतानि च । राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम् ॥२०॥
यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च । सर्वाणि रामगमने अनुजग्मुर्हि तान्यपि ॥२१॥
नोच्छ्वसत्तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते । तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवाधिकशततमः सर्गः ॥१०९॥

दशाधिकशततमः सर्गः ११०

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् । सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ १ ॥
तां नदीमाकुलावर्तां सर्वत्रानुसरन्नृपः । आगतः सप्रजो रामस्तं देशं रघुनन्दनः ॥ २ ॥
अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वैः परिवृतो देवैर्भूषितैश्च महात्मभिः ॥ ३ ॥
आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः । विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥ ४ ॥
दिव्यतेजोवृतं व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम् । स्वयंप्रभैः स्वतेजोभिः स्वर्गिभिः पुण्यकर्मभिः ॥ ५ ॥
पुण्या वाता ववुश्चैव गन्धवन्तः सुखप्रदाः । पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महौघवत् ॥ ६ ॥
तस्मिंस्तूर्यशतैः कीर्णे गन्धर्वाप्सरसंकुले । सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे ॥ ७ ॥

थे ॥१६॥ वहाँ कोई मुरझाया हुआ न था, लज्जित न था, दुःखी न था। वहाँ जो एकत्र थे, सभी प्रसन्न थे, वह एक अद्भुत दृश्य था। १७ ॥ रामचन्द्रकी यात्रा देखनेके लिए जो प्रजाके लोग वहाँ आये वे भी जानेके लिये तैयार हो गये ॥१८॥ भालु, वानर, राक्षस तथा पुरवासी सभी रामचन्द्रके पीछे-पीछे भक्तिसे चले ॥१९॥ अयोध्यामें जो प्रायः अदृश्य होकर रहते थे वे भी स्वर्गयात्री रामचन्द्रके साथ चले ॥ २० ॥ स्थावर या जंगम जो कोई रामचन्द्रको जाते देखता था वही उनके साथ हो जाता था ॥ पशुपक्षी भी रामचन्द्रके साथ चले ॥ २१ ॥ इस प्रकार अयोध्यामें कोई भी साँस लेनेवाला नहीं रह गया, कोई भी प्राणी नहीं रहा ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडका एकसौ नवाँ सर्ग समाप्त ॥१०९॥

आधा योजनसे अधिक चलकर रामचन्द्रने पश्चिमाभिमुख होकर पवित्र सलिला सरयू नदीको देखा ॥ १ ॥ उसमें हलोरे उठ रहे थे, सब जगह घूमकर रामचन्द्र प्रजाके साथ ठीक जगहपर आये ॥ २ ॥ उसी समय लोक पितामह ब्रह्मा देवताओं और महात्माओंको साथ लेकर रामचन्द्रके पास आये उनके साथ कई करोड़ विमान थे ॥ ३, ४ ॥ आकाश दिव्य तेजसे प्रकाशित हो गया, क्योंकि अपने तेजसे प्रकाशित पुण्यात्मा देवलोक वासी वहाँ एकत्र थे ॥५॥ सुगन्धित और सुखद हवा चलने लगी आकाशसे धारावद्ध पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ६ ॥ वहाँ सैकड़ों तरहके बाजा बज रहे थे, गन्धर्व और अप्सराओंका

ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत । आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ८ ॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम् । यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम् ॥९॥
वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाकाशं सनातनं । त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित्प्रजानते ॥१०॥
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम् । त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं चाजरं तथा ।
यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ॥११॥
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः । विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥१२॥
ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः । साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥१३॥
ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः । सुपर्णनागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥१४॥
सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसंपूर्णमनोरथम् । साधुसाध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम् ॥१५॥
अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह । एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥१६॥
इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता यशस्विनः । भक्ता हि भजितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः । लोकान्संतानकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥१८॥
यच्च तिर्यग्गतं किंचित्त्वामेवमनुचिन्तयन् । प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या तत्संतानेषु निवत्स्यति॥१९॥
सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे । वानराश्च स्विकां योनिमृक्षाश्चैव तथा ययुः ॥२०॥

समूह एकत्र था, रामचन्द्र सरयूमें प्रवेश करनेके लिए चले ॥ ७ ॥ इस समय आकाशमें ब्रह्मा बोले, विष्णो, आइए, आपका कल्याण हो, आप भाग्यसे आ रहे हैं । ८। देवतुल्य अपने भाइयोंके साथ आप अपने लोकमें प्रवेश कीजिए । आप जिस लोकमें चाहें उस लोकमें जायँ ।९। हे महातेज, आप अपने वैष्णव शरीरमें प्रवेश करें अथवा सनातन आकाशमें प्रवेश करें अर्थात् ब्रह्मरूपसे रहें । क्योंकि आप ही लोकके गति हैं, रक्षक हैं, आपका यथार्थ रूप कोई नहीं जानता ॥ १० ॥ विशालाक्षी सब देखनेवाली मायाको छोड़कर कोई भी आपके पूर्व शरीरको नहीं जानता । पहले आप कौन थे इसका पता किसीको नहीं है । आप अचिन्तनीय हैं अविनाशी और अजर हैं । आप जिस शरीरमें चाहें प्रवेश करें ॥ ११ ॥ ब्रह्माके वचन सुनकर तथा स्वयं निश्चय करके भाइयोंके साथ सशरीर राम वैष्णव लोकमें गये ॥१२॥

अनन्तर सभी देवता साध्य, मरुत, इन्द्र, अग्नि आदि विष्णुकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ दिव्य ऋषि, गन्धर्व अप्सराएँ पक्षी, नाग, यक्ष दैत्यदानव और राक्षस रामचन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ देवताओंने उन्हें धन्यवाद दिये । उन लोगोंने कहा—आपके आनेसे यह स्वर्ग निष्पाप हो गया, प्रसन्न हो गया, इसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो गये ॥१५॥

विष्णु ब्रह्मासे बोले, इन मनुष्योंके रहनेके लिए आप कोई लोक दें ॥ १६ ॥ ये यशस्वी प्रेमवश मेरे साथ आये हैं । ये मेरे भक्त हैं और मैं इनका भक्त हूँ । इन लोगोंने मेरे लिए अपना सुख छोड़ा है ॥ १७ ॥ लोक गुरु ब्रह्मा बोले, ये लोग सन्तानक लोकमें जायँगे ॥ १८ ॥ तिर्यग्योनिके जो प्राणी समस्त पदार्थोंमें आपकी ही भावना करते हैं, आपके ही विषयमें सोचते हैं वे प्राण त्यागके पश्चात् सन्तानक लोकमें जाते हैं ॥ १९ ॥ इस लोकमें ब्रह्मलोकके सब गण वर्तमान हैं और यह उसके पास है । वानर और

येभ्यो विनिःसृताः सर्वे सुरेभ्यः सुरसंभवाः । तेषु प्रविविशे चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ॥२१॥
पश्यतां सर्वदेवानां स्वान्पितॄन्प्रतिपेदिरे । तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपागताः ॥२२॥
भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः । अवगाह्याप्सु यो यो वै प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ॥२३॥
मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत । तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयूजलम् ॥२४॥
संप्राप्य त्रिदिवं जग्मुः प्रभासुरवपूंषि तु । दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥२५॥
गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च । प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपागमन् ॥२६॥
तस्मिन्येऽपि समापन्ना ऋक्षवानरराक्षसाः । तेऽपि स्वर्गं प्रविविशुर्देहान्निक्षिप्य चाम्भसि ॥२७॥
ततः समागतान्सर्वान्स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि । हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवं महत् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशाधिकशततमः सर्गः ॥११०॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः १११

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम् । रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥
ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गलोके यथा पुरा । येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । नित्यं शृण्वन्ति संहृष्टाः काव्यं रामायणं दिवि ॥ ३ ॥

भालु अपनी-अपनी योनियोंमें जायँगे, अर्थात् अपना पूर्व रूप प्राप्त करेंगे ॥ २० ॥ जहाँसे निकलकर ये गये थे उसी रूपको ये पावेंगे । अतएव सुग्रीवने सूर्य मण्डलमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥ इस प्रकार देवताओंके सामने ही वानर आदि अपने आप पिताके रूपमें मिल गये । आपलोग अपने अपने शरीरमें प्रवेश करें, ब्रह्माके यह कहनेपर जो लोग सरयूके गोप्रतार (जहाँ थोड़ा जल हो जिसमें गौ पार हो जाय) घाटपर आये थे, जिनकी आँखें हर्षाश्रुसे भरी थीं, उन लोगोंने जलमें घुसकर प्रसन्नतापूर्वक प्राण त्याग किये । मनुष्य शरीरका त्याग करके वे विमानपर बैठे । तिर्यग्योनिके सैकड़ों पशु-पक्षी भी सरयूके जलमें डूबकर स्वर्गगामी हुए । तेजोमय शरीर उन लोगोंने पाया, दिव्य शरीर पाकर वे देवताके समान दिव्य तथा प्रकाशमान हुए ॥ २२, २५ ॥ स्थावर और जङ्गम प्राणी भी सरयूके जलमें डूबकर उस समय देवलोकमें चले गये ॥२६॥ उस समय वानर, भालु, राक्षस जो कोई वहाँ आया वह भी सरयूके जलमें शरीर त्याग करके स्वर्गमें चला गया ॥ २७ ॥ आये हुओंको स्वर्गमें जगह देकर लोकगुरु ब्रह्मा प्रसन्नचित देवताओंके साथ अपने लोकमें चले गये ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका एकसौ दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११० ॥

यह आख्यान उत्तरकांड सहित इतना ही है, ब्रह्माने इसकी स्तुति की है । यह वाल्मीकिका बनाया मुख्य उपाख्यान है । इसका नाम रामायण है ॥ १ ॥ जिससे चराचर त्रिलोक व्याप्त है वे विष्णु स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हुए । मर्त्यलोकसे स्वर्गलोकमें गये ॥ २ ॥ उनके जानेके बादसे देवता गन्धर्व और ऋषिगण प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक इस काव्यको सुनते हैं ॥ ३ ॥ यह आख्यान आयु और सौभाग्य बढ़ाता

इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् । रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः ॥ ४ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् । सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत् ॥ ५ ॥
पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः । पठत्येकमपि श्लोकं पापात्स परिमुच्यते ॥ ६ ॥
वाचकाय च दातव्यं वस्त्रं धेनुर्हिरण्यकम् । वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ७ ॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः । सपुत्रपौत्रो लोकेऽस्मिन्प्रेत्य चेह महीयते ॥ ८ ॥
रामायणं गोविसर्गे मध्याह्ने वा समाहितः । सायाह्ने चापराह्णे च वाचयन्नावसीदति ॥ ९ ॥
अयोध्यापि पुरी रम्या शून्या वर्षगणान्बहून् । ऋषभं प्राप्य राजानं निवासमुपयास्यति ॥१०॥
एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम् । कृतवान्प्रचेतसः पुत्रस्तद्ब्रह्माप्यन्वमन्यत ॥११॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकादशोत्तरशततमः ॥ १११ ॥

है, पाप नाश करता। वेदके समान यह भी श्राद्धोंमें सुनाया जाना चाहिए ॥ ४ ॥ इससे पुत्रहीन पुत्र पाता है, निर्धन धन पाता है। जो इसका चतुर्थांश भी पढ़ता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ प्रतिदिन पाप करनेवाले मनुष्य भी इसके एक श्लोक पढ़नेसे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥ इसकी कथा सुनाने वालेको वस्त्र गौ और सुवर्ण देना चाहिए, क्योंकि उसके सन्तुष्ट होनेपर सभी देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ यह आख्यान आयु बढ़ानेवाला है। इसका पाठ करनेवाला मनुष्य इस लोकमें पुत्र पौत्र पाता है और परलोकमें स्वर्ग पाता है ॥ प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल तथा अपराह्नमें जो रामायणका पाठ करता है उसे कोई कष्ट नहीं होता ॥ ९ ॥ अयोध्या नगरी भी बहुत वर्षोंतक, रामचन्द्रके बाद सूनी रहेगी पुनः ऋषभ नामक राजाके समयमें वह आबाद होगी ॥ १० ॥ उत्तरकाण्ड सहित इस आख्यानको प्रचेताके पुत्र वाल्मीकिने बनाया, यह आख्यान आयु बढ़ानेवाला है ॥ ११ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके उत्तर काण्डका एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १११ ॥

कुल पृष्ठ-संख्या—२६२ + ४ + ३४ = ३०० साधारण साइजके ६०० पृष्ठ